व्यक्तित्व और काव्य

श्यामनारायण पाण्डेय

श्यामनारायण पाण्डेय : व्यक्तित्व और काव्य

शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापुर की पी-एच्. डी. उपाधि के लिए

स्वीकृत स्वीकृत

शोध-प्रबंध
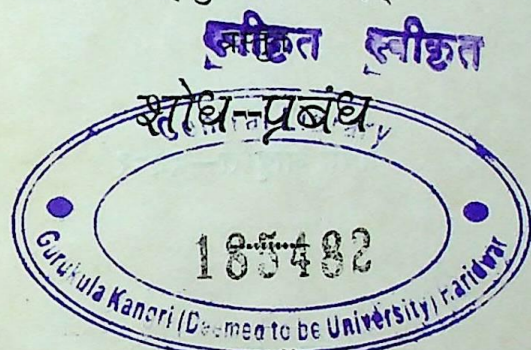
शोध-निर्देशक
साहित्य महोपाध्याय, तत्त्वभूषण
डॉ॰ भगवानदास तिवारी, एम्. ए., पी-एच्. डी.
प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सोलापुर कॉलेज, सोलापुर-२

शोधकर्त्ता
कों. गे. कदम एम्. ए.
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
मोडनिंब, जि. सोलापुर, (महाराष्ट्र)

डॉ. के. जी

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य परिष
मऊनाथ भंजन
मुद्रक-हिन्दी प्रेस, हिन
मऊनाथ भंजन

कवि पं० श्यामनारायण पाण्डेय
(जन्म सं० १९६४ वि०)

डॉ. के. जी. कदम एम. ए. पी.

प्रकाशक :
हिन्दी साहित्य परिषद्
मऊनाथ भंजन-२७५१०१
आजमगढ़ (उ० प्र०)

प्रथम आवृत्ति—१९८१

मूल्य—पचास रुपये

मुद्रक :
हिन्दी प्रेस, हिदी भवन
मऊनाथ भंजन-२७५१०१

महा कवि पं० श्यामनारायण पाण्डेय

(जन्म सं० १९६४ वि०)

प्रस्तावना

स्वातन्त्र्य पूर्व की हिन्दी कविता का मुख्य स्वर युग-धर्म एवं युग-चेतना से कटा हुआ था। कोमल कान्त पदावली में किसी अनागत, अज्ञेय के प्रति अपनी विरह-वेदना का अगरु धूप निवेदित करती कवियों की समूची पीढ़ी नई पौध को एक ऐसे क्लैव्य से आप्लावित कर रही थी जो नयनों से अश्रु ढुलकाकर प्लेटोनिक प्रणय-निवेदन तो कर सकती थो परन्तु अग्नि-वीणा के तार झंकृत करने का दम-खम उन मृणाल जैसे मृदु करों में कहां था ? छाया एवं रहस्य की मानसी मदिरा का विदेशीपन, भारतीय संस्कृति की अदम्य ऊर्जा, गौरव, मूर्धन्य परम्परा सभी को नकार कर पारतन्त्र्य की दु:सह पीड़ादायक बेड़ी को और दुर्वह बनाता, गान को रुदन में परिणत करता हुआ असमय हो नव युवा वर्ग की काव्य-प्रतिभा को विरही बना रहा था। मध्य युगीन भारतीय संस्कृति के उन्नायक तुलसी का दाय अपने वृषभ-स्कन्धों पर लेने वाला खैयाम धर्मी कवि नहीं अपितु कोई कृषक, धरती से जुड़ा हुआ पीड़ित, सर्वहारा पर ब्राह्म तेज से प्रदीप्त अग्निमुखी कवि ही हो सकता था जिसका रोम-रोम राष्ट्र-पीड़ा से प्रकम्पित विद्रोह का स्वर मुखर करने को आकुल हो। हिन्दी कवियों की लम्बी शृङ्खला में इसीलिए कविवर पं० श्यामनारायण पाण्डेय का कवि सर्वथा अलग-थलग, अलीक, जन-मानस से जुड़ा हुआ, वीरत्व को अर्थवत्ता देता हुआ, नैराश्य के निविड अन्धकार में आलोक-शिखर सा प्रतीत होता है।

१९३९ के स्वान्त्र्य-प्रयास की छटपटाहट में जहां पूरा राष्ट्र उद्वेलित था वहीं मां भारती के दु:ख, पीड़ा से अनजान कविगण उधार ली हुई काव्य-सम्पदा से, अलकंरण से उसका शृङ्गार कर रहे थे और तभी 'हल्दी-घाटी' का एकाकी स्वर कवि-सम्मेलनों के मधुमत्त श्रोताओं की नसों में खौलता हुआ तप्त रुधिर प्रवाहित करने लगा। तोतली भाषा के पाठशालीय बालों से लेकर उच्च शिक्षित युवा छात्रों के वीरत्व की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम 'हल्दी घाटी' की कविताएँ ही बनी छाया, ग्रसित लता-द्रुम-वल्लरी की मृदुता वाली कविताएँ नहीं। प्रखर राष्ट्रीयता को हुँकृति, सर्वस्व बलिदान के बाद भी नैराश्य से अछूती, जन-मानस के स्वप्न को साकार करती हुई, भावानुकूल छन्दों में जो वीर रस की नव धारा प्रस्रवित हुई उसमें पूरी की पूरी पीढ़ी नहाकर नव तेज से प्रभासित

हो उठी। १९४२ के स्वातन्त्र्य आन्दोलन में महाराणा प्रताप का जुझारू, त्यागमय व्यक्तित्व एवं उनकी असि की पैनी धार युवकों के हृदय में गहरी उतरती चली गई। उस काल की 'हल्दी घाटी' की असीम लोकप्रियता एवं कवि सम्मेलनों में पं० श्यामनारायण पाण्डेय के अश्रुत पूर्व रसानुकूल ओजमय काव्य-पाठों ने जितना कवि धर्म का सार्थक निर्वाह करते हुए जन-रुचि को युगानुरूप क्रान्तिकारी मोड़ दिया है, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं। मूर्धन्य आलोचक भी जैसे ऐसी ही कृति की प्रतीक्षा में थे क्योंकि खड़ी बोली के रथ को अग्रगति देने में सारथ्य-कर्म का अनुपम उदाहरणीय निर्वाह उन्हें पाण्डेय जी की ओज-स्फूर्त वाणी में ही दृष्टिगोचर हुआ। युगीन इतिहास एवं उसके निर्माताओं का स्वतन्त्रता के बलि-यज्ञ में आत्माहुति देने का साहस भरने में 'हल्दी घाटी' के उद्गाता कवि की भी एक विशिष्ट भूमिका है।

नारी के सतीत्व के रचनात्मक साहस पूर्ण राष्ट्र धर्म की अर्थवाही भूमिका को मुखर करने वाली कृति 'जौहर' ने अपनी करुणामयी वीर रस की उदभावना से लाज से सिकुड़ी हुई भारतीय नारी के अवगुण्ठन को उलटकर आततायी को क्षार-क्षार कर देने की शक्ति की आराधना द्वारा समकालीन नारियों को दुर्गा रूपा शाक्तिकी कर्म की प्रेरणा दी। अलिखित जीवन्त इतिहास गवाह है और गवाह है आज की जीती जागती पीढ़ी जो इन रचनाओं को दुहरा-दुहराकर अपनी अर्ध शती पूरी कर रही है और पितामह बनने के गौरव से उत्फुल्ल है। उसके मानस में 'हल्दी घाटी', 'जौहर' की पंक्तियां जितनी गहराई से वज्र-लेखनी से उत्कीर्ण हैं उतनी 'ताज लन्दन तख्त देहली' अथवा 'चिरजीव राजा व रानी हमारे' के कवियों की नहीं। जहां एक ओर विश्व विख्यात कवि की लेखनी भारत भाग्य विधाता की जय मना रही थी तो दूसरी ओर उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चल का दीन पर आत्म गौरव एव राष्ट्र-धर्म का शलाका पुरुष न केवल अपनी लेखनी से अपितु अपनी ओजमयी वाणी से भी भारतीय सस्कृति का अक्षय स्रोत बलात् हिन्दी भाषियों के कर्ण-कुहरों में उँडेल रहा था। कितना कठिनतम दुःसाध्य दाय था तुलसी का जिसने अपने वाहक को स्पृहणीय यश तो दिया पर उसका सब कुछ लेकर! 'हल्दी घाटी' एवं 'जौहर' को अपने जीवन में जीकर, भोगकर अपने रुधिर से, 'शिवाजी', 'परशुराम', 'जय हनुमान' प्रभृति रचनाओं से भी भारती का शृंगार करता ही गया। पाण्डेय जी की काव्याहुतियों का धूम्र-गुञ्जलक अपने पूत गन्ध से हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक सर्वथा नवरूप में उनका सुनाम अंकित कर रहा था जिसका नव पथग्राही आग्रह ओढ़ा हुआ, उधार मांगा हुआ नहीं अपितु आत्ममेध का प्रतिफल था।

राज्याश्रय पिपासु भीड़ में धक्का खाने की अपेक्षा यह स्वाभिमानी कवि एक सामान्य परिचित आम ग्रामीण किसान की तरह आज भी अपने द्रुम ग्राम की पगडण्डी पर किसी सर्वहारा से पारस्परिक दु:ख सुख को बतियाते हुए संसद की वीथियों को लतियाते हुए प्रति प्रात:सायं दृष्टि-पथ पर आ खड़ा होता है।

आज चार दशकों से कविसम्मेलनों के लाखों श्रोताओं एवं हिन्दी-अध्येताओं के भाव-संवेग-रथ की वल्गा सभालने वाला एक मात्र कवि यदि है तो वह है पं० श्यामनारायण पाण्डेय। उर्दू कवियों की रस विभोर करने वाली काव्य-पाठ-क्षमता को अपने पौरुष से ललकारने की क्षमता यदि किसी कवि में है तो वह है पं० श्यामनारायण पाण्डेय। मारीशस, ब्रिटिश गायना, नेपाल, बर्मा, थाइलैण्ड आदि के प्रवासी भारतीयों में जितनी स्पृहणीय लोकप्रियता पाण्डेय जी को प्राप्त है उतनी स्यात् ही किसी अन्य जीवित कवि को हो। इसका उदाहरण है उनके असंख्य स्नेह भरे निमन्त्रण एवं स्वागत के आयोजित समारोह जिनमें कोई-कोई ही कवि द्वारा स्वीकृत हुए।

सीधा-साधा, सहज, सुलभ, सौम्य व्यक्तित्व का स्वामी पर भस्मावृत्त स्फुलिंग सम साधुमना कवि आज भी अपनी गर्जना द्वारा भारत की अप्रतिम सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा के लिए आबाल वृद्ध को ललकार भरे आह्वान से झकझोरता हुआ, उन्हें करुणा, रौद्र एवं वीर रस को त्रिवेणी में स्नान कराता हुआ, अग्नि-तीर्थ के पौरोहित्य कर्म को निबाहता जा रहा है। उस रूप को देखना भी एक जीवन्त इतिहास का साक्ष्य करना है। राष्ट्रीय अलकंरणों, मानद प्रमाण पत्रों, उपाधियों की व्याधियों, फिसलन भरी राजकीय वीथियों के पथ का अनुसरण न करता हुआ भी यह कवि हमारे मानस के मणितट स्थित कैलास शिखरारुढ़ शिव के समान है जिसे केवल सर्व उपेक्षित जन, वस्तु एवं कर्म ही प्रिय हैं।

हमारा 'हिन्दी साहित्य-परिषद्' महाकवि पाण्डेय जी द्वारा वपित बीज का प्रतिफल एवं उनके ग्राम के प्रतिवेशी नगर को मूर्त्त आशीर्वाद है। अपने उत्तम साहित्य-प्रकाशन के व्रत को साकार करने का 'दुर्गा सप्तशती' के पद्यानुवाद (र० पं० रामप्रसाद पाण्डेय) के बाद यह द्वितीय पर अति महत्त्वपूर्ण प्रयास है। अहिन्दी भाषा भाषी श्री कदम के इस अमूल्य शोध का हिन्दी जगत् समुचित समालोचन करेगा इस आशा के साथ यह ग्रन्थ अपनी दुर्लंघ्य सीमा के रहते हुए भी प्रकाश को समर्पित हैं। इस नगर के लिए भी यह एक गौरव का विषय है कि आदरणीय

पाण्डेय जी के जीवन एवं कृतित्व पर इस शोध-ग्रन्थ-प्रकाशन का उसे सुअवसर प्राप्त हुआ। मुद्रण की भूलें, प्रकाशन-व्यवसाय की अनुभव हीनता एवं इस क्षेत्र में प्राथमिक प्रयास के कारण हैं उनके लिये हम क्षम्य हैं।

द्विजेन्द्रनाथ पाण्डेय
मंत्री
हिन्दी साहित्य परिषद्
मऊनाथ भंजन

भूमिका

आधुनिक हिन्दी कविता के प्रति मैं प्रारम्भ से ही आकृष्ट रहा हूँ। विषेशकर राष्ट्रीय कवि और उनकी कविताएं मुझे अधिक प्रिय रही हैं। स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्ययन-कालमें पं० श्यामनारायण जी पाण्डेय की रचनाओं से मेरा घनिष्ठ परिचय हुआ और मुझे लगा कि उनकी बीर वाणीका आधुनिक युग की राष्ट्रीय चेतना को बड़े सशक्त स्वरों में अपना विशिष्ट स्थान है।

पं० श्यामनारायण जी पाण्डेय आधुनिक काल के प्रमुख वीर रसात्मक कवि हैं। उनके काव्य-काल का विस्तार द्विवेदी युग की समाप्ति से आजतक लगभग ४५–५० वर्षों की सुदीर्घ कालावधि में फैला हुआ है। वे वीर भावों के ही नहीं, राष्ट्रीय भावों के भी हिन्दी के प्रमुख कवि हैं। उनकी काव्य-कृतियाँ हिन्दी–जगत में पर्याप्त प्रख्यात हैं। खेद है कि प्रस्तुत प्रबन्ध के पूर्व हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में पं० श्यामनारायण जी एवं उनकी काव्य कृतियों के संबंध में परिचयात्मक स्फुट उल्लेख मात्र मिलते हैं। ऐसी अवस्था में पं० श्यामनारायण जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का समग्रतामूलक मूल्यांकन हिन्दी साहित्य की एक आवश्यकता ही नहीं, महती अनिवार्यता थी। पाण्डेय जी साधक प्रवृत्ति के कवि हैं, अतः 'साधना' के क्षणों में 'ख्याति' की चिन्ता करना उनका धर्म नहीं रहा है। उनके पीछे कोई सम्प्रदाय, कोई समूह, कोई संस्था या कोई दल नहीं है, अतः वे 'गुटबाजी' और 'गुरुडम' के दलदल से मुक्त स्वातन्त्र्यचेता कवि हैं यही कारण है कि उनका व्यक्तित्व और काव्य न तो आलोचकों की चर्चा का प्रधान विषय बना, न शोधकर्त्ताओं का। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी जगत अपने युग के एक अग्रगण्य कवि के न तो काव्य–गुणों की परोक्षा कर पाया और नहीं उसका सूक्ष्म, संतुलित मूल्यांकन संभव हुआ।

इस परिवेश में मुझे पाण्डेयजी के व्यक्तित्व और उनके कृतित्व पर एक व्यवस्थित प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। मेरी इस जिज्ञासा को क्रमवद्धता एवं साहित्यिकता का सम्बल देकर, उसे इस शोध प्रबन्ध के रुप मे मूर्त्त रुप देने का श्रेय मेरे सम्मान्य निर्देशक डा० भगवान दास जी तिवारी को है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मैंने पं० श्यामनारायण जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्रता मूलक अनुशीलन करने का विनम्र प्रयास किया है

प्रथम अध्याय इस प्रबन्ध की पृष्ठभूमि का निर्देशक है–जिसमें मैंने द्विवेदी कालीन प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए, उसके स्वरुप की रूप रेखा प्रस्तुत की है। द्विवेदी युगीन काव्य को मैंने समाजोन्मुख काव्य, धर्म, भावना, राष्ट्रीय चेतना, मानवतावादी विचारधारा एवं हिन्दी काव्य का तद्‌युगीन साहित्यिक वातावरण आदि सन्दर्भों में विभक्त कर उस युग की प्रमुख–प्रमुख विशेषताओं का उद्‌घाटन किया है। इत विश्लेषण और विवेचन के माध्यम से मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध के मुख्य प्रतिपाद्य 'श्यामनारायण पांडेय व्यक्तित्व और काव्य' के लिये उपलब्ध समृद्ध परिपाटी एवं पार्श्व-भूमि को यथा संभव स्पष्टतः अंकित करने का यत्न किया है। इस पृष्ठभूमि के सहारे मैंने द्विवेदी युगीन काव्य के स्वरूप, विकास एवं उसको परंपरा के केन्द्र निर्धारित किये हैं, जहां से खड़े होकर हम पांडेय जी के काव्य को पूर्वपरंपरा और परिवेश के साथ विभिन्न दृष्टिकोणों से देख परख सकते हैं

द्वितीय अध्याय में पं० श्यामनारायण जी के जीवनवृत्त और उनके व्यक्तित्व का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में पाण्डेय जी के आविर्भाव के समय हिन्दी काव्य की जो स्थिति थी, पूर्व पीठिका के रूप में उसका संक्षिप्त संकेत करके, मैंने उनकी जीवनी और दिनचर्या पर प्रकाश डाला हैं। इस सन्दर्भ में मैंने पाण्डेय जी के काव्य की प्रेरक शक्तियों की यथोचित चर्चा की है। पं० श्यामनारायण जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का विश्लेषण और विवेचन करते समय मैंने उसके विविध रूपों यथा वीर कवि, शैलीकार, गायक आदि पर भी संक्षिप्त किन्तु अधिकृत विवरण प्रस्तुत किया है तदुपरांत पाण्डेय जी के व्यक्तित्व की विशेषताओं का उद्‌घाटन किया है।

तृतीय अध्याय में पंडित श्यामनारायण जी पाण्डेय के काव्य विषयक दृष्टिकोण एवं उनकी काव्य–कृतियों का विवेचन किया गया है। तत्पश्चात पाण्डेय जी की प्रकाशित एवं अप्रकाशित काव्य-कृतियों का कालक्रमागत परिचय दिया गया है। यह विवेचन कवि कीकाव्य-साधना की ऐतिहासिक यात्रा का निरूपक है, जिसका सूक्ष्म विश्लेषण, विवेचन और परीक्षण आगामी अध्यायों में विद्यमान है।

चतुर्थ अध्याय में आलोच्य कवि के काव्य का स्वरूप गत व भावगत वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण में मैंने पाण्डेय जी के काव्य का शैलीगत तथा विषयगत वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। शैलीगत वर्गीकरण के अन्तर्गत पाण्डेय जी के महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं गीति-

काव्य की सप्रमाण चर्चा की है। विषयगत वर्गीकरण में राष्ट्र, राष्ट्रीयता राष्ट्रीय काव्य के संबंध में पाण्डेय जी के विचार और उनके काव्य में प्राप्त राष्ट्रीय भावना के विभिन्न रूपों का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत है। तत्पश्चात् उनके सांस्कृतिक काव्य, वीर काव्य, पौराणिक काव्य, आध्यात्मिक काव्य, दार्शनिक काव्य, प्रेम-काव्य और वात्सल्य भाव से परिपूर्ण रचनाओं पर क्रमशः साधार पर प्रकाश डाला है।

पंचम अध्याय में पाण्डेयजी के काव्य का साहित्यिक विश्लेषण परीक्षण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। उनके साहित्यक अनुशीलन को सुविधा की दृष्टि से मैंने भाव-पक्ष और कला पक्ष में विभक्त कर दिया है। भाव-पक्ष के अन्तर्गत पाण्डेयजी के काव्य की रसाभिव्यक्ति क्षमता, संवेदनीयता, कल्पना शक्ति आदि का विवेचन है और कला-पक्ष के अन्तर्गत कवि की शैली छन्द-योजना, अलंकार-विधान, शब्द-संगठन, शब्द-शक्तियां, वाक्य-विन्यास, गुण, रीति, वृत्ति आदि काव्य-तत्वों का सूक्ष्म, साधार आंकलन किया गया है। उक्त विवेचन के समय मैंने पाण्डेयजी के काव्य के गुणों के साथ-साथ उनके दोषों का भी उद्घाटन किया है।

षष्ठ अध्याय में उनकी काव्य-कृतियों का पौराणिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन प्रस्तुत है।

सप्तम अध्याय पाण्डेयजी के काव्य में अन्तर्निहित राष्ट्रीय दृष्टि से सम्बन्धित है। उसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता का स्वरूप विकास और उसके प्रधान तत्त्वों का विवेचन कर मैंने भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना के विकास की पृष्ठभूमि में 'पाण्डेयजी के काव्य में राष्ट्रीय दृष्टि' का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। इस तरह मैंने आधुनिक हिन्दी राष्ट्रीय काव्यमें पाण्डेयजी के काव्य का स्वरूप और वैशिष्ट्य निर्धारित किया है जिससे उनके काव्य में विद्यमान राष्ट्रीय दृष्टि को भलीभांति समझा जा सकता है।

अन्त में, उपसंहार में मैंने तुलनात्मक भूमि पर पं० श्रीधर पाठक, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान आदि पाण्डेयजी के समसामयिक राष्ट्रीय एवं वीर भावों के विरल रचनाकारों से पाण्डेयजी के काव्य की सापेक्षता दिखाकर आधुनिक हिन्दी काव्य में उनके स्थान का निर्धारण किया है और अन्त में प्रबन्ध में प्रस्तुत सभी विचार प्रक्रियाओं और निष्कर्षों का सारांश देकर कवि का समसामयिक परिवेश में 'मूल्यांकन' किया है। इस अध्याय में पाण्डेयजी के प्रदेय की चर्चा करते समय उनके युग तत्त्व, कवि तत्त्व पर भी यथोचित रूप में प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में पं० श्याम नारायण पाण्डेय जी के व्यक्तित्व

और उनके काव्य की विशेषताओं का समग्रता मूलक आकलन करने की दिशा में मैंने एक विनम्र प्रयास किया है। इस सन्दर्भ में यहां कवि के अभिव्यंजना कौशल का तटस्थ रूप से निर्देश किया गया है।

सामान्यतः पाण्डेयजीके काव्य की विस्तृत समीक्षाएं अभी तकनहीं लिखी गई उनकी कृतियों की इधर-उधर जो कुछ थोड़ी सी चर्चा हुई है वह प्राय: परिचयात्मक स्वरूप की है इस प्रबन्ध में मैंने उनके व्यक्तित्व और काव्यका सप्रमाण, सूक्ष्म किन्तु तटस्थ मूल्यांकन करने की चेष्टा की है। इस प्रयास में मैंने किसी भी प्रकार के संकुचित विचार या मताग्रह को स्थान नहीं दिया है। अत: प्रस्तुत प्रबन्ध पाण्डेयजी के व्यक्तित्व और काव्य की विशुद्ध समीक्षा का एक अत्यन्त विनम्र प्रयास है। पं० श्यामनारायण जी के साथ उनके सामयिक राष्ट्रीय भावों के कवियों की तुलना भी इसी दृष्टि से की गई है। सारांश यह है कि पं० श्यामनारायण जी पाण्डेय के कवि-व्यक्तित्व और काव्य स्वरूप का सुचिंतित, सुनियोजित और सुव्यवस्थित अनुसंधानात्मक उद्घाटन इस प्रबन्ध में पहली बार किया गया है और इस दृष्टि से यह शोध ग्रंथ अपने लेखक की मौलिक चिन्तन क्षमता, विवेचन कुशलता तथा शोध-शक्ति सम्पन्नता का एक अकिंचन प्रमाण है।
इस कार्यं को प्रत्येक स्तर पर निर्देशित करने का संपूर्ण श्रेय मेरे श्रद्धेय निर्देशक साहित्य महोपाध्याय, तत्त्वमूषण डा० भगवान दास जी तिवारी को है। प्रबन्ध लिखते समय जहाँ कहीं मुझे किसी प्रकार की जिज्ञासा हुई है, वे उसका स्पष्टीकरण एवं समाधान करते रहे हैं कि यह प्रबन्ध उन्हीं के पाण्डित्यपूर्ण पथ-प्रदर्शन एवं प्रोत्साहन का फल है। उनके स्नेह एवं उनकी कृपा के लिए में हृदय से उनका चिरऋणी हूँ।

इस प्रबन्ध के लेखन काल में मुझे श्रद्धेय पं० श्यामनारायणजी पाण्डेय से मिलने का सौभाग्य भी मिला। परमपूज्य पाण्डेय जी से मैंने आशीर्वाद हो नहीं, शोध सम्बन्धी कई प्रश्नों के उत्तर भी पाये हैं। आदरणीय पाण्डेयजी ने अपनी अप्रकाशित रचनाएं देकर मेरे इस कार्य में जो सहायता पहुँचाई, उसके लिए मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इस सन्दर्भ में मैं प्रो० जितेन्द्रनाथ जी पाठक, कवि हास्य रसाचार्य सूँड़ जी सांस्कृतिक कवि वेद प्रकाश आर्य जी, बेखटक जी और जगदीश ओझा 'सुन्दर' (गाजीपुर) तथा श्री भोलानाथ शास्त्री (मऊ) को भूल नहीं सकता जिन्होंने समय-समय पर मुझे कई प्रकार से सहायता पहुँचाई है। एतदर्थ, मैं इन सभी विद्वज्जनों का आभारी हूँ।

इस प्रबन्ध रचनाके समय विभिन्न हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी तथा संस्कृत के अनेकानेक ग्रंन्थों एवं पत्र–पत्रिकाओं से मैंने यथोचित सामग्री ली है, जिसके लिए मैं उनके विद्वान लेखकों और संपादकों का

हृदय से आभार मानता हूं । उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मोडनिंब के प्राचार्य श्री महाडीक तथा अन्यान्य अध्यापकों के स्नेह, सहयोग और सद्-भाव के लिए मैं उन सब का आभारी हूँ।

शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर, पूना विश्वविद्यालय पूना, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पूना, भारत इतिहास—संशोधक मंडल पूना, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, के ग्रंथालयों से मैंने अपने शोध प्रबन्ध की सामग्री प्राप्त की है, अतः उन संस्थाओं के सभी अधिकारियों और ग्रंथपालों के प्रति मैं अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ।

महाराष्ट्रके लोकमान्य राष्ट्रीय नेता तथा भारतके भू. पू. विदेश मंत्री माननीय श्री यशवंतरावजी चह्वाण ने राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी कवि पं० श्यामनारायण जी पाण्डेय के जीवन और काव्य पर प्रस्तुत प्रबन्ध के लिए मुझे १५००) की आर्थिक सहायता प्रदान की। राष्ट्रभारती के एक तपस्वी साधक के प्रति महाराष्ट्र के लोकनेता का यह प्रेम अभिनंदनीय है। मैं इस पुनीत अनुष्ठान में माननीय यशवंतराव जी चह्वाण के आर्थिक सहयोग के लिए उनका आभारी हूँ।

इस शोधग्रंथके प्रकाशनके संदर्भ में मऊनाथभंजन (आजमगढ़) की एकमात्र साहित्य सेवी संस्था हिन्दी साहित्य परिषद् का उल्लेख न करना भारी भूल होगी, जिसने इसके प्रकाशन का सारा दायित्व अपने ऊपर लिया तथा इसे आपके सम्मुख प्रस्तुत किया। मैं उक्त संस्था तथा उसके समस्त पदाधिकारियों के प्रति हृदय से आभारी हूँ।

अनुसंधान प्रयास है, विराम नहीं, अतः यदि इस प्रबन्ध में कहीं कुछ त्रुटियां रह गई हों तो विद्वज्जनों से मेरी प्रार्थना है कि मुझे तत्सम्बन्धी सूचना देनेका कष्ट करें, ताकि पुनर्मुद्रण के पूर्व मैं इस ग्रंथ को अधिक परिष्कृत और निर्दोष बना सकूं।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
मु. पो.-मोडनिब जि० सोलापुर (महाराष्ट्र)

विनीत
के. जी. कदम

अनुक्रम

द्विवेदीकालीन हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां

पं० श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य में जिस वीरपूजा को भावना तथा राष्ट्रप्रेम का उद्वेलन पाया जाता है वह उनके युग की राष्ट्रव्यापी लोकचेतना के संस्कार का फल है, अतः पं० श्यामनारायण पाण्डेय के व्यक्तित्व और कृतित्व पर विचार करने से पूर्व उनके युगीन परिवेश की परिस्थितियों, समस्याओं, संघर्षों, विचारधाराओं एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों का परिशीलन नितांत आवश्यक है। पं० श्यामनारायण मूलतः द्विवेदी युग की विभूति हैं, अतः उनके जीवन और काव्य को चर्चा करने के पूर्व द्विवेदी युग की वास्तविकताका चिंतन, विश्लेषण और आकलन नितांत आवश्यक है।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख विशेषताएं:–

द्विवेदी युग का समय सन् १९०३ई० से १९२० ई० तक निर्धारित किया गया है। उन्होंने इस युग पर ऐसी अमिट छाप डाली है कि इस युग का नामकरण उन्हीं के नाम पर हुआ। उन्होंने खड़ी बोलीको काव्य-भाषाके रूप में प्रतिष्ठित कर 'ब्रजभाषा और खड़ी बोली'का द्वन्द्व समाप्त किया तथा भाषाकी शुद्धता और सरलताका आग्रह किया। काव्य शैली की दृष्टि से इस युग में इतिवृत्तात्मकता बढ़ी और शृंगार को अश्लील मानकर उसका बहिष्कार किया गया। द्विवेदीयुगीन काव्य के इस परिवर्तन के पीछे निम्नलिखित परिस्थितियां क्रियाशील थीं।

सामाजिक परिस्थितिः–

जिन सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों में भारतेन्दुयुग के कवि काव्य रचना कर रहे थे, प्रायः वही परिस्थितियां द्विवेदो युग में भी विद्यमान थीं। हां, परिवर्तन की प्रक्रिया इस युगमें अवश्य कुछ वेगवती हो गई थी। जहां तक सामाजिक दशा का सम्बन्ध है, अनेक संस्थाएं इस क्षेत्रमें कार्य कर रही थीं। इन सबमें 'आर्य समाज का' प्रयास अधिक प्रभावशाली था। इस युग में शिक्षा-प्रसार के साथ-साथ जनता का बौद्धिक विकास भी हो रहा था। स्त्री-शिक्षा का प्रचलन बढ़ रहा था और शिक्षित वर्ग सामाजिक कुरीतियों की आलोचना करने में विशेष जागरूक था। फिर भी समाज में ऐसे निन्दनीय दोषों की कमी नहीं थी जो समाज

का अभिशाप बन चुके थे। ऐसे वातावरण में अविद्या, आलस्य, प्रमाद तथा नैतिक पतन से जर्जर समाज को बलपूर्वक झकझोरने को आवश्यकता थी। उसे चिरनिद्रा से सजग करना सहज कार्य नहीं था। बाल-विवाह, अनमेलविवाह, दहेज-प्रथा, विधवाविवाह–निषेध आदि कुरीतियों से संत्रस्त अधिकांश जनता अभी अशिक्षित एवं अबोध थी। जाति-पांति और छुआछूत जैसे रोग समाज में विद्यमान थे। जनता प्राचीन रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं से आबद्ध थी और इसीलिए वास्तविक उन्नति से दूर थी।

राजनैतिक चेतना

द्विवेदीयुग की काव्य-कृतियों पर तात्कालिक राजनैतिक परिस्थिति सामाजिक अवस्था और धार्मिक विचारधारा का दूरगामी प्रभाव परिलक्षित होता है।

सन् १९०४-१९०५ ई० के रूस-जापान युद्ध में रूस पर जापान की विजय,इटलीका स्वातंत्र्ययुद्ध एवं आयरलैन्डके 'होमरूल' इत्यादि घटनाओं के फलस्वरूप भारत में भी नयी चेतना और नया उत्साह प्रस्फुटित हुआ। भारतीयों को नई प्रेरणा, नई स्फूर्ति और नई शक्ति मिली। भारतीयलोगों ने भी अपने आंदोलन और संघर्ष में आत्मविश्वास का अनुभव किया। साथ ही इन घटनाओं से राजनैतिक क्षेत्र में नवीन युगान्तर प्रस्तुत हुआ और इन परिवर्तनों से तत्कालीन काव्य धारा प्रभावित हुई।

सन् १९०५ तक कांग्रेसकी नीति ब्रिटिश सरकारके साथ अनुनय-विनय की रही, क्योंकि ब्रिटिश नीति पर कांग्रेस का विश्वास था। परन्तु आगे उसका विश्वास बदलता गया। बंगाल के विभाजन ने देश में एक असंतोष की लहर उत्पन्न की। इसके परिणामस्वरूप देश में स्वदेशी आंदोलन, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार तथा विदेशियों और विदेशी वस्तुओंके बहिष्कार आदि की भावनाएं बढ़ने लगीं। धीरे-धीरे देश को स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन प्रबल हुआ।

सन् १९०६ ई० में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में दादाभाई नौरोजी ने स्वराज्य की मांग की।[1] सन् १९०७ ई०के सूरत अधिवेशनमें कांग्रेसमें गरम और नरम दल पैदा हुए। गरम दलके नेता थे–लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचंद्र पाल और नरम दल के नेता थे–दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले। बाद में म० गांधी ने इसी दल का अनुकरण किया। कांग्रेस के लिए एक विधान

१–"डा० विद्यानाथ गुप्त : हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, ई० स० १९६६ में प्रकाशित, पृ० २४३।

तैयार हुआ जिसमें यह कहा गया था कि–"भारत की जनता भो ऐसो शासन प्रणाली प्राप्त करें जैसी ब्रिटिश साम्राज्यके अन्यान्य स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों में है। इस उद्देश्यके लिए वर्तमान शासन प्रणाली में लगातार सुधार करना तथा देश के बौद्धिक, नैतिक आर्थिक तथा औद्योगिक साधनों का संगठन करना आवश्यक है। [1] १९०९ में मोर्ले-मिन्टों सुधार कानून के फलस्वरूप कुछ सुधार अवश्य हुए, परन्तु उनके साथ ही मुसलमानोंके लिए सांप्रदायिक निर्वाचन प्रथा जारी हुई जिसके परिणाम-स्वरूप भारत हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में विभक्त हुआ।

सन १९१४ ई० में हुए प्रथम महायुद्ध में भारतीयों ने ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सहायता की और तब से शासन संबंधी सुधारों की मांग एवं भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करनेकी भावना सारे देश में दृढ़ होती गई। सन् १९०७ में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। परन्तु १९१६ ई० के लख-नऊ कांग्रेस अधिवेशनमें सब दलों एवं सम्प्रदायों का सहयोग रहा। प्रथम महायुद्ध के पश्चात आत्मनिर्णय के सिद्धांत की घोषणा की गई, जिससे प्रेरणा पाकर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और श्रीमतो एनी बेसेंट ने होमरूल की स्थापना की और तिलक ने "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" की घोषणा की।

सन् १९१९ के 'रोलट एक्ट' के अनुसार सरकार किसी को भी मुकदमा चलाए बिना गिरफ्तार कर सकती थी। इसके विरुद्ध गांधीजी ने सत्याग्रह किया। सारे देश में राष्ट्रीय कार्यक्रम का आयोजन हुआ जिसे दबाने में सरकार ने कोई कसर नहीं की। अंग्रेजों ने दमन के नाम पर भारतीय जनता पर जो अत्याचार किये उनका रोमांचकारी विवरण मन्म-थनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक में दिया है। [2] सन् १९१९में ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये शासन सुधारों ने "भारतीयों के जले घाव पर नमक लगा देने का काम किया। सारा देश अंग्रेजों के विरुद्ध क्रोधाग्नि से भड़क उठा। हिन्दुस्तानका यह राष्ट्रीय अपमान था।"[3] फिर भी अंग्रेज सरकार का दमन-चक्र बंद नहीं हुआ अतः गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदो-लन शुरू हुआ। "गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस का रूप परिवर्तित हुआ और वह केवल-शिक्षित वर्ग की संस्था न होकर प्रत्येक भारतवासी का

---

[1]-पट्टाभि सीतारामैया : कांग्रेसका इतिहास, प्र०खं०; ५वां० सं०,पृ०५१।

[2]-मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलनका इतिहास १९६०ई०, पृ० ५१।

[3]-राजबहादुर सिंह : काँग्रेसका सरल इतिहास, पृ०सं०३० ई०स० १९४६।

प्रतिनिधित्व करने वालीसार्वजनिक संस्था बन गई।"[1] नई शिक्षाके प्रसार से और पश्चिमी साहित्य के अध्ययन से शिक्षित भारतीय जनता में नया उत्साह और आत्मबल प्राप्त हुआ तथा भारतीयों को स्वतंत्रता युद्ध की प्रेरणा मिली।

उपर्युक्त राजनैतिक परिवर्तनों का तत्कालीन काव्य-धारा पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। अपने युगीन प्रभाव के कारण ही द्विवेदी युग की हिन्दी काव्य-धारा में देश-प्रेम एक प्रमुख विषय बना और राजनैतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही काव्य को भाव धारा में तीव्रता, आवेग और आक्रोश उत्तरोत्तर बढ़ा। फलतः भारतेन्दु युग को अपेक्षा इस युगका कवि देश–प्रेम के क्षेत्र में अधिक जागरूक और क्रांतिकारी रचना करने में सफल हुआ। इस युग की रचनाओं में जाति को आंदोलित करने की जो अद्भुत शक्ति और देश की स्वतंत्रता के लिए सतत संघर्ष करने की जो प्रेरणा विद्यमान है, वह स्पृहणीय है। कवियों ने अपनी ओजमयी वाणी द्वारा देशवासियों को बलिदान की राह पर बढ़ना सिखाया और उन्हें अमर राष्ट्रीय संदेश देकर राजनैतिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार संभलने की चेतावनी दी।

धार्मिक वातावरणः-

जहां तक द्विवेदो युग की धार्मिक स्थिति का सम्बन्ध है, अनेक संस्थाएं इस क्षेत्र में कार्य कर रही थीं। इसलिए द्विवेदीयुग में धार्मिक क्षेत्र में कई नवीन विचारधाराएं प्रवाहित हुईं, परन्तु धर्म के नाम पर किये जाने वाले पापाचार और अनाचार कम नहीं हुए। जनता में वाह्याडम्बर तथा अन्धविश्वास विद्यमान थे। अनेक अशास्त्रीय धार्मिक पद्धतियां प्रचलित थीं। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ इस दिशा में भी परिवर्तन होने लगा। महात्मा गांधी जैसे नेता भी समाज-सुधार और उदारता का दृष्टिकोण लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरे। उनका विश्वास था कि राजनैतिक परतन्त्रता से विमुक्त होने के लिए एक अत्यन्त स्वस्थ और सुसंगठित समाज की आवश्यकता है। समय और परिस्थितियों के प्रभाव से जनता की आंखें खुल चुकी थीं अतः वह किसी धार्मिक सिद्धांत को एकदम स्वीकार करने के स्थान पर उसे बुद्धि की कसौटी पर परखने की अभ्यस्त हो गई थी। कई संस्थाओं द्वारा धार्मिक सिद्धांतों को वास्तविकता और उनमें अप्रच्छन्न सत्य की खोज के लिए शास्त्रार्थों का आयोजन होता था। वैज्ञानिक प्रभाव से लोगों में भले-बुरे की परख

1-J L.Nehru, The Dicovery of India. 3rd. Ed. P. 364.

करने की प्रवृत्ति बढ़ी। धर्म का स्वरूप व्यापक हुआ। ऐसी अवस्था में इस युग के कवियों में धार्मिक चेतना स्फुरित हुई। उनमें भक्तियुगीन कवियों की भांति केवल भगवानका गुणगान कर अपने पापों के प्रति प्रायश्चित वाली मनोवृत्ति नहीं रही, अपितु उनकी आध्यात्मिकता, भावना, और चिन्तन-प्रक्रिया में नवीनता आयी। कवियों के ईश्वर प्रेम में मानवतावादी भावना उभरी। भारत की दीन, दरिद्र जनता से सहानुभूति तथा असहाय और पीड़ितों से अनुराग धर्मके रूप में समझे जाने लगे। किसान तथा मजदूर के उत्थान की ओर लोगों का ध्यान केन्द्रित हुआ, अतः दीन दुखियों के आंसू और उनकी दयनीय दशा को सुधारना ही जीवनोपलब्धि का आवश्यक अंग समझा जाने लगा। तात्पर्य यह है कि देश की आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थतियोंने जाति तथा देश की भलाई के लिए समाज तथा धर्ममें अनेक परिवर्तन पैदा किए, जिसके फलस्वरूप धार्मिक क्षेत्रमें मानवतावाद की भावना पनपी। इस तरह से यदि एक ओर भारतीय जीवन में सामाजिक और धार्मिक अधोगति विद्यमान थी तो दूसरी ओर जनता में सुधारक भावनाका अभ्युदय हो रहा था। द्विवेदीयुग की रचनाओं में इन दोनों परिस्थितियों की प्रतिच्छवि उपलब्ध होती है। एक ओर उनमें समाज का यथार्थ चित्रण है तो दूसरी ओर व्यर्थके नियम बन्धनों से मुक्त होने का सन्देश है। इस युग के समाज सुधार विषयक विचार और धार्मिक दृष्टिकोण कविता को कहां तक प्रभावित कर सके, इसका प्रमाण इस युग की कविता के विचार पक्ष में देखा जा सकता है।

सांस्कृतिक परिवेशः—

हमारे देश पर अंग्रेजोंका शासन था और उनके द्वारा सारे देशमें पश्चिमी संस्कृति तथा सभ्यताका प्रचार-प्रसार हो रहा था,पाश्चात्य संस्कृति की वाह्य तड़क-भड़क ने भारतीय जनता को अपने आकर्षण जालमें जकड़ लिया था। अपने स्वत्व विस्मरण के फलस्वरूप भारत की सांस्कृतिक अवस्था सोचनीय हो गई थी। एक ओर अंग्रेज अपनी कूटनीतिके आधार पर भारतवासियों पर स्थायी अंकुश जमाए रखने की योजनाओं में संलग्न थे तो दूसरी ओर भारतीयों को अपनी दुर्दशा का अनुभव हो रहा था और वे अपने सांस्कृतिक अधःपतन के लिए दुःखी थे। भारत के अनेक समाज सुधारक और सांस्कृतिक नेता भूली भटकी भारतीय जनता को नवजागरण का संदेश दे रहे थे।

इस क्षेत्र में राजा राममोहन राय, महादेव गोविन्द रानडे, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बेसेंट आदि

के नाम उल्लेखनीय हैं। राजा राममोहन राय ने देश तथा जाति के हित को ध्यान में रखते हुए भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया।[1] उन्होंये ब्रह्म समाज की स्थापना कर हिन्दू धर्म को नवीन रूप दिया तथा सामाजिक क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न कर अधःपतन की खाई में गिरते हुए भारतीय लोगोंको अवलम्बन प्रदान किया। उन्होंने जो कुछ कार्य किया, उसे सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का कार्य कहना उचित होगा।[2] उस समय महाराष्ट्रमें प्रार्थना समाज भी ऐसे ही उद्देश्यों से प्रेरित होकर कार्य कर रहा था। रानाडे समाज-सुधारक एवं धर्म-सुधारक दोनों थे। उनके हृदय में देश-प्रेम कूट-कूट कर भरा था।[3] उनके द्वारा संचालित 'दलितोद्धार मिशन' ने महाराष्ट्र में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया। स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म के विशाल स्वरूप को प्रस्तुत कर भारतीयों के जन-मानस पर प्राचीन गौरव की स्मृति पैदा की तथा भारतीयों के मन में स्वातंत्र्य की भावना उत्पन्न की।[4] स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के वास्तविक रूप को विदेशियों के सम्मुख प्रकट कर अपने धर्म तथा देशका नाम उज्जवल किया, उन्होंने धर्ममें संजीवनी शक्ति पैदा कर भारतीय जातिको सचेत किया तथा अपने प्रेरक विचारों द्वारा सदैव देशवासियोंको एकता और देश-भक्तिका संदेश दिया।[5] स्वामी विवेकानन्द की गणना भारत के राष्ट्र निर्माताओं में की जा सकती है। श्रीमती एनी बेसेंट ने भारतीयों को चिर निद्रा को भंग कर उन्हें अपने अतीत के इतिहास, संस्कृति, धर्म आदि पर गर्व करने की प्रेरणा दी। उक्त विचारधारा को केशवचन्द्र सेन, लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों ने आगे बढ़ाया।

इस सांस्कृतिक विचारधारा से द्विवेदीयुगीन कवि भी प्रभावित हुए। अतः इस कालकी रचनाओंका वर्ण्य-विषय प्रधानतः हिन्दू संस्कृतिका

[1]-Roman Rolland : The prophets of the new India, 1930 Ed. P.73

[2]-रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, प्र० सं०,पृ० ४४६।

[3]-Paramswarn Pillai:Representative Indians,2nd Ed P.7

[4]-दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास, पृ० १९५, बिरजानन्द वैदिक संस्थान, गाजियाबाद, द्वि० सं०।

[5]-Swami Vivekanand's appeal to his country, quoted in selection from Vivekanand, 3rd Ed. P. 534.

उद्घाटन और गुणगान रहा है। इस युग के कवियों ने मानव स्वभाव को अच्छाई के भाव को सराहा और मानवता को देवत्व की जन्म-दात्री भी घोषित किया।[1] सांस्कृतिक दृष्टि से इस युगके कवि मानवतावादी हैं और उनकी दृष्टि उदार और व्यापक है। वे सत्य और न्याय के समर्थक हैं।[2] उनकी दृष्टि में यह संसार स्वर्ग का द्वार है।[3] अतएव वे हर वस्तु के शोभन-पक्ष को प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील रहे।[4] तात्पर्य यह कि इस युग के कवियों ने भारतीय संस्कृति के विगत वैभव और उसकी गरिमा का वर्णन कर देश की तत्कालीन दीन-हीन दशा दूर करने के लिए जन-जागृति की प्रेरणा दी।

1-"मैं मनुष्यता को सुरत्वकी जननी भी कह सकता हूँ।" राष्ट्रकवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त, पंचवटी, पृ० १२।

2-"न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।" मैथिलीशरण गुप्त 'जयद्रथवध' पृ० ५।

3-वही, साकेत, पृ० १६६-१६७।

4-महाकवि हरिऔध विशेषांक : 'साहित्य सन्देश' सम्पादक-महेन्द्र, जुलाई अगस्त १९६५, भाग २७, अंक १-२, पृ० ७।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियां और उनकी विशेषताएं

(क) समाजोन्मुख काव्य-सृष्टिः—

राष्ट्रीय जीवन के विकास के लिए सामाजिक जीवन की उन्नति प्रथम सोपान है। शिथिल तथा अस्वस्थ समाज न तो राष्ट्रीय स्वतंत्रता पा सकता है और न वह स्वतंत्रताके सुखका उपभोग ही अधिक समय तक कर सकता है। इस दृष्टि से तत्कालीन कवियों ने राष्ट्रीयता के उत्तरोत्तर विकास के लिए सामाजिक जीवन की गतिविधि पर भी अपनी दृष्टि रखी है।

इस काल के समाज विषयक काव्य प्रणेताओं में पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' अग्रणी थे। उनके अन्तःकरण में समाज-सुधार की तीव्र उत्तेजना थी। उन्होंने जाति की विमूढ़ता तथा अज्ञान की चर्चा की है और मतमतान्तर की भूल-भूलैयों में पड़े हुए समाज का दिग्दर्शन किया है।[1] समाज की दुरव्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखाः-

"महामूढ़ता के संगाती रहो; दुराचार के पक्षपाती रहो,
बहू-बेटियों को पढ़ाना नहीं, घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं"।[2]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने तो अविद्या तथा अज्ञान के कारण निन्दनीय रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से ग्रस्त समाज की कटु आलोचना की।[3] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आलस्य, फूट, मदिरा आदि अवगुणों की ओर संकेत करते हुए जाति के जीवन का चित्र खींचा है।[4] अयोध्यासिंह उपाध्याय भी सम्पूर्ण समाजमें व्याप्त अविवेक का वर्णन कर अन्धकार के गर्त में पड़े हुए जनसमूह पर रोष प्रकट करते रहे।[5] जाति की अवचेतना पर विक्षोभ प्रकट करते हुए उन्होंने उसे

---

[1]-शंकर सर्वस्व, प्र० सं०, सं० २००८, पृ० ६१।
[2]-वही, वही, पृ० ५६।
[3]-भारत भारती, पच्चीसवां संस्करण, पृ० १४०।
[4]-द्विवेदी काव्यमाला, प्र० सं०, पृ० ३६३।
[5]-पथप्रमोद, सं० १६५५, पृ० ५१।

सचेत करने का भी प्रयत्न किया।[1] इस तरह इस युग के कवि अपनी रचनाओं में उन भीषण विकारों और अनेकानेक अवगुणों का विवेचन करते रहे जिनके कारण समाज अव्यवस्थित एवं निराश हो चुका था। संक्षेप में, इस युग के कवियों ने सामाजिक समस्या के यथार्थ चित्रण एवं समाधान पर विशेष बल दिया है।

इस युग की सामाजिक कविता के सम्बन्ध में डा० सुधीन्द्र लिखते हैं कि "सम्पूर्ण हिन्दी कविता में यदि किसी काल की कविता पूर्ण समाज-दर्शी होने का धर्म पालन करती है तो द्विवेदीकाल की कविता-कवियों का एक हाथ समाज के हृदय पर है, कान उनके जनपथ पर उठने वाली ध्वनि के साथ हैं और हाथ में लेखनी है। हृदय की धड़कन को उनका बाँया हाथ सुनता है और दायां हाथ लिखता है और कान की सुनी हुई जन-ध्वनि को भी उसमें अंकित कर देता है। इस प्रकार की है द्विवेदी-काल की समाजपरक कविता।[2]

(ख) धर्म भावनाः—

जातीय एकसूत्रता के लिए धर्म एक साधन है। इस युग के कवियों ने देश की राष्ट्रीयता के साथ धर्म को जोड़ने का प्रयास किया है। धर्म का राष्ट्रीय जीवन में महत्व बतलाते हुए श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखा है–

"जाति हो गई है कई टुकड़े।
धर्म हिल मिल उसे मिलाता है॥
जोड़ता है अलग हुई कड़ियां।
वह जड़ी जीवनी पिलाता है॥[3]

पुनर्जन्म, प्रारब्ध और मुक्ति आदि के विषय में पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' का व्यंग्य देखिएः—

"सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो
पुनर्जन्म के गीत गाते रहो।
उसे कर्म प्रारब्ध के भोग से
करो मुक्ति की कामना भोग से॥,,[4]

---

[1]-परिजात, द्वि० सं०, पृ० २०६।
[2]-डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर (१९५७ दिल्ली), पृ० १४२।
[3]-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : 'चुभते चौपदे', १९२४ ई० का संस्करण, पृ० २३०।
[4]-पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' : 'शंकरसर्वस्व' प्र० सं० पृ० १५५।

गुप्तजी धर्म के क्षेत्र में होने वाले दम्भ, आडम्बर और पाखण्डों की ओर संकेत कर धर्म तथा समाज के उद्धार की शुभकामनाएं प्रकट करते हैं।[1] सभी कुरीतियों को जड़ से उखाड़ देने का प्रण करते हुए पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने देश तथा जाति की मंगल कामना प्रकट की है।[2]

इस प्रकार कवियों ने समाज में व्याप्त विषमताओं का निषेध कर जनता को उदार धार्मिक दृष्टि प्रदान की। उन्होंने धर्म की ग्रन्थियों को सुलझाते हुए समाज को वास्तविक राह पर चलने का संदेश दिया।

(ग) राष्ट्रीय चेतना:—

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर आधुनिक हिन्दी काव्य धारा का द्वितीय उत्थान 'द्विवेदी युग' कहलाता है। राजनीति की दृष्टि से यही युग राष्ट्रीय जागरण का युग है। इस युग में गांधीजी के अभ्युदय से सारे देश में नई शक्ति संचरित हो उठी थी और सर्वत्र राष्ट्रीय चेतना की लहरें फैल रही थीं। ऐसे परिवेश में साहित्यिक, विशेषकर कवि, भला युग की पुकार को सुनकर कैसे पीछे रह सकते थे ? इसलिए द्विवेदी युग की हिन्दी कविता मुख्यतः राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय आंदोलन के भावों से आप्लावित है।

भारत अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति के लिए संसारभर में विख्यात है। पहले यह देश सभी दृष्टियोंसे वैभवसम्पन्न था, परन्तु अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप देश की दशा अत्यंत शोचनीय हो गई। अतः भारतीयों को अपनी वर्तमान दशा पर नितान्त खेद हुआ और वे पथ-प्रदर्शन के लिए अतीत की ओर देखने लगे। अतीत के आलोक में उन्हें आशा की किरण दिखाई देने लगी। अतएव वे अपना खोये हुए बल, बुद्धि और वैभव को फिर प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो उठे। अतीत के गौरव ने उनके मन में नवोत्थान की उमंग पैदा की।

गुप्तजी ने अपने पूर्व पुरुषों एवं भारत का गौरवगान करते हुए लिखा है कि:—

"देखो हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था।
नर देव थे हम, और भारत देव लोक समान था ,,"[3]

---

[1]-मैथिलीशरण गुप्त, 'हिन्दू' चतुर्थ संस्करण, पृ० १६९।

[2]-पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर' : शंकरसर्वस्व, प्र० सं० पृ० १०१।

[3]-मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती' पच्चीसवां संस्करण, पृ० १६।

उनके अनुसार हमारे पूर्वज अन्तर्जगत के सभी रहस्यों से परिचित थे और वे विश्व-हित के लिए जगत को दिव्य संदेश सुनाते थे।,[1] पं० रामचरित उपाध्याय[2] और सियारामशरण गुप्त[3] के काव्य में विद्यमान भारत के अतीत के दिव्य-भव्य चित्र भी नवीन प्रेरणा देने वाले हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने वेदों का उदात्त रूप प्रस्तुत कर विश्व-बंधुत्व की भावना प्रकट की है।[4]

नैतिकता आध्यात्मिक उत्कर्ष तक पहुंचने का साधन है, अतः नैतिकता और आध्यात्मिकताका अन्योन्याश्रित संबंध है। इसी भावभूमि पर द्विवेदीयुगीन काव्य में पूर्वजों के नैतिक उत्कर्ष एवं आदर्श जीवन के चित्र मिलते हैं। 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' में श्रीकृष्ण का आदर्श चरित्र अंकित है।[5] अतीतकालीन भारत के राजा प्रजा को अपनी संतान समझते थे।[6] रत्नाकर द्वारा लिखित 'हरिश्चन्द्र' नामक काव्य में राजा हरिश्चन्द्र का सत्यनिष्ठ चरित्र बड़ा प्रेरक है।[7] गुप्तजी ने भारतीय नारी की नैतिकता का उदाहरण प्रस्तुत कर उसे भारत की विश्व-ख्याति का कारण माना है।[8] रूपनारायण पाण्डेय भी भारतीय नारी के नैतिक उच्चादर्श का गौरवगान करते हैं।[9]

आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्कर्ष के चित्रण के साथ-साथ इस युग के काव्य में भौतिक समृद्धिका भी प्रचुर वर्णन मिलता है। इसके लिए सियारामशरण गुप्त[10] और ठाकुर गोपालशरण सिंह[11] की काव्य पंक्तियां

1-मैथिलीशरण गुप्त : 'भारतभारती' पच्चीसवां संस्करण पृ० २६-३३।
2-पं० रामचरित उपाध्याय : 'राष्ट्रभारती' प्रथम संस्करण १६।
3-सियारामशरण गुप्त : 'मौर्य विजय', पृ०११,(प्रथम संस्करण),वि० २००५
4-पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : 'पद्म प्रसून' पृ० १६।
5-पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 'प्रियप्रवास' वि० २००६।
6-रत्नाकर : हरिश्चन्द्र', पृ० ५५, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।
7-मैथिलीशरण गुप्त : 'रंग में भंग' द्वादश संस्करण, पृ० २४।
8-रूपनारायण पाण्डेय : 'पराग' पृ० ४२। प्र० सं०. सं० १९८१।
9-सियारामशरण गुप्त : 'मौर्य विजय', पृ० ५, वि० २००५।
10-ठाकुर गोपालशरण सिंह : 'संचिता' पृ० ६५।
11-मैथिलीशरण गुप्त : 'भारतभारती', पृ० १५१।

देखी जा सकती हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी को इस बात का खेद है कि वैभवसम्पन्न जाति गुणहीन होकर पतन के गर्त में पड़ी हुई मृतवत् हो सो रही है।[1]

इस प्रकार द्विवेदीयुग के कवियों ने भारतीयजनों को भारत के स्वर्णिम अतीत की गरिमा की याद दिलाकर उन्हें अपनी वर्तमान दुर्दशा का भी बोध कराया है ताकि वे आन्दोलित होकर एक बार फिर से अपने खोये हुए वैभव-गौरव को प्राप्त करें।

वीरता का गौरव-गानः—

वीरता व्यक्तित्व का श्रृंगार और जाति का भूषण है। शूरवीर सदा से देश और जाति का रक्षण करते हैं। इनका स्मरण मात्र निष्प्राण जाति में शक्ति और उत्साह का संचार करता है। इसलिए इस युग के कवि भारतीय वीरों का गुणगान करते नहीं थकते।

गुप्तजी के अनुसार यहां के वीर रण-कुशल तथा शक्तिसम्पन्न थे। और उनकी युद्ध-निपुणता का डंका चीन, लंका आदि देशों में बजा था।[2] सियारामशरण गुप्तजी ने चन्द्रगुप्त मौर्य के तेज एवं विक्रम का वर्णन ओजस्वी बाणी में किया है।[3] यहां के वीरों की विशेषता यही थी कि वे विपक्ष के वैभव को देखकर डरते नहीं थे।[4] यही कारण है कि एशिया खंड को विजित करने वाला सिल्यूकस भी भारतीय वीरताको देख अभिभूत हो गया था।[5] पं० रामनरेश त्रिपाठी ने भी 'विजयी बली जहां के बेजोड़ सूरमा थे'[6] कहकर भारतीय वीरों की प्रशंसा की है। ठाकुर गोपालशरण सिंह पूर्व पुरुषों की शूरता से प्रभावित थे। इस तरह से शक्ति के चिह्नस्वरूप भीम और अर्जुन तथा प्रताप और शिवाजीकी स्मृति करते हुए इस युग के कवि जाति में स्फूर्ति और साहस का संचार करना चाहते थे।[7] इस युग के कवियों की पीड़ा यह थी कि भारत जैसी वीर-भूमि आज वीरविहीन होकर विदेशियों की दासता की श्रृंखला से आबद्ध क्यों ?

1-मैथिलीशरण गुप्त : भारतभारती' पृ० १५१।

2-मैथिलीशरण गुप्त : 'भारतभारती' पृ० ५०-५१।

3-सियारामशरण गुप्त : 'मौर्य विजय', पृ० ५।

4-मैथिलीशरण गुप्त : 'जयद्रथ बध' पृ० ६।

5-सियारामशरण गुप्त : 'मौर्य विजय', पृ० ९।

6-पं० रामनरेश त्रिपाठी : 'मानसी', पृ० ३९, दूसरा सं०, ई० स० १९३४।

7-ठाकुर गोपालशरण सिंह : 'माधवी, पृ० ७६, ई० स० १९३८।

मन्नन द्विवेदी ने तो वर्तमान से निराश वातावरण में और कोई आधार न पाकर अतीतकालीन पुरुष पुंगवों की पुनःस्मृति में ही अपने पतन का उपचार खोजने का प्रयास किया है। उन्होंने लिखा है किः—

"बता दे गंगा कहां गया है? प्रताप पौरुष विभव हमारा ?
कहां युधिष्ठिर, कहां है अर्जुन कहां है भारतका कृष्ण प्यारा?[1]

वीरों के साथ-साथ द्विवेदायुग का कवि अपने देश को वीरांगनाओं को भी स्मरण करता था, जिनके शौर्य एवं प्रताप के सामने शत्रु स्वयं को निस्तेज पाते थे। यहां को नारियां स्वयं वीर थीं[2] और वे देश एवं स्वातंत्र्य रक्षार्थ ही पुत्रको जन्म देती थीं।[3] पं० रामचरित उपाध्याय सावित्री जैसी देवियों की कल्पना करके देश को सुखी देखने को कामना करते थे।[4]

कवियों ने वीरों से सम्बन्धित स्मृति-चिह्नों का भी वर्णन किया है, जो हमारे लिए स्फूर्तिप्रद हैं। श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा की कविता में चित्तौड़ की आभा एवं वीरों के बलिदान की गाथा का चित्र अंकित है।[5]

इस प्रकार से इस युग के कवि प्राचीन भारत का कीर्तिगान करने में सफल हुए हैं और उन्होंने अपनी प्रखर वाणी से भारतीयों में स्वर्णिम अतीत को फिर से लौटाने की चेतना जागृत कर राष्ट्रीय उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है।

इस युग की राष्ट्रीय कविता के सम्बन्ध में डा० उदयभानु सिंह का मत है कि "अपने पूर्ववर्ती युग की तुलना में, द्विवेदी युग की राजनैतिक या राष्ट्रीय कविता कल्पना से यथार्थ, उपदेश से कर्मपथ, प्रार्थना से स्वावलम्बन पूर्ण उद्‌गार की ओर अग्रसर होती गई है।[6]

दासता का बोधः—

भारतीयों को अवस्था 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं, के समान थी। द० के० केलकर[7] और वि० दा० सावरकर[8] ने इस संदर्भ में

1-राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ० ७।
2-'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० ४०७।
3-मैथिलीशरण गुप्त : 'सिद्धराज, पृ० ७।
4-'राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ० ७२।
5-राष्ट्रीय वीणा, प्रथम भाग, पृ० ७२।
6-डा० उदयभानुसिंह : महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ० ३०१-३०२।
7-द० के० केलकर : 'संस्कृति-संगम, पृ० ३१६।
8-वि० दा० सावरकर : १८५७ भारतीय स्वातंत्र्य समर, पृ० ५३।

स्वातंत्र्य के महत्वका विशद चित्रण किया है। अतः देशभक्तिका तात्कालिक लक्ष्य विदेशी शासन से मुक्ति रहा। देशभक्ति का सबसे प्रबल विस्फोट पराधीनता और दमन के विरुद्ध भारतीय संघर्ष में मिलता है। पराधीनता से मुक्ति ही देशभक्तों की भावना थी। परन्तु देशवासियों को जब तक अपनी दासता की अनुभूति न हो, तब तक राष्ट्रीय चेतना को प्रोत्साहन प्राप्त होना कठिन था। इस तथ्य को जानकर इस युग के कवि पराधीनता पर विक्षोभ प्रकट करते थे और जनता की भावनाओं को उद्वेलित करके उन्हें स्वातंत्र्य के लिए निरन्तर संघर्ष करने को प्रेरणा देते थे।

श्री माधव शुक्ल ने भारत की पराधीनता पर गहरा दुख प्रकट किया और भारतीयों से दासता हटाने का आग्रह किया:—

''छोड़ दे यह चोला वन्दे यह न तेरे काम का।
दाग लग गया है इसमें दासता के नाम का।।

× × ×

मेरी माता के सर पर ताज रहे।
फ़क़त हिन्द मेरा आजाद रहे।।,,[1]

पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार–''एक घड़ी परवशता की कोटि नरक के समान और एक पलभर भी स्वतंत्रता सौ वर्षों से उत्तम है।[2] पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'[3] पं. रामचरित उपाध्याय[4] रूपनारायण पान्डेय[5], सियारामशरण गुप्त[6], मन्नन द्विवेदी[7] आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में पराधीनता के कारण होने वाली भारतीय जनता की दुर्दशा का वर्णन कर जनमानस में स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए अनवरत संघर्ष की प्रेरणा दी।

द्विवेदीयुग में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असंतोष की भावना भड़की। कांग्रेस की स्थापना के पश्चात हमारे लोकनेताओं ने देश की जनता के समक्ष एक रूप-रेखा रखी जिसे लक्ष्य करके स्वातंत्र्य प्राप्ति का

---

[1]-पं० माधव शुक्ल : जाग्रत भारत, प्र० सं०, पृ० २०, ३६।
[2]-पं० रामनरेश त्रिपाठी : 'पथिक' सर्ग ३ पृ० ५०।
[3]-पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'चुभते चौपदे' पृ० ३१।
[4]-पं० रामचरित उपाध्याय : 'राष्ट्रभारती' पृ० २२।
[5]-रूपनारायण पाण्डेय : 'पराग' पृ० २५। और 'कल्पना' पृ० ४०
[6]-सियाराम गुप्त : 'आत्मोत्सर्ग' पृ० २६–२७।
[7]-मन्नन द्विवेदी 'दासत्व' शीर्षक कविता, सरस्वती, १९१३ ई०।

प्रयत्न शुरू हुआ। अब विदेशी शासन से दया की आशा के स्थान पर खुलकर विरोध, असहयोग का प्रचार शुरू हुआ तथा कवि जनमत संगठन का अधिक प्रयत्न करने लगे। इसलिए इस युग के कवियों ने ब्रिटिश शासन की स्तुति या प्रशंसा में स्पष्ट रूपसे अपने उद्‌गार प्रकट नहीं किये, बल्कि उनकी अधिकांश रचनाओं में ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध या निन्दा की ही अभिव्यक्ति हुई।

पं. गिरिधर शर्मा ने परोक्ष रूप से पाश्चात्य ज्ञान एवं ब्रिटिश शासन की निन्दा की:—

"हे दोषाकर, पश्चिम बुद्धि, कैसे होगी मेरी शुद्धि।
अंग भंग तू करता है, पातक से न जरा डरता है।"[1]

पं. रामचरित उपाध्याय[2], मुन्नीलाल[3], पं. माधव शुक्ल[4], आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में विदेशी शासन के अत्याचार का वर्णन कर उसकी भारतीयों को एक दूसरे से लड़ाने वाली नीति की भर्त्सना की है।

राजभक्तिपरक हिन्दी कविता:—

ई. सं. १९०० के पश्चात् देशकी स्थितिमें भारी परिवर्तन आया। भारतीय नेताओं में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान की भावना आ जाने के कारण विदेशी शासकों से अनुनय-विनय की नीति में उनका विश्वास नहीं रहा। उनके लिए 'स्वराज' जन्मसिद्ध अधिकार था, उसके लिए भिक्षा क्यों मांगी जाये? इसी कारण हिन्दी साहित्य में राजभक्ति से मुक्त राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। नरमदली राष्ट्रीयता में विश्वास रखने वाले कवियों की वाणी में ही अंग्रेजी शासन के प्रति मैत्री भावना का क्षीण स्वर शेष रह गया था, जो यत्र-तत्र कभी-कभी सुनाई दे जाता था।

पं. श्रीधर पाठक की राष्ट्रीय भावना विश्व-प्रेम की भावना में पगी थी। अत; उन्हें ब्रिटेन से कोई द्वेष नहीं था।[5] श्री रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' ने तो कहा था–'राजभक्ति' भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म'।[6] उन्होंने अंग्रेजी राज्य को औरंगजेबी राज्यसे अच्छा ही नहीं कहा[7] बल्कि

1-'कलंकी का एड्रेस' शीर्षक कविता, सरस्वती, दिसम्बर १९०५ ई०।
2-पं० रामचरित उपाध्याय, 'तिरस्कार', शारदा मई १९२१ ई०।
3-मुन्नीलाल : 'जातीय कविता' पृ० ११६, प्रथम संस्करण।
4-पं० माधव शुक्ल : 'जाग्रत भारत' प्र० सं० पृ० १०।
5-पं० श्रीधर पाठक : 'भारत गीत', पृ० १२३ प्रथम संस्करण।
6-रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' 'पूर्णपराग'पृ०१७९,प्रथम संस्करण सन् १९४१ई०।
7- वही वही पृ० १९५।

उन्होंने अंग्रेजी शासन के प्रति आशाप्रद विचार भी प्रकट किये थे।[1] इन कवियों के अतिरिक्त पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी[2] और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त[3] की कविताओं में अंग्रेजी राज्य का गुणगान मिलता है।

परन्तु आगे चलकर भारतीयों की आशाएं मिथ्या प्रतीत हुई। उन्हें अपनी दासता पर ग्लानि होने लगी और वे स्वयं सचेत होने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। ऐसे वातावरण में भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति घृणा एवं प्रतिशोध की भावना प्रबल हुई और सारे देश में नवीन राजनैतिक चेतना का विकास हुआ। इस राष्ट्र-प्रेम और स्वातंत्र्य-प्रेम की उत्तेजना का स्वर इस युग के कवियों की वाणी में बड़े तीव्र स्वरों में प्रस्फुटित हुआ है

वर्तमान दुर्दशा का चित्रणः—

इस युग के काव्य में देश–दुर्दशा के विभिन्न रूप अंकित हैं। इस दुर्दशा का कारण था-शताब्दियों की दासता। पराधीनताके कारण राष्ट्र में जीवन के सभी क्षेत्रोंमें जो दुर्दशा फैली थी, वह प्रबुद्ध कवियों से देखी नहीं जाती थी।[4] इस भारत-दुर्दशा पर भारतेन्दुकालीन कवियों ने काफी मात्रा में लिखा है। फिर भी उन्हें शासकों से सुधार की आशा थी। इसलिए उन्होंने ऊंचे स्वर से विदेशी शासकों पर आरोप लगाकर कार्य–भार अपने हाथों में लेने की भावना प्रकट नहीं की।

द्विवेदीकालीन कवियों ने दया की भीख एवं प्रार्थना को निरर्थक समझा और परिस्थितियों को अधिक व्यथामूलक पाया। इसलिए उन्होंने खुलकर वर्तमानकी हीनावस्थाका चित्रण किया। "उन्होंने अतीतकालीन गौरवगानके साथ ही सामाजिक जीवनके प्रति बड़ा उत्साह दिखाया।"[5] इस सामयिक चेतना के कारण इस युग के कवियों ने तत्कालीन दुर्दशा के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए, उसके विभिन्न रूपों का सहानुभूति से चित्रण किया है।

पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने जाति की विमूढ़ता तथा उसके अज्ञानकी चर्चा की है और मतमतान्तरोंकी भूल-भूलैयों में पड़े हुए समाज

---

[1]-रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' 'पूर्ण संग्रह' पृ० २३५, ई० स० १९२१।
[2]-'द्विवेदी काव्यमाला' पृ० २७२।
[3]-'भारत भारती', पृ० ८१।
[4]-'हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई'-भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० ४६९।
[5]-डा० लक्ष्मीनारायण गुप्त : 'हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन' पृ० ४।

का दिग्दर्शन किया है।[1] पं. रामनरेश त्रिपाठी ने समाज की अवनति का वास्तविक चित्र खींचा है।[2] देशवासी 'राजा' 'सितारे' जैसी उपाधियां प्राप्त करनेके लोभ से राष्ट्रघातक कार्य करते थे।[3] विदेशी शिक्षा दासता की बेड़ियां कसने में अधिक साधक थी।[4] "............ अंग्रेजी शासन ने जान बूझकर देश को सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा रखने का प्रयास किया और जान-बूझकर भारतीय धर्मों में सांप्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न करने की नीति अपनाई थी।[5]सांप्रदायिक संघर्षसे सारे देशमें सच्ची धार्मिक भावना का ह्रास हो रहा था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में धार्मिक दुर्दशा का चित्र खींचा है ।[6] उन्होंने धर्म के नाम पर लोगों को लूटने वाले पाखंडी-साधु-सन्तों की कड़ी निन्दा की है।[7]

वर्णों से विमुख होने का दु:ख 'पूर्ण' जी को भी है।[8] अंग्रेजों की देशव्यापी शोषण-नीति के कारण देश की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। 'पथिक' काव्य के अन्यायी नृप की नीति के माध्यम से त्रिपाठी ने इस आर्थिक दुर्दशा का चित्रण किया है।[9] अंग्रेजों के कारण ही यह स्वर्णभूमि कौड़ी-कौड़ी को मुहताज थी।[10] गुप्तजी के शब्दों में तत्कालीन भारत की दुर्दशा का चित्र देखिए:—

"दारिद्रय दुर्धर अब वहां करता निरन्तर नृत्य है।
आजीविका-अवलम्ब बहुधा मृत्यु का ही कृत्य है।।"[11]

विदेशी शासन ने भारतीय वैभव का शोषण कर इस देश को अत्यधिक हीन-दीन अवस्था में पहुँचा दिया था।[12] अन्न-वस्त्र के अभाव के कारण व्याकुल भारतीय प्रजा की हृदय-विदारक दशा देख द्विवेदी जी ने लिखा है कि—

---

[1]-'शंकर सर्वस्व' प्र० सं०, सं० २००८, पृ ६१।
[2]-पं० रामनरेश त्रिपाठी : 'पथिक', पृ० ४५।
[3]-पं० रामचरित उपाध्याय : 'राष्ट्रभारती', पृ० ४४, प्र० सं०।
[4]-पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध, : 'कल्पलता', पृ० ४०।
[5]-डा० रामगोपालसिंह चौहान : 'आधुनिक साहित्य, पृ० ७ पर उद्धृत।
[6]-मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती', पृ० १३१।
[7]-'वही', 'हिन्दू, पृ० १३४-१३५ चतुर्थ संस्करण।
[8]– रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण'–'पूर्ण संग्रह', पृ० १८४।
[9]– पं० रामनरेश त्रिपाठी, 'पथिक' पृ० ४५।
[10]– वही, 'मिलन' पृ० ४।, पंचम संस्करण।
[11]– मैथिलीशरण गुप्त, 'भारतभारती', पृ० ८७।
[12]– वही, वही, पृ० ८६।

"अन्न अन्न अवसन्न पुकारत भगै प्रजा अकुलाई।"[1]

इसके साथ ही इस युग के कवियों ने भारतीयों की आर्थिक विषण्णता, सामाजिक दुर्दशा तथा दुर्भिक्ष पीड़ितों की करुणावस्था के चित्र खींचे हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन के युग में जब विदेशी शासकों का निर्मम दमन-चक्र चल रहा था और शासकों के विरुद्ध एक शब्द बोलना भी मृत्यु को निमंत्रण देना था, तब इन कवियों ने जिस निर्भयता एवं साहस से देश-दुर्दशा का चित्रण किया, वह प्रशंसनीय है।

कांग्रेस और स्वदेशी आंदोलन की लहर—

अंग्रेजी शासनने भारतमें सदैव अपने आर्थिक हितोंकी रक्षा की तथा निरंतर अपने राजनैतिक स्वार्थ का पोषण किया। उनकी आर्थिक शोषण नीति ही इस देश की दुर्दशा का कारण बनी। कांग्रेस भारतीय राजनैतिक क्षेत्र की प्रमुख संस्था थी, अतः कांग्रेस के सभी नेता आर्थिक दुर्दशा को भारत की राजनैतिक अधोगति का मुख्य कारण मानते थे और जनता में विदेशी वस्तुओं के परित्याग तथा स्वदेशी पदार्थों के प्रयोग का प्रचार करते थे। विदेशी सरकार के प्रति असंतोष प्रकट करने एवं देशवासियों को सामान्य लक्ष्य के लिए जागृत करना ही 'स्वदेशी' आंदोलन का ध्येय था। इस "स्वदेशी आंदोलन का जन्म अंग्रेजों की नीति के कारण हुआ"[2],

राष्ट्रीय विचारों से प्रभावित इस युग के कवियों ने स्वदेशी के प्रति प्रेम अपनी रचनाओं में व्यक्त करना प्रारंभ किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विदेशी वस्तुओं को त्यागने का और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का संदेश देते हुए लिखा है कि—

"विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं?
स्वदेशी वस्त्र को स्वीकार कीजै,
विनय इतनी हमारी मान लीजै।"[3]

श्री रूपनारायण पाण्डेय ने अपने हित के लिए स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार को अच्छा बताया है।[4] पं० रामचरित उपाध्याय[5], राष्ट्रकवि

१–महावीर प्रसाद द्विवेदी; 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० १७८।
२–डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, 'आधुनिक हिन्दी साहित्य', पृ० ७५। ई० १९४८ सं०।
३–महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० ३६८-३७०। (प्र०सं०)
४–रूपनारायण पाण्डेय, 'पद्य पुष्पांजलि' पृ० ७, प्र०सं०, ई०स० १९१२।
५– पं० रामचरित उपाध्याय, 'राष्ट्रभारती', पृ० ७४।

मैथिलीशरण गुप्त[1], रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण'[2], पं० वागीश्वर मिश्र[3], श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी[4], पं० श्रीधर पाठक[5], जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी[6] आदि कवियों ने उपर्युक्त विषय पर अच्छी कविताएं लिखी है।

इस प्रकार इस युग के कवियों ने अपने आर्थिक हित को ध्यान में रखते हुए 'स्वदेशी के प्रति प्रेम' प्रस्तुत कर भारतीय जन-मानस में अपने देश और अपनी वस्तुओं के प्रति नयी उमंग पैदा की है।

देशभक्ति और राष्ट्रीय जागरण का स्वर—

देशभक्ति एवं राष्ट्रीय जागरण द्विवेदी युगीन काव्य का प्रधान स्वर है। राजनैतिक क्षेत्र में कांग्रेस अब राष्ट्रीय संस्था के रूप में विकसित हो चुकी थी। उसकी राजनैतिक गतिविधियोंकी छाप तत्कालीन कवियों पर पड़ी। देश-भक्ति के क्षेत्र में कवियों का ध्यान वर्तमान की ओर आकर्षित हुआ। राजनैतिक चेतना की तीव्रता के अनुरूप ही कविता की भाव-धारा में तीव्रता और आवेग बढ़ा, जिससे इस युग के कवि भारतेन्दु युग की अपेक्षा इस क्षेत्र में अधिक जागरूक होकर क्रान्तिकारी रचना करने लगे।

देश-भक्ति के क्षेत्र में पं० श्रीधर पाठक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पाठक जी की देश-भक्ति विश्व-प्रेम एवं सेवा की भावना से परिपूर्ण थी[7] जिसका ब्रिटेन से कोई विरोध नहीं था। उनका कहना था कि—

"प्रिय भारत देश हमारा है, है हमें स्वर्ग से प्यारा।
त्यों ही ब्रिटेन भी सारा, है प्यारा मित्र हमारा" ॥[8]

पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'[9], श्री चंडिका प्रसाद अवस्थी[10], पं०

१– मैथिलीशरण गुप्त, 'भारतभारती', पृ० १०३।
२– रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', 'स्वदेशी कुंडल', पृ० ८। प्रथम संस्करण।
३– पं० वागीश्वर मिश्र, 'स्वदेशी वस्त्र स्वीकार (कविता), सरस्वती, जुलाई १९०३।
४– लक्ष्मीधर वाजपेयी, 'चारुमाला' (कविता) सरस्वती, नवम्बर १९०७।
५– पं० श्रीधर पाठक, 'भारत गीत' पृ० ६७। प्र० सं०।
६– पं० रामनरेश त्रिपाठी (सम्पादक) 'कविता कौमुदी' पृ० २७१।
७– पं० श्रीधर पाठक, 'भारत गीत' पृ० १२९।
८– वही, वही, पृ० १२९।
९– पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' 'पद्म-कुंज' पृ० ७८। प्र०सं० सन्१९३३।
१०– चण्डिका प्रसाद अवस्थी, 'सरस्वती' अक्टूबर, ई० १९०५।

रामचरित उपाध्याय[1], मुकुटधर पाण्डेय[2], पं० माधव शुक्ल[3], राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त[4] आदि कवियों की रचनाओं में देश-भक्ति का स्वर अधिक मुखर है।

इस युग के अधिकांश कवि जागरण का शंखनाद कर सारे देश में उत्तेजना पैदा करने का कार्य कर रहे थे। प्राचीन गौरव की ओर जनता की चित्तवृत्ति को आकृष्ट कर वे वर्तमान का अन्धकार दूर करना चाहते थे। उनकी वाणी में आशा, सजगता तथा जाति को दासता से मुक्त करने की मंगल कामना थी। गुप्त जी ने भारत के प्राचीन गौरव की याद कर उसे एक बार फिर से सजग होने का आग्रह किया है—

"उठ ओ, वृहद, विराट, विशाल !
उठ अमिताभ, लाभ कर निज पद,
लुटा, लक्ष्य पर लाल।[5]"

कवि ने भारतीयों को कर्म करने का संदेश सुनाया है।[6] उनकी 'स्वदेश संगीत' जैसी रचनाएं जागृति का संदेश सुनाने में पूर्णतया कृतकार्य हुई हैं।[7] कविवर पं० गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' 'त्रिशूल' जी ने भेद का भण्डाफोड़ कर एकता के सूत्र में बंधने के लिए भारत के युवक वर्ग को आमंत्रण दिया है:—

"उठो युवकगण उठो, भेद का भण्डा फोड़ो,
आड़े आये अगर रूढ़ि के बन्धन तोड़ो।
सम्मुख उन्नति पथ प्रशस्त है इसे न छोड़ो,
राष्ट्र बनाओ और देश से नाता जोड़ो।।[8]

पं रामचरित उपाध्याय[9], पं० श्रीधर पाठक[10], अयोध्या सिंह

१- पं० रामचरित उपाध्याय, 'सरस्वती' अगस्त, १९१८ ई०।
२- मुकुटधर पाण्डेय, 'पूजा फूल' पृ० १२७। (प्रथम संस्करण)
३- पं० माधव शुक्ल, 'भारत गीतांजलि' पृ० २-३। (पंचम संस्करण)
४- मैथिलीशरण गुप्त' 'स्वदेश संगीत' पृ० १३-२६। (प्र० सं०)
५- वही 'मंगलघट' पृ० ३७। (प्रथम संस्करण)
६- मैथिलीशरण गुप्त, 'नहुष' पृ० ३४।
७- डा० केसरीनारायण शुक्ल, 'आधुनिक काव्यधारा' पृ० ११३।
८- पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' 'राष्ट्रीय मंत्र' पृ० ३०, प्रथम संस्करण।
९- पं० रामचरित उपाध्याय, 'आश्वासन' सरस्वती, खं० १७, सं० ५, ई०स० १९१६।
१०- पं० श्रीधर पाठक, 'भारत गीत' पृ० ३९।

उपाध्याय 'हरिऔध'[1] मैथलीशरण गुप्त[2] आदि कवियों की रचनाओं में आशा, विश्वास और राष्ट्रीय चेतना तथा जागरण के भाव खूब प्रबल है।

इस प्रकार इस युग के कवियों ने भारतीयों को देश-भक्ति का संदेश देकर उन्हें उद्‌बोधित किया। राष्ट्रीय भावना की पुष्टि के लिए कवियों द्वारा दिया गया संदेश राष्ट्रीय स्तर पर अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ। देश तथा जाति को अभय एवं निःशंक बनाने में इस युग के कवियों द्वारा दिया गया सहयोग भारत के राष्ट्रीय इतिहास में चिरस्मरणीय है।

मातृ-भूमि के सौन्दर्य का वर्णन—

मैक्समूलर तो "भारत की अपार प्राकृतिक सुषमा के कारण उसे धरती का स्वर्ग मानते थे।।"[3] वस्तुतः जननी 'जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' उक्ति भारतवर्ष केसंबंध में यथार्थ रीति से चरितार्थ होती है।

इस युग के कवियों के हृदय में भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा के प्रति बड़ा आकर्षण था, जिससे प्रेरित होकर वे उसका गुणगान करते हुए नहीं थकते थे। उनके लिए मातृ-भूमि का कण-कण पवित्रता से ओतप्रोत था। मातृ-भूमि के बारे में दैवी-कल्पना और पुनीत भावना इस युग के कवियों की अपनो विशेषता थी। ऐसी पुण्यस्वरूपा मातृ-भूमि को विदेशी शासन से मुक्त कराना भारतीयों का प्रथम पुनीत आद्य कर्तव्य था। इसलिए इस युग के कवियों ने विश्ववन्द्या स्वर्गोपमा भारत-भूमि को अनेक प्रशस्तियां भेंट करते हुए उसकी वंदना की और उन वंदना के बोलों में अपने प्रोज्ज्वल देश-प्रेम का परिचय दिया। भारत के प्रति प्रशस्ति के गीत समय-समय पर जिन कवियों ने लिखे, उनमें पाठक जी का स्वर बड़ा ऊंचा था। पाठक जी के शब्दों में भारत की प्रशस्ति देखिए:—

"जय जय भारत हे।
उन्नत-भाल विराजित-चारु हिमालय हे [4]।।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी मातृ-भूमि को सुरमुनिवंदित भवानी का स्वरूप प्रदान किया—

"जय जय भारत भूमि भवानी।[5]"

१- अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिऔध' 'चुभते चौपदे' पृ० १०।
२- मैथिलीशरण गुप्त, 'भारत भारती' पृ० १६०, 'हिन्दू' पृ० ६१।
३- मैक्समूलर, 'इन्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस' पृ० ८।
४- पं० श्रीधर पाठक, 'भारत गीत' पृ० ७५।
५- मैथिलीशरण गुप्त, 'मंगलघट' प्र० सं०, पृ० ३३।

तथा अन्यत्र भी उन्होंने मातृ-भूमि को 'सर्वेश की मूर्ति' के रूप में देखा है।[1] पं० रामनरेश त्रिपाठी[2], मैथिलीशरण गुप्त[3], आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी[4], अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'[5] जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी,[6] मातादीन शुक्ल[7], गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'[8] आदि कवियों ने भी अपर्युक्त विषय पर अच्छी कविताएं लिखी हैं। कवियों द्वारा प्रस्तुत मातृ-भूमि का यह सौन्दर्यमय पवित्र स्वरूप भारतीय जनता को राष्ट्रपूजा का सन्देश देता है।

'बन्दे मातरम् का स्वर':—

सन् १९०५ ई० में लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो भागों में विभक्त करने का निर्णय किया। यह एक ऐसी घटना थी. जिसको भारतवासियों ने विशेषकर बंगालियों ने अपने देश की एकता पर कुठारघात समझा जिससे समस्त देश में क्रोध एवं विक्षोभ की आग भड़की और 'बंग-भंग' आंदोलन प्रारम्भ हो गया। इस अवसर पर भारतीयों की दबी हुई राष्ट्र-चेतना जाग्रत हुई और समस्त देश में राजनैतिक क्रान्ति उत्पन्न हो गयी। बंकिमचंद्र का 'बन्दे मातरम्'[9] का सांस्कृतिक राष्ट्रीय नाद प्रत्येक भारतीय के मुख से गुन्जरित होने लगा तथा 'बन्दे मातरम्' का नारा राष्ट्रीय चेतना निर्माण करने का मुख्य आधार बनने लगा।

राष्ट्र-वंदना के गीतों की परम्परा में पं० श्रीधर पाठक का नाम अविस्मरणीय है। 'भारतगीत' की अधिकांश कविताओं में उनका स्वदेश प्रेम प्रकट हुआ है।[10] महावीरप्रसाद द्विवेदी[11], रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'[12],

१– मैथिलिशरण गुप्तः 'मंगलघट', प्र० सं०,पृ० ९।
२– पं० रामनरेश त्रिपाठी 'सरस्वती' भाग १५, संख्या १।
३– मैथिलीशरण गुप्त, 'स्वदेश-संगीत' पृ० ११-१२।
४– महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'द्विवेदी काव्यमाला' पृ० ४५३।
५– अयोध्या सिंह उपाध्याय, 'हरिऔध' 'परिजात' पृ० ९, द्वितीय संस्करण।
६– जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, 'राष्ट्रीय गीत' प्र० सं० पृ० १०।
७– मातादीन शुक्ल, 'जय स्व देश' कविता, 'चित्रमय जगत्' अक्टूबर १९१८
८– गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'—'राष्ट्रीय मन्त्र' प्र० खं०, पृ* ३।
९- डा० सु० शं० कलवडे, 'आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना' पृ० १२८। प्र० सं०।
१०- पं० श्रीधर पाठक, 'भारत वंदना' 'भारतगीत' पृ० ४२-४३।
११- महावीरप्रसाद द्विबेदी, 'द्विवेदी काव्यमाला' पृ० ३८३।
१२- राष्ट्रीय वीणा', प्रकाश पुस्तकालय कानपुर, प्र०भा० ५ वां सं०पृ. ६६

श्री सत्यनारायण कविरत्न[1], राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त[2], मुकुटधर पाण्डेय[3], रूपनारायण पाण्डेय[4], पं०रामनरेश त्रिपाठी[5], पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी[6], मातादीन शुक्ल[7], श्री भगवन्नारायण भार्गव बी. ए.[8], पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'[9], लोचनप्रसाद पाण्डेय[10], पं० बदरीनाथ भट्ट[11], माधव शुक्ल[12], आदि कवियों की रचनाओं में भारत-स्तुति, भारत वंदना, देश-श्रद्धा तथा देश-प्रेम के भाव विद्यमान हैं।

'वन्दे मातरम्' के जयघोष से सारा देश गूंज उठा। देश के कोने-कोने से देश-प्रेम के उत्स्फूर्त गीत सुनाई देने लगे। भारतवर्ष, देशवासियों के लिए पावन बन गया। वास्तव में राष्ट्र-भूमि के प्रति अगाध श्रद्धा एवं अनुपम राग ही राष्ट्रीयता की आधार भूमि है, जिससे प्रेरित होकर ही द्विवेदी युग के कवियों के हृदय से देश-प्रेम एवं देश-भक्ति के अनेक गीत अंकुरित हुए। डा० सुधीन्द्र के शब्दों में—"भारतेन्दुयुग की अपेक्षा द्विवेदी युग में .... आत्मविश्वास और अनन्य अनुराग के साथ देश की वन्दना, स्तुति, आराधना, पूजन एवं भक्ति-भाव का समर्पण किया गया।[13]"

असहयोग तथा सत्याग्रह आंदोलनः—

महात्मा गांधी जब राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करने के लिए राजनैतिक मंच पर आए, तब सारे देश में परिस्थितियाँ बड़ी जटिल थीं। विदेशी सरकार ने क्रान्तिकारी आन्दोलन एवं सत्याग्रह को दबाने के लिए

१- 'राष्ट्रीयवीणा' प्रकाश पुस्तकालय कानपुर, प्र० भा० ५ वाँ सं०, पृ. ६६
२- मैथिलीशरण गुप्त, 'मंगलघट' प्र० सं०, पृ० ३३।
३- मुकुटधर पाण्डेय, 'पूजाफूल' पृ० १२७। प्र०सं०।
४- सं० नारायणदत्त सहगल, जातीय कविता' (काव्य संग्रह) पृ० २१।
५- 'पद्य-पुष्पांजलि' पृ० ७। सम्पादक-रूपनारायण पाण्डेय प्र० सं०।
६- पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, 'राष्ट्रीय गीत' पृ० १०। प्र० सं०।
७- मातादीन शुक्ल, 'जाग्रत भारत' पृ० १।
८- श्री भगवन्नारायण भार्गव बी०ए०, 'राष्ट्रीय तरंग' पृ० ३७, प्र०सं०।
९- पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' 'राष्ट्रीय मन्त्र' पृ० ३, प्र० स०।
१०- लोचनप्रसाद पाण्डेय, 'मेवाड़ गाथा' पृ० ६, ई० १९१४।
११- पं० बदरीनाथ भट्ट, 'मातृ-भूमि' कविता, मर्यादा, मार्च १९४१।
१२- माधव शुक्ल, 'भारत गीतांजलि' ५ वां सं० पृ० २-३।
१३- डा. सुधीन्द्रः 'हिन्दी कविता में युगान्तर' पृ० २३८।

देश में आतंकपूर्ण स्थिति पैदा कर दी थी। फिर भी काँग्रेस दिनोंदिन अधिक लोकप्रिय होती गई और ई० स० १९१९ के अमृतसर अधिवेशन में २० हजार लोगों ने उपस्थित होकर अपने संगठन का परिचय दिया। इसी समय काँग्रेस कमेटी ने सरकार की 'हंटर कमीशन की रिपोर्ट' को निन्दनीय बताते हुए सत्याग्रह आन्दोलन का समर्थन किया। इसके बाद सन् १९२० में कलकत्ता अधिवेशन में 'असहयोग' आंदोलन की रूपरेखा निर्धारित हुई।[1] महात्मा गांधीजी का 'सत्याग्रह' आंदोलन ठोस अध्यात्मिकता पर आधारित था।[2] अतः गांधीजी ने असत्य, अन्याय और अधर्म के प्रतिकार के लिए सत्याग्रह आंदोलन को आवश्यक माना।[3] इस प्रकार गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन का प्रभाव तत्कालीन राजनीति पर पड़ा और हिन्दी कविता भी उससे प्रभावित हुई।[4] एक पद में पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' असहयोग आंदोलन को सफल देखने की कामना करते हैं—

"मनाते हो घर घर खिलाफत का मातम,
अभी दिल में है पंजाब का गम।

× × ×

यही ऐसे जख्मों का है एक मरहम।
असहयोग कर दो असहयोग कर दो।[5]

गुप्तजी के शब्दों में गांधीजी के असहयोग आंदोलन का प्रभाव देखिए:—

"अस्थिर किया टोप वालों को गांधी टोपी वालों ने।
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने॥
असहयोग के फल उपजाये उनकी ऊंची डालों ने।
क्या कर लिया मशीनगनों ने, संगीनों ने, भालों ने।[6]"

१- पट्टाभि सीतारामैया: 'कांग्रेसका इतिहास' पृ० १५८। प्र० खं, ५ वाँ० संस्करण।

२- Gopinath Dhawan: The Political Philosophy of Mahatma Gandhi, P. 45

३- किशोरीलाल मशरूवाला: 'गांधी विचार दोहन' पृ० १७।

४- डा० नगेन्द्र: 'सियारामशरण गुप्त' पृ० ७३।

५- पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : 'राष्ट्रीय मंत्र', पृ० ३५।

६- मैथिलीशरण गुप्त : 'स्वदेश संगीत', पृ० १२८-१३१, प्रथम संस्करण।

पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर,[1] पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही,[2] पं. माधव शुक्ल[3] आदि कवियों ने अपनी रचनाओंमें असहयोग आंदोलन का प्रचार कर देश में नवचेतना फैलाई।

त्रिशूलजी ने सत्याग्रही के कर्तव्यों की विवेचना करते हुए लिखा है कि:—

"उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने
अन्यायी कानून असत्यादेश न माने।[4]"

पं. रामचरित उपाध्याय[5], पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर'[6] सियारामशरण गुप्त[7] आदि कवियों ने उक्त विषय पर कविताएं लिखकर सत्याग्रहियों को अपने कर्तव्य-पथ पर अटल रहते हुए धैर्यपूर्वक विदेशी अत्याचारों का सामना करने की सलाह दी है। इसके साथ ही राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त[8] और सियारामशरण गुप्त[9] ने अपनी रचनाओं में सत्य एवं अहिंसा का समर्थन भी किया है।

क्रान्ति की लहरः—

उधर शासन का दमन-चक्र तीव्र गति से चलने लगा और इधर देश में राजनैतिक चेतना बलवती होने लगी। जनता में राष्ट्र पर से दासता का जुआ उतार फेंकनेकी उमंग जाग्रत हुई जिससे सारे भारतवर्ष में गृह-पथ देशभक्ति की अखंड चेतना से परिव्याप्त हो उठे। युवक-वर्ग कुछ विशेष रूप धारण कर रहा था और उसने अपनी इष्ट-सिद्धिके लिए क्रांति का आश्रय लिया।

तत्कालीन राष्ट्रीय आकांक्षाओं के दमन से उत्पन्न क्षोभ ने कवियों के हृदय में क्रांति की भावना पैदा की। श्री शंभुनाथ पाण्डेय का

१- पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर', : 'शंकर सर्वस्व', पृ० २३४।
२-पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : 'राष्ट्रीय सिंहनाद', (का० सं) पृ० १०६, प्र० सं०।
३- श्री माधव शुक्ल : 'जाग्रत भारत' पृ० १२, प्रथम संस्करण।
४- पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : 'राष्ट्रीय मंत्र' पृ० ४, प्रथम संस्करण।
५- पं. रामचरित उपाध्याय : 'राष्ट्रभारती', पृ० ४५।
६- पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' : 'शंकर सर्वस्व', पृ० २४८।
७- सियारामशरण गुप्त : 'बापू', पृ० ११।
८- मैथिलीशरण गुप्त : 'अनघ' पृ० १८।
९- सियारामशरण गुप्त : 'उन्मुक्त', पृ० १६३।

भी यही मत है।[1] अब उनकी वाणी में उत्तेजना का स्वर मुखरित होने लगा। वे देश के बच्चे-बच्चे तक नवोत्थान का संदेश पहुँचाने में प्रवृत्त हो गये।

जागृति की इस स्वर्णिम बेलामें अयोध्यासिंह उपाध्याय'हरिऔध, जाति को सचेत करते हुए लिखते हैं:—

''दिव्रसमणि-सा दिखला कर तेज,
सामने के तम को दो टाल।
सजग हो खोलो आंखें बन्द,
जाग जाओ जागृति के काल।।[2]

इस युग के सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त[3], पं. रामनरेश त्रिपाठी[4], कवि वल्लभ[5] आदि कवियों की कविताओं में क्रांति के स्वर बड़े प्रखर हैं।

इस प्रकार तत्कालीन कवियों ने जनताको क्रांतिका संदेश देकर उसमें देशोन्नति की उत्तेजना जागृत की, जिसके फलस्वरूप संपूर्ण देश में हलचल मच गयी और देश-प्रेम का उमड़ता हुआ समुद्र दिगदिगन्त फैल गया।

आत्म-बल और बलिदान की भावना:—

लोकमान्य बालगंगाधर तिलकने कर्म-योगकी दीक्षा दी। गीतामें कृष्णने अर्जुन को आत्मा की अमरता और अन्याय के निराकरण के लिए बल प्रयोग का जो उपदेश दिया वही 'गीतारहस्य' के लेखक तिलकजी का भी मूल-मंत्र था। तिलक के सिद्धांतों का पोषण करते हुए 'सनेहीजी' ने लिखा है:—

''आत्मा अमर है, देह नश्वर है, है समझ जिसने लिया।
अन्याय की तलवार से वह क्यों भला डर जायगा?,,[6]

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने देशभक्ति के स्वर में गांधीजी से प्रेरणा

१-डा० सु० शं० कलवडे : 'आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना' पृ० २३५ पर उद्धृत प्र० सं०।

२-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : 'मर्मस्पर्श', पृ० १०७, प्र० सं०।

३-मैथिलीशरण गुप्त : 'स्वदेश संगीत' पृ० ५६, प्र० सं०।

४-पं. रामनरेश त्रिपाठी : 'स्वप्न'।

५-कवि वल्लभ : 'राष्ट्रीय वीणा', पृ० ७५, प्र० सं०।

६-डा० सुषमा नारायण : 'भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति,पृ० ६४ पर उद्धृत।

लेकर अहिंसा द्वारा आत्म-बल की प्राप्ति की महत्ता बतायी है।[1] वे अपने काव्य में स्वदेश-सेवा-व्रत में तत्पर युवकों को विदेशी शासकों को बल द्वारा प्रतिफल देने की राय देते हैं।[2] शस्त्र और दमन के बल पर राज्य करने वाले अंग्रेजों से भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करना कोई सहज कार्य नहीं था। यह स्वतंत्रता बलिदान चाहती थी। अतः इस युग को देश की बलिवेदी पर अपने प्राणों को विसर्जित करने वालों की बड़ी जरूरत थी। पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' के शब्दों में देश को बलवेदी पर मर मिटने का अद्वितीय संदेश देखिए:—

"मार खाय निर्दय दुष्टों की, घोर कष्ट सहना होगा।
जाति जीवनाधार रक्त से कर्म कुण्ड भरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।"[3]

पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'[4], पं.रामनरेश त्रिपाठी[5], श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा[6] की रचनाओं में बलिदान का स्वर खूब ऊंचा था, जिसने इस युग के देश-प्रेमियों को 'करो या मरो' की प्रेरणा दी।

राष्ट्रीय एकता:—

अंग्रेजों के आगमन के बाद हिन्दुओं के समान ही मुसलमान भी अंग्रेजों की प्रजा बने। उनके आगमन के पूर्व हिन्दू-मुसलमानों में इतनी फूट न थी जितनी कि अंग्रेजोंके शासन-कालमें पैदा हुई। इन दो जातियों में फूट डालकर भारतीय एकताको धक्का पहुँचाया गया। सर जान सीली का भी यही मत है।[7] राष्ट्र के सब निवासियों में एकसूत्रता ही राष्ट्रीयता है, अतएव भारतीय देशभक्तों का महान बलिदान सार्थक हो सकता

१-डा० क्रान्तिकुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास पृ० २१५ पर उद्धृत।
२-पं. रामनरेश त्रिपाठी : 'मिलन', पृ० ५।
३--प. नाथूराम शर्मा 'शंकर', 'शंकरसर्वस्व', पृ० २४८।
४-पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : 'राष्ट्रीय मंत्र', पृ० ८।
५-पं. रामनरेश त्रिपाठी : 'स्वप्न', सं०, ई० १९४४।
६-'राष्ट्रीय वीणा', प्र० भा०, पृ० ३५ पंचम संस्करण, प्रकाश पुस्तकालय कानपुर।
७-सर जांन सीली : 'दि एक्सपान्सन आफ इंग्लैंड', पृ० २३३।

था जब देश में बसने वाले सभी लोग जाति, धर्म, वर्ग और समुदाय के लोग पारस्परिक भेद-भावना को त्याग राष्ट्रीय एकता के बन्धन में आबद्ध हों। इस एकता का महत्व जानकर इस युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में जातीय एकता पर बल दिया है। पं. रूपनारायण पाण्डेय के शब्दों में सभी भारतीयों को भ्रातृ-भावना का सुन्दर संदेश दिया गया है। यथाः—

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई,
कोटि कंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई-भाई ॥[1]

पं. रामनरेश त्रिपाठीके शब्दोंमें जातीय एकता की झलक देखिए.–

'खड़े हुए निज बैर भूलकर
भाई–भाई साथ।
स्वतंत्रता–दायिनी खड्ग से
भूषित थे सब हाथ ॥[2]

रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण'[3], आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी[4], राष्ट्र–कवि मैथिलीशरण गुप्त[5], बदरीनाथ भट्ट[6], माधव शुक्ल[7] सियारामशरण गुप्त,[8] पं. गयाप्रसाद शुक्ल'सनेही'[9] आदि कवियोंने वैर–विरोध भुलाकर भारत में सभी जातियों की एकता की कल्पना की है।

मुसलमान कवियों ने भी इस कार्य में बड़ा सहयोग दिया है। मौलाना अलताफ हुसैन 'हाली'[10] सैयद अकबर हुसैन 'अकबर'[11] ने हिन्दू–मुस्लिम दोनों जातियों की एकता का प्रतिपादन किया।

इस प्रकार इस युग के कवियों ने स्वातंत्र्य-पूर्व काल में जातीय एकताका जो अत्यंत महत्वपूर्ण संदेश दिया था वह आज भी ज्यों का त्यों मूल्यवान है। इस दृष्टि से द्विवेदीयुग के कवि सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कवि थे, भारतवर्ष के अनन्य भक्त थे।

१- रूपनारायण पाण्डेय : 'सरस्वती' भाग १४, संख्या ६।
२- पं. रामनरेश त्रिपाठी : 'मिलन', पृ० ६९।
३- रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' : 'पूर्ण संग्रह', पृ० २१३।
४- महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० ४५३, ४५४।
५- मैथिलीशरण गुप्त : 'गुरुकुल', उपोद्घात, पृ० ३१।
६- 'राष्ट्रीय वीणा', प्र० भा०, पृ० ८८।
७- माधव शुक्ल : 'जाग्रत भारत' पृ० ५।
८- सियारामशरण गुप्त : 'आत्मोत्सर्ग', पृ० ७०।
९- पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : 'राष्ट्रीय मंत्र', पृ० २६।
१०- 'वतन के गीत', पृ० ८ :
११- रघुराज किशोर : 'महाकवि अकबर' पृ० ३६, ई० स० १९३२।

(घ) मानवतावादी विचारधारा:–

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा मानवतावादी विचारों से काफी पनपती हुई दीख पड़ती है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए क्रियाशील कांग्रेस ने परम्परा से पीड़ित गरीब, मजदूर, किसान, नारी आदि को अधिक महत्व दिया। मानव हितवादी धर्म इसका प्रमुख आधार था। इससे प्रभावित कवियों को मानवता की सेवा ही ईश्वर-भक्ति की परिणति दिखाई दी, अतएव इस युग के कवियों ने भगवान के दर्शन दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति और उनके दुख-निवारण में ही किये।[1] 'हरिऔध' कृत 'वैदेही बनवास' पृ० ११३ में मानवतावाद की भावनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है।

भक्तिकाल में मानव-व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति साहित्य के क्षेत्र में धार्मिक वातावरण के कारण न हुई। रीतिकाल में मानवता के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बहुत संकीर्ण था। यही कारण है कि इस युग के साहित्य में साधारण मानव के अभावों के प्रति मानवीय संवेदना एवं सहानुभूति का स्रोत फूटा और इसीलिए श्रमिक एवं कृषकों का जीवन हिन्दी कवियों का प्रिय विषय बना। इस प्रकार डा० रवीन्द्र वर्मा के अनुसार–'इस युग का काव्य दुख और दैन्य से त्रस्त मानवता के जीवन को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ।'[2]

सत्य और न्याय का समर्थन तथा शोषित पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति:–

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के मूलमें जो मानवतावादी विचारधारा प्रवाहित हो रही थी, सत्य और न्याय का समर्थन उसकी निजी विशेषता है। इस युग के कवि सामाजिक अत्याचार और धार्मिक असहिष्णुता की कड़ी आलोचना करते हैं। पीड़ित जनता के प्रति उनकी सहानुभूति अत्यंत प्रबल है इसीलिए गरीब, किसान, विधवा और अछूत आदिका इन कवियों के काव्य के महत्वपूर्ण स्थान है। इसका कारण है कांग्रेस-आंदोलन, जो कृषक वर्ग का बड़ा महत्व देता है।

जब राष्ट्र के प्रमुख अंग किसान की दशा ही दयनीय हो, तो देश का कल्याण हो कैसे हो सकता है? राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दोंमें किसान की दयनीय दशा देखिए:—

१– पं. रामनरेश त्रिपाठी : 'अन्वेषण' कविता, माधुरी भाग १, खंड १।
२– डा० जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल : 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां', पृ० ३५५ पर उद्धृत।

'पानी बनाकर रक्त का कृषि कृषक करते हैं यहां,
फिर भी अभागे भूख से दिन रात मरते हैं यहां।
सब बेचना पड़ता उन्हें निज अन्न वह निरुपाय है,
बस चार पैसे से अधिक पड़ती न दैनिक आय है।'[1]

गुप्तजी कृत 'किसान' में किसान की दीन-हीन कष्टकर अवस्था का चित्र अंकित है। उनके मतानुसार भारत का अन्नदाता किसान केवल आंसू पीकर रहता था।[2] अतः वह कठोर परिश्रम और दुःखद जीवन को पुनः नहीं चाहता।[3]

इसी प्रकार पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी के 'कृषक-क्रन्दन' और 'आर्त्त-कृषक' में भी कृषक जीवन का करुण क्रन्दन है। सनेहीजी के शब्दों में किसान की आर्त्त पुकार देखिए—

'गये गुजरे संसार में हीन हैं हम।
सुदामा से भी सौगुने हीन हैं हम।'[4]

'कृषक-क्रन्दन' का नायक किसान भूख की ज्वाला से तड़प-तड़प कर दम तोड़ देता है। मरते समय वह भगवान से प्रार्थना करता है कि 'कृषक जन्म फिर से न देना।'[5]

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने देशव्यापी निर्धनता का मार्मिक चित्र खींचा है।[6]

इसके अतिरिक्त इस युग के काव्यमें विधवा, मजदूर, दीन-दलितों के भी बड़े सजीव और करुण चित्र अंकित किये गये हैं।

इस प्रकार से इस युग के कवियों ने तत्कालीन शोषितों, पीड़ितों की दयनीय दशा प्रस्तुत कर तथा वर्तमान के प्रति क्षोभ उत्पन्न कर भारतीय जनता में चेतना लाने का प्रयत्न किया। जनता जब अपनी दरिद्रावस्था पर पश्चत्तापदग्ध हो उठती है, उस समय उसमें अपनी दुर्दशा सुधारने की अदम्य उमंग उठती है और उसकी यह उत्तेजना ही उसकी राष्ट्रीय जाग्रति की पृष्ठभूमि बन जाती है।

१– मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती', पृ० ६३।
२– वही, 'किसान', पृ० ८। संस्करण २०११ वि०।
३– वही, 'किसान', छंद संख्या २३।
४– पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' : 'आर्त्त कृषक' पृ० १४।
५– वही, 'कृषक-क्रन्दन', पृ० ८-९ प्रथम सं०।
६– पं. रामनरेश त्रिपाठी : 'मिलन' पृ० ५०।

नारी की दुर्दशा का चित्रणः—

द्विवेदीयुग के कवि चिरकाल से पतितनारी के प्रति सहानुभूति रखते थे क्योंकि इस युग तक आते-आते भारतीय नारी पुरुष के क्रूर हाथों से ताड़ित होकर अपना पद और महत्व खो चुकी थी। अतः उसे समाज के अन्याय से विमुक्त कर पुनर्जीवन देना आवश्यक हो गया था।

बालविधवाओं की समस्या भारत की एक हृदय-विदारक आपत्ति है। अतिप्राचीन काल से बालविधवाओं को समाज में घृणित स्थान दिया जाता था। वे अनेक कष्टोंसे जूझती हुई घुट-घुटकर अपने प्राण विसर्जित करती थीं। अपने पिता और पति को सहानुभूति से वंचित होकर वे दयनीय दशा में जीवन व्यतीत करती थीं। 'बालविधवा-विलाप'में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मर्मभेदी शब्दों से उनकी आर्त्त-ध्वनि जनताको सुनाई है।[1] पं. श्रीधर पाठकने बालविधवाओंकी दीन-हीन दशा पर खूब आंसू बहाये हैं।[2] पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने उन अभागिन विधवाओंके अपार उत्पीड़नकी ओर जनताका ध्यान आकृष्ट किया है।[3] गुप्तजी के अनुसार अल्पावस्था एवं वृद्धावस्था में विवाह की कुप्रथाओं के कारण बालविधवाओं की समस्या उत्तरोत्तर जटिल होती जा रही थी।[4] लोकजीवन में प्रचलित अनेक सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख कर ठाकुर गोपालशरण सिंहने बाल-विधवाओं को हिन्दू समाज के विनाश का कारण घोषित किया है।[5] नारी के सन्दर्भ में कवियों ने दहेज की कुप्रथा पर आघात किया है। दहेज की कुप्रथाओं का वर्णन करते हुए पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने लिखा है किः—

'यह दहेज की आग सुवंशों ने दहकाई।'[6]

'ठहरोनी' प्रथा के कारण ही कुलीन युवतियां विवशता-वश कई यातनाएं सहन करती रहती हैं।[7] राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त वर-कन्या विक्रय के रूप में चल रही समाज की वणिग्वृत्ति पर घृणा प्रकट करते हुए कहते हैं किः—

१- महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'द्विवेदी काव्यमाला',प्र० सं०, पृ० ११३-११४।
२- पं. श्रीधर पाठक : 'मनोविनोद', पृ० ७६।
३- पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' : 'शंकर सर्वस्व', पृ० २६८-२७०।
४- मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती', पृ० १४०।
५- ठाकुर गोपालशरण सिंह : 'माधवी'(१९३८), पृ० ७५।
६- महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० ४३७।
७- मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती', पृ० १४०।

'बिकता कहीं वर है यहां, बिकती तथा कन्या कहीं,
क्या अर्थ के आगे हमें अब इष्ट आत्मा भी नहीं।
हा! अर्थ, तेरे अर्थ हम करते अनेक अनर्थ हैं,
धिक्कार, फिर भी तो नहीं सम्पन्न और समर्थ हैं।'[1]

नारी समता और नारी स्वातंत्र्य की भावनाः—

द्विवेदीयुग में कांग्रेस आंदोलन समाज की पूर्ण व्याप्ति को अपना आधार बनाकर चला। इसमें नारी का भी बड़ा योगदान रहा, अतः इस युग में नारी पुरुष के क़न्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाली वीरप्रसू के रूप में काव्यमें चित्रित हुई। दूसरे शब्दों में इस युग में नारी-स्वातंत्र्य सम्बन्धी भावनाओं का विकास नवयुग की चेतना के विकास के साथ हुआ। इस युग में पुरुष और नारी में समानता की भावना दृढ़ हो रही थी और इस समानता की चर्चा में ही काव्य में नारी के प्रति पूत भावनाओं का सहज विकास हो रहा था।

पं. श्रीधर पाठक ने स्त्री जाति के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों की ओर ध्यान आकृष्ट किया और प्रभु से उसमें सुधार की प्रार्थना की—

'प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुग जोर।
दीनबन्धु सुदृष्टि कीजै बाल विधवा ओर'।[2]

स्त्री को सम्मान के उच्चासन पर विभूषित करनेके लिए गुप्तजी ने स्त्री-शिक्षा पर बल दिया। इसीलिए वे शिक्षित महिलाओंके प्रभावकी ओर संकेत कर कहते हैं किः—

'क्या कर नहीं सकतीं भला, यदि शिक्षिता हों नारियाँ?
रण–रंग, राज्य सु-धर्म रक्षा कर चुकीं सुकुमारियाँ।
सोचो नरों से नारियां किस बात में हैं कम हुई?
मध्यास्थ में शास्त्रार्थ में हैं भारती के सम हुई।'[3]

पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने अपने समाजकी नारियों को अत्यन्त कुलीना एवं सर्वगुणशीला देखने की अभिलाषा प्रकट की हैः—

१– मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती', पृ० १४०, (पच्चीसवां संस्करण)
२– डा० जयकिशनप्रसाद खंडेलवाल : 'हिन्दी साहित्यकी प्रवृत्तियां', पृ० ३६५ पर उद्धृत।
३– मैथिलीशरण गुप्त : 'भारत भारती', पृ० १३७।

'विदुषी उपजैं, समता न तजैं, ब्रत धार भजें, सुकृति वर को,
सधवा सुधरें, विधवा उबरें, सकलंक करें न किसी घर को।
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें, कुलबोर छिकें, तरसे दर को
दिन फेर पिता वर दे सविता कर दे कविता कवि शंकर को।'[1]

पं. श्रीधर पाठक आधुनिक नारियोंमें लक्ष्मी एवं सरस्वतीस्वरूपा देवियों की झांकी देखने से लिए लालायित थे।[2]

द्विवेदीयुग में नारी-समाज का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता गया। यथा-त्रिपाठी के 'स्वप्न' खंडकाव्यकी नायिका सुमना अपने पति को कर्म-मार्ग में स्थित हो जाने का उपदेश देती है। उसके सामने जब देश-प्रेम और पति-प्रेम में से एक को चुननेका अवसर आता है तब वह देश-प्रेम को वरीयता दे अपने नारीत्व को उच्चासन प्रदान करती है।

'निज कर्तव्य परायण सुमना
उसी रात में पुरुष वेश धर
तम में लुप्त हो गई घर से।'—स्वप्न।

हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' की राधा तप:पूत, त्यागमयी लोक-सेविका नायिका है:—

'प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें।'[3]

उपेक्षिता नारी-चरित्रों की काव्य में प्रतिष्ठा—

नारीत्व के प्रति उच्च भावना को लेकर चलने वाले इस युग के प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'कवियों की उर्मिलाविषयक उदासीनता' निबंध से प्रभावित हो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं में उपेक्षिता नारियोंका महानस्वरूप प्रस्तुत किया। उनकी कृतियोंमें उर्मिला, कैकेयी, यशोधरा, विधृता आदि ऐसी ही नारियां हैं। डा० शर्मा के अनु-सार-'कैकेयी, उर्मिला और यशोधरा को जो सामाजिक मूल्य गुप्तजी ने प्रदान किया, वह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा गया था'।'[4]

काव्य की उपेक्षिताओं में सर्वाधिक उर्मिला ही है।[5] 'साकेत' की उर्मिला पर आधुनिक युग की छाप स्पष्ट है। यहां तक कि उर्मिला

१- पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर': 'शंकर सर्वस्व', पृ॰ ३७, प्रथम संस्करण।
२- पं. श्रीधर मिश्र : 'भारत गीत', पृ० १६०।
३ प्रो० ओमप्रकाश सिंघल : 'प्रियप्रवास' (आलोचनात्मक अध्ययन) पृ० ३६।
४- डा० रामसकल राय शर्मा : 'द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य', पृ० ३६४।
५- रवीन्द्रनाथ : 'प्राचीन साहित्य', पृ० ६०।

स्वयं सैन्य-संगठन कर लंका प्रस्थान करने के लिए तत्पर होती है। उसमें त्याग भी कम नहीं है, वह अपने घर में रहना उचित समझती है परन्तु प्रिय के पथ में विघ्न नहीं बनना चाहती:—

"कहा उर्मिला ने-हे मन ! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन ।।"[1]

वह स्वयं को पति-सेवा की अधिकारिणी समझती है—

"अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी।"[2]

उर्मिला के रूप में हमें आधुनिक कालीन भारतीय नारी के महान रूप के दर्शन होते हैं।

कैकेयी को महारानी एवं माँ होकर भी अपने परिवार, समाज और उत्तराधिकारियों की श्रद्धा नहीं मिली।[3] इसलिए गुप्तजी ने 'साकेत' में कैकेयी का पावन चित्र अंकित किया हैं। 'साकेत' की कैकेयी का वर्णन पढ़कर, उनके प्रति परम्परा से जमी सारी घृणा पिघलकर बह जाती है। चित्रकूट की सभा में उसकी सफाई अत्यन्त हृदय-द्रावक है और वह अन्त-स्थल से राम को लौटा ले जाना चाहती है—

"यह सच है तो घर लौट चलो अब भैया।
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।"[4]

गुप्तजी ने युग-युग से लांछिता कैकेयी में अनेक आदर्श गुणों की सृष्टि कर उसको उत्कर्ष प्रदान किया है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी ने 'यशोधरा' में युग-युग की तपस्विनी नारी का बड़ा उदात्त चित्र खींचा है—

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।'[5]

वह अपने पति को क्षात्र-धर्म पालन हेतु रणांगण में प्रस्तुत करने के लिए तैयार हो जाती है। यशोधरा के शब्दों में नारी जीवन की साधना देखिए—

१– मैथिलीशरण गुप्त: 'साकेत' पृ० ७०, सर्ग ४।
२– वही वही, सर्ग १२, पृ० ३३३।
३– शान्तिप्रिय द्विवेदी: 'कवि और काव्य' पृ० १२३।
४– मैथिलीशरण गुप्त: 'साकेत' सर्ग ८, पृ० १७८।
५– वही 'यशोधरा' पृ० ६९, सं० २०२८ वि०।

'इस दिन के उपयुक्त पात्र की उन्हें खोज थी सारी।
आर्य-पुत्र ले चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी॥'[1]

इस प्रकार इस युग के काव्य में नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं स्वस्थ रूप का विकास हुआ।

(ङ) साहित्यिक वातावरणः—

नवीन और सामान्य लोकजीवन के विषयों का काव्य में निरूपणः—

इस युग के कवियों ने नवीन और सामान्य लोक जीवन के विषयों को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। इस युग के कवि और लेखकों को खड़ी-बोली के प्रचार के साथ ही काव्य-प्रवाह के लिए कुछ नई-नई भूमियाँ दिखाई दी। अतः त्याग, वीरता, उदारता, स्वदेश-प्रेम, समाज सेवा, देश सेवा, उपदेश आदि को लेकर द्विवेदी युग में अनेक काव्य लिखे गये।

प्रकृति-चित्रणः—

भारतेन्दु युग में काव्य में प्रकृति का विशेष चित्रग नहीं मिलता। उस युग में काव्य में प्रकृति-चित्रण के नाम पर केवल अलंकारों की छटा और परम्परागत वर्णनों का बाहुल्य ही हुआ, किन्तु द्विवेदी युग में इस क्षेत्र में अधिक उन्नति हुई और प्रकृति को प्यारभरी दृष्टि से देखा गया। फलतः प्रकृति एवं उसके विभिन्न अंगों पर बड़ी सुन्दर रचनाएं लिखी गईं। इस समय सर्वप्रथम स्वतंत्र रीति से प्रकृति चित्रण प्रारम्भ हुआ। पं. श्रीधर पाठक ने प्रकृति-प्रेम में तन्मय होकर उसकी माधुरी का वर्णन किया है। उनके शब्दों में काश्मीर का वर्णन देखिए:—

'प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेष छनिक छबि छिन छिन धारति।
बिहरति विविध विलास भरी जोबन मद में सनि।
ललकति-किलकति पुलकति निरखति थिरकति बनिठनि।'[2]

यह तो प्रकृति का संवेदनात्मक वर्णन है।

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य में प्रकृति के मधुर एवं उग्र दोनों रूपों का वर्णन किया है। त्रिपाठीजी के शब्दों में प्रातःकाल का सुन्दर रूप देखिए:—

१- मैथिलीशरण गुप्त 'यशोधरा' पृ० ५३, संस्करण २०२८ वि०।
२- डा. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवालः 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ३६६।

'गगन नीलिमा में हीरों का तेजपुंज अभिराम।
एक पुष्प आलोकित करता, था जल-थल, नभ-धाम।
बरछी सी उसकी किरणों से, खाकर गहरी चोट।
अंधकार हो क्षीण छिपा था तरु पत्तों की ओट।'[1]

विभाव की दृष्टि से प्रकृति का उद्दीपन एवं आलम्बन के रूप में चित्रण भी इस युग में खूब हुआ। उदाहरणार्थ गुप्तजी के शब्दों में प्रकृति का उद्दीपक चित्र देखिए—

'चारु चंद्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से,
मानो झीम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से॥[2]

हरिऔध जी ने अपनी कविताओं में प्रकृति को सभी रूपों में अंकित किया है। पं. रामचन्द्र शुक्ल के प्रकृति वर्णन बड़े चित्रात्मक है। पं. रामनरेश त्रिपाठी जी के 'पथिक' और 'स्वप्न' खंडकाव्य प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण के लिए प्रसिद्ध हैं। रूपनारायण पांडेय की कविता में प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत दृश्य-दर्शक व्यंजना हुई है।[3]

इस युग के काव्य में प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत रूपों में भी प्रकृति का चित्रण हुआ है।

कवि गुरुभक्त सिंह 'भक्त' ने देश-प्रेम एवं मातृ-भूमि के भावों से पूर्ण कविता लिखी—

मातृभूमि ! तेरी यह झाँकी. कभी न मुझको भूलेगी।
तेरे इस गुलाब की लाली: आँखों में नित फूलेगी॥"[4]

पं. श्रीधर पाठक[5], लोचनप्रसाद पांडेय[6], श्री रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण'[7] आदि कवियोंने भी प्रकृति-चित्रण में बड़ी रुचि दिखलायी है।

१- पं. रामनरेश त्रिपाठी: 'मिलन' पृ० २५।
२– मैथिलीशरण गुप्त: 'पंचवटी' सर्ग १, पृ० ५, १४ वाँ सं०, १९९९ वि०
३– 'प्रभा' भाग १, पृ० ३३७।
४– गुरुभक्त सिंह 'भक्त': 'नूरजहाँ' पृ० ९।
५– पं. श्रीधर पाठक: 'देहरादून' पृ० २२।
६– लोचनप्रसाद पांडेय: 'कविताकुसुम' (चतुर्थ संस्करण) पृ० ८४।
७– 'कविता कुसुममाला' (काव्य संग्रह) चतुर्थ संस्करण; पृ० १३४।

काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली की प्रतिष्ठाः—

द्विवेदी युग के पूर्व तक कविता-कानन में ब्रजभाषा की ही बाँसुरी का स्वर प्रधान था, किन्तु द्विवेदी युग में हिन्दी काव्य क्षेत्र में खड़ी बोली के गान गूंज उठे'। अतः इस युग में खड़ी बोली काव्य- भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इसका सारा श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी को है। प्रारम्भ में यह काव्य भाषा बड़ी अव्यवस्थित थी, परन्तु द्विवेदी जी के परिश्रम से इसकी पदावली परिष्कृत हुई। उन्होंने 'सरस्वती' में प्रकाशित होनेवाली कविताओं में सुधार किये और कवियों को उनकी त्रुटियाँ दिखायीं। कवियों के मार्गदर्शन के लिए उन्होंने स्वयं खड़ी बोली की रचनाएं लिखी और तदनन्तर अनेक कवियों ने उनका अनुकरण किया। द्विवेदी जी ने भाषा एवं व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों को दूर कर खड़ी बोली को सामर्थ्यवान बनाने का प्रयत्न किया। द्विवेदीजी ने स्वयं कालि-दास कृत 'कुमारसंभवम्' का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत कर हिन्दी में संस्कृत तत्सम पदावली का प्रसार किया।

हरिऔधजी ने 'रूपोद्यान-प्रफुल्ल-प्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना' में हिन्दी काव्य में बिलकुल संस्कृत सामासिक पदावली का प्रतिरूप ही उतार दिया है।[1] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी ने गद्य और पद्य का पदविन्यास भी एक-सा करने का आदर्श रखा—

'सुरम्य रूपे-रस राशि रंजिते,
विचित्र-वर्णाभरणे ! कहाँ गई ?'

प्रिय प्रवास की यह सरस पदावली देखिए—

'मदीय प्यारी अयि कुंज कोकिला
मुझे बता तू ढिग कूक क्या उठी।'

द्विवेदीजी के आग्रह से हरिऔधजी ने मुहावरेदार भाषा लिखने में कुशलता प्रकट की।[2] द्विवेदीजी के मत[3] से प्रभावित राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त ने भी भाषा की सरलता तथा सुबोधता पर पर्याप्त ध्यान दिया।[4] इसलिए उनकी 'भारतभारती' अपनी प्रासादिकता के लिए प्रसिद्ध है। 'प्रियप्रवास' संस्कृत प्रधान होते हुए भी प्रसन्न है। पं. नाथू-

---

१– अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध': 'प्रियप्रवास' सर्ग ४।
२– वही 'चोखे चौपदे, चुभते चौपदे'
३– आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी: 'रसज्ञ-रंजन' पृ० ५।
४– मैथिलीशरण गुप्तः 'भारतभारती' पृ० ५।

राम शर्मा 'शंकर' तथा सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाओं में ओज गुण व्याप्त है। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔधजी की रचनाओं में माधुर्य की व्यंजना हुई है। इस तरह से इस युग में खड़ी बोली पूर्ण रूपेण परिष्कृत काव्य-भाषा पद पर प्रतिष्ठित हुई।

छन्द के क्षेत्र में स्वच्छन्दताः—

द्विवेदी युग के काव्य में विविध छंदों का प्रयोग हुआ। द्विवेदीजी छन्द के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी थे।[1] उन्होंने कवियों को विविध प्रकार के छन्दों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया। समतुकांत छन्दों के साथ साथ उन्होंने अतुकान्त छन्द को भी महत्व दिया। संस्कृत अतुकांत छन्दों की माधुरी हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में देखिए—

'कथन को अब न कुछ शेष है
विनय यों करता दीन अब।

मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामचरित उपाध्याय, ठाकुर गोपालशरण सिंह आदि ने हिन्दी के गीतिका, हरिगीतिका, रूपमाला आदि छन्दों को सफलता से अपनी रचनाओं में अपनाया।

इस युग में 'लावनी' लय का भी विशेष प्रचार हुआ। श्रीधर पाठक ने इस छन्द का विशेष प्रयोग किया। इन्होंने अपनी रुचि के अनुसार नये छन्द नये ढाँचे के निकाले—

'छिन-छिन पर जोर मुरोर दिखावत, पल-पल पर आकृित कोर झुकावत।'[1]

द्विवेदी जी ने कवियों को हिन्दी में उर्दू छन्दों का प्रयोग करने का भी आदेश दिया[2] अतः लाला भगवान दीन ने अपनी हिन्दी रचनाओं में उर्दू छन्दों का प्रयोग किया[3]। हरिऔध जो हिन्दी के पूर्ण पक्षपाती थे। इसलिए उन्होंने उर्दू छन्दों को हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल बनाया।[4] जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने रोला, घनाक्षरी का प्रयोग किया और सियारामशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं में नये वृत्तों को भी सफलतापूर्वक अपनाया।

ब्रजभाषा में रचित इस युग की कविताओं में कवित्त और सवैया का बहुतायत से प्रयोग हुआ।

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्लः 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ६०५ पर उद्धृत।
२- महावीर प्रसाद द्विवेदीः 'रसज्ञ-रंजन' पृ० ३।
३- लाला भगवान दीनः 'वीर पंचरत्न'।
४- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध': 'चुभते-चौपदे'।

काव्य-क्षेत्र में खड़ी बोली के प्रतिष्ठित होते ही उसके उपयुक्त छन्दों की समस्या उठी, जिसका समाधान अतुकांत छन्दों में मिला, क्योंकि नवीन एवं मनोभिलषित अर्थ को व्यक्त करने के लिए अतुकांत छन्द अत्यंत उपयुक्त और सुगम सिद्ध हुए।

इतिवृत्तात्मक एवं गद्यात्मक काव्यः—

द्विवेदी युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है इतिवृत्तात्मकता और गद्यात्मकता। इस युग में कविता की शैली सरल गद्य शैली जैसी हो गयी थी। कविता का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ उपयोगिता भी हो गया था, फलतः इस युग के काव्य में अनेक स्थलों पर उपयोगितावाद की झलक दिखायी पड़ती है।

स्वयं द्विवेदीजी ने 'प्लेगस्तव राज' और 'समाचार पत्रों का विराट रूप' दो काव्यात्मक गद्य-प्रबन्ध लिखे। रायकृष्णदास का 'समुचित कर' और 'चेतावनी'[1] श्री जयशंकर प्रसाद का 'प्रकृति-सौन्दर्य'[2] श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'विलाप'[3] आदि गद्य-काव्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए।

द्विवेदीजी ने गद्य और पद्य का पदविन्यास भी एक करने का आदर्श रखा।[4]

उपयोगिता के भाव से प्रेरित इस युग के कवि संतोष, आशा, साहस आदि विषयों पर कविता लिख-लिखकर लम्बे-चौड़े उपदेश देने लगे। मैथिलीशरण गुप्त ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को उनके धर्म-कर्म की हीन दशा का परिचय दे उन्नत होने के लिए 'भारतभारती' में प्रदीर्घ उपदेश दिया है। इस उपदेश के पात्र कवि आदि हुए। ठाकुर गोपालशरण सिंह के विश्व-प्रेम में मुक्ति की झलक देखिए—

'जग की सेवा करना ही बस है सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के बन्धन ही में मुझको मिला मुक्ति का द्वार॥'[5]

१- 'प्रभा', वर्ष ३, खंड १, पृ० ४०१।
२- 'इन्दु', कला १, किरण १, पृ० ८।
३- 'प्रभा' वर्ष ३, खं० २, पृ० १८२।
४- महावीर प्रसाद द्विवेदीः 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० ११८।
५- पं० दुर्गाशंकर मिश्रः 'आधुनिक कवि गोपालशरण सिंह' पृ० १९७ पर उद्धृत।

"वेदने ! तू भी भली बनी।
पायी मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी ॥"[1]

इस युग के अन्तिम काल में सुन्दर मुक्तक गीतों की रचना हुई। 'साकेत' महाकाव्य में गुप्तजी ने अनेक सुन्दर गीतों की योजना की है। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मुकुटधर पाण्डेय और लोचनप्रसाद पांडेय ने अपनी कविताओं में रहस्यात्मक खोज एवं रहस्योन्मुख प्रेम की व्यंजना की है। उनकी दृष्टि में सारी प्रकृति अपने परम प्रिय की खोज में निमग्न है। गुप्तजी की कविताओं में भी रहस्योन्मुख भावना का दर्शन मिलता है—

'तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ से।
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है कैसे भीतर जाऊँ मैं ॥'[2]

श्रृंगार का बहिष्कार—

द्विवेदीयुगीन काव्य में श्रृंगार को अश्लील मानकर उसका वहिष्कार करने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा। इस युग में रीतिकालीन उद्दाम श्रृंगार-रस धारा के विरुद्ध इतनी तीव्र प्रतिक्रिया हुई कि श्रृंगार रस को 'अश्लील' की संज्ञा तक दे दी गयी। इस प्रतिक्रिया के कुछ अपवाद भी थे पर वे नैतिकता के कठोर बंधन के नगण्य अपवाद मात्र हैं। इस युग में श्रृंगार और प्रेम का जो तीव्र विरोध हुआ, उसके स्वरूप विवेचन के लिए यहाँ दो-एक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

'साकेत' में एक प्रसंग है लक्ष्मण की उर्मिला से छेड़छाड़। यहाँ पर गुप्तजी की मर्यादा-रक्षा अत्यन्त श्लाघ्य है। केवल उर्मिला से इतना कहलाकर ही वे इस प्रसंग की इतिश्री कर देते हैं—

'मत्त गज बनकर विवेक न छोड़ना,
कर-कमल कह कर न मेरा तोड़ना।'[3]

हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' में अंकित राधा श्रृंगारकालीन राधा की भाँति श्रृंगार की प्रतिमूर्ति नहीं है, वह तो लोकसेविका है। यही राधा कृष्ण के नेत्रों में स्त्री-जाति की रत्न है, विलास की सामग्री नहीं—

'जो राधा वृषभानु भूप तनया स्वर्गीय दिव्यांगना।

१- मैथिलीशरण गुप्त: 'साकेत' पृ० २०।
२- डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल: 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' पृ० ३६६ पर उद्धृत।
३- मैथिलीशरण गुप्त: 'साकेत' पृ० २२।

शोभा है ब्रज प्रान्त को, अवनि की, स्त्री-जाति की, वंश की ।।'[1]

इस तरह इस युग के कवियों की नारी के प्रति प्रेम-भावना परिवर्तित एवं सुसंस्कृत रूप में व्यक्त हुई है। अतः हम यह कह सकते हैं कि इस युग की प्रेम-प्रधान कविता में घोर शृंगारिकता के स्थान पर शिष्टता, संयम, व्यापकता, लोकपावनत्व आदि तत्वों का समावेश हुआ है।

बौद्धिकता का प्रभाव—

द्विवेदीयुगीन काव्य-धारा की एक अन्य विशेषता है बुद्धिवाद की प्रमुखता। नवीन वैज्ञानिक युग के अनुकूल ही इस विचारधारा का विकास हुआ। नव-युग के प्रारम्भ से विचार-स्वातंत्र्य का विकास हुआ। पाश्चात्य संघर्ष और नवीन परिस्थितियों के परिवर्तन से भारतीय जागरूक समाज में भारतीय संस्कृति की परीक्षा वैज्ञानिक एवं तार्किक दृष्टि से होने लगी। सबसे अधिक क्रांति धार्मिक क्षेत्र में हुई। इसलिए इस युग में राम और कृष्ण के चरित्र का आधुनिक परिस्थितियों और मानववादी विचारधारा के अनुकूल विवेचन हुआ। द्विवेदी युग में राम और कृष्ण चरित्र के गायक मुख्य दो कवि थे-राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'। गुप्तजी ने 'पंचवटी' में मानव के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ।'[2]

पर 'साकेत' तक आते-आते वे यह मानने लगे कि मनुष्यता का उदात्तीकरण ही ईश्वर है। डा० सत्येन्द्र का भी यही मत है।[3] गुप्तजी के मतानुसार राम के भूतल पर आगमन का उद्देश्य धरती को स्वर्ग में बदल मनुष्य को ईश्वरत्व प्रदान करना है—

'मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
× × ×
भव में नव वैभव प्राप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।।'[4]

१- डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल: 'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' पृ० ३६४ पर उद्धृत।
२- मैथिलीशरण गुप्त: 'पंचवटी' पृ० १२, १४ वाँ संस्करण, १९९९ वि०।
३- डा० सत्येन्द्र: 'गुप्तजी की कला' पृ० ५१।
४- मैथिलीशरण गुप्त: 'साकेत' सर्ग ८, पृ० १६६-१६७।

गुप्तजी ने ईश्वरत्व की मानवता का नहीं, मानवत्व की ईश्वरता का दर्शन कराया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का भी यही मत है।[1]

हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' में कृष्ण का नया रूप अंकित है, यथा

'अपूर्व आदर्श दिखा नरत्व का,
प्रदान की है पशु को मनुष्यता।
सिखा उन्होंने चित्त की समुच्चता,
बना दिया सभ्य समग्र गोप को ॥'[2]

हरिऔध के शब्दों में श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप देखिए—

'वे जी से हैं जगत जन के सर्वथा श्रेयकामी,
प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।'[3]

लोकाराधन में संलग्न श्रीकृष्ण का महामानव रूप देखिए—

'सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का है उजाला।
दीनों का है परम धन औ' वृद्ध का नेत्र तारा ॥
अबलाओं का प्रिय स्वजन औ' बन्धु है बालकों का।
ले जाते हैं सुरतरु कहाँ आप ऐसा हमारा ॥'[4]

इस प्रकार 'प्रियप्रवास' में कृष्ण का आदर्श-मानव चरित्र अंकित है। डा० धर्मेन्द्र शास्त्री की भी यही मान्यता है।[5]

अनुवाद की प्रचुरता—

द्विवेदीयुगीन काव्य में अनुवाद की प्रचुरता दीख पड़ती है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदोजी ने इस कार्य में हाथ बँटाया और कई कवियों और लेखकों को इस कार्य के प्रति आकृष्ट किया। फलतः 'सरस्वतो' में अनुवाद छपा करते थे। 'सरस्वती' में प्रकाशित अनुवादों से एक विशेष लाभ यह हुआ कि हिन्दो के कवि, लेखक और पाठक विविध-काव्य-शैलियों और विविध भाव-भूमियों से अवगत हुए।

इस युग में संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला से प्रचुर मात्रा में अनुवाद प्रस्तुत हुए। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कालिदास के 'ऋतुसंहार'

१- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी: 'आधुनिक साहित्य' पृ० ९७।
२- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध': 'प्रियप्रवास' पृ० २४।
३- प्रो० ओमप्रकाश सिंघल: 'प्रियप्रवास' (आलोचनात्मक अध्ययन) पृ० १०३।
४- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' 'प्रियप्रवास' पृ० २५।
५- डा० धर्मेन्द्र शास्त्रो: 'महाकवि हरिऔध का प्रियप्रवास' पृ० १७३-१७४।

का अनुवाद किया।[1] श्री शिवनारायण खन्ना के अनुसार-'द्विवेदीजी ने लगभग ७ ग्रंथों का अनुवाद, ८ का पद्यानुवाद और अंग्रेजी की चार पुस्तकों का गद्य में भावानुवाद किया।'[2]

द्विवेदी जी से प्रोत्साहित होकर अन्य कवियों ने भी अनुवाद प्रस्तुत किये। मैथिलीशरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदनदत्त के दो काव्यों–'मेघनाथ वध' और 'वीरांगना' तथा नवीनचंद्र सेन के 'पलासीर युद्ध'-का बड़ा सरस अनुवाद किया।

इस युग में अंग्रेजी की प्रसिद्ध कविताओं के भी अनुवाद हुए। पं० श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का 'एकान्तवासी योगी' 'ट्रैवलर' का 'श्रांत-पथिक' और 'डेजर्टेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' नाम से पद्यानुवाद किये।

पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', पं० रूपनारायण पाण्डेय एवं श्री रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' ने अनुवाद कार्य में बड़ी रुचि दिखलायी है।

संक्षेप में इस युग की काव्य-धारा पर राजनैतिक चेतना का गहरा प्रभाव पड़ा है। अतएव इस युग का काव्य स्वतंत्रता के आंदोलन से पूर्णतया सम्बद्ध है। इस युग के काव्य में कृषक और दलित वर्ग की स्थिति की करुण व्यंजना प्रतिफलित हुई है। जन्म-भूमि के प्रति प्रेम और स्वर्णिम अतीत का चित्रण इस युग के साहित्य का मूल स्वर था। स्वातंत्र्य-प्राप्ति एवं देश की समृद्धि का लक्ष्य सामने रखकर कवियों ने देश-भक्ति तथा राष्ट्रीय जागरण की तान छेड़ी।

नवीन शिक्षा एवं पश्चिमी साहित्य के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप यहाँ बुद्धिवाद की लहर उठी और उससे मानवतावादी विचारधारा का विकास हुआ।

राजनैतिक चेतना के फलस्वरूप पुरुष-स्त्री के समान अधिकारों की भावना विकसित हुई तथा स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह स्वातंत्र्य आंदोलन में भाग लेने लगीं, उनके व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से विकास हुआ और उनके प्रति काव्य में सदाशयता की ध्वनि मुखरित हुई।

इस युग में ही 'सरस्वती' जैसी पत्रिका का प्रकाशन हुआ, जिसने हिन्दी गद्य के साहित्यिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की। सरस्वती तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों एवं कविताओं से

१- 'ऋतुतरंगिनी'-देवनागरी छन्दों में षड्ऋतु वर्णन।
२- शिवनारायण खन्ना: 'द्विवेदी साहित्य, आचार्य द्विवेदी' पृ० ८३।

सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि समस्याओं पर प्रकाश पड़ा और इनके द्वारा जनता में राष्ट्रीय जागृति, देश-भक्ति और स्वातंत्र्य-प्राप्ति के विचारों का प्रचार हुआ।

इस प्रकार के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेश में पंडित श्यामनारायण पाडेय का आविर्भाव भारत के सांस्कृतिक इतिहास की एक अनिवार्य घटना है।
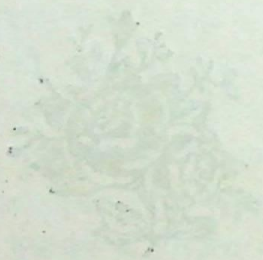
२

❀ श्यामनारायण पाण्डेय: जीवन और व्यक्तित्व ❀

युगीन परिवेश और पं० श्यामनारायण पाण्डेय

पं. श्यामनारायण पाण्डेय जी द्विवेदीकाल में प्रवर्तित और परिष्कृत खड़ी बोली काव्य-धारा के अग्रगण्य कवि हैं। उनके आविर्भाव के समय द्विवेदीयुग की खड़ी बोली अपने पैरों पर खड़ी हो रही थी। खड़ी बोली के समर्थन में पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, राधाचरण गोस्वामी और प्रतापनारायण मिश्र आदि मैदान में उतर आये थे। ऐसे समय में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद के डुमराँव ग्राम में पं. रामाज्ञा पाण्डेय के कुलदीपक के रूप में सौ० वातासी देवी ने एक बालक को जन्म दिया। ई० स० १९०७ की श्रावण कृष्णा षष्ठीके दिन जिस बालकने जन्म लिया, किसने कल्पनाकी थी कि कभी वही बालक युगकी चट्टानोंपर अपने चरण-चिह्न अंकितकर अपनी प्यारी माँ 'वातासी देवी' और'राष्ट्रभारती' की झोली भावों की 'आरती' से भर देगा।

काल की दृष्टि से यदि देखा जाय तो उन्नीसवीं सदीने सदा-सदा के लिए अपने वैभवशाली द्वार को बन्द करते-करते बीसवीं सदीके पालने में जिन साहित्यिक विभूतियों के शैशव को डाल दिया था, उनमें पं. श्यामनारायण पाण्डेय जी भी हैं।

'तुमुल' खण्डकाव्य के आधार पर उनका काव्यकाल सन् १९२८ ई० से माना जा सकता है। यह वह समय है-जब द्विवेदीयुग समाप्त हो चुका था और छायावादी युग अँगड़ाइयाँ ले रहा था। द्विवेदीकाल की कविता अधिक उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक और रूढ़िबद्धहो गयी थी तथा पाश्चात्य काव्य--प्रभाव से भारतीय साहित्य में भी कुछ कवियों ने द्विवेदीयुगीन कविताओं के प्रति, युगीन प्रतिक्रिया का काव्यात्मक प्रतिनिधित्व शुरू कर दिया था। अँग्रेजी कविता में जिस स्वच्छन्दतावाद की प्रतिष्ठा हुई थी, उसे यहां के कवि भी अपनी भाषा में प्रस्तुत करना चाहते थे। इसका एक अन्य कारण यह भी था कि द्विवेदीकालीन पद्यगत गद्यात्मकता और अति नैतिकता के प्रचार के कारण तद्युगीन कवि-मानस में मानव हृदय की सहजात कोमल भावनाएं अपनी अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रही थीं। जिस कोमल अनुभूति और जीवन के प्रति संवेदना की उपेक्षा द्विवेदीकाल में हुई थी, कवि उसे नवीन जीवन देना चाहते थे।

द्विवेदीयुगीन अतितथ्याश्रयता और कल्पनाहीनता के प्रति एक विद्रोह उभर रहा था। परिणाम यह हुआ कि प्रसाद, पंत, निराला जैसे कवियों ने प्रचलित काव्यशैली और कथ्य से अपने आप को पृथक कर अभिव्यंजना के नूतन आधार और आयाम खोज उन्हें छंदबद्ध करना प्रारम्भ किया। इन छायावादी कवियों ने जीवनदर्शन के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति उपस्थित की। डा० क्षेम के अनुसार-'छायावाद स्वयं अपने में कोई दार्शनिक मान्यता नहीं है। वह तो व्यापक मानवतावादी साहित्यिक चेतना है, जो जीवन जगत की जड़ता के विरुद्ध व्यक्तिगत स्वाधीनता, आत्मनिष्ठता एवं भाववादिताके मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। वह केवल वाद नहीं,एक जीवन-दृष्टि है। वह कुछ व्यक्तिगत एक सामाजिक यथार्थों की मान्यता का प्रश्न है।'[1] छायावादी कवियों ने प्रकृति में रहस्यात्मकता के आभास भी अंकित किये हैं। वे हमें प्रकृति में निराकार ब्रह्म की झाँकी देख अपने हृदय की सारी भावुकता को समेट उस रहस्यानुभूति को छायावाद में बाँधते हुए नजर आते हैं। शुक्ल जी के अनुसार-'जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।' अतः छायावादी युगमें भी कई कवियों द्वारा भाषाकी अकृत्रिम अभिव्यक्ति के माध्यम से प्रकृति के प्रतीकों का सहारा लेकर, रहस्यभरे संकेतों में आत्मा और परमात्मा की बातें कही गयी हैं। प्रसाद और महादेवी इनमें प्रमुख हैं। प्रेम की तीव्र वेदना के दर्शन हमें इनके काव्यमें होते हैं। प्रसाद और महादेवी ही नहीं, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त की 'मौन निमंत्रण' कविता के रहस्य-संकेत भी विलोभनीय हैं।

इस युगमें 'कला, कलाकी पुकार'के अनुरूप योरपमें प्रगीत मुक्तकों का अधिक प्रचलन देख भारत में भी गीतों, प्रगीतों और मुक्तकों की बाढ़ आयी। अतः इस युग में, काव्य के बारे में यह धारणा प्रचलित हुई कि जीवन की आपाधापी में लम्बी रचनाएँ पढ़ने के लिए किसके पास समय है? परिणाम यह हुआ कि छायावादी मुक्तक और परम्परा में जीवन की अनेक परिस्थितियों की ओर ले जाने वाले प्रसंगों या आख्यानों की उद्भावना कम हो गयी। छायावाद और कलावादके आनेसे तत्कालीन काव्य का बहुत सा अंश नाना अर्थभूमियों पर न जाकर एक बँधी हुई लीक के भीतर सिमट गया। पर इस परिस्थिति में परिवर्तन हुआ और छायावाद, रहस्यवाद तथा कलावाद को लेकर चलने वाली कविताओं के साथ ही साथ दूसरी धाराओं की कविताएँ भी हिन्दी काव्य क्षेत्र में उतरीं। द्विवेदी

१- डा० क्षेम : छायावाद के गौरव चिह्न।

काल में विविध-वस्तु-भूमियों पर प्रसन्न प्रवाह के साथ चलने वाली यह काव्य-धारा मैथिलीशरण गुप्त, ठाकुर गोपालशरण सिंह, अनूप शर्मा प्रतापनारायण पुरोहित, पं.श्यामनारायण पाण्डेय आदि कवियों की वाणी में मुखर हुई, और उसमें विविध आख्यान और विषय लेकर प्रौढ़ तथा प्रगल्भ रचनाएं प्रकाशमें आयीं। इन छायावादेतर रचनाओं की अभिव्यंजना प्रणाली में सरसता, सजीवता तथा प्रभविष्णुता का वैभव भी प्रचुर परिमाण में है।

पं. श्यामनारायण पाण्डेय के रचनाकाल की यही पृष्ठभूमि है। उन्होंने अपने काव्यगुरु 'हरिऔध' जी के मार्गदर्शन में काव्य-सृष्टि के आरम्भिक पाठ पढ़े हैं। 'तुमुल' (ई० १९२८) से लेकर 'शिवाजी' (ई० १९७०) तक वे सतत् काव्य-रचना करते रहे हैं, और सुयोग से आज भी उनका यह अनुष्ठान चल रहा है। इस लम्बी अवधि में उन्होंने हिन्दी साहित्य को तीन महाकाव्य, तीन खंडकाव्य और अनेक स्फुट रचनाएँ दीं। यह उनके लिए आह्लाद और हिन्दी काव्य के लिए गौरव की बात है।

सर्वसाधारण जन एवं कवि में यही अंतर है कि जहां सामान्य व्यक्ति परिस्थितियों के प्रवाह में अपने को खो देता है, वहां कवि कमल पत्रवत् उसमें रहकर भी नहीं डूबता, वह अपनी नवीन कल्पनाओं के रस एवं प्रेरणाओं के स्पन्दन से काव्य-कमल को सदैव प्रफुल्लित रखता है। वस्तुतः साहित्यकार अपनी अन्त:प्रेरणा के वशीभूत होकर जिस सृष्टि का निर्माण करता है, वह मनोहारिणी, कल्याणकारिणी एवं प्रेरणादायिनी होती है। साहित्य की सृष्टि शाश्वत है। वह जनजीवन को निरन्तर आनन्द तथा प्रेरणा देती है। यही उसका धर्म होता है। इसी परिप्रेक्ष्य में पं० श्यामनारायण पाण्डेय ने छायावादी गीतों के युग में देश, जाति तथा धर्म की रक्षा के लिए अतीतकालीन वीर-वीरांगनाओं और आदर्श चरित्रोंके शौर्य की कहानियाँ गाकर देशभक्तों को अतुलित साहस एवं प्रेरणा प्रदान की।

उनके चालीस-बयालीस वर्षों के काव्य-सृजन के पीछे उनके कवि की जीवनानुभूति प्रधान है। यही कारण है कि उनके प्रदीर्घ जीवन की नानाविध सामान्य-असामान्य घटनाओं, परिस्थितियों और जटिल समस्याओं ने उनकी काव्य-चेतना को व्यापक आधार और उर्ध्वमुखी गति प्रदान कर उनकी कृतियों में एक स्वस्थ, सरस और सुन्दर काव्य-परम्परा को जन्म दिया है।

पाण्डेयजी के काव्यका अध्ययन और मूल्यांकन करनेसे पहले उनके जीवनवृत्त का संक्षिप्त परिचय इसलिए उपादेय है कि उनके काव्य और उनकी जीवनानुभूति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अतः प्रस्तुत अध्याय में पाण्डेयजी के संक्षिप्त जीवनवृत्त का निरूपण किया गया है :-

श्यामनारामण पाण्डेय का जीवन-वृत्तः—

कवि का जीवनवृत्त उसके व्यक्तित्व-निर्माण का वाह्य तथा उसका जीवन-दर्शन आभ्यन्तर उपादान है। काव्य में कवि का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है।[1] उसकी अनुभूति कल्पना, धारणा, विचारणा आदि को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि कविकी जीवनी और उसके जीवन दर्शन का कवि के काव्याध्ययन में विशिष्ट महत्व है।'[2] जीवनी का एकान्तिक विवरण कवि-विषयक जिज्ञासा और उसके वैचारिक धरातल एवं जीवन-दृष्टिका परिचय नहीं करा सकता। जीवनी, व्यक्तित्व और जीवन दर्शन एक दूसरे से सम्बद्ध हैं, और इन तीनों का काव्य-साधनामें महत्वपूर्ण योग है।[3] इसलिए कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने के लिए उसके क्रियात्मक जीवन, संघर्ष सुख, दुख, संकल्प, विकल्प तथा स्वभाव आदि का अध्ययन आवश्यक है।

कवि संवेदनशील सामाजिक जीव है, अत: वहिर्जगतकी घटनाएं उसे सामान्यतया प्रभावित करती रहती हैं। इसी तरह से कवि के जीवन के क्रमिक उतार-चढ़ाव, विशिष्ट सम्बन्धों और क्रियाकलापों के द्वारा भी हम उसके सृजन की पूर्व-पीठिका तथा मनोदशा से भली-भाँति परिचित हो सकते हैं। जीवन के द्वारा हमें कवि के वयः विकास तथा साहित्यिक निर्माण की सम्यक् रूपरेखा और आधारभूमि का ज्ञान होता है।

———

१- डा० दशरथ ओझा : समीक्षा शास्त्र, सर आर्थर क्लीवर कोच का मत पृ० ३१।

२- 'कवि की आलोचना में उसकी रचना की आलोचना तो आवश्यक है ही,उसकी बुद्धि-प्रक्रिया, उसके उपकरण एवं उसके पूरे व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालना अनिवार्य समझा जाता है।' –डा० दशरथ ओझा, 'समीक्षा शास्त्र'-हर्वर्ट रीड का मत, पृ० ३१।

३- डा० कमलाकांत पाठक : 'मैथिलीशरण गुप्त :व्यक्ति और काव्य',पृ०१।

वंश-वृत्त, जन्म, जन्म-तिथि, जन्म स्थान और बाल्यकाल

पं. श्यामनारायण पाण्डेयजी का जन्म श्रावणकृष्णा षष्ठी, सम्वत् १९६४ (सन् १९०७ ई०), मंगलवार को उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के डुमराँव[द्रुमग्राम] नामक गाँवमें हुआ था। उनकी माताका नाम वातासी देवी तथा पिताजी का नाम श्री रामाज्ञा पाण्डेय था। पं. रामाज्ञा जी पाण्डेय एक कुशल कृषक थे। उनके परदादा श्रीमान् पं. लीलाधर पाण्डेय संस्कृत के विद्वान एवं प्रख्यात मृदंगवादक थे। पं. लीलाधर पाण्डेय के दो पुत्र हुए-गोपीनाथ और रामवरण। गोपीनाथ पाण्डेय के पुत्र हुए-रामाज्ञा पाण्डेय और रामवरण पाण्डेय के पुत्र हुए-विष्णुदत्त पाण्डेय। दो बड़े भाई सत्यनारायण, जगन्नारायण और सूर्या, सूर्यावती एवं चंद्रावती इन तीनों बहनों के बाद श्यामनारायण जी ने छोटी धन-धरती वाले पं· रामाज्ञा पाण्डेय के घर में अन्तिम पुत्र के रूप में जन्म लिया। पं. श्यामनारायण जी के बड़े भाई सत्यनारायण जी अधिकतर आसाम में रहते थे। उनसे छोटे भाई थे जगन्नारायणजी। बड़े भाई के सौजन्य, पांडित्य, वाक्चातुर्य और व्युत्पन्नमतित्व ने जहाँ अनेक जनोंको सेवक बनाया, वहीं छोटे भाई जगन्नारायणजी के कुपथ की ओर बढ़ते चरण को सतपथ की ओर मोड़ दिया। वे उदार व्यक्तित्वके थे, घरका हर सदस्य उन्हें प्यारा था। उनके दो पुत्र हुए दूधनाथ पाण्डेय और जयनाथ पाण्डेय। दूधनाथ पाण्डेय एम० ए०,बी०एड्०हैं तथा कलकत्ते में एक इंग्लिश स्कूलके प्राचार्य हैं। जयनाथ पाण्डेय डाकघरके कर्मचारी हैं। चाचा विष्णुदत्त पाण्डेयजीके दो पुत्रहुए-पहले हृषिकेश पाण्डेय, जो गाजीपुर जिलेके एक इण्टर कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक हैं तथा दूसरे पं. मार्कण्डेय पाण्डेय, जो मऊनाथभंजनके म्युनि-सिपलबोर्डमें प्रायमरी स्कूलके प्रधानाध्यापक हैं। बड़े भाई पं० सत्यनारा-यणजीके अत्यधिक प्यार एवं चाचा विष्णुदत्तपाण्डेयजीकी प्रेरणासे श्याम-नारायण पाण्डेय की काव्य-प्रतिभा चमकी और वे हिन्दी काव्यमें महाकवि के पद पर अधिष्ठित हुए।

पूर्वोक्त विवेचन के आधार पर. पं० श्यामनारायण पाडेण्य का वंश वृक्ष इस प्रकार है:—
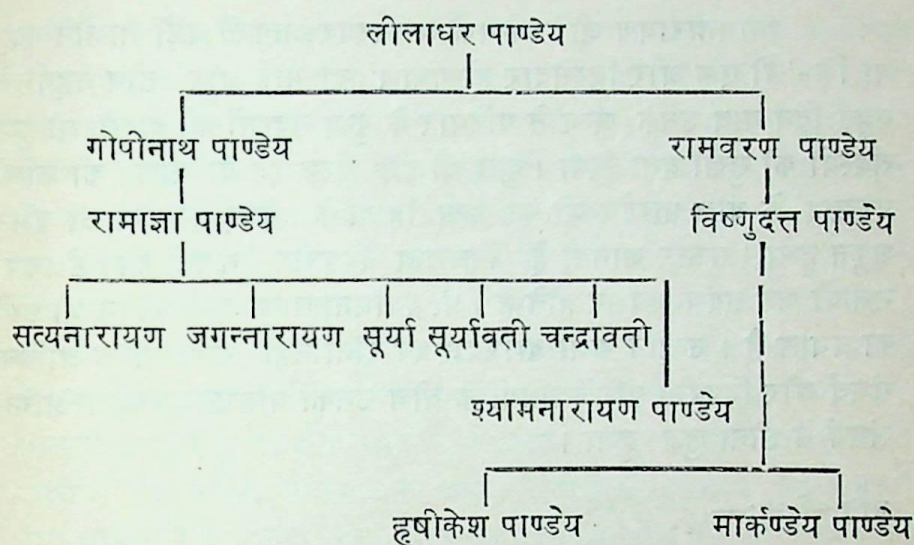
वंश-परम्परा से पाण्डेय जी के घर में संगीत, शालिग्राम एवं शिवपूजन तथा विद्याध्ययन की परम्परा चली आयी है। पूर्वजोंके आशीर्वाद से आज भी पाण्डेय वंशका जीवन सांस्कृतिक है। हिन्दू-धर्म-शास्त्रानुसार घर के सभी सदस्यों में सभी देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति है। पं. श्यामनारायण पाण्डेय जी के जीवन और साहित्य पर इस सांस्कृतिक परम्पराका गहरा प्रभाव है। कहना तो यह चाहिए कि श्यामनारायण पाण्डेय जी की आत्मा आर्य-संस्कृतिसे ओतप्रोत है। सदाचार, सत्कर्म नैतिकता, देश-भक्ति, त्याग, बलिदान आदि की जिन उदात्त भावनाओं से पाण्डेय जी के काव्यका ओजस्वी रूप प्रस्तुत हुआ है, वह आर्य संस्कृति का वाक्-स्वरूप है। प्रेम और त्याग की परम्परा तो आर्य-संस्कृति की निजी परम्परा है। इस परम्परा के रक्षण के लिए वाल्मीकि और व्यास आदि महाकवियों की सप्राणता आज खड़ी-बोली में पाण्डेय जी के रूप में अवतरित हो उठी है।

अन्य सामान्य व्यक्तियों की भांति साहित्यकार भी सामाजिक जीव होता है। समाज की रीति,नीतियों एवं परिस्थितियों का प्रभाव उस पर पड़े बिना नहीं रहता। अपने दोहरे व्यक्तित्व के आभ्यंतर पक्ष से, जहां वह अपनी कल्पनाओं और विचारों के लिए मौलिक प्रेरणा ग्रहण करता है, वहां वह वाह्य-पक्ष से नाना प्रकार के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष प्रभावों को भी ग्रहण करता चलता है। जिस प्रकार पाण्डेय जी के काव्य-जीवन पर आर्य-संस्कृति का प्रभाव है, उसी प्रकार उन पर अपनी माता की धार्मिक भावना का भी यथेष्ठ प्रभाव है।

श्यामनारायण जीके जन्मके अवसरपर आपकी बड़ी भाभीने कहा था कि–'लो एक और हिस्सेदार हो गया।' दो भाई और तीन बहनों के बहुत दिन बाद उनके जन्म ने परिवार के कुछ सदस्यों को दुःखी, तो कुछ सदस्यों को सुखी बना दिया। कुछ भी हो, दैन्य एवं दारिद्रय की काली परछाईं के बीच पाण्डेय जी का जन्म हिन्दी के लिए सौभाग्य का शुभ-शकुन हुआ। संसार जानता है कि यहां विपरीत संघर्षो को ठेलकर, मनीषी जन सदैव अग्रसर होते हैं। पं. श्यामनारायण का जीवन भी इसी का प्रमाण है। उन्होंने कभी दारिद्रय का रोना नहीं रोया बल्कि आर्थिक संघर्ष और विपरीत परिस्थितियों के बीच उनकी प्रतिभा चमकी। अग्नि-संसर्ग से सोना शुद्ध हुआ।

माता–पिताः—

पं. श्यामनारायण जी पाण्डेय के पिता पं. रामाज्ञा पाण्डेय कृषक होते हुए भी प्रख्यात ढोलवादक थे, मृदंग–वादन में वे अपने प्रपितामह के समान थे, परन्तु वे अधिक पढ़ नहीं सके। जब कभी समय मिलता तब पिताजी उनको चारपाई की पाटी पर ढोलक सिखाते थे, यदि इसमें गड़-बड़ हुई तो वे कड़ी सजा देते थे। जब पं. श्यामनारायण पाण्डेय आठ वर्ष के थे, तब उनके पिता पं. रामाज्ञा जी पाण्डेय का निधन हुआ। दुनियाँ छोड़ते समय उन्हें उनकी चिन्ता सताती रही। अन्त में वे अपने एक साथी हलवाहे गंगाराम के भरोसे छोड़कर चले गये। भक्त गंगाराम एक अनु-भवी किसान था। हल जोतते हुए भी वह राम के चरणों में लीन रहता था।

पं. रामाज्ञा जी के निधन के बाद उनका सारा भार विधवा माँ पर पड़ा। माँ की स्थिति दयनीय थी, जैसे चिड़िया अपने बच्चों के लिए इधर-उधर से दाना ले आती है, उसी तरह उनकी माँ भी पास-पड़ोस से, यहाँ वहाँ से एक बार के लिए भोजन जुटा पाती थीं। खेलते-खेलते जब कभी वे उसकी गोद में आकर बैठ जाते तब वह प्यार से उनके सिर पर हाथ फेरने लगती थीं और उसका हृदय उसकी आंखों से गलगलकर बहने लगता था। वह कारुणिक दृश्य आज भी पाण्डेय जी की आंखों के सामने नाच उठता है और पाण्डेय जी भाव–विभोर हो जाते हैं। पाण्डेय जी का कहना है कि मातृ–हृदय की सजल करुणा का वह दृश्य वे जीवन भर भूल नहीं सकते। उनकी माँ के गले में तुलसी की माला पड़ी रहती थी। स्नान के बाद उसी माला के सहारे वे जप करती थीं, पढ़ी-लिखी तो थीं नहीं।

अपनी अशिक्षित माता की धार्मिक निष्ठा, पवित्रता और भक्ति से बालक श्यामनारायण मुग्ध हो जाता था। पाण्डेय जी की माँ महीने की दोनों एकादशी तथा चारो रविवारों को व्रत करती थीं। हर साल गंगा-स्नान के लिए किसी तीर्थ में जाती थीं। प्रयागके कुम्भोत्सवके बाद जब साधुओं की ज़मात उनके गांव बारह वर्ष का अंतर देकर आती, तब वह उस अवसर पर उस जमात के सामने थोड़ी दूरी पर हाथ जोड़े बैठी रहती थीं, भाव-विभोर, न खाने-पीने की चिन्ता, न घर-गृहस्थी की फिक्र। माँ की उस भक्ति–भावना का प्रभाव पाण्डेय जी के मन पर बड़ी गहराई से पड़ा। साधु-सन्तों के दर्शन के लिए पाण्डेयजी का मन भी व्यग्र और लालायित रहने लगा, अतः साधुओं के आगमन पर दूसरी बार, उन्होंने उनसे प्रेरणा लेकर, राम-मंत्र का जप करना शुरू किया। सहस्र-सहस्र राम नाम जप में उनका मन रमने लगा। इस तरह से भक्ति-भाव का संस्कार उनके मन में दृढ़ हुआ।

प्रारम्भिक संस्कारः—

श्यामनारायण जी का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहाँ धार्मिक वातावरण विद्यमान था। स्कूल से आने के बाद पाण्डेय जी चाचा विष्णुदत्त द्वारा की जाने वाली पूजा में भाग लेते थे। पिताजी के स्वर्गवास के बाद उनकी माँ भी पूजा-पाठमें मग्न रहती थीं और रामनाम जपा करती थीं। बालक श्यामनारायण का मन बार–बार यही सोचा करता था कि माँ हर साल इतना कष्ट उठाकर गंगास्नान, देवदर्शन क्यों किया करती हैं? माँ को देखकर ही धर्म तथा आध्यात्मिकता के प्रति पाण्डेय जी की श्रद्धा, भक्ति तथा विश्वास-भावनाको बचपन से ही बढ़ावा मिला। यही कारण है उनकी रचनाओं में आध्यात्मिकता के सांकेत प्राप्त होते हैं।

कवि-जीवन में सामान्य से सामान्य घटना एवं परिस्थिति भी कवि के व्यक्तित्वरूपी भवनके निर्माणमें ईंट का काम करती है–यह निर्विवाद सत्य है। पांडेय जी के जीवन में अनेक सामान्य-असामान्य घट-नाएं घटी हैं और सबने उनके व्यक्तित्व का निर्माग किया है। एक बार की घटना है कि एक दिन नियमानुसार पांडेयजी की माँ बलिया ददरीमेले में गंगा--स्नानके लिए चलीं। पीछे-पीछे पांडेयजी भी चल पड़े। माँने उन्हें बहुत–बहुत मना किया,पर उनका हठ कम नहीं हुआ। अतः अन्तमें माँ ने उन्हेंभी अपने साथ ले लिया। अपने गाँवसे पचास मील यात्रा करनी पड़ी उनको-वह भी पैदल। उस समय उनको कष्ट का अनुभव हुआ। इस

प्रसंग ने उनको ध्येय के लिए जीवनभर परिश्रम करने की–सदैव आगे बढ़ने की शिक्षा दी। जीवन की राह पर पांडेयजी ने पीठ दिखाना नहीं सीखा। अतः इस प्रसंगके उल्लेख से हमारा तात्पर्य पाण्डेय जी के व्यक्तित्व की उस आरम्भिक झाँकी से है, जो आगे चलकर उन्हें एक ओर वीर-रस के श्रेष्ठ कवि के रूप में उपस्थित करती है, तो दूसरी ओर उनमें एक आध्यात्मिक कवि की भक्ति-भावना की अभिव्यंजना का आधार भी प्रस्तुत करती है।

शिक्षा–दीक्षाः—

अपनी बुआ के चिढ़ाने से वे स्कूल जाने की ज़िद करने लगे। स्कूल दूर था। वहाँ भेजने की समस्या माँ के सामने मुँहबाये खड़ी थी। पांडेयजी के घर से स्कूल एक मील दूर था। उस समय आज की तरह गांव-गांव में स्कूल नहीं थे परन्तु उस समय पढ़ायी बड़ी लगनसे होती थी। पांडेयजी के बड़े भाई ज्यादातर आसाम रहते थे। पिताजी के निधन के बाद चाचा का स्नेह अनायास ही उन पर था। उन्होंने श्यामनारायण का नाम बकवल स्कूल में लिखा दिया और मास्टरों से कहकर किताब–पट्टी का प्रबन्ध कर दिया। शुल्क अपने पास से देने लगे। इस प्रकार उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई।

स्कूल जाते हुए भी उनकी खेल-कूद की तरफ अधिक रुचि थी। स्कूल छूटते ही वे अपने सहपाठियों के साथ बन्दर पकड़ना, चिकई-चौवान खेलना, खण्डगुरमा-खण्ड-भाग, संगीत रूपक देकर उछलना-कूदना, लग-लगाये रहना आदि खेल खेलते थे। एक बार की घटना है कि बहुत दूर नदी के किनारे कुश्ती लड़ने के लिए उनके साथी उनको लिवा ले गये। वहाँ चरवाहे अखाड़ा छोड़कर भाग गये। गांव में इसकी बड़ी गंभीर चर्चा हुई। एक घंटे के बाद उलाहना भी घर आ गया। द्वार के कुएँ पर चाचा बड़े भैया (पं. सत्यनारायण) कुछ बाहर से आये हुए अतिथियों के साथ बातचीत कर रहे थे। लोगोंका उलाहना सुन चाचा और भैया बहुत कुपित हुए और वे एक तरफ भयभीत खड़े थे। पिटनेकी नौबत आ गयी थी, पर माँ ने उनको बचा लिया। आदित्य चौबे (जो उनके दूर के फूफा थे) ने कहा–'ब्राह्मण की शोभा तो पढ़ने-लिखने में है, कुश्ती तो अहीर लड़ते हैं।' उनकी इस बात का समर्थन चाचा और भैया ने भी किया। पांडेयजी को फूफा की बात लग गयी, अतः उस दिन से उनका मन पढ़ने-लिखने में लगने लगा लेकिन खेलने-कूदने का उत्साह फिर भी कम नहीं हुआ।

एक बार चौगान खेलते हुए वे अपने साथियों के साथ चौबौली

पहुंच गये। रात हो गयी। गाँव में उनके गायब होने की खबर बिजली की तरह फैल गयी। चौबौली में उनकी बड़ी बहन सूर्यावती की ससुराल थी अतः उसने अपने यहां के लोगों से डुमरांव खबर भेजी कि श्यामनारायण चौबौली में हैं। गांव वालों को खबर मिलते ही, वे खोजते हुए चौबौली पहुंचे और श्यामनारायण को लेकर आये। माँ का रोना तब बन्द हुआ जब वे माँ के पास पहुंच गये। इस तरह से खेलते-कूदते श्यामनारायण चौथी कक्षा में पहुंच गये।

स्कूल के मुँशी सीताराम बड़े ही विनम्र अध्यापक थे। वे सब बच्चोंपर समान स्नेह रखते थे। उनकी शिक्षाका प्रभाव ही श्यामनारायण की आगे की पढ़ायी में सहायक सिद्ध हुआ। इसलिए मुंशी सीताराम के स्नेह की चांदनी वे कभी भूल नहीं सकते।

परन्तु, इस बालक में खेल–कूद के साथ ही प्रतिभा का अपूर्वमेल था। नौ–दस वर्ष की अवस्था से वे तुकबन्दियां करने लगे और 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाले कथन की पूर्ति करने में सफल हुए। एक घटना है मिडिल स्कूल की। श्री अमृतराय मऊ मिडिल स्कूल के हेडमास्टर थे। बड़े ही सज्जन, गम्भीर, हिन्दी के अच्छे जानकार एवं भाषा पढ़ाने में वे विशेष निष्णात थे। एक दिन उन्होंने वर्ग में पाठ्य–पुस्तक से छन्दों के लक्षण तथा उनके उदाहरण का एक पाठ इतने कलात्मक ढंगसे पढ़ाया कि श्मामनारायण पाण्डेय छन्द-रचना की उत्कट इच्छा से व्याकुल हो उठे। पुस्तक से छन्दों के लक्षण तो उन्होंने कंठस्थ कर लिये, पर पुस्तक के उदाहरण कंठस्थ नहीं हुए। अतः स्कूल में जब उनसे दोहे का उदाहरण और लक्षण पूछा गया, तब लक्षण तो उन्होंने बतला दिये लेकिन पुस्तक से उदाहरण न देकर बड़े साहस से स्वरचित दोहे का उदाहरण उपस्थित किया। हेडमास्टर साहब चौंके। बोले यह क्या कह रहे हो? फिर कहो! उन्होंने वही दोहा फिर उपस्थित किया।वे बोले-'किस पुस्तक से याद किया है? तुम्हारी पुस्तक में तो यह नहीं है।' सभी छात्रों ने एक साथ हल्ला किया-'महाशय! उन्होंने सभी छन्दों के उदाहरण स्वयं तैयार किये हैं।' हेडमास्टर ने स्नेह से श्यामनारायण को समीप बुलाकर पूछा-'क्या यह सच है? तुमने स्वयं उदाहरण बनाए हैं? उन्होंने धीरे से डरते हुए कहा-'हां'! हेडमास्टर साहब की दोनों आंखें भर आयीं और कहा-'शाबास!' उन्होंने स्कूल के हर अध्यापक से उनकी चर्चा की और अशीर्वाद दिया कि-'तुम एक दिन बड़े भारी कवि होगे।' उनका दोहा अध्यापकों एवं लड़कों की जबान पर खेलने लगा। उनके चाचा के लिए यह गौरव की बात थी।

इस पहली तुकबन्दी से उनको बड़ा बल मिला। पांडेयजी ने सन् १९२४ ई० में हिन्दी मिडिल एवं सन् १९२५ ई० में उर्दू मिडिल परीक्षा पास की।

संस्कृत-अध्ययन

हिन्दी और उर्दू मिडिल परीक्षाएँ पास करने पर अपने मुकदमे-बाज बहनोई जुटाऊ चौबे की सहायता से पांडेय जी किसी वकील के यहाँ मुहर्रिर बनने के लिए प्रयत्नशील थे। यह पेट का प्रश्न और माँ के पोषण की समस्या थी,पर मुहर्रिर बनने का यह प्रयत्न तब विफल हो गया जब उनका परिचय कवि ठाकुर शहजाद सिंह से हुआ। एक दिन उन्होंने श्यामनारायण की तुकबन्दियाँ पढ़ीं, बहुत खुश हुए और उन्होंने इन्हें खूब प्रोत्साहित किया। महात्माओं के सम्पर्क से सन्ध्या-वन्दन, पूजा-पाठ में जितना मन लगता था, उससे बहुत अधिक काव्य-रचना में मन रमने लगा। ठाकुर शहजाद सिंह की मान्यता थी--- "बिना संस्कृत पढ़े हिन्दी की प्रौढ़-कविता हो ही नहीं सकती।" उन्होंने कहा कि-"तुम मुहर्रिर बनने का खयाल छोड़ो, वंशानुरूप संस्कृत पढ़ो और यशस्वी कवि बनो!" अब वे संस्कृत पढ़ने के लिए अकुलाने लगे। अंग्रेजी पढ़ने की उनकी रुचि नहीं थी। वे संस्कृत अध्ययन के लिए सहारा ढूँढ़ने लगे, अतः श्री यमुना पांडेय की प्रेरणा से माँ की स्वीकृति ले वे काशी चले गये। लाख प्रयत्न करने पर भी वे माधव संस्कृत विद्यालय काशी एवं काशी के उस पार रामनगर के राजा की पाठशाला में भरती नहीं हो सके। फिर चाचा जी ने ढ़ाढ़स बँधाया और उन्हें मऊ संस्कृत पाठशाला में भरती करवा दिया, वहाँ उनका अध्ययन शुरू हुआ। दूसरे वर्ष उनके बड़े भाई पं० सत्यनारायण पांडेय ने उनका नाम काशीस्थ गवर्नमेंट संस्कृत कालेज में पं० गंगाधर जी शास्त्री के यहाँ लिखा दिया। अतः उसी वर्ष सन् १९२७ ई० में उन्होंने प्रथमा परीक्षा पास की, फिर काशीस्थ लाला भगवानदीन विद्यालय में वे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग की मध्यमा की तैयारी करने लगे और हर रविवार को कवि-सम्राट अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी की सेवा से वे लाभ उठाने लगे।

काशी में उनकी संस्कृत शिक्षा सुचारु रूप से चली। वहीं से उन्होंने साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की।

डुमराँव निवासी योगी श्री जानकीदास से उन्होंने यौगिक

क्रियाओं की शिक्षा पायी। इस जानकीदास जी से जो कुछ भी पांडेयजी ने पाया, उससे उनकी आध्यात्मिकता को बल मिला। योग की ओर उनकी जो असीम श्रद्धा है, उसका प्रभाव उनकी रचनाओं में भी देखा जा सकता है।

छात्र–जीवन और लेखन कार्यः—जब कभी अवकाश मिलता तब वे तुकबन्दी करते ओर लिखते रहते। यही कारण है कि किसी-किसी साल परीक्षोत्तीर्ण होने पर भी कम अंक पाने से राजकीय छात्रवृत्ति नहीं मिलती और फिर खर्च चलाना कठिन हो जाता था। अर्थाभाव के कारण वे किसी के यहाँ कुछ लेने नहीं गये। चार-चार, पाँच-पाँच उपवास के बाद भी पांडेय जी ने किसी के आगे हाथ नहीं पसारा। गुरुदेव पं० गंगा-धरजी शास्त्री भारद्वाज खाने को विवश करते लेकिन उनका स्वाभिमान नहीं करता। उनका हाल सुनकर एक एडवोकेट आर्थिक सहायता देने के लिए तैयार हुए पर वे उनके यहाँ नहीं गये। चढ़ती जवानी में तुलसी-पत्र खाकर दिन का दिन गुजारना, अध्ययन का कठोर श्रम करना, लाला भगवानदीन विद्यालय तथा गुरुदेव हरिऔधजी के यहाँ भूखे-पेट आने-जाने का परिश्रम करना सचमुच बड़ा कठिन था, अतः उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। इतनी कठिनाइयों के बावजूद पांडेयजी यशस्वी काव्य-लेखन की ओर बढ़ते रहे।

एक दिन पांडेयजी हरिऔधजी के पास एक छोटी-सी तुकबन्दी लेकर गये। थोड़ी देर पढ़कर उन्होंने कहा—"इन पंक्तियों में कुछ नहीं है। कोई दूसरा काम करो और मेहनत से पढ़ो, जाओ।" बड़ी भारी पीड़ा लेकर पांडेयजी होस्टल आये। लेकिन उनके यहाँ आना–जाना नहीं छोड़ा। ध्येय निष्ठा के कारण उन्होंने अपनी एक दस छन्दों की कविता सुधारने में पूरा एक साल लगा दिया पर कविता लिखना नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे उनकी भाषा भी माँज गयी और उसके बाद वे धारावाहिक लिखने लगे।

साहित्य-सम्मेलनों में अभिरुचिः—

पांडेयजी का ध्यान अध्ययन की अपेक्षा साहित्यिक गोष्ठियों एवं साहित्य सम्मेलनों की ओर अधिक था। वे जिस होस्टल में रहते थे वहाँ साहित्यिक गोष्ठी होती थी। अटलजी, चोंचजी, कविवर रसराज नागर, अशोकजी, वीरेन्द्र सिंहजी,श्रीमालीजी, कवि पुस्करजी, मित्रजी, तथा देव-पाल गुप्त की गोष्ठी में वे प्रायः सम्मलित होते थे। प्रोफेसर मनोरंजनजी के सहयोग से यह गोष्ठी काशी भर में छा गयी। गोष्ठी पर कवि सम्राट

हरिऔध, जयशंकर प्रसाद एवं रामचन्द्र शुक्ल आदि जैसे साहित्यिक विद्वानों की कृपा थी। गोष्ठी के नेता अटलजी प्रेस-मालिक थे। उनके यहाँ सारे कवि सायंकाल जमते थे और गोष्ठी में कविता पाठ के अलावा अन्य साहित्यकारों को आलोचना भी होती थी। पं. श्यामनारायण पाण्डेय भी कविता पाठ करते थे। इस वातावरणसे श्यामनारायणजी का काव्य-जीवन पल्लवित और पुष्पित हुआ। धीरे-धीरे अब पांडेयजी हॉस्टलमें कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गये। परन्तु यह प्रसिद्धि 'सीमित' थी।

दुनिया का हर कवि, हर साहित्यकार, हर संशोधक प्रसिद्धि चाहता है। कवि की प्रसिद्धिके लिए साहित्य-सम्मेलन एक अच्छा माध्यम है। इसलिए अनायास ही पांडेयजी साहित्य-सम्मेलनों की ओर आकर्षित हुए। उनकी प्रारम्भिक-प्रसिद्धि कवि सम्मेलनों के माध्यम से हुई। सन् १९३६ या १९३७ ई० में लखनऊ की प्रदर्शनो में श्री दुलारेलाल भार्गव के संयोजकत्व में एक कवि-सम्मेलन तीन दिनों तक अविराम चलता रहा। भारत के अधिकांश नये-पुराने हिन्दी कवियोंने उसमें भाग लिया। कवियों में शील्ड जीतने की होड़ लगी थी। वे कवि-सम्राट हरिऔधजी के साथ उसमें सम्मिलित हो गये। किसी तरह से उनको 'हल्दीघाटी' के छंदों को पढ़ने का अवसर मिला। उन्होंने 'हल्दीघाटी' के छन्द बड़े ओजस्वी स्वर में पढ़े। आखिर कवि-सम्मेलन के तीसरे दिन 'हल्दीघाटी' के कवि को शील्ड प्राप्त हुई। इस कवि-सम्मेलन के बाद प्रकाशित होने से पूर्व ही 'हल्दोघाटी' के छन्द लोगों के कंठहार बन गये।

कवि ठाकुर शहजाद सिंह अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा के आवश्यक कार्य से शाहजहाँपुर-बरेली की ओर घूम रहे थे। उन्होंने राँची (बिहार) में क्षत्रिय महासभा के महाधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए अपनी ओर से पाण्डेय जी को आमंत्रित किया। उस अधिवेशन में उन्होंने तीन मिनिट के बजाय पैंतालीस मिनट तक छंदों का पाठ किया। 'हल्दीघाटी' के छन्दोंने जनताको वैसे ही मुग्ध किया जैसे 'महुअरके मधुर नाद से थिरकते हुए साँपों का व्यूह।' सभा के अध्यक्ष झालावाड़ नरेश ने पाण्डेयजी को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया। इस अधिवेशन के बाद हिन्दी साहित्य संसारमें पांडेयजीकी चर्चा बड़े जोरों से चल निकली।

गोरखपुरका कवि-सम्मेलन आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी की अध्यक्षता में हुआ जिसमें पाण्डेयजी का कविता पाठ सुनकर तथा उनकी प्रतिभा देखकर सारा पांडाल हर्ष-विभोर हो गया और कविता पाठ के उपरांत सारा वायुमंडल श्रोताओंकी कर-तल ध्वनिसे गूंज उठा। छपरा,

काशी, गाजीपुर, आजमगढ़, इलाहाबाद, दिल्ली आदि साहित्य-सम्मेलनों में भी पांडेयजी ने भाग लिया और नयी पीढ़ी के कई कवियों और लेखकों को प्रोत्साहित किया।

हरिऔध, ठाकुर शहजाद सिंह, पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का प्रभाव :—

मनुष्य की आयु में १७-१८ से लेकर २७-२८ वर्ष तक के नौ-दस साल ऐसे होते हैं, जिनका प्रभाव जीवन के गठन पर बहुत अधिक पड़ता है। इन वर्षों के बीच पं. श्यामनारायणजी पर जिन चार सज्जनों का गहरा प्रभाव पड़ा उसके कारण उनके भावी–जीवन का रूप-निर्धारण हुआ। वे चार सज्जन थे-हरिऔध, ठाकुर शहजाद सिंह, पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल। इन चारों के प्रभावके फलस्वरूप श्याम-नारायणजी के हृदयमें बीज–रूप से विद्यमान कवि–प्रतिभा और देशभक्ति की भावना का पूर्ण विकास हुआ। सन् १९२४–२५ ई० से सन् १९२८–२९ ई० तक तीन-चार वर्षों के बीच पं. श्यामनारायण पांडियजी कवि–सम्राट हरिऔधजी के सम्पर्कमें आये। पांडेयजी की प्रतिभा देखकर हरिऔधजी पहले तो विशेष प्रभावित नहीं हुए किन्तु बाद में वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पाण्डेयजी की लेखनी में शक्ति देकर उन्हें काव्य–रचना के लिए प्रोत्साहित किया और काव्य–रीति से भी व्यापक परिचय कराया। इस प्रकार से हरिऔधजी का पारस–स्पर्श श्यामनारायणजी की उभरती हुई साहित्यिक प्रतिभा पर हुआ, जिससे वह नवीन रूप में विकसित हुई। हरिऔधजी के सम्पर्क से पाण्डेयजी की भाषा भी खूब मँजी। काव्य–गुरु के रूप में हरिऔधजी का स्मरण कर पांडेयजी आज भी गद्गद् हो उठते हैं।

एक कवि–सम्मेलन में वे पं. श्रीनारायणजी चतुर्वेदी के सम्पर्क में आये। उन्होंने 'हल्दीघाटी' के ओजस्वी छन्दों को प्रसंद किया और इंडियन प्रेस वालों से उनके प्रकाशन की बातचीत करा दी। शीघ्र ही 'हल्दीघाटी' बड़ी सजधज के साथ हिन्दी पाठकों के सम्मुख आयी। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने पांडेयजी को मुक्त हृदय से शुभाशीष दिये।

गोरखपुर के कवि-सम्मेलन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्याम-नारायणजी का कविता-पाठ सुना और पीठ ठोंककर शाबाशी ही नहीं दी, उनका सम्मान भी किया उक्त कवि-सम्मेलन के बाद आचार्य रामचंद्र शुक्ल पांडेयजी की रचनाओं के बहुत बड़े प्रशंसक बने। 'जौहर' की रचना शुक्लजी की आज्ञा से हुई। ठाकुर शहजाद सिंह, पं. रामबहोरी शुक्ल और नाथसंघ [दूधनाथ पाण्डेय, पद्मनाथ सिंह और सूर्यनाथ सिंह]

ने समय-समय पर उत्साह देकर पांडेय जी की बड़ी सहायता और सराहना की।

विवाह—

पं. श्यामनारायणजी का विवाह करने का विचार नहीं था। परन्तु उनके गुरु ने कहा—'ब्याह करने योग्य हो गये, ब्याह कीजिए।' गुरु आज्ञा का उल्लंघन सम्भव नहीं था। सन् १९४० ई० में तैंतीस वर्ष की आयु में श्यामनारायणजी का गायत्रीदेवी के साथ विवाह हुआ। विवाह के बाद उन्हें यह चिंता हुई कि पत्नी को साथ लेकर कहाँ रहें? उनकी अपनी जगह या अपना घर नहीं था। अत: उन्होंने काशी में जगह खरीदकर घर बनवाया और वहाँ संतोष से रहने लगे। एक वर्ष बाद उनको अनुभव हुआ कि 'विवाह में सुख है।' फिर उनकी मान्यता हुई कि 'हर एक व्यक्ति को विवाह करना चाहिए।' प्रथम विवाह के बाद उन्होंने सम्वत् २००१ (सन् १९४४ ई०) फाल्गुन शुक्ल में सरस्वती के साथ दूसरा विवाह किया। उन्होंने सन् १९५१, ज्येष्ठ शुक्ल में रमावती देवी के साथ तीसरा विवाह किया। अब घर में तृतीय पत्नी विद्यमान है। इच्छा न होते हुए भी समय और परिस्थितियों के कारण उनको दूसरा और तीसरा विवाह करना पड़ा।

दाम्पत्य जीवन की झाँकी—

काशी स्थित माधव संस्कृत विद्यालय में अध्यापन कार्य करना, गरीब छात्रों को घर पर पढ़ाना, साहित्यिक प्रवृत्तियों की रुचि की रक्षा करना, यदा-कदा होनेवाले कवि-सम्मेलनों में भाग लेना और इन सब के बावजूद आने-जाने वाले सज्जनों की व्यवस्था में व्यस्त रहना पाण्डेय-जीवन के सामान्य कार्य-व्यापार थे। इसके अतिरिक्त ये दिन-रात पुस्तकों से उलझे रहते थे। इन सब कार्यों से समय ही कहाँ मिलता जो अपने जीवन की खबर वे ले पाते? प्राय: यह दिखायी देता है कि घर में दखल न देनेवाले पुरुषों के प्रति स्त्रियाँ रोष तथा उपालंभ प्रकट करती रहती हैं, परन्तु पांडेयजीके प्रति पत्नी ने कभी रोष तथा उपालंभ प्रकट नहीं किया। पति के कल्याण को ही उन्होंने अपना कल्याण माना था और पत्नी के शील, स्नेह, सौजन्य पर पांडेयजी का दाम्पत्य जीवन सुखी रहा।

साहित्य-प्रकाशन का प्रथम आयाम—

हम बता चुके हैं कि आलोच्य कवि श्यामनारायणजी पांडेय अनेक कठिनाइयों से जूझकर काव्य-सृजन के पथ पर बढ़े हैं। दुनिया में

हर एक कवि को अपनी कविता छपाने की बड़ी आतुरता होती है। अतः उसे 'छपास की खुजली' प्रायः बहुत तंग करती है। काशी की 'राम' नामक पत्रिका का रामनवमी के अवसर पर 'राम' विशेषांक निकला। उसमें सर्व प्रथम पांडेयजी की 'राम' शीर्षक कविता छपी जिसे देखकर वे हर्ष-विभोर हो उठे और आनंदातिरेक से उनका तन-मन नाचने लगा। पहली कविता को प्रकाशित रूप में देखकर जो आनन्द मिला, उसकी अनुभूति आज भी पांडेयजी के मन को गुदगुदा जाती है। तब से उनकी पत्र-पत्रिकाओं में कविता छपाने की रुचि बढ़ी। उसके बाद वे बराबर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखने लगे और कविताएं छपती रहीं। पं० सोहनलालजी द्विवेदी के साथ उन्होंने 'खिलौना' पत्रिका में भी कई रच-नाएँ प्रकाशित कीं।

रामलीला के अवसर पर लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध में पांडेय जी पहले से ही बड़ा रस लेते थे। दोनों योद्धाओं की युद्ध-कला से अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने एक खण्डकाव्य 'त्रेता के दो वीर' (जो आगे चल-कर १९२८ ई० में तुमुल नाम से प्रकाशित हुआ) लिखा। इस खण्ड-काव्य का संशोधन हरिऔधजी द्वारा हुआ। हरिऔधजी के मत से जो पंक्ति ठीक नहीं बैठती थी उसे वे चिह्नित कर देते थे, दुरुस्ती पांडेयजी को ही करनी पड़ती थी। इस परिष्कार-संशोधन में उन्हें हिन्दी का बहुमुखी ज्ञान हुआ और हर तरह की भाषा लिखने में सक्षमता प्राप्त हुई। आदर-णीय बड़े भाई पं० सत्यनारायणजी पांडेय की कृपा से उनकी पुस्तक छपी, कवि पुस्करजी ने भूमिका लिखी। म०म० पं० देवीप्रसाद शुक्ल, कवि चक्रवर्ती, कवि-सम्राट हरिऔधजी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं कवि-सम्राट पं० रामचरित उपाध्याय आदि की इस पर सम्मतियाँ प्रकाशित हुईं। उस समय वे मध्यमा के द्वितीय खण्ड के छात्र थे किन्तु 'तुमुल' के प्रकाशन के बाद उसका प्रचार खूब हुआ। इस साहित्य-प्रकाशन से उनका मनोबल अधिक परिपुष्ट हुआ।

कवि-पत्नियों की मृत्युः—

पं० श्यामनारायणजी के जोवन में इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना घटी, जिसने उन्हें मर्माहत किया। यह घटना थी उनकी प्रथम पत्नी श्रीमती गायत्रीदेवी की मृत्यु। जिस समय पांडेयजी की अवस्था सैंतीस वर्ष की थी, सम्वत् २००१ के भाद्रपद महीने की शुक्ल एकादशी, बुधवार को प्रातःकाल देवीजी का स्वर्गवास हुआ। मृत्युपर्यन्त वे अपने पति की

महत्वाकांक्षाओं को प्रोत्साहित करती रहीं। अन्ततोगत्वा उन्होंने अपने को पति-हित कामना पर समर्पित कर दिया। कवि के हृदय पर जीवन संगिनी के इस वियोग का गहरा धक्का लगा।

अब पांडेयजी को अपनी जीवन-संगीनी का मूल्य मालूम हुआ। बड़े दुःखी हृदय से उन्होंने—अपनी स्वर्गीया पत्नी की आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की। आज श्रीमती गायत्रीदेवी नहीं हैं, पर श्यामनारायणजी के काव्य में उन्हीं के व्यक्तित्व की झाँकी मुखरित है। उनके समर्पित जीवन ने कवि की आँखें खोल दीं और कवि ने पुर्नविवाह न करने का का निश्चय किया, पर उनको एक पुत्री थी, प्रश्न था—'उसे कहाँ रखें ? इसलिए उन्होंने विवश होकर सम्वत् २००१ के फालगुन शुक्ल में प्रथम पत्नी की बहन श्रीमती सरस्वतीदेवी के साथ द्वितीय विवाह किया, पर दुर्दैव ने उनका पीछा किया। द्वितीय विवाह के कुछ दिन बाद ही वह पुत्री दिवंगत हो गयी। द्वितीय पत्नी भी अपने भूदेव नामक पुत्र को उनके भरोसे छोड़ सम्वत् २००५ वि० के सावन मास में कृष्ण-पक्ष की षष्ठी को परलोक को सिधार गयीं। इस घटना से कविवर अत्यधिक आहत हुए। उन्होंने 'जौहर' में प्रकाशित 'शुभे' शीर्षक भूमिका में लिखा है— 'यह लिखते हृदय काँप रहा है कि 'जौहर' की चिता के साथ ही तुम्हारी चिता धधक उठी। 'जौहर' निर्माण के समय हम दोनों में से किसी ने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इसका अन्त तुम्हारा अन्त है। लेखनी के पीछे कोई काली छाया चल रही है, छन्दों की चाल में कोई चाल है। 'जौहर' के उद्भव में तुम्हारा मिलन, निर्माण काल तक तुम्हारा सहयोग और अन्तिम छन्द लिखते-लिखते तुम्हारा महानिर्वाण, एक साथ ही मेरे हृदय में अग्निबाण की तरह चुभ गये हैं। .... दुख तो इसलिए है कि अन्धकार के एकान्त में मुझे छला गया। पीयूष-प्रवाहिनी के तट से मेरे तृषाकुल मन को किसी ने खींचकर मरु में ढकेल दिया। सरले ! 'जौहर' के छन्दों में तुम्हारी अनुभूतियाँ, स्वीकृतियाँ और स्त्री-सुलभ कोमल भावनाएँ अंकित हैं .... और पिछले जीवन के सुख आँखों से बहने लगते हैं।''[1] इन पंक्तियों में कवि के मर्माहत हृदय की व्यथा सजीव साकार हो गयी है। दोनों कवि-पत्नियों में माता का विशाल हृदय था। वे पराये बच्चों से भी प्यार करतीं थीं। दोनों के इस गुण को कवि ने अपने जीवन में संजोया। यहीं नहीं, दोनों पत्नियों के उत्सर्ग ने कवि के जीवन पर अपनी अमिट छाप लगा दी।

१- पं. श्यामनारायण पाण्डेयः 'जौहर'–'शुभे' शीर्षक भूमिका।

जीवन के कुछ महत्वपूर्ण प्रसंग: —

व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसे प्रसंग होते हैं जो कभी भुलाये नहीं जा समते। छात्रावस्था की एक घटना है। बात यों हुई कि पांडेयजी की पढ़ायी के समय पास करायी प्रचलित थी, अध्यापकोंके लिए कलंक। दो-चार रुपयों के लिए तीव्र-बुद्धि-छात्र पास होने पर भी रोक लिये जाते थे और मन्द से मन्द छात्र पासकरायी उपस्थित करने पर ऊपर की कक्षा में चढ़ जाते थे। वे द्वितीय कक्षा में उत्तीर्ण होकर तृतीय कक्षा में चले गये, पर उनकी असहाय विधवा माँ पासकरायी नहीं जुटा सकीं। फलतः पं० गंगा मिश्र ने उन्हें तीसरी कक्षा से लात मारते हुए घसीटते हुए द्वितीय कक्षा में बैठा दिया।

ठीक इसी प्रकार एक अन्य प्रसंग है—एक बार काशी नरेश की सेवा में छात्र-वृत्ति तथा पाठशाला में भरती होने के लिए एक प्रार्थना-पत्र लेकर पांडेयजी उपस्थित हुए। उस समय पांडेयजी का विश्वास था कि काशी-नरेश उदार होने के कारण उनका काम करेंगे, किन्तु कई ड्योढ़ी पार करने पर एक दुष्टात्मा दीवान ने इनका प्रार्थना-पत्र ले लिया और काशी-नरेश से मिले बिना ही उन्हें बेदर्दी के साथ निकलवा दिया। आखिर लाचार हो वे काशी से घर आ गये।

एक और ऐसी ही घटना है जिसे पांडेयजी कभी नहीं भूल पाये। उनके काव्य-जीवन के प्रारम्भ-काल की बात है—चाचा के साथ पांडेयजी वनदेवी भवानी के मंदिर में दुर्गा सप्तशती का पाठ करने हर चैत्र में नवरात्र में जाया करते थे। वहाँ दूर-दूर के विद्वान पाठ बाँचने आते थे। प्रायः मध्याह्न में धूप के कारण वे घर नहीं जाते थे, वहीं रुक जाते थे। 'रामचरित मानस' की शंकाओं का समाधान तर्क-वितर्क के साथ हुआ करता था। एक दिन श्यामनारायणजी ने स्वरचित एक दोहा उपस्थित किया। सभी मौन हो गये, एकाएक पंडितमन्य केशव द्विवेदी ने कहा कि "यह दोहा तो रामायण में नहीं है, दोहा गलत है।" पांडेयजी ने तपाक से पूछ ही तो दिया—"दोहे के क्या लक्षण हैं ?" बेचारे निरुत्तर हो गये। उनके चेहरे पर पराजय की मनहूस छाया उमड़ आयी। वे दोहे-चौपाई के लक्षण नहीं जानते थे। कोई सर्वविद् नहीं होता। पांडेयजी ने अपनी रचना के मोह में एक पंडित का अपमान कर डाला, जिसका उन्हें दुख है।

पढ़ायी-काल में एक अविस्मरणीय घटना घटी, जो श्यामनारायण जी के स्वाभिमान का मील का पत्थर कही जा सकती है। प्रसंग यों है

कि संस्कृत की पढ़ायी के समय उन्हें आर्थिक कठिनाइयों से जूझना पड़ता था, परन्तु एक कवि के रूप में उनकी कीर्ति काशी में फैल गयी थी। उनकी आर्थिक परिस्थिति देखकर एक दिन माधव-संस्कृत-विद्यालय (सारंग तालाब, काशी) के प्रधानाचार्य पं० आशाकिरण मिश्र ने कहा कि "आप तो कविता लिखने लगे हैं, माधवजी पर कुछ लिख दें तो मैं आपको कोठी से आर्थिक सहायता दिलवा दूँ।' पांडेयजी ने तीस-पैंतीस छंदों में माधवजी का संक्षिप्त जीवन-परिचय लिखा। इस परिचय को पढ़कर मिश्रजी बहुत प्रसन्न हुए और वे इन्हें सेठ माधवजी के पुत्र ब्रजमोहनदास जी केजरीवाल (बच्चाजी) के यहाँ ले गये और उनके बारे में बातचीत की। दो-चार दिनों के बाद बच्चाजी ने उन्हें कोठीपर बुलवाया। उनकी माधव नाम की पुस्तिका को, जिसमें माधव-जीवन-चरित के अलावा उनकी कुछ स्फुट आध्यात्मिक रचनाएँ भी सम्मिलित थीं, सामने रखकर बच्चाजी बोले 'क्या ये आपकी रचनाएँ हैं ?' उन्होंने कहा–'हाँ, महाशय।' इधर-उधर पन्ने उलटकर वे बोले–"इसमें कुछ साहित्यिक दोष हैं। हमारे मास्टरजी कह रहे थे, छन्द भी कुछ अच्छे नहीं हैं, बेकार हैं।' पुस्तक लिखकर जिस आशा की दीवाल उन्होंने खड़ी की थी, वह काँपने लगी। स्वाभिमान भीतर ही भीतर तड़पा और पांडेयजी ने झपटकर बच्चाजी से पुस्तक ले ली तथा उठकर खड़े हो गये,–कहा 'जो अच्छा बना सके, उससे लिखवा लें। मुझमें अपनी कृति का अपमान सहने की शक्ति नहीं है। मैं चला, क्षमा करें।' बच्चाजी ने बड़ी नम्रता से कहा–'मैंने तो अपने मास्टरजी के विचार कहे हैं, मुझे आप की कविता पसन्द है। आप को दुखाना मेरा लक्ष्य नहीं था। यदि आप को तकलीफ हुई हो तो क्षमा चाहता हूँ।' इसके बाद पांडेयजी को कोठी से संतोषजनक सहायता मिलने लगी।

साहित्यिक कार्य-कलाप और सम्मान—

एक श्रेष्ठ कवि के रूप में पांडेयजी ने हिन्दी साहित्य और देश को अनेक श्रेष्ठ रचनाएँ अर्पित की हैं। पर, दुख है कि कुछ तो स्वयं कवि की अपनी स्वाभिमानी प्रकृति और यशोलिप्सा से दूर भागने की प्रवृति के कारण और कुछ हिन्दी जगत् की उपेक्षा-वृत्ति के कारण, उनको वह ख्याति और सम्मान नहीं मिला, जो उनको मिलाना चाहिए था। फिर भी, हिन्दी जगत ने उनको पहचाना है और उनकी साहित्यिक सेवाओं का मूल्यांकन कर, उनके प्रति अपना जो सम्मान प्रदर्शित किया, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

'हल्दीघाटी' काव्य-रचना के फलस्वरूप श्यामनारायणजीको हिन्दी साहित्यजगत में पर्याप्त ख्याति मिली। इसी रचना पर उन्हें ओरछा नरेश श्रीमान् वीरसिंह जू देवने हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ २००० रु०का 'देव–पुरस्कार' देकर सम्मानित किया। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने 'जौहर' को पुरस्कृत करके उसे प्रकाशन काल की दृष्टि से तीन वर्षों के भीतर प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ काव्य ग्रन्थ घोषित किया। अखिल वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उद्घाटन के लिए तथा नेपाल के आमंत्रण पर भारत सरकार की ओर से वे नेपाल हो आये हैं। वर्मा और नेपाल दोनों देशों में उनका अच्छा सम्मान हुआ।

सन् १९६३ ई० में दिल्ली में लालकिले पर एक राष्ट्रीय कवि–सम्मेलन हुआ। उसमें पांडेयजीने 'हिमालय' शीर्षक कविता पढ़ी, जिसकी राष्ट्रीय स्तरपर खूब प्रशंसा हुई। उसी वर्ष वे उत्तर प्रान्तीय हिन्दीसाहित्य सम्मेलनके 'छपरा' अधिवेशन के अध्यक्ष रहे। हिन्दी साहित्यिक संस्थाओं ने उन्हें वीर रस के श्रेष्ठ कवि के रूप में घोषित कर कई बार सम्मानित किया है। गत वर्ष १८नवम्बर १९७४को हरिऔध कला भवन, आजमगढ़ में आयोजित नेहरू स्मृति कवि–सम्मेलन में 'हल्दीघाटी' के यशस्वी कवि पांडेयजी को चांदी की तलवार भेंट की गयी।

पांडेयजी की साहित्यिक सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें अनेक सम्मान पत्र दिये गये हैं। एक बार की घटना है–आजमगढ़ के डी० एम० ने स्वयं उनको सम्मान–पत्र समर्पित किया। यह उल्लेखनीय है कि उक्त सम्मान-पत्र लेने के लिए कवि स्वयं आजमगढ़ नहीं गये, अपितु आजमगढ़ के डी० एम० ने स्वयं डुमराँव पधारकर, उनको सम्मान–पत्र समर्पित किया। बहुत कम साहित्यकारों को इस प्रकार घर–बैठे सम्मान–पत्र प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है।

श्यामनारायणजीके साहित्यिक कार्य–कलापोंके साथ-साथ उनकी समाजसेवा भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने कई लेखकों और कवियोंका निर्माण किया है। वे सुविज्ञ शिक्षा-विशारद एवं शिक्षा–प्रेमी है। कई शिक्षण संस्थाओं के निर्माण और विकास में उनका हाथ है। स्थानीय(डुमराँव के) 'प्राइमरी स्कूल', 'मिडिल स्कूल' और हथिनी(आजमगढ़) स्थित 'श्याम-नारायण पाण्डेय जू० हा० स्कूल' के निर्माण में उन्होंने मूल्यवान योगदान दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई गरीब छात्रों की समय-समय पर सहायता की है।

आज श्यामनारायणजी के जीवन का पैंसठवां वर्ष चल रहा है। आजीवन संघर्षों एवं कठिनाइयों से जूझते-जूझते उनमें थकावट के लक्षण (जिसे लोग बुढ़ापा कहते हैं) दीख पड़ते हैं, किन्तु उनका अन्तर्वासी कलाकार आज भी थका नहीं है। साधना का तारुण्य उनमें पूर्णतः विद्यमान है। आँखों पर ऐनक चढ़ी है, तो भी अपने कमरे में सरस्वती का अथक आराधक अपनी लेखनी चलाता चला जारहा है। उसकी यह अप्रतिहत लेखनी शतजीवी हो-यही हमारी कामना है।

(ख) पांडेयजी की दिनचर्याः-

व्यक्तित्व-निर्धारण में वेश-भूषाकी तरह व्यक्ति-विशेषकी दिनचर्या आदिका भी अध्ययन सहायक हुआ करता है। पांडेयजी साधारणतः ६बजे उठते हैं। उठकर नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो वे, गाय बैलों को खाने के लिए घास-भूसा डालते हैं। प्रायः ८॥-९ बजे के लगभग नाश्ता करते हैं। नाश्ते में चिउरा और दही लेते हैं। इसके बाद यदि मन चाहे तो चाय लेते हैं।

अखबार तो रोज उनके पास आते नहीं। अगर अखबार आये भी तो वे उनमें से महत्वपूर्ण लेख या अग्रलेख ही पढ़ते हैं। प्रायः हर पत्र के संपादकीय अथवा अग्रलेख को वे पूरी तरह पढ़ लेते हैं। इसके बाद ताजी आयी हुई किसी मासिक पत्रिकाको लेकर वे बैठ जाते हैं। इनके अतिरिक्त उनके बिस्तर पर-उनके बिस्तरके आसपास, आलमारियों एवं टेबिल पर-जो पुस्तकों का ढेर लगा रहता है, उनमें से भी वे चुन-चुनकर पुस्तकें पढ़ते हैं। पुस्तकें पढ़ने में वे अधिक रस लेते हैं। बुढ़ापा के कारण उनकी आँखें कमजोर हो गयी हैं,तो भी वे चश्मा लगाकर पढ़ायी करते रहते हैं। उनके पढ़नेकी विशेषता यह है कि जो पढ़ा, उसके महत्वपूर्ण अंशोंको वे रेखांकित कर देते हैं। इसीलिए उनकी किताबों एवं मासिकों में अक्सर उनके द्वारा लगाये गये निशान मिलते हैं।

खान-पानः-

वे दुपहर को एक-डेढ़ बजे भोजन करते हैं। भोजन में बिना घी के फुलके, मसाले की दाल, थोड़ी मिर्च और अत्यल्प मात्रा में लवणयुक्त सब्जी रहती है, इसके साथ ही वे अचार और नीबू पसंद करते हैं। भोजन के बाद पान खाकर लेट जाते हैं- पर साधारणतः नींद नहीं लेते। प्रायः चार बजे तक डाक आ जाती है, उसे पढ़कर महत्वपूर्ण पत्रों के उत्तर लिखते हैं। छः बजेके लगभग वे इधर-उधर थोड़ा टहलते हैं। फिर ७-७॥ बजे गाय-बैलों के लिए घास का प्रबंध करतें हैं। प्रायः रात के ९ बजे वे

भोजन लेते हैं, रात के भोजन में केवल थोड़ी फुलकी, दाल, भात रहता है और रात्रि में १० बजे के लगभग वे सो जाते हैं।

लेखनः–

प्रायः वे एकान्त लेखन करते हैं। जब वे पद्य रचना करते हैं, तब उसे पुनः-पुनः दुहराते हैं। वे स्वयं लिखते हैं अथवा दूसरोंसे लिखवा लेते हैं। कभी–कभी तो अचानक कलम उठती है और कोरे कागज या नोटबुक पर किसी सुन्दर रचना की सृष्टि होने लगती है। उनके लिखने का कोई समय निश्चित नहीं है। सुबह, दुपहर,शाम या रात्रि के समय कभी भी प्रेरणा मिली कि कलम चलने लगती है। संक्षेप में, वे अन्तःप्रेरणा के कवि हैं।

उनके पास पहुँचने पर लगता है कि किसी साधारण स्थान से किसी पवित्र पूजा–भूमि पर हम आ पहुँचे हैं। उनकी मुस्कराहट और निर्मल हँसी आगत के सारे दुःख–दर्द को धो देती है। उनके बोलने-चालने में एक विशेषता मैंने देखी है-अक्सर वे लोगोंकी बातें सुनते समय लेटे रहते हैं लेकिन जब अपनी बात कहते हैं, तो झटसे उठ बैठते हैं। बातें करते हुए वे ऐसे लगते हैं जैसे किसी ध्यानावस्था में हो। यही वह समय है, जब उनका हर वाक्य सूत्र–सा और शब्द साहित्यकी जीवंत प्रतिमूर्ति-सा प्रकट हुआ करता है। इसी समय उनकी वाणी द्वारा ओज तथा काव्य और जीवन के अनेक वर्षों की यथार्थता प्रकट हुआ करती है।

प्रिय व्यक्ति, कवि और काव्यः–

श्यामनारायणजी अपने साहित्यिक गुरु कवि सम्राट हरिऔध को बहुत ही अधिक चाहते थे और उनका इन पर प्रभाव भी कम नहीं पड़ा है। उनके बाद यदि वे किन्हीं को मानते हैं, तो उनमें ठाकुर शहजादसिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पं.श्रीनारायण चतुर्वेदी और माधव संस्कृत कालेज के प्राण श्री ब्रजमोहनदास केजरीवाल हैं। संस्कृतके गुरुदेव श्रीमान् पण्डित गगाधरजी शास्त्री भारद्वाज तो उनके श्रद्धास्थान हैं। कवि सोहनलाल द्विवेदी, हरिवंशराय 'बच्चन' डा० जितेन्द्रनाथ पाठक, पं. भोलानाथ शास्त्री, कवि--पत्रकार शतानन्द, कवि बेखटक तथा जगदीशओझा 'सुन्दर' उनके अंतरंग प्रिय व्यक्तियों में हैं। उत्तर प्रदेश के भू०पू० मुख्यमंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी और उनके भाई करुणापति त्रिपाठी भी उनके सुहृद हैं।

तुलसी तथा उनका 'रामचरितमानस' उन्हें अधिक प्रिय है। कालिदास और उनकी काव्य-कृतियों के प्रति उनके मनमें बड़ी रुचि है। उन्हें विश्वास है कि इसी मार्ग पर चलकर महान कृति सामने आयेगी, जिस पर हिन्दी साहित्य गर्व कर सकेगा। इनके अतिरिक्त उन्हें मिलिन्दकृत 'महाराणा प्रताप' नाटक अधिक प्रिय है, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने 'हल्दीघाटी' जैसे महाकाव्य का सृजन किया है।

कवि का कक्ष:—

सड़क के किनारे श्यामनारायणजी का 'कविता' नामक पक्का भवन है। मकान की तीसरी मंज़िल के ऊपर के कमरे में कवि की बैठक है। इसके दोनों कोनों में पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से भरी दो आलमारियाँ रखी हैं और सामने दीवाल से सटाकर एक लोहे का पलंग बिछा है। यह पलंग ही कवि की समूची गृहस्थी है। यहीं बैठकर उन्होंने 'शिवाजी' जैसा उद्‌बोधक महाकाव्य लिखा और 'परशुराम' काव्य लिख रहे हैं, जो अभी अपूर्ण एवं अप्रकाशित है।

कवि के कमरे में लगे तीन चित्रों से हम उनके आराध्य,पूज्य और प्रेरणास्थल का आभास पा सकते हैं। कमरे में एक चित्र है उनके साहित्यिक गुरु कवि-सम्राट हरिऔधजी का। दूसरा चित्र है- उन्हें 'जौहर' लिखने की प्रेरणा देने वाले आ० रामचन्द्र शुक्ल जी का। तीसरा चित्र है—उनके प्रेरक एवं शुभेच्छु पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी का। इनके अतिरिक्त साहित्यिक संस्थाओं द्वारा उन्हें मिले हुए कुछ प्रशस्ति-पत्र कमरे की दीवाल पर टँगे हैं।

(ग) पांडेयजी का व्यक्तित्व:—

व्यक्तित्वका निखार:—

संसार में जिस व्यक्ति का जीवन मैदान की तरह समतल और स्पष्ट होता है, उसमें घटनाओं के घात-प्रतिघात अपने पद-चिन्ह नहीं छोड़ते, उसके व्यक्तित्व को समझने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है किन्तु जिसके जीवन में घटनाओं के घात-प्रतिघात अपने पद-चिह्न छोड़ते जाते हैं, जिसके जीवन-चित्र में अनेक आड़ी-तिरछी रेखाएँ होती हैं, ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। महान व्यक्तियों का जीवन-व्यक्तित्व साधारणतया इसी वर्ग का होता है। पं० श्यामनारायणजी पांडेय का व्यक्तित्व भी इसी वर्ग में है।

व्यक्तित्व एक इकाई है। वह शरीर और आत्मा, हृदय और मस्तिष्क, आचार-विचार, रीति-नीति-व्यवहार, खान-पान, वेश-भूषा अन्त-र्वाह्य उपादानों का समष्टि रूप है। व्यक्ति की वाह्य रचना, व्यवहार की चित्तवृत्तियों, रुचियों, धारणाओं, शक्तियों, योग्यताओं और कुशल-ताओंका सर्वाधिक लाक्षणिक समायोजन व्यक्तित्वकी परिभाषा है।[1] इनमें कोई एक तत्व, अलग रूप से, व्यक्तित्वका निर्धारण नहीं कर सकता, ठीक उसी प्रकार जैसे हम आँख, कान, नाक, मुँह, हाथ, पैर आदि में से किसी एक को पूर्णतः शरीर नहीं कह सकते। 'अंग अंगो के अंश होते हैं, सर्वांग नहीं, अतः व्यक्तित्व का विभाजन-अंतर्वर्ती पक्षों में इसलिए नहीं किया जा सकता कि दोनों एक दूसरेके पूरक हैं, कार्यकारण भी।[2] अध्ययन की सुविधा के लिए उसके आकृति और प्रेम, व्यवहार और स्वभाव अथवा चरित्र और शीलविषयक अंतरंग तथा बहिरंग भेद किये जा सकते हैं। व्यक्तित्व का वाह्य-पक्ष, आकृति, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, व्य-सन, व्यवहार, हास-परिहास, बोल-चाल आदि से सम्बन्ध रखता है। उसका आंतरिक पक्ष स्नेह-सद्भाव, विविध मनोवृत्तियों तथा स्वभाव आदि से संबद्ध रहता है। मन पर व्यक्तित्व की जो छाप समग्र रूप में पड़ती है, वह प्रायः अविभाज्य होती है। गांधी जी के व्यक्तित्व का आक-लन करते समय हमारा ध्यान उनकी अनाकर्षक वेश-भूषा पर नहीं जाता और न नेपोलियन के शरीर की अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर ही हमारी दृष्टि टिकती है। यह वाह्याकृति उनके व्यक्तित्व की गरिमा समझने में बाधक नहीं होती है। हम उनके व्यक्तित्व को उनके दिव्य गुणों और महान कार्यों के आधार पर परखते हैं।

सौभाग्य से जिस व्यक्तित्व पर हम विचार करने जा रहे हैं, उस व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार प्रकट नहीं किये हैं। पर, उनके साहित्य के आधार पर उनके व्यक्तित्व को समझने में सुविधा प्राप्त हो जाती है, क्योंकि साहित्यकार का साहित्य उसके व्यक्तित्व का चित्र है। साहित्य में साहित्यकार के व्यक्तित्व की प्रतिमूर्ति रहती है। पांडेयजी के साहित्य का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनके व्यक्तितत्व में भावना और कर्म, स्वाभिमान और सेवा, विनम्रता और ओजस्विता, व्यक्ति और समाज, जीवन और जगत तथा सत्य, शिव

१–नारमन एल, मन्नः 'साइकालाजो' पृ० ५६०।

२–डा० कमलाकांत पाठकः 'मैथिलीशरण गुप्तः व्यक्ति और काव्य', पृ० ५७।

और सौन्दर्य का सुन्दर सामंजस्य दिखायी देता है। उनका व्यक्तित्व भारतीय होकर भी अन्तर्राष्ट्रीय बनने की क्षमता रखता है। संक्षेप में, उनका व्यक्तित्व सामंजस्यवादी दुहरा व्यक्तित्व है, जिसे उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे वह काव्य हो या समाज, देखा जा सकता है।

पाण्डेयजी के विविध रूप—

पांडेयजी का व्यक्तित्व कई व्यक्तित्वों का संगम है। वे एक साथ ही उत्कृष्ट कवि, वीर रस के श्रेष्ठ कवि, उत्तम शैलीकार एवं अच्छे गायक हैं। उनके व्यक्तित्व के इन विविध रूपों का अत्यल्प परिचय निम्नानुसार है:—

युगद्रष्टा शब्द–शिल्पी—

श्यामनारायणजी पाण्डेय आधुनिक हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ कवि हैं। कवि का सारा जीवन संघर्ष, नम्रता और संयम में बीता है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने एक महान युग-द्रष्टा महाकवि की भाँति शब्द-अर्थ-संयोजन द्वारा अत्युत्कृष्ट काव्य लिखकर उसे साहित्य-देवता के चरणों पर अर्पित किया है। कवि के शब्दों में:—

'मैं काँटों के घर में फूलों का हार बनाता हूँ।
साहित्य देवता के चरणों पर उसे चढ़ाता हूँ॥'[1]

इस प्रकार वे यशस्वी काव्य-सृजन के पथ पर अनवरत बढ़ते रहे हैं। वे स्वातंत्र्य-प्रेमी एवं राष्ट्रीय भावना के ओजस्वी कवि हैं। प्रारम्भ से ही वे स्वातंत्र्य-आंदोलन से बड़े प्रभावित थे। इसलिए उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय भावना का वहन कर, स्वातंत्र्य-आंदोलन सफल बनाने में मानसिक योगदान दिया। कवि ने प्रेम, त्याग, बलिदान की भव्य-भावनाओं द्वारा राष्ट्र की जटिल स्थिति में गिरे हुए हृदयों को सँभाला और लोकमानस में स्वतंत्रता एवं राष्ट्रीयता की भावोर्मियाँ उत्पन्न कीं। यही कारण है कि उनके काव्य का विषय समयानुकूल एवं राष्ट्र में नवजीवन का संचार करने वाला है। उन्होंने भारत-भारती के चरणों में अनेक ऐसे रत्नों को अर्पित किया है जो आगामी पीढ़ियों के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य करेंगे।

वे युग-कवि हैं, इस अर्थ में नहीं कि अतीत से सारा सम्बन्ध विच्छेद कर वे अज्ञात और अज्ञेय भविष्य में कूद पढ़ने के लिए उत्सुक हैं।

१– एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत।

वे युग-कवि इस अर्थ में हैं कि उनकी वाणी में भारत की अतीत-संस्कृति वर्तमान युग के शब्दों में बोलती है। जो बात वाल्मीकि से लेकर तुलसी दास तक सब भारतीय संस्कृति के संरक्षकों और संवर्द्धकों ने कही है, वही 'हल्दीघाटी' के राणाप्रताप एवं 'जौहर' की पद्मिनी का कवि आज के शब्दों में कहता है। वे हमें युगका संदेश सुनाते हैं और वर्तमान समस्याओं का सामाधान करने के लिए अतीत से प्रेरणा लाकर हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुतः पांडेयजो ने अपने काव्य-जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से ही भारतीय सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परम्परा से रस-ग्रहण किया है। उन्होंने छात्रावस्था से ही खड़ी बोली में काव्य-रचना शुरू कर दी थी किन्तु समय के प्रवाह के साथ-साथ उनका शब्द-शिल्पी रूप अधिकाधिक उभरता गया है। विषयानुकूल शब्दों के चुनाव और भाव-प्रवाह की दृष्टि से उनकी तुलना वीर रस के किसी भो श्रेष्ठ कवि से की जा सकती है।

पांडेयजी का काव्य-धरातल भी व्यापक है। उनकी रचनाओं में विषयों एवं अनुभूतियों की विविधता विद्यमान है जिसके अध्ययन-मनन से हमें अपने आदि-अन्त का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही आदि-अन्त के बीच के सुख-दुख का अनुभव भी हमें बड़ी प्रामाणिकता के साथ प्राप्त होता है। मैं क्या हूँ? जगत क्या है? मेरा जगत् से क्या सम्बन्ध है? इत्यादि समस्याओं का सरल हल हमें उनकी कृतियों में प्राप्त होता है।

पांडेयजी निरे भावुक नहीं, सूझबूझ और कल्पना के कवि हैं। उनके भाव आधुनिक हैं, शब्द ओजस्वी हैं, कल्पनाएँ चमत्कृतिजन्य, सुखद एवं रोमांचकारिणी हैं। उनके कवि में सौन्दर्यबोध की दृष्टि विद्यमान है, जिसकी कलात्मकता उनके व्यक्तित्व की मौलिक अभिव्यक्ति है।

वीर कवि—

श्यामनारायणजी आधुनिक हिन्दी वीर काव्य के भूषण हैं। उनके काव्यों के अलावा आधुनिक हिन्दी साहित्य में वीर रस के दूसरे काव्य नहीं के बराबर हैं, जो हैं, वे नगण्य हैं। कवि ने कहा है—

'मैं वीर करुण का अन्धड़ हूँ तूफान बवन्डर हूँ,
लेकिन अपनी मर्यादा की सीमा के अन्दर हूँ।
मैं आर्य धर्म का वीर पुजारी अलग अकेला हूँ।
× × ×
इतिहासों में सोये वीरों को पुनः जगाता हूँ।
संस्कृति जन को वश में कर लेता मोहक मंतर हूँ।' [१]

१- एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत।

ऐतिहासिक वीर पुरुषों के देश, संस्कृति और स्वतंत्रता के लिए किये गये उत्सर्ग एवं बलिदानों के वर्णन देशवासियों को प्रेरणा प्रदान करने में सहायक होते हैं। उनके पुनीत चरित्रों से देश और समाज को मार्गदर्शन मिलता है। तत्कालीन राष्ट्रीय स्वातंत्र्य-आंदोलन से उद्बुद्ध होकर पांडेयजी ने राष्ट्र की सूखी धमनियों में उष्णरक्त का संचार करने के लिए इतिहास में सोये हुए वीर स्त्री-पुरुषों को जगाया।

जिस काव्य से ओजपूर्ण शौर्य और उत्साह का उद्रेक हो, उसे वीर काव्य कहते हैं। काव्य में वीरता का संचार तभी हो सकता है जब उसमें वीर कृत्यों का वर्णन हो। पांडेयजी के काव्यों में वीर कृत्यों की भरमार है। वे मुख्यतः वीर रस के कवि हैं और इस रस की व्यंजना में उन्हें पूर्ण सफलता भी मिली है। 'हल्दीघाटी' के निम्नलिखित उदाहरण में ओज और सजीवता का चित्र देखिए:—

'हाथी सवार हाथी पर थे, बाजी सवार बाजी पर थे।
पर उनके शोणितमय मस्तक, अवनी पर मृत-राजी पर थे।
कर की असि ने आगे बढ़कर, संगर मतंग सिर काट दिया।
बाजी वक्षस्थल गोभ-गोभ, बरछी ने भूतल पाट दिया।।'[1]

पांडेयजी ने युद्ध-वर्णन में अपने काव्य-कौशल की शक्ति का प्रमाण दिया है। उनके छन्दों की लय में कड़कड़ाहट है और शब्दों की नाद-ध्वनि बड़ी प्रभावशालिनी है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार के वर्णनों की परंपरा चन्द और भूषण के समय से चली आ रही है। वीर काव्य में शब्द और नाद-सौन्दर्य वीररसोद्रेक का वातावरण निर्मित करने में समर्थ होता है। यदि हम 'हल्दीघाटी' के छन्दों की तुलना 'साकेत' और 'कामायनी' के युद्ध-वर्णनों से करें तो यह समझ लेने में कठिनाई नहीं होगी कि अन्य कवियों ने जहाँ रस्म अदाई की है, वहाँ पं. श्यामनारायण पांडेय जी ने युद्ध वर्णन की टेक निभायी है—

'सुनकर सैनिक तनतना उठे
हाथी-हयदल पनपना उठे
हथियारों से भिड़ जाने को
हथियार सभी झनझना उठे।।'[2]

१- हल्दीघाटी: सर्ग ११, पृ० १२३-१२४।
२- वही सर्ग ६, पृ० १०७।

इस युद्ध-वर्णन को कलात्मक सूत्र का पर्याप्त अवलम्ब प्राप्त है, क्योंकि कवि ने यहाँ प्रकृति-जगत् के विविध-प्रसंगों के विधान द्वारा प्रस्तुत वर्ण्य विषय को अधिक मार्मिक एवं प्रभावशाली बनाने की चेष्टा की है—

'खुल गये कमल कोषों के
कारागृह के दरवाजे।
उससे बन्दी अलि निकले
संगर के बाजे बाजे॥'[1]

निस्सन्देह पांडेयजी वीर रस के श्रेष्ठ कवि हैं। वैसे उन्हें करुण रस की निष्पत्ति में भी पूर्ण सफलता मिली है। 'जौहर' महाकाव्य में वीरांगना पद्मिनी एवं अनेक वीर क्षत्राणियों के अग्नि-कुंड में प्रवेश करने का बड़ा ओजस्वी एवं करुण वर्णन उन्होंने लिखा है। यथा:—

हा सती के बाद ज्वाला में धधकती नारियाँ थीं।
खेलती चिनगारियों से सुमन-सी सुकुमारियाँ थीं॥

* * *

हा! पिता के सामने कूदी सुता जलती चिता में

* * *

भाइयों को देखती कूदीं अनल में धीर-बहनें

* * *

दुधमुँही नवबालिकाएँ जो न कूद सकीं अनल में
आग में फेंकी गयीं वे मातृ-कर से एक पल में[2]

इन पंक्तियों से कवि का हृदय भर आता है। इसी प्रकार विभिन्न भावों का चित्र प्रस्तुत करने में पांडेयजी बड़े सिद्ध कवि हैं, अतः उन्हें आधुनिक हिन्दी काव्य का रससिद्ध कवि कहना सर्वथा युक्तियुक्त है।

शैलीकार:—

पांडेयजी एक उत्तम शैलीकार हैं। उनकी शैली उनके व्यक्तित्व की प्रतीक है, जिससे हम उन्हें सहज ही पहचान सकते हैं। इसीलिए वे जन-जीवन के कलाकार हैं।

उनकी शैली सहज, सरल, ओजस्विनी तथा प्रभावपूर्ण है। सीधी उक्ति और सुबोध अभिव्यक्ति उनकी शैली की विशेषताएँ हैं। इसलिए

१- वही सर्ग १६, पृ० १८३।
२- जौहर'- पृ० २१२।

स्कूलों में पढ़ने वाले छोटे-छोटे बच्चे तक उनकी कविताओं को जानते हैं। वीरगाथा काल के आल्ह-खण्ड की कविताओं को भाँति घोषणा के रूप में किसी बात को गरज करके कहने वाली शैली उनके काव्य में कई स्थलों पर विद्यमान है। यथा—

"वीरो जल्दी करो पकड़ लो भग न जाय पाजी बन्दर।

*　　　*　　　*

जाम्बवान मारुति से बोले —क्यों चुप हो कुछ बोलो तो।
सोच रहे हो क्या मन ही मन हिलो-हिलो कुछ डोलो तो॥[1]

पांडेयजी के काव्य-विषय भी अत्यन्त सरल एवं व्यापक हैं। उनके पात्र घरेलू वातावरण में पले हैं अतः उनकी सीता, पद्मिनी आदि हमारे समाज की जानी-पहचानी नारियों-सी लगती हैं, जिनसे हम सहज ही आत्मीयता का अनुभव पा सकते हैं। अस्तु, पांडेयजी की शैली पूर्ण स्वच्छ, प्रौढ़, प्रसन्न तथा घरेलू है। उसमें आडम्बर या बनावट कहीं नहीं है।

उत्तम गायकः—

पांडेयजी उत्तम गायक हैं। जब वे कवि सम्मेलनों में सस्वर कविता पाठ करने लगते हैं तब सारा जन-सागर स्तब्ध हो जाता है, झूमने लगता है। काव्य-पठन के बाद 'और एक बार'-'और एक बार' की ध्वनि सहस्रों कण्ठों से आने लगती है। वे अपने छन्दों का पठन आरोह-अवरोह, मधुर स्वर तथा योग्य अभिनय के साथ करते हैं जिससे सारा पांडाल कभी उन्मत्त-सा डोलने लगता है, कभी लोगों की नसों में खून खौलने लगता है, कभी शरीर पर रोमांच हो आता है, कभी आनन्दाश्रु, तो कभी दुःखाश्रु बहने लगते हैं। पांडेयजी के काव्य-पाठ के उपरान्त सारा पांडाल हर्ष-ध्वनि और कर-तल ध्वनि से गूँज उठता है। पांडेयजी के काव्य-पाठ से जो समाँ बँधता है, जो रंग चढ़ता है, उसके तत्काल बाद अपना रंग जमाना अन्य किसी कवि के लिए कठिन होता है।

(घ) पांडेयजी के व्यक्तित्व की विशेषताएँ—

पांडेयजी के साधक और प्रभावशाली कवि-व्यक्तित्व की जो चर्चा अभी-अभी की गयी है, उसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि श्यामनारायणजी की कला ने उनके जीवन पर और उनके जीवन ने उनकी कला पर जो प्रभाव डाला है, वह अमिट है। उनके व्यक्तित्व की कुछ अन्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१) 'जय हनुमान' पृ० ७, ५३।

प्रेरक व्यक्तित्व—

पांडेयजी स्वयं जहाँ रचनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न हैं, वहीं उन्होंने इस प्रतिभा के वितरण का महान कार्य भी किया है। आज के अनेक कवियों तथा लेखकों का निर्माण उनकी प्रेरक छत्र-छाया में हुआ है। व्यक्तिगत चर्चा के बीच कवि जगदीश ओझा 'सुन्दर'[1] तथा कवि बेखटक[2] ने इस कथन की पुष्टि की है। इसी तरह से प्रसिद्ध लेखक डा० जितेन्द्रनाथ पाठक ने अपने तथा अपने जैसे अनेक साहित्यकारों के ऊपर पांडेयजी के प्रभाव को स्वीकार किया है।[3]

भाषाविद्—

पांडेयजी बहुज्ञ और बहुभाषाविद् हैं। आज कितनी भाषाओं पर उनका अधिकार है, निश्चित नहीं कहा जा सकता। पर, हिन्दी, संस्कृत पर तो उनका अधिकार देखा गया है। उनके पास जो पुस्तकें और मासिक-पत्र आदि आते हैं, उनमें बहुत से हिन्दी-संस्कृत के होते हैं। वे उर्दू भी अच्छी तरह से जानते हैं। अपनी छात्रावस्था में मिडिल कक्षाओं में उन्होंने जो थोड़ी-सी उर्दू और हिन्दीकी शिक्षा प्राप्त की थी, उस भाषा ज्ञान को पांडेयजी ने अपने अध्यवसाय से अधिकाधिक सम्पन्न किया है।

बहुज्ञः—

पं. श्यामनारायणजी पाण्डेय काव्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, छंद, भाषा-शास्त्र, रसादि के मर्मज्ञ तो हैं ही, वे और भी कई विषयों के ज्ञाता हैं। हर विषय में वे दखल रखते हैं। वे इतिहास के पारदर्शी विद्वान हैं। वे इतिहास के अध्येताओं का मार्गदर्शन करते हैं। भूगोल का भी उन्हें बड़ा व्यापक और सूक्ष्म ज्ञान है। आध्यात्मिकता उनका प्रिय विषय है। छोटे–छोटे रोगों का इलाज भी वे जानते हैं।

यह तो हुआ पांडेयजी के व्यक्तित्व के वाह्यस्वरूप का वर्णन, जो उनके कार्य–कलापों के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। अब हमें उस 'व्यक्ति' के स्वयं के अंतरंग रूप की झाँकी भी प्राप्त करनी हैं, ताकि हम समग्रता की दृष्टि से उनके व्यक्तित्व के सम्पूर्ण अंश से परिचित हो सकें।

१- कवि श्री जगदीश ओझा 'सुन्दर': म्युनिसिपैलिटी आफिस, गाजीपुर (उ०प्र०)

२- कवि श्री बेखटक: 'प्लैनिंग आफिर, गाजीपुर (उ०प्र०)

३- डाक्टर जितेन्द्रनाथ जी पाठक: 'प्रवक्ता, डिग्री कालेज, गाजीपुर (उ०प्र०)

शारीरिक गठन और वेश-भूषाः—

मेरे शोध-निर्देशक श्रद्धेय डा॰ भगवानदास जी के पत्रानुसार जब मैं सन् १९७१ ई० में सितम्बर में पाण्डेय जी से डुमरांव (उ० प्र०) में मिला, तब मुझे उनके परम श्रद्धास्पद भव्य व्यक्तित्व की झांकी इस प्रकार दिखायी दी। मेरा कहना है–अगर आपने पं. श्यामनारायण पांडेय को न देखा हो, तो यों समझें–सामान्य कद, ६५ वर्ष की आयु के बाद भी निखरा हुआ गेहुँआँ रंग, तरतीब से कटी हुई सफेद छोटी मूछें, जीवन भर संघर्ष में लगे रहने की निशानीके रूप में चेहरे पर झुर्रियाँ, जो उनके विशाल अनुभवों तथा जीवन की वास्तविकता की कठोरताओं की प्रतीक हैं–देख कर समझ जाइये कि यह जो महान तपस्वी-सा साधक है, यही सरस्वती के वरद पुत्र पं. श्यामनारायण जी पांडेय हैं। पाण्डेय जी सहज स्नेह के भाण्डार हैं, सफेद टोपी लगाते हैं,सफेद धोती और कुरता पहनते हैं। केवल बाहर जाते समय धोती, कुर्ता, टोपी पहनते हैं–वँसे अब घरमें तहमद एवं बनियान ही उनकी वेश–भूषा है।

पांडेयजी का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। सामान्य कद, दोहरी काया, गेहुँआँ रंग उनका वाह्य व्यक्तित्व है और धोती, टोपी तथा पूरी बाँह की नेहरू कमीज उनकी वेश–भूषा है। उनका सामान्य कद, गेहुँआँ रंग का शरीर, प्रशस्त ललाट और उसके नीचे गहरी दूर तक झाँकती हुई दूरबीन-सी आँखें देखकर लगता है, जैसे वे दर्शक के आरपार कुछ देखने का प्रयास कर, रही हैं। ऐसे व्यक्तित्व से कौन प्रभावित नहीं होगा? साफ-सुथरे शुभ्र-केश चेहरे पर वृद्धावस्था की शिकन, परन्तु गंभीरता और सौम्यता, जर्जर शरीर और उसके भीतर छिपी हुई दीप्तिमान आत्मा को, जो अपने भीतर बच्चों का भोलापन, वीर का तेज, भक्त की सरलता तथा भावुकता और जाने क्या-क्या समेटे बैठी है, देखकर देखने वाला प्रभावित हुए बिना रह नहीं रहता।

चिरतारुण्य के कविः-

आज पांडेयजी शरीर से वृद्ध हो चले हैं। पर, इससे क्या? उनका मन तो अभी भी तरुण हैं। उनके भीतर का ओजस्वी कलाकार आज भी जागृत है। उनके साहित्य में वह तेज तथा ओज है, जो तरुणाई में होता है। उन्होंने अपने जीवन में झुकना नहीं सीखा, भयंकर से भयंकर विपत्तियों को अदम्य साहस से सहा, पर कठिनाइयों और प्रतिकूल परि-स्थितियों के समक्ष कभी घुटने नहीं टेके। भाव-जगत् में तो वे 'चिर तरु-

णाई' के कवि हैं, जिनकी भावगत जवानी आज भी त्याग और बलिदान के पथ पर मस्ती से झूम-झूमकर चल रही है।

स्वाभिमानी, नम्र और स्पष्टवादी:-

पं. श्यामनारायण पाण्डेय बड़े स्वाभिमानी प्रकृति के व्यक्ति हैं। उन्हें साहित्य-सेवा के लिए सम्मान भी मिला है, परन्तु वे कभी भी सम्मान के पीछे नहीं चले। अन्य साहित्यकारों की तरह 'लखनऊ' तथा 'दिल्ली' की ओर उन्होंने कभी टकटकी नहीं लगायी। उ० प्र० सरकार की ओर से जो भी अपने आप, अयाचित मिलता है, निष्काम रूप से स्वीकार करते हैं। उनमें स्वयं को गोपनीय रखने की भी आदत है। वे प्रचार-प्रसिद्धि से दूर भागते हैं। इसीलिए वे ऐसी सस्ती चीजें लिखना पसंद नहीं करते, जिसमें उनकी विज्ञापनबाजीका बोध हो। वे ऐसे विषयों पर लिखना चाहते हैं, जो जनता का कण्ठहार हों।

उनकी साहित्यसेवा आत्म-तुष्टि एवं जनहित के लिए है। सुख-दुख-समता की भावना के कारण वे एक बार अपनी पुत्री के स्वर्गवास के तीन दिन बाद ही अपने प्रियजन के यहां [गाजीपुर में] आयोजित साहित्य-गोष्ठी में सम्मिलित होने गये थे। संक्षेप में, वे बड़े ही नम्र एवं संयमी है। अपने तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण वे अन्याय कभी नहीं सह सकते। फिर, अन्याय करने वाला कोई भी हो, कितना ही बड़ा हो, वे दो टूक कहने में नहीं हिचकते। उनके व्यक्तित्व की यह एक विशेषता है कि वे स्वाभिमान और सच्चाई की राह पर 'टूट तो सकते हैं, लेकिन लचक सकते नहीं।'

वात्सल्य की प्रतिमूर्ति:-

उनके व्यक्तित्व में जहाँ चिर-तारुण्य है वहीं बच्चों-सा भोलापन भी है। वे वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। उनका हृदय बच्चों के प्रति प्रेम से ओत-प्रोत है। माधव संस्कृत विद्यालय (काशी) में, अध्यापन करते समय वे स्कूल के बच्चों पर प्राय: अपने वात्सल्य की वर्षा करते रहते थे। उनकी पत्नी अपने महाप्रस्थान के समय पुत्र को उन्हें सौंप गयी थीं, इसीलिए छोटे-छोटे बच्चों पर वे अत्यधिक प्रेम करते हैं। छोटे बच्चों के साथ वे हँसते-खेलते दिन बिता देते हैं। घर के बच्चे तो सदा उनके ही पास रहते हैं। बच्चों पर नाराज होने वालों एवं उन्हें डाँटनेवालों को वे डाँट देते हैं। जब कभी उनके घर के बच्चे कहीं बाहर चले जाते हैं, तब उन्हें चैन नहीं मिलता, उन्हें अपना घर सूना लगता है। यही नहीं, आयु के साथ-साथ उनका व्यवहार उनके पास आने वाले व्यक्तियों के प्रति भी

अपने बच्चों के समान हो है। वे किसी भी व्यक्ति के साथ चलने वाली गंभीर बातचीत के बीच भी यदि वहाँ कोई बच्चा हो तो उसकी हर बात पर ध्यान देंगे, उसमें रस लेंगे, यह उनकी वात्सल्य-मूर्ति का लक्षण है।

अनूठा व्यक्तित्व:--

जब मैं उनसे डुमराँव मिलने गया, तब अनायास ही उनकी ओर आकर्षित हुआ। सरल स्नेह का सागर, बोलने में मिठास और अनुरोध भरा निमंत्रण। मुस्कराहट ऐसी प्रभावपूर्ण कि परदेसी व्यक्तिभी प्रभावित हो। जब कभी वे एकान्त में बैठते तो गंभीर चिन्तन में डूब जाते थे। पांडेयजी के व्यक्तित्व को यदि हम किसी एक शब्द के द्वारा व्यक्त करना चाहें, तो वह होगा 'अनूठा व्यक्तित्व'–ऐसा व्यक्तित्व जो विषम से विषम परिस्थितियों में भी किसीके सामने नहीं झुका, जिसे बड़ा से बड़ा प्रलोभन भी साहित्य-सेवा से डिगा न सका और देष-प्रेम तथा संस्कृति-प्रेम की भावना जिसके माध्यम से सदा प्रवाहित होती रही, यही उनके व्यक्तित्व की निजी गरिमा है। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उन पर व्यक्तित्व की दृष्टि से हरिऔध जी का, जीवन की दृष्टि से प्रताप का और संस्कारों की दृष्टि से सांस्कृतिक परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है। जहाँ हरिऔध जी के प्रभाव से उनके जीवनमें स्वावलंबन एवं सांस्कृतिक गौरव की भावना आयी, प्रताप के जीवन की प्रेरणा से उन्होंने देश प्रेम तथा त्याग की भावना का पाठ सीखा, वहाँ सांस्कृतिक परम्परा के प्रभाव से सरलता, सौम्यता तथा पवित्रता, संवेदना, त्याग और समर्पण के भाव उनमें जाग्रत हुए। वे शिवाजी की स्वराष्ट्र प्रेम-भावना तथा पद्मिनी के शील के जबरदस्त प्रशंसक हैं।

पांडेयजी के जीवन और व्यक्तित्व का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध:—

कवि की जीवनी एवं उसके सार्वजनिक जीवन के इस संक्षिप्त परिचय से कवि के व्यक्तित्व एवं उसकी भावी काव्य दिशा की पृष्ठभूमि के रूप में हमें कुछ महत्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध होते हैं।

कवि के जीवन के सांस्कृतिक संस्कार ने जहां उसे संस्कृति-पूजक का रूप प्रदान किया है, वहाँ माता के पवित्र जीवन की आध्यात्मिकता ने उसमें आध्यात्मिक संस्कारों के बीज बोये हैं। श्यामनारायणजी के काव्य में एक ओर सांस्कृतिक भावना एवं देश-भक्ति का प्रवाह तथा दूसरी ओर आध्यात्मिक भावना का जो पुट दिखायी पड़ता है, उसके पीछे यही द्विविध प्रेरणा काम करती है।

पांडेय जी बाल्यकाल से ही खिलाड़ी प्रवृत्ति के रहे हैं, जिसके चलते वे अनवरत जीवन-संग्राम में सुख-दुख, सफलता-असफलता सबको

समान रूप से सहते आये हैं। बचपनकी यही प्रवृत्ति उनकी सृजनात्मकता के मूल में हैं। उनके काव्य में इसकी आकुलता दीख पड़ती है। उनके काव्य में जो मौलिकता है, सहजता है एवं सरस प्रवाह है, वह सब कवि स्वभाव की देन है।

जैसा कि हमने देखा है, कवि के जीवन पर प्रारम्भ से ही साधन-विहीनता की काली छाया मँडराती रही, पर इसने उसके जीवन पर शुभ प्रभाव डाला। आरम्भ से हो कवि विषम परिस्थितियों से हँस-हँसकर जूझता रहा। परिणामस्वरूप कविकी जिजीविषा बलवती होती गयी और वह आपद्ग्रस्तता के बीच भी प्रसन्नभावसे जीनेका आदी हो गया। उसके पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में जो विभिषिकाएँ आयीं उन सबको वह हँसते–हँसते पार कर गया। खतरों में पलने वाले जीवन में कवि ने जो सौन्दर्य देखा है, उसी की भाव–भूमि पर उसका काव्य खड़ा है। पांडेयजी के काव्य में जीवन का जो सजीव वैषम्य चित्रित है, वह इन्हीं विषम परिस्थितियों की देन है। जीवन निर्वाह की प्रतिकूलता कवि के विकास में कभी भी बाधक नहीं बनी, बल्कि वह प्रकारांतर से उसकी दुर्दम्य जिजीविषा की पोषक बनी है। पैंसठ वर्ष की आयु में–जहाँ दूसरे लोग मैदान छोड़कर अलग हो जाते है वहीं कवि की शौर्यभावना जो वीर रस पैंदा कर रही है, उसके पीछे यही राज है।

सैंतीस और इकतालीस वर्ष की आयु में कवि-पत्नियों की मृत्यु ने भी कवि के जीवन और काव्य पर गहन प्रभाव डाला। एक ओर जहाँ वे कवि के प्रेम का प्रेरणा-स्रोत थीं, आगे चलकर उसी प्रेम को कवि ने देश तथा संस्कृति को अर्पित कर दिया। कवि के निजी जीवन की यह पीड़ा उसके व्यक्तितव-विकास का कारण है।

ठाकुर शहजाद सिंह और कवि-सम्राट हरिऔध प्रभृति महापुरुषों ने जहाँ कवि में स्वाभिमान, सांस्कृतिक गौरव और स्वावलम्बन के भाव भरे, वहां श्रीमान केजरीवाल के सम्पर्क में कवि ने संयम और मर्यादा का संस्कार ग्रहण किया।

श्यामनारायण जी के व्यक्तित्व में बचपन से ही काव्य-प्रतिभा का जो संस्कार था, उसने कवि में स्वातंत्र्य–भावना एवं मौलिक सूझ की उद्भावना की। बचपन में लिखो गयी तुकबन्दियोंने कवि की काव्य-भूमि के निर्माण में नींव की ईंट का काम किया। प्रतिभा और साधनाके सामञ्जस्य को एक श्रेष्ठ काव्य-व्यक्तितव प्रदान किया है।

श्यामनारायण जी राजनैतिक जीवन के पचड़े में कभो नहीं पड़े और वे उससे सम्बन्धित प्रलोभनों से भी असम्पृक्त रहे। मौका पाकर भी

उन्होंने उससे लाभ नहीं उठाया । यह उनकी स्वाभिमानी प्रकृति और आत्मविश्वास का ज्वलन्त प्रमाण किया है ।

अपनी व्यक्तिगत अन्तर्वेदना, पारिवारिक कर्तव्य–पालनकी निष्ठा तथा उसमें सक्रिय सहानुभूति का निर्वाह करते हुए जिस विषम वातावरण में महाकवि श्यामनारायण पाण्डेय ने साहित्य-साधना को अपने जीवन में प्रधानता दी, उसके बहुमुखी जीवन-क्रमके अंतर्संघर्ष में एकान्त चिन्तन और साहित्य-सर्जना के लिए एकाग्रता खोज निकालने की उनकी क्षमता अनुकरणीय है । इसी सामर्थ्य के बल पर आज पांडेय जी हिन्दी काव्य जगत में 'अचल स्तम्भ' की तरह खड़े हैं ।
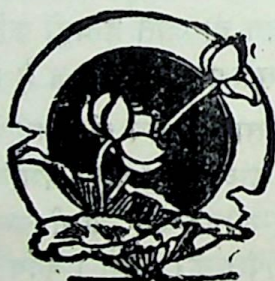
(३)

पाण्डेयजी का काव्य-विषयक दृष्टिकोण और उनकी कृतियाँ

पाण्डेयजी का काव्य-विषयक दृष्टिकोण

पाण्डेयजी का काव्य चिन्तन--

द्विवेदी युग की काव्य विषयक मान्यता के अनुसार पं. श्यामनारायणजी पांडेय का काव्य भी सोद्देश्य है। वे काव्य की समाज-सापेक्षता के समर्थक हैं। अतः उनका काव्य नैतिकता, आदर्शवाद और उपयोगितावाद की सैद्धांतिक कसौटी पर खरा उतरता है। उन्होंने अपनी काव्यकृति को आह्लादिनी, पाप-ताप हरनेवाली तथा अंतःकरण में कर्तव्यशीलता का भाव भरनेवाली कहकर इसका स्पष्ट संकेत दिया है।

गुप्त[1] जी के समान पांडेयजी भी त्रिकालदर्शी कवि हैं। पांडेयजी अतीत का अवलोकन कर वर्तमान को प्रेरणा दे उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा करते हैं—

'जौहर के छन्दों में गरजो, वर्णों में हुँकार करो।
× × ×
गूँज उठे ध्वनि वेद पाठ की, जड़ चेतन संवाद करें।
द्वार-द्वार के पक्षी भी सूत्रों पर वाद-विवाद करें ॥[2]

पांडेयजी के काव्य का आधार इतिहास है। 'उनके चरित्र नायक वे ही हैं जिनकी चर्चा आज भी बड़े गर्व से की जाती है।'[3]

सारांश यह कि उनका काव्य-चिन्तन परिपक्व एवं समाज-सापेक्ष है।

काव्य-दृष्टि का निर्माण--

कविवर पं. श्यामनारायणजी पांडेय की काव्य-दृष्टि का निर्माण कैसे हुआ ? आचार्य मम्मट के शब्दों में काव्य-प्रयोजन की तालिका इस प्रकार है—

'काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतररक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥[4]

१- 'भारत-भारती', अष्टादश संस्करण, पृ० ४।
२- 'जौहर', पृ० २५०-२५१।
३- कवि द्वारा संशोधक को भेजे गये पत्र से उद्धृत, १-९-१९७१।
४- 'काव्य-प्रकाश' प्रथम उल्लास।

तथा पं. विश्वनाथ ने उसे 'चतुर्वर्ग फलप्राप्तिः सुखादल्पधियामति' कहा है।[1] साहित्य चिंतन की इस पूर्व परंपरा और आधुनिक युग की पुनरुत्थानवादी काव्य-चेतना के सम्मिलित प्रभाव से द्विवेदी युग में सोद्देश्य काव्य-रचना का लक्ष्य स्थिर हुआ। उधर पाश्चात्य देशों में आई. ए. रिचर्ड्स ने होरेस के इस मत का अनुमोदन किया कि कवि आह्लाद प्रदान करते हैं अथवा शिक्षा अथवा दोनों का एकीकरण कर देते हैं।[2] पांडेयजी के काव्य में आह्लाद और शिक्षा दोनों का एकीकरण है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'कवि-कर्त्तव्य' निबन्ध में इस उपयोगितावादी काव्यादर्श का नवीन सूत्रपात किया था।[3] तदनन्तर उन्होंने इस दृष्टिकोण का निर्माण, पोषण और प्रचार भी किया।[4] उनके अनुसार काव्य का लक्ष्य-'बहुजन हिताय है तथा उसका श्रेय स्वार्थ नहीं है, परार्थ है।' वे कविता के आनन्द और उपयोगिता दोनों ही प्रयोजनों पर बल देते थे।[5] पांडेयजी का काव्यादर्श आचार्य द्विवेदी की मान्यताओं के अनुरूप है।

काव्य-दृष्टि-निर्माण और जन-कलाओं के सम्बन्ध में पाण्डेयजी की उक्ति है कि—

'मुझको कविता सहचरी मिली,
सहचर कवि-कुल के गान मिले।
रक्षक रघुपति-पद-प्रेम मिला,
साथी गीता के ज्ञान मिले॥
जिसने मेरा निर्माण किया,
उससे आहार मिला करता।
जिसने वरदान दिया उससे,
चुपके से प्यार मिला करता॥
× × ×
मैं खेल किसी से लेता हूँ,
मैं बोल किसी से लेता हूँ।

१- 'साहित्य-दर्पण' प्रथम परिच्छेद, श्लोक २।
२- I.A. Richards: Principles of Literary Criticism, P. 68।
३- 'सरस्वती' जुलाई १९०७; पृ० २७६।
४- वही वही पृ० २७६।
५- डा० भागीरथ मिश्र: हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० २४३।

मानव के मन की बातों को,
मैं तोल इसी से लेता हूँ।।
× × ×
फिर क्यों मैं दुख से आह करूँ,
फिर क्यों जन-जन से डाह करूँ।
है हाथ किसी का मस्तक पर,
फिर क्यों अपनी परवाह करूँ।।''

पांडेयजी के काव्य में काव्य-परंपरा, भक्ति और श्रद्धा तीन प्रेरक तत्व हैं तथा उनकी आस्था अडिग और श्रद्धा अटल है। काव्य-सर्जना के क्षणों में दुख सहकर भी उनकी लोकमंगल-कामना अभिनंदनीय है।

वादों की प्रतिक्रिया—

सिद्धान्ततः पांडेयजी कला में सौन्दर्य के साथ-साथ उपयोगिता के तत्व को महत्व देते हैं। वे सत्य को ग्रहण कर आदर्श का वहन करना चाहते हैं। प्रवृत्या वे आदर्शवादी हैं। अतः सूक्ष्म-सौन्दर्य बोध और निरुद्देश्य कला-सृष्टि में उनकी भावुकता नहीं रमती। वे कविता में ढोंग, प्रदर्शन-बाजी, शब्द-चमत्कार और अदाओं के विरोधी हैं। उनका विश्वास है कि हर कलाकार कवि, सच्चा कवि नहीं होता। इस संदर्भ में उनके विचार मनन करने योग्य हैं। उन्होंने लिखा है कि–'देश की राजनीति में ही नहीं, कविता क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। मूकवेदना का नीरव हाहाकार शान्त हो गया, अव्यक्त गीतों के व्यंग्य, व्यंग्य बन गये और अधिक दौड़ने से प्रगतिवादियों के पैरों में छाले पड़ गये। अब तो नाज-नखरों के साथ लम्बे बालों पर हाथ फेरते हुए सारंगी स्वर से कविता पढ़नेवालों की धूम है, निरी तुकबन्दियों से हँसानेवाले अनेक विचित्र नामधारी कवियों की पूछ है और रीति-मर्यादा भिन्न शब्दों के जाल बिछानेवाले जादूगर कवियों की धाक है। साथ ही उन युवती कवयित्रियों का भी रंग है, जो स्त्री-सुलभ अपने शील-संकोच को घर के किसी कोने में रखकर रूप और कण्ठ के बल पर लोक-कल्याण के लिए निकल पड़ी हैं। भगवान उनका भला करें। कालस्य विचित्रा गतिः। लेकिन अनेक रूप-रंग के इन कवि-परिन्दों से कविता-कानन तभी तक ध्वनित रहता है, जब तक किसी केसरी के गर्जन से वातावरण नहीं थरथरा उठता। सिंह-गर्जन से उन जीवों के

१- 'आरती' चेतना (भूमिका), पृ ८-९।

प्राण ही नहीं कण्ठगत होते, अपितु धड़कता हुआ अन्तर भी यह स्वीकार कर लेता है कि जंगल का अधिपति सिंह ही है, औरों को सत्ता कुछ नहीं।'[1]

निष्कर्ष यह कि प्रेरक काव्य के समर्थक तथा आदर्शवादी दृष्टि-कोण के पुरस्कर्ता होने के कारण पं० श्यामनारायण पांडेय छायावादी काव्य के स्वच्छन्दतावादी और सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण को स्वभावतः नहीं अपना सके। उनका आदर्शवाद धर्म, संस्कृति, नीति तथा रीति-मर्यादा से युक्त है। उनका काव्य छायावादी कवियों की भाँति वायवी, आत्मनिष्ठ अथवा शाब्दिक गुंजनमात्र नहीं है। अपने बारे में उनका स्पष्ट मत है—

'मैं वीर करुण का अन्धड़ हूँ,
तूफान बवण्डर हूँ।
लेकिन अपनी मर्यादा की,
सीमा के अन्दर हूँ॥'[2]

काव्य-कला का क्षेत्र-विस्तार—

पांडेयजी की प्रारम्भिक कविताओं में काव्य-कला के विषय में सुचिंतित स्थिर दृष्टिकोण का अभाव परिलक्षित होता है। परन्तु आगे चलकर उन्होंने काव्य-कला के लिए सुचिंतित ही नहीं, सुव्यस्थित और सुस्थिर दृष्टिकोण को अपनाया। समाज-सुधार तथा देशोन्नति को उन्होंने अपनी काव्य-कला का लक्ष्य बनाया। परिणाम यह हुआ कि उनकी पर-वर्ती रचनाओं में इतिवृत्तात्मकता कम और संदेश-व्यंजकता उत्तरोत्तर बढ़ी और अन्त में वे आदर्शवादी कवि बन गये। उनका यह पुनरुत्थान-वादी दृष्टिकोण स्वभावतः कवि, काव्य और युग-सापेक्ष है।

कला के सम्बन्ध में पांडेयजी की यह आदर्श मर्मोक्ति है कि—

'जिसकी कला को देख शारदा शिवा को सदा,
वैसी कलावाली बनने की कामना रहे।
जिसको अनोखे नये काम ही से काम रहे,
मान-महिमा की कामना से काम ना रहे।
विचला कहावें कभी भूल के न भूतल में,
चाहे जिसे लाख विपदा से सामना रहे।
हे! हे !भगवान आज दे दो वरदान यही,
ऐसी नायिका का नित्य नायक बना रहे॥

१- 'आरती'—पृ० ३९-४०।
२- एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत।

क्रोध में तुम्हारे विकराल कालिका है बसी ,
शान्ति में तुम्हारी सदा वास कमला का है ।
ज्ञान में छिपे हैं वसुधा के अनमोल ज्ञान ,
बोल में तुम्हारे शुभ-सदन सुधा का है ।।
हास में विलास करता है चन्द्रमा का हास,
उड़ती तुम्हारे पास प्रेमकी पताका है ।।"[1]

उन्होंने अपने सामाजिक उपयोगितावादी काव्यादर्श को निम्नानुसार व्यक्त किया है कि—

"जब तुम अपना पथ भूल गये
तब कवि ने पथ-संकेत किया ।
तुम स्वार्थ पूर्ति में लगे रहे
तुम कविका कहना क्या मानों ।।
कवि ने मधु-मधु रस बरसाये,
तुम सभ्य बने लघु से महान ।
गत के गीतों में बाँधा तो
तुम पुलक उठे कह वर्तमान ।।
गाये जब कवि ने गीत अमर
तब युग-युग के उत्थान हुए ।"[2]

वे शब्द, अर्थ और रस से युक्त काव्य-कला को ही सार्थक मानते हैं—

"शब्द-शब्द के फूल, अर्थ के सौरभ से अर्चन होगा ।
रस की यजन आरती से आह्लादित माँ का मन होगा ।।
अगर कहीं भटकूँगा तो माँ हंस लिये मिल जायेगी ।
फिर क्या कहना है, प्रबन्धमें काव्य-कला खिल जायेगी ।।"[3]

काव्य-विषय के संबंध में उनका विचार है कि—

"उठो केसरीनंदन ! तुम अपने प्रबंध में भाव भरो ।
लिखूँ तुम्हारी कार्य-दक्षता मुझमें ऐसा चाव भरो ।।'[4]

'साकेत' में गुप्तजी ने कला की यह परिभाषा दी है कि—"अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला "[5] और वाल्मिकि ने राम के

१–आरती, पृ० १६१ ।
२– वही पृ० १४१ ।
३–जय हनुमान पृ० १-२ ।
४–'जय हनुमान' पृ० १।
५–'साकेत', सर्ग ५, पृ०१०७ ।

चरित्र को ही काव्य माना है।[1] स्पष्ट है कि पांडेयजी का कवि सहेतु, सोद्देश्य काव्य रचता है। अतः वह विशिष्ट पात्र अथवा विषय के अभाव में काव्य रचना को उपादेय नहीं मानता। हल्दीघाटी, जौहर, तुमुल, जय हनुमान, गोरा-वध, 'शिवाजी' के प्रधान चरित्र उनकी सोद्देश्य काव्य-सृष्टि के आधार हैं। पांडेयजी के ये पात्र भारतीय धर्म, इतिहास तथा साहित्य में पर्याप्त प्रख्यात हैं तथा जन-साधारण के लिए वे शील, शक्ति, कर्तव्य, तप, त्याग, सेवा और वलिदान के केन्द्र हैं। इसीलिए ये चरित्र पांडेयजी के प्रिय-पात्र बने। इनके जीवन से उदात्त तत्त्व ग्रहण करते रहने के कारण पांडेयजी ने आदर्शवादी रचना की। उन्होंने कला को अभिव्यक्ति-भंगिमा माना, भाव-सत्ता अथवा सम्पूर्ण काव्य नहीं। वे आत्मानुभूति को काव्य का मूलस्रोत मानते हैं । यथा—

कविता ने मुझको बाँध लिया रंगीन भुजाओं में।
रस सरावोर हो गया अहम् रख माँ के पावों में ॥
तब से छन्दों में अपनी ही तसवीर बनाता हूँ।
इतिहासों में सोये वीरों को पुनः जगाता हूँ ॥"[2]

'वह व्यथा दूर करनेको कविता में बोला'[3] की भाँति अन्यत्र भी पांडेयजी ने शोकोच्छ्वास को काव्योद्गम स्वीकार किया है। उन्होंने आदि कवि के 'शोकः श्लोक त्वमागतः' की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

केवल आँसू के स्वर में जौहर का गायन माँगा।
* ० ०
अथ से इति तक रो रोकर रानी की कही कहानी
* * *
नाच उठी कविता विह्वल हो, जन-जन का उपकार हुआ।[4]
* * *

और—

"आज उसी के चरितामृत में व्यथा कहूँगा दीनों की।
आज यहीं पर रुदन गीति मैं गाऊँगा बल-हीनों की ॥[5]

१–हल्दीघाटी', शीर्षकविहीन भूमिका, पृ० २२।
२–एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत।
३–गोरा-वध, पृ० ७४।
४–'जौहर' पृ० २४५,२४६, २५०।
५–हल्दीघाटी' पृ० २६।

निष्कर्ष यह है कि छायावादी युग में पांडेयजीकी विषय-निष्ठता से उपदेश प्रवणता परिष्कृत हुई और उनके काव्य में भावना-व्यापारों की प्रधानता के कारण स्थूल वर्णनात्मकता के स्थान पर उदात्त भावुकता से ओत-प्रोत चरित्र-प्रधान लोक-प्रेरक काव्य आविर्भूत हुए।

काव्य-पथः—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने अपनी काव्य भूमिका में लिखा है कि उन्होंने अपना काव्य-पथ अलग बनाया है। पर यह कोई वाद नहीं, यह काव्य-विषय कवि की दृष्टि है। अपनी विचारधारा के अनुसार ही वे यशस्वी काव्य-सृजन की ओर बढ़े हैं।

अनेक वादों के युग में भी वे वादों को बाहों में नहीं बँधे। इसके कई कारण हैं—उन्होंने लिखा है कि "अनेक वादों के इस संघर्ष युग में भी शृंगारकी प्रचुरतासे देवी ऊब रही थी। मुझे कवियोंकी शृंगार-प्रियता असह्य हुई। मैं प्रताप के साथ चल पड़ा, काई की तरह फटकर वादों ने मार्ग दे दिया।"[1]

तत्कालीन स्वातंत्र्य-आंन्दोलनमें शृंगारिक गीतों की आवश्यकता नहीं थी। उस युगको तो ऐसे गीतोंकी आवश्यकता थी जो जन-मनमें उत्साह एवं वीरता का सचार करें। इस सन्दर्भ में पांडेयजो ने लिखा है कि— "इस परतंत्र और भिखमंगों के देश में तेरे शृंगार से मुझे घृणा थी और दुख था, इसलिए तेरे शृंगार के लिए रक्त से रंगी हुई यह चुनरी, शोणित की गंगामें स्नान की हुई यह तलवार और वायुगति वाला यह चेतक लाया हूँ। स्वीकार है ? माँ की आखों में स्नेह उमड़ रहा था, मुस्कराकर कहा— हाँ !

"वीर कविता मुँह-मुँह बोल उठी"[2] में पांडेयजी कीनिम्नांकित पंक्तियाँ उनके पौरुष प्रधान काव्य-विषयक दृष्टिकोण की परिचायिका हैं–

अपनेपन का अधिकार मुझे, अपनी मनमानी किया करता।
पढ़ता हूँ न गा के कभी कविता, पढ़ने में न पानी पिया करता।
कविता न जनानी किया करता, कविता मरदानी किया करता।।"[3]

आर्य-धर्म और आर्य-संस्कृति के आदर्शों को भारतीय जन-जीवन में पुनः प्रतिष्ठित कर देना ही पांडेयजी का उद्देश्य है—

'मैं आर्य धर्म का वीर पुजारी, अलग अकेला हूँ।"[4]

१–वही पुनरावृत्ति के लिए, पृ० २४।
२–'हल्दीघाटी'—पुनरावृत्ति के लिए पृ० २४।
३–'आरती'—पृ० २४।
३ एक अप्राशित रचना से उद्धृत।

और—"हो सकता है, मेरे विचारों से किन्हीं लोगों के विचार मेल न खायँ तो उन लोगों के बारे में मेरा कहना पर्याप्त होगा कि उन्हें इस पवित्र पोथी को परखने का ढ़ंग नहीं है और वे भारतीय संस्कृति की जानकारी से दूर-बहुत दूर- किसी वाद के जाल में उलझ गये हैं ।"[1]

उनका सारा काव्य उक्त दृष्टिकोण से आकलनीय है ।

कवि-कर्मः—

द्विवेदी युग के सशक्त हस्ताक्षर कविवर मैथिलीशरण गुप्त काव्य को रसात्मक एवं शिक्षा-प्रद दोनों मानते थे—

'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए ।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ।।
आनन्द-दात्री शिक्षिका है, सिद्ध कविता कामिनी ।
है जन्म से ही वह यहाँ श्रीराम की अनुगामिनी ।।'[2]

पांडेय जी का कवि-कर्म भी रसात्मकता का सर्जक हैः-

'रस की यजन आरती से आह्लादित माँ का मन होगा ।
* * *
एक-एक झंकृति से छर-छर रस की बूंदे छहर उठें ।
भाव-कल्पनाओं की लहरें जन मन-मन में लहर उठें ।।'[3]

उनका काव्य भी शिक्षाप्रद है । कविके प्रति हिन्दी साहित्य-कला-परिषद की यह उक्ति द्रष्टव्य है-

'कविता को देकर नयी दिशा रोने का कम कर दिया भार ।'[4]

उनकी कविता भी श्रीराम की अनुगामिनी है-

'शब्द में है अर्थ बनकर, अर्थ में है शब्द बनकर ।
जा रहे युग-कल्प उसमें, जा रहा है अब्द बनकर ।।
यदि मिला साकार तो वह, अवध का अभिराम होगा ।
हृदय उसका धाम होगा, नाम उसका राम होगा ।।
* * *
काव्य-रचना कर रहा है, कवि वही, कविता वही है ।'[5]

पांडेय जी की काव्य-साधना सहृदयता और सहानुभूतिसे ओतप्रोत

१-विश्वनाथ पाठक—'रणचण्डी' भूमिका पं० श्यामनारायण पांडेय, पृ० ४
२- 'भारत भारती', पृ० १७१ ।
३- 'जय हनुमान', पृ० १-२ ।
४- खेतान महाविद्यालय, देवरिया की ओर से प्रकाशित वार्षिकी 'भारती' पृ० ४, ई० १६५५ ।
५- 'जौहर', पृ० ३ ।

है। सहानुभूति से कविता उत्पन्न होती है तथा दोष–दुर्गुणों और बुरी बातों का विरोध कर गुण, अच्छाई और आदर्श की प्रतिष्ठा करना उनकी कविता का प्रधान कार्य है। गुप्तजी का भी यही मत है।[1]

पाण्डेयजी भी अपने वर्ण्य-विषय के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं।

'राम रमापति के चरणों की
रजका शिर पर तिलक लगा
श्रद्धा से भरकर पर डर-डर
राम भक्त को रहा जगा
उठो केसरीनंदन तुम
अपने प्रबंध में भाव भरो
लिखूँ तुम्हारी कार्य-दक्षता
मुझमें ऐसा चाव भरो'[2]

निम्नांकित पंक्तियों में उनकी लोक-कल्याण की कामना प्रकट हुई है-

'मानव समाज की अनीतियों को दूर कर
सफल बनाये
जन-जीवन जगाये
देश जाति को उठाये
नित
जय हनुमान
यह।'[3]

इस तरह पाण्डेय जी की काव्य–सृष्टि हमारी दृष्टि में सोद्देश्य लोककल्याणकारिणी काव्य-सृष्टि है। वह आद्यन्त सार्थक है और यही सार्थकता उनकी कविता की प्राणवत्ता है।

राष्ट्रीयता का प्रचार-प्रसार उनके कवि-कर्म का प्रमुख अंग है। अतः पाण्डेयजी का समस्त काव्य राष्ट्रीय भावों का संरक्षक, पोषक और प्रचारक है।

यही कारण है कि उन्होंने लक्ष्मण, राणा प्रताप, शिवाजी, गोरा, हनुमान, पद्मिनी, सीता जैसे आदर्श चरित्रों की सृष्टि की है, जिनकी

१–'हिन्दी कविता किस ढंगकी हो?' सरस्वती १९१४, पृ०६७४, ६७५-६७८
२-'जय हनुमान'. प्रथम सर्ग, पृ० ५।
३–वही, श्रीराम.दूत को प्रणाम, पृ० ४।

धार्मिकता, धीरता, वीरता, शील, सौजन्य देश-प्रेम केवल प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय और आचरणीय भी है।

संक्षेप में, पाण्डेयजी का काव्य रसात्मक, सोद्देश्य, आदर्शवादी, उपयोगितावादी तथा नीतिवादी है। अपनी युग-चेतनाके द्वारा अनुप्राणित समयसूचकता, लोकमंगल की भावना तथा देश-जाति के उत्थान की चेष्टा उनके काव्योद्देश्य में सन्निहित है।

काव्य-रूप:-

महाकाव्य अथवा खण्डकाव्य के सम्बन्ध में पाण्डेय जी का यह कथन द्रष्टव्य है-'महान! इन्हीं कतिपय घटनाओं को मैंने कविता का रूप दिया है। यह खण्डकाव्य है अथवा महाकाव्य, इसमें संदेह है, लेकिन तू तो निःसंदेह ही महाकाव्य है। तेरे जीवन की एक-एक घटना संसार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्वके लिए गर्वकी वस्तु।'[1] निष्कर्ष यह कि शास्त्र-सम्मत विषयों के अनुरूप कथानक खोजने की अपेक्षा यह उचित है कि कथावस्तु के अनुरूप विषय-योजना की जाय। उनका यह विचार भी बड़ा उपयुक्त है कि 'आधुनिक चरित्र, उत्साह, साहस एवं शौर्य-पूर्ण नहीं मिले, जो हैं, नगण्य हैं, उनकी अमरता सिद्ध नहीं है, उन पर छोटी रचना लिखी गयी लेकिन प्रबन्ध लिखने का साहस नहीं हुआ।'[2] इसीलिए उन्होंने प्रधानतः पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रोंको लेकर प्रबन्ध-काव्य लिखे, महाकाव्य और खण्डकाव्य लिखे तथा समय-समयपर प्रेरणा के अनुरूप स्फुट कविताओं और गीतों की भी रचना की है।

काव्य-विषय:-

पं. श्यामनारायण पाण्डेय जी के काव्य का विषय क्षेत्र व्यापक है। वे पुराण और इतिहास के सभी प्रकार के काव्योचित विषयों को ग्रहण करते हैं, पर ऐसा करने पर भी वे अपने युग और काव्यादर्श को कभी नहीं भूलते।

उनकी दृष्टि युग-सापेक्ष है। उनके काव्य-संग्रहों के विषय समयानुकूल एवं चिरकालीन प्रेरणा के स्रोत हैं। 'पाण्डेयजी के भाव आधुनिक हैं.........पर नवीनता का संदेश देते हुए भी हमें अपनेपन की याद दिलाते हैं, युग का संदेश सुनाते हैं।.................. योग और कर्म का सुन्दर सामञ्जस्य हमें आपकी कविताओंमें मिलता है।'[3]

१- 'हल्दीघाटी' शीर्षकविहीन भूमिका, पृ० २२।
२- संशोधक को कवि द्वारा भेजे गये पत्र से उद्धृत १-९-१९७१।
३- 'जौहर का प्रथम तथा अन्तिम अन्तपृष्ठ।

काव्य-भाषा:–

आधुनिक हिन्दी गद्य के जनक भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने अपनी भाषा की उन्नति को ही सब उन्नति का मूल माना था, यथा–

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।'[1]

पं. श्रीधर पाठक हिन्दी प्रेमी थे ।[2] राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का काव्य–भाषा के संबंधमें यही मत था–'हमारी काव्य-भाषा खड़ी बोली ही हो, क्योंकि राष्ट्रीयता एवं व्यापकता के लिहाज से वही विशेष उपयोगी है ।'[3] उक्त विचार के व्यावहारिक प्रचार–प्रसार में गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

कालकी दृष्टिसे पं. श्यामनारायण पाण्डेयजीने खड़ीबोली हिन्दी के प्रचार–प्रसार तथा विकासमें बड़ा योग दिया है । वे हिन्दीके समर्थक सिद्ध-हस्त कवि हैं ।उनके मतसे 'प्राचीनकालमें जब मधुर ब्रजभाषाका बोलाबाला था,-बराबर सुकुमार कल्पनाओं औरकोमल पदावलियोंसे देवी का शृंगार हो रहा था ।..................मुझे कवियों की शृंगार-प्रियता असह्य हुई ।'[4] इसलिए उन्होंने काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली को स्वीकार किया ।[5]

आलोच्य कवि हिन्दी की सेवा के लिए प्रस्तुत है-

'यह लो, वाणी के मन्दिर में आया विनत मनाने को ।
हंस-वाहिनी के चरणों में अपने भाव जगाने को ।।

* * *

माँ, मैं तेरे पाँव पड़ूँ, तू मुझको तजकर जा न कहीं
बीन बजे मेरे अन्तर में आसन और लगा न कहीं ।।'[6]

हिन्दी के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए उन्होंने आत्मसमर्पण का भाव अपनाया है—'अब सरस्वती के सहारे; कल्पना के भरोसे बढ़ रहा हूँ, न जाने कहां और इसलिए जी रहा हूँ कि जी रहा हूँ ।'[7]

१- 'भारतेन्दु ग्रंथावली', दूसरा भाग, पृ० ७३१ ।
२– पं. राजेन्द्र मिश्र : 'हिन्दी गद्य के निर्माता पं. बालकृष्ण भट्ट', पृ० २०० ।
३- 'हिन्दी कविता किस ढंग की हो',सरस्वती, दिसम्बर १९१४ , पृ०६७०-६७१ ।
४- 'हल्दीघाटी', पुनरावृत्ति के लिए, पृ० २४ ।
५- 'वीर कविता मुँह-मुँह बोल उठी' - हल्दीघाटी, भूमिका, पृ० २४ ।
६- 'जय हनुमान' मंगलाचरण, पृ० २ ।
७- 'आरती', चेतना, पृ० १० ।

पं० श्यामनारायणजी पांडेयजी ने इसे आचारित भी किया है—

'पर पथिक पुजारी दोनों हिन्दी भाषा में बोले।
जो सब से अधिक मधुर थी जिसको सुन जड़ भी डोले॥'[1]

इसीलिए हिन्दी साहित्य कला परिषद, देवरिया (उ०प्र०) उनकी हिन्दी सेवा के प्रति श्रद्धावनत हो अपने भाव प्रकट करते हुए कहती है कि

'तेरी ध्वनि से झंकृत होते वाणी-वीणा के तार-तार।[2]

अभिनन्दन का उत्तर देते हुए पांडेयजी ने हिन्दी के समुचित विकास के लिए यह कामना की कि—

'कुछ तुम कहो, कुछ मैं कहूँ, फिर काव्य-रस का स्वाद लो।
× × ×
साहित्य परिषद यह दिनोंदिन कीर्ति का अर्जन करें।
रस सिद्ध सुन्दर लेखकों से इस धरातल को भरे॥'[3]

सारांश यह है कि पांडेयजी हिन्दी प्रेमी हैं। वे उसे फलती-फूलती देखना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने कई बार विदेशों का भ्रमण किया है, यथा–'मैं विदेशों में भी गया हूँ, वर्मा और नेपाल। अखिल वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उद्घाटन के लिए तथा नेपाल सरकार के आमंत्रण पर भारत सरकार की ओर से।'[4]

महाकवि के गुण—

साहित्यकार, विशेषकर महाकवि के सम्बन्ध में पांडेयजी की यह धारणा है कि—

१– महाकवि सदा साहित्य सेवा करने में रत रहे।
२– महाकवि से यही अपेक्षा है कि वह अपने प्रबन्ध काव्यों के लिए आदर्श एवं प्रेरक कथानक का चयन करे।
३– महाकवि अपने काव्यों द्वारा जन-मानस को रसातमक अनुभूति प्रदान करे।
४– महाकवि अपने काव्यों के लोक संस्कारक स्वरूप पर अधिक बल दे।
५– महाकवि अपनी कल्पनाओं और लोकानुभूति को एकाकार कर काव्य सृष्टि करे।

१– 'जौहर' पृ० २४६।
२– खेतान महाविद्यालय, देवरिया, 'भारती' पत्रिका, पृ० ४।
३– वही वही पृ० ५।
४– संशोधक को कवि द्वारा भेजे गये पत्र से उद्धृत, दि० २५ फरवरी १६७१।

६– प्रबन्धों में पर्याप्त सूझ-बूझ और मौलिकता हो ।

७– महाकवि नव युग की क्रान्ति चेतना का वैतालिक हो ।

८– महाकवि की दृष्टि युग सापेक्ष होनी चाहिए । वह अतीत और वर्तमान के साथ-साथ उज्ज्वल भविष्य की कामना करे । अतएव युग के अनुसार वह अपनी कविता को नयी दिशा प्रदान करे । जो भविष्य-द्रष्टा नहीं है, वह महाकवि नहीं है।

९– महाकवि के लिए यह आवश्यक है कि उसकी काव्य भाषा जन-साधारण के लिए सरल और बोधगम्य हो ।

१०-कवि अपनी काव्य रचनाओं द्वारा जन-जीवन को अनेक रूपों में संतुष्ट करे ।

पं० श्यामनारायणजी पांडेय का काव्य-साहित्य उनके इन सभी गुणों का प्रयोग स्थल है । उनके काव्य-साहित्य में ये गुण पूर्णतः प्रतिबिम्बित होते हैं । उक्त गुणों के अनुरूप उनके महत्वपूर्ण विचार उनकी रचनाओं में मिलते हैं । उनके काव्य-संग्रहों की भूमिकाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । काव्य जगत में धारणा, ध्येय, साधना और तप के आधार पर पं० श्यामनारायण पांडेयजी को महाकवि कहना अत्यंत औचित्यपूर्ण और न्याय-संगत है ।

काव्य-कृतियों का कालक्रमागत परिचय

महाकवि पं० श्यामनारायण पांडेयजी विगत ४५ वर्षों से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। अब तक उनकी आठ रचनाएँ[1] प्रकाशित हुई हैं तथा 'परशुराम' नामक काव्य रचना अधूरी एवं अप्रकाशित है। इसी तरह उनकी अनेक स्फुट कविताएँ भी अप्रकाशित हैं। प्रस्तुत अध्याय में उनकी सभी रचनाओं का प्रकाशन-काल-क्रमानुसार परिचय दिया जा रहा है—

क— प्रकाशित रचनाएँ—

१— तुमुल—

'तुमुल' (त्रेता के दो वीर) खंडकाव्य पांडेयजी की सर्वप्रथम रचना है। इसका प्रकाशन ई०स० १९२८ ई० में हुआ। यह एक सर्गबद्ध खंडकाव्य है, जो १९ सर्गों में विभक्त है। पौराणिक ग्रंथों में लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध अपना विशेष महत्व रखता है। इस प्रकार इस काव्य की कथा पुराणाश्रित है। लक्ष्मण के चरित्र में बन्धु-प्रेम, वीरता, पराक्रम और विनम्रता आदि जो विशेषताएँ हैं, उन्हें आधुनिक जन-जीवन में संचरित कर देना कवि का ध्येय है।

'तुमुल' काव्य के प्रथम सर्ग में लक्ष्मण का जन्म-वर्णन है। साथ ही कवि ने उसके गुण-गौरव का गायन किया है। द्वितीय सर्ग में मेघनाद के गुणों का प्रशस्ति-पाठ है। तृतीय सर्ग में, रामचन्द्र युद्ध में करोड़ों वीरों को संहारते हैं। वे युद्ध में मकराक्ष का वध करते हैं। इससे भयभीत हो निशिचर सेना भाग खड़ी होती है। इस वृत्त को सुनकर दशानन मन ही मन भयभीत होता है तथा पुत्र-वध से वह अत्यंत संतप्त हो जाता है। कुछ देर वह चिन्ता मग्न होता तो कुछ देर क्षुब्ध। इसी सर्ग में, उसके मन में आविर्भूत संघर्ष से कथा तीव्र गति से आगे बढ़ती है। चतुर्थ सर्ग में, पुत्र-

---

१— (क) तुमुल (खंडकाव्य) (ख) हल्दीघाटी (महाकाव्य)
(ग) जौहर (महाकाव्य) (घ) आरती (स्फुट काव्य)
(च) रूपान्तर (अनुवाद ग्रंथ) (छ) जय हनुमान (खंडकाव्य)
(ज) गोरा-वध (खण्डकाव्य) (झ) शिवाजी (महाकाव्य)
(ट) परशुराम (अप्रकाशित) (ठ) स्फुट कविताएँ (अप्रकाशित)

मरण से व्यथित रावण शोक करता है। पंचम सर्ग में, वह मेघनाद के समक्ष अपनी व्यथा का ज्ञापन करता है तथा उसे लक्ष्मण से युद्ध करने के लिए प्रेरित करता है। षष्ठ सर्ग में, मेघनाद पिता को धैर्य दे लक्ष्मण का वध करने की भीषण प्रतिज्ञा करता है। सप्तम सर्ग में, मेघनाद का ससैन्य युद्ध प्रस्थान वर्णित है, जिससे 'अब राम के प्राण कैसे बचेंगे' कहकर देव भी डर जाते हैं। अष्टम सर्ग में, 'मेघनाद अब इस भूमि को निर्वीर करके रहेगा', इस विषय को लेकर देवों में बातचीत होती है। नवम सर्ग में, मेघनाद का घोष वीर लक्ष्मण को असह्य हो जाता है और रघुवीर से आदेश ले वे युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान करते हैं। दशम सर्ग में युद्ध-स्थल में लक्ष्मण और मेघनाद का वार्तालाप अंकित है। लक्ष्मण मेघनाद के गुण, यश, कीर्ति की प्रशंसा करते हैं और वे यह भी बता देते हैं कि उसके साथ उनकी युद्ध करने की इच्छा नहीं है। एकादश सर्ग में, लक्ष्मण द्वारा अपनी प्रशंसा सुन मेघनाद भी उनकी प्रशंसा करता है पर दूसरे ही क्षण वह सजग हो लक्ष्मण से युद्ध करने का विचार करता है।

द्वादश सर्ग में, मेघनाद लक्ष्मण को युद्ध के लिए ललकारता है। इस समय लक्ष्मण भी उसके साथ युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। वे रण-भूमि में अपार शौर्य्य दिखाते हैं जिससे 'कैसे बचेंगे प्राण' कहकर निशिचर सेना भाग निकलती है। भागती सेना को मेघनाद धिक्कारता है और वह स्वयं युद्ध के लिए कटिबद्ध होता है। मेघनाद और लक्ष्मण दोनों भयंकर युद्ध करते हैं। मेघनाद द्वारा शक्ति चलायी जाने पर मूर्छित लक्ष्मण धराशायी हो जाते हैं। त्रयोदश सर्ग में इस घटना से राम की सेना में हलचल मच जाती है। चतुर्थ सर्ग में, बन्धु का हाल देखकर रामचन्द्र जी भी दुखित हो धरा पर गिर जाते हैं। वे विलाप करने लगते हैं। पंचदश सर्ग में, लक्ष्मण के मूर्छित होने से रामचन्द्रजी का गहन शोक व्यंजित है। षोडश सर्ग में, सुषेण वैद्य लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी की आवश्यकता बताते हैं और वीर हनुमान समस्त गिरि को उठाकर ले आते हैं। संजीवनी से लक्ष्मण तुरन्त सचेत हो जाते हैं। सप्तदश सर्ग में, जाम्ब-वन्त रामचन्द्रजी से जग, जीव और माया के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछते हैं और रामचन्द्रजी उनके सभी प्रश्नों के उत्तर देते हैं। इतने में विभी-षण राम के पद पर आकर गिरता है और निकुम्भिला में यज्ञ करने वाले मेघनाद को मारने के लिए राम को प्रेरित करता है। वह यह भी कह देता है कि रण-नीति में यह अघ नहीं है। रामचन्द्रजी उसकी बात सुनकर लक्ष्मण को मेघनाद वधार्थ भेजते हैं। लक्ष्मण रामचंद्रजी की वंदना कर

मेघनाद को मारने की प्रतिज्ञा करते हैं।

अष्टादश सर्ग में, लक्ष्मण अपने दल के साथ जाकर याज्ञिक मेघ-नाद का वध करते हैं जिससे तीनों भुवन में आनन्द व्याप्त हो जाता है। एकोनविंश सर्ग में, रामचन्द्र लक्ष्मण की प्रशंसा करते हैं। किन्तु लक्ष्मण अपनी विजय को राम की कृपा का फल कहकर मौन हो जाते हैं। अन्त में वे अपने दल-सहित रामचन्द्रजी का जयगान करते हैं।

लक्ष्मण 'तुमुल' खण्डकाव्य के नायक हैं। वीरता, साहस और पराक्रम की प्रतिमूर्ति लक्ष्मण के चरित्र में विनयशीलता एक ऐसी विशेषता है, जो उनके चरित्र को बहुत ऊँचा उठाती है। उनका शौर्य तो अद्भुत-अपूर्व है, यथा—

'तेरी कैसे क्या करूँ मैं प्रशंसा,
तू ने तो है इन्द्र को भी हराया।
तेरी होती शौर्य से है प्रतिष्ठा,
ज्ञानी मानो विक्रमी मानवों में ॥
आके आँखों से तुझे देख के तो,
इच्छा होती युद्ध की ही नहीं है।
कैसे तेरे साथ में मैं लड़ूँगा,
कैसे बाणों से तुझे मैं हतूँगा ॥'[1]

फिर भी वे अपने कर्तव्य के प्रति सजग हैं। जब मेघनाद लक्ष्मण को युद्ध के लिए ललकारता है तब वे युद्ध के लिए तुरंत सन्नद्ध हो जाते हैं। शत्रु की चुनौती स्वीकार करते हुए वीर लक्ष्मण कहते हैं कि—

'सच है सुधामय भारती से,
खल सुधरते हैं नहीं।
क्या क्षीर पीने पर फणी,
विष त्याग देते है कहीं ॥
यदि युद्ध करना चाहता,
कर युद्ध, मैं तैयार हूँ।'[2]

ऐसे नायक के सम्बन्ध में कवि की कामना है—

"परदुःख से उद्विग्न पर सुख देख होते हर्ष में।
ऐसे जनों का सर्वदा हो जन्म भारतवर्ष में ॥"[3]

१– 'तुमुल', पृ० ५५।
२–'तुमुल' पृ० ६३-६४। ३–'वही' पृ० ७।

'तुमुल' की भाषा खड़ी बोली संस्कृत-सम्पदा से युक्त सरल तथा बोधगम्य है। इसमें ओज गुण व्याप्त है। इस खंडकाव्यके कई प्रसंग रोचक' सरस तथा कलापूर्ण हैं। कहीं-कहीं उक्ति-कौशल की छटा दर्शनीय है तथा वीर एवं करुण रसों का परिपाक, छंद और अलंकारों का समुचित प्रयोग दर्शनीय है ।

इस काव्यके अब तक पाँच संस्करग निकल चुके हैं। इससे इसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस कृति पर हरिऔध जैसे महाकवि और अनेक विद्वानोंकी अमूल्य सम्मतियों से इसके महत् गुणों की कल्पना की जा सकती है।

२ 'हल्दीघाटी':--

'हल्दीघाटी' महाकाव्य पं० श्यामनारायण पांडेयजी की सुप्रसिद्ध रचना है। इसका प्रकाशन ई० स० १९३९ में हुआ। इसमें कवि ने महाराणा प्रताप के जीवन की संपूर्ण घटनाओंको न लेकर केवल युद्ध-सबंधी प्रसंगोंको ही रुपायित किया है। कवि का अभिप्राय महाराणा प्रताप के अप्रतिम दृढ़ व्यक्तित्व के चित्र और उनकी वीरता को प्रकाश में लाना है। भारतीय जन-जीवन में वीरवर प्रताप का आदर्श प्रस्तुत करना कवि का ध्येय प्रतीत होता है।

महाकाव्य का समारम्भ आखेट की घटनासे होता है जिसमें प्रताप और शक्ति सिंह झगड़ने के लिए उद्यत हो जाते हैं। स्वामिभक्त कुल पुरोहित दोनों भाइयों को झगड़े से विरत करने का प्रयत्न करता है। फिर भी दोनों भाई राज पुरोहितकी बात नहीं मानते। इसी कारण पुरोहित अन्ततः आत्म-बलिदान कर लेता है। इस घटना से महाराणा प्रताप बहुत दुखी होते हैं और शक्ति सिंह को मेवाड़ छोड़ देने की आज्ञा देते हैं। प्रताप से प्रतिशोध लेने के लिए शक्ति सिंह अकबर से जा मिलता है। परन्तु इसी समय उसके मन में संघर्ष पैदा होता है—

"अकबर से मिल जाने पर हा, रजपूती की शान कहाँ !
जन्मभूमि पर रह जायेगा हा, अब नामनिशान कहाँ ॥
यह भी मन में सोच रहा था, इसका बदला लूँगा मैं।
क्रोध हुताशन में आहुति मेवाड़ देश की दूँगा मैं ॥"

इस तरह से यह प्रसंग कथा को प्रच्छन्न रूप में गति प्रदान करता है तथा प्रकट रूप में पात्र के मनोवैज्ञानिक संघर्ष को आकार देता है।

द्वितीय सर्ग में, अकवर के मीनाबाजार का उल्लेख , जिस में वह एक राजपूत कन्या के साथ छेड़छाड़ करता है जिसमें उसका सतीत्व जाग

उठता है और वह अपने सतीत्व की रक्षा कर लेती है। तृतीय सर्ग में, अकबर की साम्राज्य विस्तार-नीति का उल्लेख हुआ है। चतुर्थ सर्ग में अकबर के दीन-ए-इलाही का वर्णन है। पंचम सर्ग में अकबर मान सिंह को मुगल साम्राज्य विस्तारित करने का आदेश देता है। उसका आदेश पा मान सिंह शोलापुर जीत लेता है। तदनन्तर उदयपुर में महाराणा प्रताप के यहाँ उसका आगमन होता है। महाराणा प्रताप उसके साथ भोजन करने से इन्कार कर देते हैं। इससे मान सिंह अपमानित अनुभव करता है। उसके मन में संघर्ष पैदा होता है, किन्तु दूसरे ही क्षण वह सजग हो जाता है।

षष्ठ सर्ग में अपमानित मान सिंह अकबर के दरबार में उपस्थित होता है। अनुकूल अवसर देखकर अकबर मान सिंह और शक्ति सिंह को महाराणा प्रताप के साथ युद्ध करनेका आदेश देता है। सप्तम सर्ग में, प्रताप अपने वीरों को मेवाड़ की रक्षा के लिए उद्बोधित करते हैं और स्वयं राजसी सुख-वैभव को त्याग आजीवन स्वतंत्रताकी रक्षा करने का व्रत लेते हैं। राणा प्रताप का दृढ़ निश्चय देखकर सैनिक भी बलिदान के लिए तैयार हो जाते हैं। अष्टम सर्ग में, महाराणा प्रताप अरावली की चोटी पर केसरिया झंडा फहराकर हल्दीघाटी की रणस्थली में आकर जम जाते हैं। नवम सर्ग में, युद्ध के लिए सन्नद्ध वीरों के अपार उत्साह का वर्णन है। दशम सर्ग में, भीलों द्वारा मान सिंह बंदी बनाया जाता है, परन्तु प्रताप के आदेश से उसका छुटकारा हो जाता है। वस्तुतः यह प्रसंग कवि-कल्पना द्वारा निर्मित है, पर इससे मान सिंह का चरित्र बौना हो जाता है।

एकादश सर्ग में दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध होता है। इस युद्ध में राणा की सेना अपार शौर्य दिखाती है जिससे शत्रु-पक्ष अत्यधिक भयभीत हो उठता है। द्वादश सर्ग में, महाराणा प्रताप चेतक पर सवार हो अपार शौर्य दिखलाते हैं। इसी सर्ग में, प्रताप-मान सिंह के युद्ध का वर्णन है। प्रताप के भीषण झटकेसे मानसिंह के हाथी का मस्तक फूट जाता है। प्रताप भौहें चढ़ाते हुए उसे ललकारते हैं, परंतु मान सिंह के हाथ से भाला गिर जाता है। मानसिंह एक इतिहास-प्रसिद्ध वीर था। राणा द्वारा भौहें चढ़ाने मात्र से उसके हाथ से भाला गिर जाने का वर्णन कर कवि ने मान सिंह के साथ न्याय नहीं किया है। इस संघर्ष में हौदे के तल में छिप जाने से मान सिंह की प्राण-रक्षा होती है।

हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप कुछ मुगल सैनिकों द्वारा घेर लिये जाते हैं जिसे देखकर वीरवर झाला की स्वामिभक्ति और उसका देश-प्रेम उभर आता है। राणा का छत्र सिर पर धारण कर वह मुगलोंके

साथ युद्ध करता है और मुगल सैनिक उसे प्रताप समझकर मार देते हैं।

त्रयोदश सर्गमें जब महाराणा प्रताप अपने प्रिय चेतक पर बैठकर नदी पार कर रहे थे और दो मुगल सैनिक उनका पीछा कर रहे थे, उस समय शक्ति सिंह बदला लेने के लिए आया । पर दो मुगल सैनिक प्रताप का पीछाकर रहे हैं–यह देखकर उसका बन्धु-प्रेम उमड़ा और उसने उन दोनों मुगलोंको मार डाला । इसके बाद राणा प्रताप और शक्तिसिंह का मिलन हुआ । इधर स्वामिभक्त चेतक ने थककर दम तोड़ दिया । इससे प्रताप अत्यधिक दुखी हुए । 'हा! चेतक, तू पलकें खोल, कुछ तो उठकर मुझसे बोल' में प्रतापका मानवीय अंतःकरण फूट पड़ता है । चतुर्दश सर्गमें युद्ध-भूमि का वीभत्स दृश्य अंकित है ।

पंचदश सर्गमें पराधीन मेवाड़ भूमि को देखकर प्रताप दुखी होते हैं । वे जंगल-जंगल भटकते हैं । एक दिन उनकी लाड़ली सुता के हाथ से वन-विलाव घास की रोटी छीनकर ले जाता है, और वह भूखसे तड़पकर करुण क्रन्दन करने लगती है । उसका करुण क्रन्दन सुन राणा का हृदय पिघल जाता हैं और वे अकबर के नाम सन्धि-पत्र लिखने बैठ जाते हैं, किन्तु इसी अवसर पर रानी उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करती है । योगायोग से इसी अवसर पर शत्रु-सेना राणा प्रताप को घेर लेती है और वे भीलों की मदद से अरावली में छिप जाते हैं ।

षोडष सर्ग में राणा प्रताप मेवाड़ छोड़ने का निश्चय करते हैं । इसी समय उनके वयोवृद्ध मंत्री भामाशाह उन्हें अतुल सम्पत्ति भेंट करते हैं । इससे राणा को पुनः मनोबल मिलता है । सप्तदश सर्ग में वे मेवाड़ को स्वतंत्र करने के लिए पुनः युद्ध प्रारम्भ करते हैं और कुम्भलगढ़ पर अधिकार कर लेते हैं । तदनन्तर एक वर्ष के भीतर ही वे सब किलों को अपने अधीन कर लेते हैं, जिससे मेवाड़ में चारो ओर आनन्द का वातावरण फैल जाता है ।

हल्दीघाटी के नायक महाराणा प्रताप संकल्प और साधना के मूर्तिमान प्रतीक हैं । उन्होंने विपत्तियों के विरुद्ध संघर्ष कर स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए यह प्रतिज्ञा की थी कि-

'जब तक स्वतंत्र यह देश नहीं,
है कट सकता नख-केश नहीं ।
मरने-कटने का क्लेश नहीं,
कम हो सकता आवेश नहीं ।।'[1]

१– 'हल्दीघाटी', सर्ग ७, पृ० ३८, २–पृ० ८६. ३–सर्ग ५, पृ० ७४ ।

समसामयिक भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम में राणा प्रताप की यह प्रतिज्ञा देश-प्रेमियों के लिए प्रत्यक्ष प्रेरणा थी, जीवन्त आदर्श थी।

राणा प्रताप एक ऐसे लोकादर्श शासक थे, जो अपनी जनता का दुखदर्द नहीं देख सकते थे, अतः स्वातंत्र्य संग्राम में देश के लिए फकीरी बाना धारण करने पर भी वे यही कहते हैं:-

'परवाह नहीं, परवाह नहीं
मैं हूँ फकीर अब शाह नहीं।
मुझको दुनियाँ की चाह नहीं
सह सकता जन की आह नहीं॥'[1]

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए प्रताप का उत्साह देखिए:-

'स्वतंत्रता का कवच पहन
विश्वास जमाकर भाला में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस
समर-वह्नि की ज्वाला में॥'[2]

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए वह अकेला ही प्रस्तुत है:-

'यह तो जननी की ममता है जननी भी सिर पर हाथ न दे।
मुझको इसकी परवाह नहीं चाहे कोई भी साथ न दे॥
विष-बीज न मैं बोने दूंगा अरि को न कभी सोने दूँगा।
पर दूध कलंकित माता का मैं कभी नहीं होने दूँगा॥'[3]

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में गांधी के अनुयायी और आजाद हिन्द सेना के वीरों का भी यही व्रत था। पांडेयजी के आदर्शवाद के अनुसार यदि भारत के वर्तमान शासक महाराणा प्रताप के चरित्र एवं हल्दीघाटी के संदेश को ग्रहण कर संकटकालीन स्थिति में अधिक सुदृढ राष्ट्रीय नीति अपना सकें तो भारतका भविष्य निश्चित रूप से उज्जवलतर होगा। राणा की देशभक्ति, ब्रत और उसके त्याग का राजस्थान की जनता ने अत्यन्त आदर और उत्साहसे स्वागत किया, यह किसी से छिपा नहीं है।

'हल्दीघाटी'के विविध इतिवृत्तात्मक प्रसंगोंके बीच अनेक कवित्वमय स्थल दिखायी देते हैं। इसमें ओजपूर्ण भाषा और वीर रस का सौंदर्य सराहनीय है। वीर रस के अतिरिक्त हल्दीघाटी में करुण, बीभत्स आदि रसों का भी अच्छा परिपाक हुआ है। कहीं-कहीं प्रकृति के प्रभावशाली चित्र भी अपनी सुकुमारता एवं सौन्दर्य-सुषमा सहित प्रस्तुत हुए हैं।[4]

१-'हल्दीघाटी' सर्ग ७पृ० ८६, २-पृ० ७४।
३-पृ० ८६, ९०, ४-पृ० १२०।

उत्साह की अनेक अंतर्दशाओं की व्यंजना और युद्ध की अनेक परिस्थितियों के सजीव वर्णन से परिपूर्ण यह काव्य खड़ी बोली साहित्य में अपना कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखता। आधुनिक हिन्दी काव्य में युद्ध के समाकुल वेग और संघर्ष का ऐसा सजीव और प्रभावपूर्ण वर्णन बहुत कम देखने को मिलता है।[1]

कवि की भाषा अत्यंत प्रांजल, प्रवाहयुक्त, सजीव, मुहावरेदार और आवेगपूर्ण है। कवि उर्दू की मर्सिया पद्धति से प्रभावित-सा जान पड़ता है। इसी से इस काव्य में ओज एवं रोचकता की प्रचुरता है। इस काव्य का अभिव्यंजना पक्ष निस्सन्देह आकर्षक और प्रभावशाली है। कथावस्तु की सप्राणता, वीर चरित्र, रसों का निर्मल परिपाक, अलंकारों और छंदों की सुव्यवस्थित योजना इसकी विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भावुकता का प्रदर्शन भी विषय, चरित्र और प्रसंग के अनुकूल है।

जौहरः—

'जौहर' नामक महाकाव्य पाण्डेयजी के यशस्वी कवि-जीवन का कीर्तिस्तम्भ है। ई० स० १९४४ में इसका प्रकाशन हुआ। रानी पद्-मिनी का जौहर राजपूतों के इतिहास में अपना विशेष महत्व रखता है। इस काव्य में कवि ने पद्मिनी के चरित्र को महत्ता प्रदान की है। इसकी कथा इतिहास प्रसिद्ध घटना है आग की लपटों से परिपूर्ण यह महाकाव्य २१ चिनगारियों में विभक्त है।

प्रथम चिनगारी में रानी पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत है, जिससे अलाउद्दीन उसके रूप-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हो जाता है। द्वितीय सर्ग में वह पद्मिनी की प्राप्तिके लिए चित्तौड़ पर आक्रमण करता है और इस युद्ध में राजपूतों के द्वारा परास्त होने पर वह दिल्लीकी ओर भाग जाता है, किन्तु उसकी काम पिपासा बनी रहती है और इसीलिए उसकी भौहें रावल पर तनी रहती हैं। तीसरी चिनगारी में अलाउद्दीन के उन्माद का वर्णन है। पद्मिनी की रूप–ज्वाला में वह मतवाला बन जाता है। चित्तौड़ से आये हुए दूत से पद्मिनी के विषय बातें सुनकर वह फिर से चित्तौड़ की ओर गमन करता है। चौथी चिनगारी में रावल रतन सिंह वनमें आखेट खेलने चला जाता है। वहाँ अलाउद्दीनके गुप्तचर रावल का पीछा करते हैं और वे उसके घोड़े को मारकर रावल को लोहे की जंजीरों से बाँध लेते हैं। पाँचवीं चिनगारी में अलाउद्दीन बंदी रतन सिंह को यह सूचना देता है कि वह पद्मिनी को शाही हरम में भेज दे। छठीं

१- 'हल्दीघाटी' सर्ग १२, पृ० १३६।

चिनगारी में राणा लक्ष्मण सिंह अपने दरबारियों को रातका स्वप्न सुनाते हैं जिससे सभी राजपूत वीर क्षुब्ध हो जाते हैं। सातवीं चिनगारीमें अला-उद्दीन की सूचना पाते ही रानी पद्मिनी मुरझा जाती हैं, परन्तु किसी का स्वर सुनकर वह जाग जाती हैं और अपने हाथमें तलवार लेकर दरबारमें उपस्थित होती है। दरबारमें वह पति–मुक्ति और सतीत्वकी रक्षाके लिए वीरों को उद्‌बोधित करती है। रानी की प्रेरणा से गोरा-बादल बैरी का दलन करके रतन सिंह को मुक्त करानेकी प्रतिज्ञा करते हैं। आठवीं चिन-गारी में, गोरा वीरों से सुसज्जित सात सौ डोलों के साथ अरि-शिविर की ओर प्रस्थान करता है। नवीं चिनगारी में, रावल मुक्त होकर चितौड़ की ओर प्रस्थान करता है। दसवीं चिनगारी में, गोरा का शत्रु-सेना के साथ भयंकर युद्ध वर्णित है जिसमें गोरा अपने अतुलित शौर्य का परिचय दे वीर-गति पाता है।

ग्यारहवीं चिनगारी में, गोरा के मरण से रानी चिन्तित हो जाती है। बारहवीं चिनगारी में, राजपूतों के हृदय में वीरता जागृत होती है तथा उनके हृदय में अपरिमित उत्साह संचरित होता है। तेरहवीं चिन-गारी में, राजपूतों और अलाउद्दीन की सेना के बीच भयंकर युद्ध होता है। इस युद्ध में चितौड़ नगर ध्वंस हो जाता है। चौदहवीं चिनगारी में दुर्ग के टीले पर दरबार लगता है जिसमें एक ओर रानी अपने जौहर का निश्चय प्रकट करती है और दूसरी ओर वह वीरों को गढ़ का द्वार खोलकर शत्रु पर चढ़ायी करने की प्रेरणा देती है। पन्द्रहवीं चिनगारी में, जौहर के पूर्व रानी पद्मिनी शृंगार करती है। सोलहवीं चिनगारी में, रानी पति की पूजा कर उससे विदा लेती है। सत्रहवीं चिनगारी में, रानी मन्दिर में जाकर शिव-प्रतिमा की पूजा करती है। अठारहवीं चिनगारी में, रानी प्रद्‌मिनी अपनी सखियों के साथ जौहर की ज्वाला में कूद पड़ती है। उन्नीसवीं चिनगारी में, रावल रतन सिंह शत्रु-सेना से लड़ते-लड़ते अपार शौर्य दिखाते हुए वीरगति पाता है। इक्कीसवीं चिनगारी में, कवि पद्मिनी की कथा के माध्यम से देशवासियों को जगाता है। इस प्रकार इस काव्य में सती शिरोमणि वीर नारी पद्‌मिनी के सतीत्व और बलिदान का बड़ा प्रभावशाली चित्र अंकित है।

महारानी पद्‌मिनी इस महाकाव्य की नायिका हैं। कवि भारतीय नारी के जीवन में पद्‌मिनी के आदर्श को प्रस्तुत करना चाहता है। उसके ही शब्दों में रानी पद्‌मिनी की पति-भक्ति देखिए—

'आँधी से आज मिला दूँ, अपनी तूफानी गति को।
मैं मुक्त करूँ क्षणभर में, कारा से अपने पति को ॥'[1]

अपने इस कार्य को सफल बनाने के लिए वह अकेली ही प्रस्तुत है—

'इन्कार करो यदि तुम तो, मैं बनूँ महाकाली-सी।
उत्साह न हो तो बोलो, गरजूँ खप्परवाली-सी ॥

× × ×

मैं आग बनूँ बैरी बन में दावा-सी लग जाऊँ।'[2]

कविवर पं. श्यामनारायणजी पांडेय प्रकृति-चित्रण में पटु हैं। 'जौहर' में चंद्रोदय, अंधेरी रात, ग्रीष्म, बसंत आदि के चित्र उनकी लेखनी से खूब सँवरे हैं। इस महाकाव्य में वीर-करुण रस का परिपाक तथा छंद योजना सुनियोजित है।

'जौहर' की भाषा शुद्ध, सहज, सरल, सुबोध मुहावरेदार, भावानुकूल तथा प्रवाहमय है। अलंकारों का सृजन इस काव्य में बहुत मार्मिक है। इसमें भावुकता का प्रदर्शन विषय, चरित्र और प्रसंगानुकूल है। प्रस्तुत महाकाव्य रोचक तथा कलापूर्ण है। प्रभावोत्पादकता इसकी विशेषता है। इसमें ओज गुण व्याप्त है और इसकी अभिव्यंजना-शैली निस्सन्देह आकर्षक है।

'जौहर' में जिस प्रकार वीर और करुण रस के सुन्दर स्थल हैं, उसी प्रकार कहीं-कहीं इतिवृत्तात्मकता, नीरसता और अव्यवस्था के चिह्न भी देखने को मिलते हैं। इसमें जीवन के नाना पक्षों पर विचार नहीं किया गया है।

डा. गोविन्दराम शर्मा ने 'जौहर' के कथानक में कतिपय असंगतियों कीओर संकेत किया है। उनके अनुसार पद्‌मिनीके चितारोहणकी सूचनाकी आकाशवाणी सुनकर आखेट के समय रतन सिंह का मूर्छित होकर गिर पड़ना, चिता पर जलने से पूर्व शृंगार कर तत्पर पद्‌मिनी में रति-भाव का उदय और चित्तौड़ के किले में चारो ओर लाशों के बीच अलाउद्दीन की पद्‌मिनी को प्राप्त करने की विफलता आदि अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं।[3]

१- जौहर, पृ० ७७। २- जौहर, पृ० ७६। ३- डा० गोविन्दराम शर्मा: हिन्दीके आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४६८।

इस संबन्ध में हमारा मत है कि रावल रतन सिंह रानी पद्मिनी के रूप और प्रेम में आकंठ डूबा हुआ था। ऐसी प्रिया के बारे में चितारोहण की आकाशवाणी सुनकर राजा रतनसिंह का मूर्छित होकर गिर पड़ना स्वाभाविक है। हाँ, यह आकाशवाणी महाकाव्यों की रूढ़ि का परिपालन मात्र है।

रूप-यौवन-संपन्ना रानी का जौहर से पूर्व शृंगार करना, दर्पण में अपने रूप को देखना और फिर अन्तिम समय पति की भुजाओं में बंध जाने की प्रबल इच्छा आदि बातें स्वाभाविक प्रतीत होती हैं।

और रही अलाउद्दीन की बात। वह तो निर्लज्जता का प्रतीक था। उसने तो अपनी काम-तृप्ति के लिए चित्तौड़ को धूल में मिला दिया था, फिर यदि वह लाशों के बीच पद्मिनी को खोजे तो उसके जैसे कामातुर व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक ही है। डा. रामसकल राय शर्मा का भी यही मत है।[1]

आरती:--

'आरती' में पांडेयजी की स्फुट कविताएँ संकलित हैं। इसका प्रकाशन ई० स० १९४६ में हुआ। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' के बाद 'आरती' का प्रकाशन खटक सकता है। पांडेयजी की 'आँसू के कण' (ई० १९३२) और 'रिमझिम' (ई०स० १९३४) दो अन्य छोटी-छोटी रचनाएँ हैं। ये दोनों रचनाएँ पू० माताजी एवं श्रद्धेय गुरुदेव हरिऔध के निधन पर लिखी गयी हैं। ये दोनों रचनाएँ भी उनके 'आरती' संग्रह में संकलित हैं।

कविवर पं० श्यामनारायण पांडेयजी मूलतः ओजस्विता के कवि हैं। अतः उनकी ओजभावपूर्ण रचनाओं ने हिन्दी साहित्य में विशिष्ट प्रभाव अंकित किया है। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' तो उनके बहुचर्चित महाकाव्य हैं। पांडेयजी के पाठकों को उनके प्रबन्ध काव्यों से जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसकी तुलना में उनकी स्फुट कविताओं से अधिकांश पाठक अनभिज्ञ हैं। सूक्ष्म दृष्टि से मूल्यांकित किया जाय तो 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' की पृष्ठभूमि पांडेयजी की ये स्फुट कविताएँ ही हैं। ये स्फुट कविताएँ कवि-जीवन के कौमार्य और यौवन काल की रचनाएँ हैं।

इसमें एक विषय, एक रस की नहीं, अनेक विषयों और अनेक रसों की कविताएँ हैं। भिन्न-भिन्न अवसरों पर, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में और भिन्न-भिन्न छन्दों में लिखी गयी ये कविताएँ पाठक वर्ग को अतीव आनन्द प्रदान कर सकती हैं। इनमें कभी उत्तुंग-शृंग से पाषाणों में बल खाते हुए पृथ्वी की ओर उतरनेवाले निर्झरों का प्रवाह मिलेगा तो

१- डा० रामसकल राय शर्मा: 'द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य, पृ० ३८६।

कभी सावन-भादों की उमड़ती हुई गंगा की वेगवती गति। इसके अध्ययन में पाठकों को जीवन और जगत के आदि-अन्त का ज्ञान तो होगा ही, साथ ही उस आदि-अन्त के बीच के सुख-दुख का सहज अनुभव भी प्राप्त होगा। मैं क्या हूँ, जगत् क्या है, मेरा जगत से क्या सम्बन्ध है, इत्यादि समस्याओं का सरस समाधान पाकर पांडेयजी की स्फुट कविताओं का पाठक गद्गद् हो सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक महत्तत्व, वायु, तेज, अप और क्षिति नाम से पाँच खण्डों में विभक्त है। इसमें तत्वों के गुणानुसार कवि द्वारा कविताओं के संकलन का प्रयास प्रशंसनीय है।

इस पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि इसमें कविताओं के शीर्षक नहीं दिये गये हैं। ये कविताएँ अपना शीर्षक आप बतलाती हैं। इनमें ही इन कविताओं का सामर्थ्य है।

मनुष्य जीवन में पत्नी का स्थान असाधारण होता है, क्योंकि नारी के बिना पुरुष को सारा विश्व सूना लगता है। कवि का जीवन-व्यापी यह अनुभव नारी-जाति को गौरवान्वित कर देता है। कवि के शब्दों में नारी की महत्ता देखिए:—

'पुरुष-नारी से बनी है सृष्टि ही प्रभु की निराली।
एक प्राणी के बिना रे, विश्व सूना, सृष्टि खाली ॥'[1]

कदाचित् यह कवि की आपबीती की स्वीकृति है!

मनुष्य–जीवन में पग–पग पर दुःख है। इसलिए वह भव-सागर से तर जाना चाहता है। कविकी निम्नांकित पंक्तियाँ इसकी परिचायक हैं–

मुझको उतार दो अपार भव-सागर से।
भावना करो न, भव-सिन्धु में बहाने बहाने की ॥''[2]

उक्त पंक्तियों में पांडेयजी की भारतीय वैष्णव भावना मुखर हो गयी है।

एक स्थान पर कवि देश के युवकोंको फिर से स्वर्णिम अतीत को लौटा लाने की प्रेरणा देता है—

एक ही निमेष में खलों को बरबाद करो!
पहला जमाना फिर विश्व पर ला दो तुम ॥'[3]

तत्कालीन स्वातंत्र्य-आंदोलन के अन्तर्गत कांग्रेसी नेताओं के क्रिया-कलापों को देखकर कवि का उन पर से विश्वास उठ गया था, अतः उन्होंने कहा कि—

१- 'आरती' पृ० ६६। २–'आरती' पृ० २३। ३–वही, पृ० ८०।

"खादी पहनेंगे मसलेंगे तुम्हें पैरों तले"[1]

अहिंसा-मार्ग से स्वराज्य का लक्ष्य समीप न पाकर कवि ने सुभाष की ओजस्वी वाणी में गर्जना की है—

उधर कौमी तिरंगे को सँभाले बोस कहता है।
बढ़ो तूफान से वीरों चलो दिल्ली-चलो दिल्ली ॥'[2]

पांडेयजीकी राष्ट्र-प्रेम सम्बन्धी कविताओंमें कहीं अतीतका गौरव-गान है, तो कहीं उद्‌बोधनके भाव, कहीं क्रान्ति का स्वर है, तो कहीं बलि-दान का संदेश।

ये कविताएँ उनके काव्याभ्यास, साधना, आराधना और तपस्या की निष्पत्तियाँ हैं। इनकी भाषा सहज, सरल बोधगम्य तथा प्रवाहमय है। ये कविताएँ ओज-गुण सम्पन्न हैं। यत्र-तत्र संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है फिर भी वे संस्कृत तत्सम शब्द भावों की व्यावहारिकता में बाधा उपस्थित नहीं करते।

'आरती' की कविताओं में रस-परिपाक एवं अलंकार-योजना स्वाभाविक है, फिर भी शिल्प की दृष्टि से इस रचना में वैषम्य अधिक है। कवि की कौमार्य और यौवनकालीन रचनाओं में ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

समय-समय पर रचित रचनाओं का संग्रह होने के कारण इस पुस्तक का ऐतिहासिक मूल्य है। कवि की कला, सौन्दर्य-भावना और विचार-धारा को समझने में 'आरती' काव्य-संग्रह अत्यन्त उपयोगी है।

५. पं० श्यामनारायणजी पांडेय द्वारा अनूदित ग्रंथ—'रूपान्तर'—

अनूदित रचना साहित्य सृष्टि का एक अंग है। पांडेयजीने मौलिक रचनाओं के साथ-साथ अपनी अनूदित कृति से भी हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि की है। उन्होंने संस्कृत की काव्यकृति 'कुमारसंभवम्' का तथा कुछ श्रेष्ठ रूसी कविताओं का हिन्दीमें अनुवाद किया है। यहाँ हम पांडेयजी द्वारा अनूदित कृति 'कुमारसंभवम्' के 'रूपान्तर' पर विचार करेंगे।

कुमारसंभव

कालिदास प्रणीत 'कुमारसंभव' एक श्रेष्ठ रचना है। मधुरता, सर-सता और वास्तविकता की दृष्टि से इस रचना का असाधारण महत्व है। हमारे आलोच्य कवि पं० श्यामनारायण पांडेय ने इस रचना का सप्तम सर्ग पर्यन्त अनुवाद किया किया है' जो ई० स० १९४८ में प्रकाशित हुआ है। संक्षेप में, 'कुमारसंभव' की कथा इस प्रकार है—

१-'आरती' पृ० १६०। २-वही पृ० ६१।

प्रथम सर्ग का आरम्भ हिमाचल के वर्णन से होता है।— हिमाचल और मैना से पार्वती का जन्म होता है। पार्वती के वयस्क होने पर एक दिन नारदजी हिमाचल के घर आते हैं और पार्वती को देखकर कहते हैं कि एक दिन यह पार्वती शिवजीकी पत्नी होगी। शिवजी हिमाचल पर तप करते हैं। पार्वती उनकी सुश्रूषा करती है। द्वितीय सर्ग में, तारकासुर से पीड़ित होकर सब देवता ब्रह्माजी के पास जाते हैं। वे उन्हें पार्वतीके द्वारा शंकरजी के मनको आकर्षित करनेकी सलाह देते हैं। इंद्र सहायताके लिए कामदेवको बुलाते हैं। इसके बाद तृतीय सर्गमें, मदन-दहन और चतुर्थ सर्ग में रति विलापका वर्णन है। पंचम सर्गमें, पार्वती पिताकी आज्ञा से तप करने जाती है। शंकरजी ब्रह्मचारी के वेश में उनकी परीक्षा लेने आते हैं। वे शिवजी की निन्दा करते हैं। पार्वती क्रुद्ध होकर वहाँ से जाना चाहती हैं। शंकरजी प्रसन्न होकर असली रूप में प्रकट होते हैं और अपना प्रणय व्यक्त करते हैं। षष्ठ सर्ग में, अंगिरा प्रभृति ऋषि शंकर जी की ओर से पार्वती की मँगनी करने के लिए हिमाचल के पास जाते हैं। सप्तम सर्ग में, शिव-पार्वती का विवाह होता है।

पं. श्यामनारायणजी ने 'रूपान्तर' में मूल श्लोकों का अनुवाद श्लोकों में ही किया है। उन्होंने काव्यगत भाव-घटक का रूपान्तर बड़ी योग्यता से किया है। यथा—

"तेषामाविर्भूद्ब्रह्मा परिम्लानमुखश्रियाम्।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव॥"[1]

अर्थ-प्रातःकाल में मुकुलित कमलों के तालाब के सम्मुख सूर्य के प्रादुर्भाव के समान (तारकासुर के भय से) उदास मुख वाले इन्द्रादि देवताओं के समक्ष, दयासागर ब्रह्मदेवजी स्वयं प्रकट हुए।

रूपान्तर-

'हत-श्री सुरों के सामने
शोभित पितामह यों हुए।
मुकुलित-कमल-सर सामने
शोभित सुबह रवि ज्यों हुए॥'[2]

और-

'हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चंद्रोदयारम्भ इवाऽम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि॥'[3]

१- श्री पं. प्रद्युम्न पाण्डेय : 'कुमार संभव' सान्वय प्रकाश चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी-१, १९७० ई० स०। २- 'कुमारसंभव' का रूपान्तर, २।२, पृ० १६। ३- 'कुमारसंभव' ३।६७।

अर्थ–शंकर भी चंद्रोदय के होने से समुद्र की तरह थोड़े-से अधीर होकर बिम्बफल के समान ओष्ठवाली पार्वती के मुख को तीनों आँखों से देखने लगे।

रूपान्तर–

'शशि के उदय से सिन्धु-सम
हर-धैर्य कुछ डर से भगे।
बिम्बाधरोष्ठ उमा वदन पर
फेरने लोचन लगे॥'[1]

उक्त उद्धरणों में पाण्डेयजी के अनुवाद में मूल विचार अथवा भावका कोई अंश यथाशक्ति छूटने नहीं पाया है। विचार और भाव घटक ही नहीं, पाण्डेयजी ने यथासंभव शब्दशः अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। यथा–

'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीऽवगाह्य, स्थितपृथिव्या इव मानदण्ड॥'[2]

अर्थ–उत्तर दिशा में देवतास्वरूप हिमालय नामक पर्वतों का राजा पूर्व और पश्चिम समुद्र में प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदण्ड की तरह विद्यमान है।

रूपान्तर—

'उत्तर दिशा में देव-सम
गिरिराज हिमगिरि राजता।
घुस पूर्व-पश्चिम-सिन्धु में
भू-मानदण्ड विराजता॥'[3]

और–

'कपोलकण्डूः करिभिर्विनीतुं, विघट्टितानां सरल द्रुमाणाम्।
यत्रस्रुतक्षीरतया प्रसूतः, सानूनिगन्धः सुरभिःकरोति॥'[4]

अर्थ-(इस पर्वत में) हाथियों से गण्डस्थल की खुजली को मिटाने के लिए रगड़े गये देवदारु वृक्षों के दूध चूने से पैदा हुई सुगन्ध शिखरों को खुशबूदार बनाती है।

१- 'रूपान्तर' सर्ग ३, पृ० ४८।
२- 'कुमारसंभव' १।१।
३- 'रूपान्तर' सर्ग १, पृ० ३।
४- 'कुमारसंभव' - १।९।

रूपान्तर—

'गज गाल की खुजली मिटाता
सरल तरु पर रगड़कर ।
संघर्ष से है दूध चूता
सुरभिमय बनता शिखर ।।'[1]

शब्दशः अनुवाद ही नहीं, पांडेयजी ने यथासंभव शब्द-प्रतीकोंके अन्तरण का भी प्रयास किया है—

'तद्गच्छ सिद्धै कुरु देवकार्यम्……… ।[2]

रूपान्तर—"सुरकार्य के सिद्ध्यर्थ बन जाओ ।'[3]

'अयि जीवननाथ! जीवसि ……. ।'[4]

रूपान्तर—'अयि प्राणनाथ, सप्राण हो ।'[5]

'अद्यप्रभृत्यवनितांऽगि! तवाऽस्मि दासः
क्रीतः तपोभिः…………… ।[6]

रूपान्तर—'शिव ने कहा तप से तुम्हारे,
क्रीत दास बना अमल ।'[7]

'वृत्तं हि महतं सताम् ।'[8]

रूपान्तर—'सज्जन-चरित होता विमल ।'[9]

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध है कि पांडेयजीने इस अनुवाद कार्य में कहीं भी उलझनें नहीं आने दी हैं । उनका उक्त अनुवाद अधिकांशतः स्वच्छ और स्पष्ट है ।

लेकिन इतना सब कुछ होने पर भी उक्त 'रूपान्तर'में आनुगुणत्व की कमी है । यथा, निम्नलिखित अवतरण देखिए-

'अवचितबलिपुष्पा वेदिसंमार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री ।
गिरिसमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदा तच्छिरश्चन्द्रपादैः।।'[10]

१– 'रूपान्तर', सर्ग १, पृ० ३ ।
२- 'कुमारसंभव', ३।१८ ।
३- रूपान्तर–सर्ग ३, पृ० ३६ ।
४– 'कुमारसंभव'–४।३ ।
५- रूपान्तर-सर्ग ४ पृ० ५४ ।
६- कुमारसंभव-५।८६ ।
७- रूपान्तर- सर्ग ५, पृ० ८२ ।
८- 'कुमारसंभव' ६।१२ ।
८- रूपान्तर, सर्ग ६, पृ. ८७ ।
१०– कुमार संभव १, ६० ।

रूपान्तर—

शुचि वेदिका पर जल कुसुम
कुश नित उमा रखती रहीं।
शिर–चन्द्र-किरणों से सदा वह
दूर श्रम करती रहीं ॥'[1]

उपर्युक्त अनुवाद में कवि ने मूल में होने वाले 'सुकेशी' विशेषण का 'रूपान्तर' में प्रयोग नहीं किया है और मूल में 'वेदिसंमार्गदक्षा' का भाव 'रूपान्तर' में 'शुचिवेदिका' शब्द प्रयुक्त करने से पैदा नहीं होता।

कहीं–कहीं रूपान्तर करते समय मूल में होने वाले शब्द कवि द्वारा छूट गये हैं, यथा—

'नवपरिणयलज्जाभूषणां तत्र गौरीं
वदनमपहरन्तीं तत्कृताक्षेपमीशः।
अपि शयनसखीभ्यो दत्तवाचंकथंचित्
प्रमथमुखविकारैर्हासयामास गूढ़म् ॥'[2]

रूपान्तर—

'नवलज्जिता सखिमुखरिता
शिव कर्ष से गूढानना।
प्रमथादि गण ने उस नवोढ़ा
को हँसाया मुँह बना ॥'[3]

उपर्युक्त अनुवाद में 'नवपरिणयलज्जा' के स्थान पर 'नव–लज्जिता' शब्द का प्रयोग किया गया है। उक्त अनुवाद में 'परिणय' शब्द प्रयुक्त नहीं है। इस कारण भावाभिव्यक्ति में विघात उत्पन्न हुआ है। 'नवपरिणयलज्जा' में विवाहोपरांत नव उत्पन्न होनेवाली लज्जा में जो भाव है वह केवल 'नव लज्जिता' शब्द से प्रकट नहीं होता। इसी तरह उक्त मूल श्लोक में 'दत्तवाचंकथंचित्' शब्द प्रयुक्त है, परन्तु रूपान्तर में उनके समानार्थक शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है।

कहीं-कहीं पर आदर्शवादिता के कारण भी परिवर्तन हुआ है—

'अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधाऽऽलिंगन धूसरस्तनी।'[4]

श्लोक के अनुवाद में कवि ने 'धूसरस्तनी' के स्थान पर ऐसा शब्द रखा है जिसमें इस अंग का स्पष्ट कथन बच जाता है, यथा—

१– 'रूपान्तर'-सर्ग १, पृ० १५। २- 'कुमारसंभव' ७।९५।
३– 'रूपान्तर'–सर्ग ७, पृ० १२६। ४– कुमारसंभव'–४।४।

'धूसर कुचा विक्षिप्त केशा, विह्वला होने लगी।'[1]

उपर्युक्त अनुवाद में 'धूसरस्तनी' के स्थान पर 'धूसर कुचा' का प्रयोग मात्र है।

कवि द्वारा प्रस्तुत 'रूपान्तर' में परिवर्तन, परिवर्द्धन अथवा परित्याग के ऐसे कई स्थल प्राप्य हैं। उपर्युक्त उद्धरणों द्वारा उनका अनुमान लगाया जा सकता है।

पांडेयजी संस्कृत के आचार्य तथा विद्वान हैं। उनका पौराणिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान भी परिपूर्ण है। उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा इसका प्रमाण है।

'कुमारसंभव' के द्वितीय सर्ग में १ से १५ तक के श्लोकों का रूपान्तर करते समय कवि ने एक भी शब्द में परिवर्तन नहीं किया। यहीं पर यह उल्लेखनीय है कि उनके अर्थ में भी परिवर्तन नहीं आने दिया। उनके द्वारा अनूदित श्लोक उनके श्रेष्ठ अनुवादक होने के प्रमाण हैं; यथा-

'यदमोघमपामन्तरुप्तं बीजमज! त्वया।
अतश्चराचरं विश्वं प्रभवस्तस्य गीयसे।।'[2]

रूपान्तर—

'जल में अजन्मा, तव करों से
बीज बिखराया गया।
इससे चराचर सृजन-कर्त्ता
तू सदा गाया गया।।'[3]

पांडेयजी के पद्यानुवाद की विशेषता यह है कि उन्होंने अनुवाद में हिन्दी की प्रकृति का सर्वत्र ध्यान रखा है। उन्होंने यथासंभव संस्कृत की ललित उक्तियों की हिन्दी में रक्षा की है, जैसे 'तमातिथेय बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती'[4] का अनुवाद हुआ है—'गिरिराज कन्या ने किया अर्चन अतिथि का ध्यान से।'[5] इसी प्रकार 'सहस्त्ररश्मिना साक्षात्सप्रणामम्'[6] के लिए उन्होंने लिखा है-'उस सूर्य ने·······विनत अभिवादन किया'[7]।

सर्वांशिन दृष्टिपात करने पर 'कुमारसंभव' का 'रूपान्तर' पर्याप्त सफल अनुवाद माना जा सकता है। पांडेयजी के अनुवाद में मूल ग्रंथ

१- रूपान्तर-पृ ५४। २- कुमारसंभव-२।५। ३- रूपान्तर सर्ग २; पृ० २०। ४- कुमारसंभव- ५-७९। ५- रूपान्तर सर्ग ५, पृ० ७१। ६- कुमारसंभव- ६-७। ७- रूपान्तर-सर्ग ६; पृ० ८६।

की आत्मा सुरक्षित है। इस रूपान्तर' में 'कुमारसंभव' से रंचमात्र भी रस की न्यूनता नहीं है और इसकी रस-निष्पत्ति मौलिक रचना जैसी है।

६- जय हनुमान—

'जय हनुमान' पांडेयजी का प्रमुख खंडकाव्य है। ई० स० १९५६ में इस रचना का प्रकाशन हुआ। इस रचना में सीतान्वेषण का उद्देश्य लेकर हनुमानजी हमारे सम्मुख आते हैं। पांडेयजी हनुमानजी के आदर्श चरित्र को भारतीय जीवन में प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसकी कथा मानस के सुन्दर कांड पर आधारित है जो सात सर्गों में विभक्त है।

प्रथम सर्ग में, हनुमान के विगत महान कृत्यों की स्मृति दिलाकर उनके पराक्रम को जगाते हुए जाम्बवन्त कहते हैं कि हे हनुमान! बाल्यावस्था में तुम सूर्यलोक से लौट चुके हो और इन्द्र के वज्र को भी सहन कर चुके हो। अत: भयंकर उत्साह से उठो और माता सीता का पता लगाकर हम लोगों का तथा रघुवंश का उपकार करो। इतना सुनते ही हनुमानजी पर्वताकार रूप धारण कर उड़ चले। मार्ग में सुरसा मुख फैलाकर हनुमान को निगल जाने के लिए झपटी किन्तु हनुमान उसके मुख में घुसकर अत्यंत सूक्ष्म शरीर धारण कर कर्णछिद्र से बाहर आ गये। फिर सिंहिका ने हनुमान की परछाँईं को लोहे की सींकचों की भाँति जकड़ लिया पर हनुमान ने उसके उदर में घुसकर तथा अपने नखों से उसका पेट चीरकर अथाह सागर में उसके शरीर को फेंक दिया।

द्वितीय सर्ग में, लंकापुरी में प्रवेश करते समय हनुमान को लंका नामक राक्षसी रोकती है। हनुमानजी उसे थप्पड़ मारकर जमीन पर गिरा देते हैं। लंका कहती है कि सीता अशोक वन में हैं। यह पता पाते ही हनुमान फूले न समाये। लंका का सौन्दर्यावलोकन कर वे अशोक वन में पहुँचे। वहाँ उन्होंने कृशिता, दीना सीता को देखा और रो पड़े। इतने में रावण का आगमन हुआ, जिसके कारण हनुमानजी वृक्ष के ऊपर चढ़कर बैठ गये। रावण ने सीता को फुसलाया तथा धमकाया, फिर भी सीता उसके कहने में नहीं आयीं, अपितु उन्होंने दुराचारी रावण को फटकारा। बाद में त्रिजटा का स्वप्न सुनकर सभी राक्षसियाँ सीता के चरण छूकर भाग गयीं। वृक्षारूढ़ हनुमान यह सारा दृश्य देखते रहे।

तृतीय सर्गमें, वृक्षसे उतरकर हनुमानजी राम-यश, सुग्रीव-राम-मित्रता और बालिवध का वर्णन करते हैं। पर मायावी रावण के प्रदेश में अकस्मात हनुमान को देख उनपर विश्वास न कर सकने के कारण

हनुमान राम द्वारा दी गयी अँगूठी सीताजी को दिखाकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। अँगूठी पाकर जिज्ञासा से विभिन्न प्रश्न पूछकर सीता श्रीरामका समाचार जानना चाहती हैं। उनके प्रश्नों के उत्तरमें हनुमानजी ने रामकी दिनचर्या ही सुना दी। बादमें सीता ने उन्हें चूड़ामणि दी और हनुमान सीताकी आज्ञा लेकर फल खा-खाकर अशोक वनको उजाड़ने लगे। यह समाचार सुनकर क्रोधित रावणने हनुमानको पकड़ लानेकी आज्ञा दी।

चतुर्थ सर्ग में, लंकेश की आज्ञा से सभी राक्षस दौड़कर एक बार ही वायु-सुत पर अस्त्रों का प्रहार करने लगे, पर अकेले हनुमान ने उस विशाल सेना का संहार कर दिया। फिर अक्षयकुमारने हनुमान पर भयंकर आक्रमण किया। परंतु हनुमान जी ने उसका गला फाड़कर उसे मार डाला। तत्पश्चात् मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर हनुमानको अचेत कर दिया और वह हनुमान को बाँधकर रावण के दरबार में ले गया।

पंचम सर्ग में, हनुमानजो अपना सही परिचय देते हैं। आवेश में आकर रावण कहने लगा कि यह वाचाल बन्दर है, तेल खौलाकर इसे उसमें डाल दो। परंतु विभीषण की बात सुनकर रावण हनुमान की पूँछ में वस्त्र बाँधकर घी–तेल की सहायता से जला देने का आदेश देता है। शीघ्र ही राक्षसों द्वारा हनुमान की पूँछ में आग लगा दी गयी।

षष्ठ सर्ग में, हनुमान की प्रज्ज्वलित पूँछ में सभी राक्षस सिमटने लगे और लंका-दहन शुरू हुआ। रावण हत-प्रभ सा बन्दरकी लीला देखता रहा। बाद में स्वपुच्छ बुझाकर हनुमान जी सीता के दर्शन कर राम के पास लौट आये।

सप्तम सर्ग में, हनुमान जी राम-चरण स्पर्श कर तथा चूणामणि रखकर बोले–"उनके उच्छ्वासों में भी आपके ही यश की ध्वनि है। सीता अब अधिक दिन जी न सकेंगी। अतः शीघ्र ही उन्हें मुक्ति प्रदान करें।" सजल नेत्रों से राम हनुमान को कंठ से लगाकर बोले—"मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता। अपने शरीर-स्पर्श से राम ने हनुमान के ज्ञान को जगा दिया। सभी वानर हनुमान के साथ राम की जय-जयकार करने लगे।

अनेक आदर्श गुणों से युक्त हनुमानजी इस खंडकाव्यके नायक हैं। निम्नांकित पंक्तियों में उनकी स्वामि-भक्ति प्रकट होती है—

"हनूमान सुरसा से बोले–माँ क्षण करो प्रतीक्षा तुम।
राम कार्य मैं कर आऊँ दो अल्प समय की भिक्षा तुम।।"[1]

१ 'जय हनुमान'-सर्ग १, पृ० १४।

अपने बल तथा साहस पर उन्हें दृढ़ विश्वास था। इसीलिए तो वे लंकानगरी को उठा लाने की बात करते हैं—

"कौन जलधि तैरे मैं तो नभ के पथ से ही जाऊँगा

*　　　　*　　　　*

"सबकी सम्मति हो तो मैं लंका को यहीं उठा लाऊँ
और नहीं तो आज्ञा दें लंका में आग लगा आऊँ।"[1]

इसमें संष्कृत-निष्ठ बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है। यत्र-तत्र ध्वन्यात्मकता और नाद- सौन्दर्य के भी दर्शन होते हैं। इस काव्य में सर्वत्र अभिधात्मक अभिव्यक्ति प्रधान है। कविका शब्द-चयन और उसकी वाक्य रचना भावाभिव्यक्तिमें सफल सिद्ध हुई है। इसमें प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों का प्रवाह दर्शनीय है।

शैली सरल तथा सुबोध है। सीधी उक्ति उसकी विशेषता है। आल्हखंड की भाँति घोषणा के रूप में किसी बात को गरजकर कहने वाली शैली इस काव्य में कई स्थलों पर विद्यमान है। यथा—

"वीर राक्षसों, पेट चीर कर
फल निकाल लो, प्राण हरो

*　　　　*　　　　*

वीरो, जल्दी करो पकड़ लो
भग न सके पाजी बन्दर"[2]

इस काव्य में उपमा, दृष्टान्त, रूपक वक्रोक्ति, विषम आदि अलंकार स्वाभाविक गति-प्रवाह में भावाभिव्यक्ति के लिए स्वतः रमणीयता उत्पन्न करते हैं और उसमें वीर, करुण, अद्‌भुत आदि रसोंका अच्छा परिपाक हुआ है। पुस्तक के प्रारम्भ में मुक्त छन्द का प्रयोग द्रष्टव्य है—

उस अदम्य तेजमूर्ति
बल-स्फूर्ति के निधान
जगद्वन्द्य
हनूमान के बलिष्ठ चरणों में
नमस्कार
चरणों की रजकण में
नमस्कार
नमस्कार।"[3]

१-'जय हनुमान'-सर्ग १, पृ० १०, ११। २-वही, सर्ग ३, पृ० ५३।
३-वही पृ० ३१।

और इस काव्य में सर्वत्र मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

ताटंक–
"इसीलिए रावण सीता को
आश्रम से हर लाया है।"[1]

मार्मिक स्थलों की पहचान, चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, आदि तत्त्वों का सम्यक् समावेश इस काव्य में परिलक्षित होता है। इतने छोटे से कथानक में विभिन्न भावों को प्रसंगानुकूल भर देना तथा पाठकों को प्रत्येक स्थिति में घटना से तादात्म्य स्थापित करने के लिए बाध्य कर देना कवि की कल्पना एवं कला-कुशलता का प्रमाण माना जाना चाहिए। सारांश यह है कि भाव एवं कला के समन्वित रूप से 'जय हनुमान' एक सुन्दर एवं सफल काव्यकृति है।

७ गोरा-वध—

'गोरा–वध' पांडेय जी का एक प्रमुख खंडकाव्य है जो सात सर्गों में विभक्त है। यह खंडकाव्य 'जौहर'से थोड़ा-सा परिवर्तन करके निकाला गया है। इसका प्रकाशन ई० स० १९५९में हुआ है। वीरवर गोराका नाम राजपूतों के इतिहास में अमर है। आज भी गोरा की वीरता की कहानी राजपूतानेके घर-घर में कही जाती है। अतः ऐसे वीरपुंगव, नरश्रेष्ठ गोरा की वीरता का संचार भारतीय जन-जीवन में कर देना 'गोरा–वध' का उद्देश्य है।

प्रथम सर्ग में, वीरवर गोराका गौरवगान करते हुए कवि ने उसकी आरती उतारी है। द्वितीय सर्ग में, भरे दरबार में राणा लक्ष्मण सिंह ने विगत रात्रि को देखा हुआ सपना सुनाया, जिसे सुन पद्मिनी के सतीत्व की रक्षाके लिए गोरा की भौहें कुटिल हो गयीं। तृतीय सर्ग में, अलाउद्दीन की सूचना पाकर रानी पद्मिनी वीरांगना का रूप धारण कर दरबार में उपस्थित हुई और उसने देश, धर्म तथा सतीत्व की रक्षा के लिए वीरों का आह्वान किया। इस अवसर पर पद्मिनी के समक्ष उपस्थित होकर गोरा-बादल ने रावल रतन सिंह की मुक्ति की प्रतिज्ञा की।

चतुर्थ सर्ग में, गोराने अरि-शिविरकी ओर ससैन्य प्रस्थान किया। पंचम सर्ग में, गोरा ने रावल रतन सिंह को मुक्त कराया। षष्ठ सर्ग में, गोरा का अलाउद्दीन की सेना के साथ भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में

१–जय हनुमान ३, पृ० ४४।

अपार शौर्य दिखाते हुए वीरवर गोरा ने वीरगति पायी। सप्तम सर्ग में, कवि ने विविध तीर्थों का दर्शन कर गोरा की प्रतिमा के पास आ उसकी पूजा की और उसने "गोरा का वीरोचित व्रत अमर हो,[1] की कामना के साथ काव्य-ग्रंथ पूर्ण किया। इस काव्य में गोरा की वीरता, उसके साहस और बलिदान का चित्र अंकित है।

'गोरा' इस खंडकाव्य का नायक है। वह अनेक आदर्श गुणों से युक्त है। कवि के शब्दों में गोरा की भीषण प्रतिज्ञा एवं उसका दृढ़ आत्म-विश्वास देखिए:—

"यदि हम गोरा बादल, तो वैरी दल दलन करेंगे
बन्दी को मुक्त करेंगे, क्षण भर भी कल न करेंगे।।"
हम क्रुद्ध जिधर जायेंगे, हम विजय उधर पायेंगे।
हम तुझसे सच कहते माँ, हम युद्ध विजय लायेंगे।।"[2]

उसका उद्धोत्साह देखते बनता है—

"प्रलय मेघ-सा गरज म्यान से एक प्रखर तलवार निकाली।
साथ-साथ हुंकृति के उसने गोहुवन-सी फुफकार निकाली।।"[3]

उपर्युक्त उद्धरणोंमें गोरा की स्वामि-भक्ति, देश-भक्ति और वीर-भावना प्रकट होती है।

डा० उदयनारायण तिवारी का मत है कि—"भारतीय दासता की कड़ियाँ अब टूट चुकी हैं और स्वतंत्रता प्राप्तिके साथ-साथ युवकोंमें उत्साह की तरंगें उद्वेलित हो रही हैं। वस्तुत: किसी देश में वीर काव्य की रचना तभी होती है जब देश स्वतंत्र होता है। आशा है, भविष्य के कवि ऐसी रचनाओं से युवकों में उत्साह और जोश भरकर भारतीय राष्ट्र को सबल बनाने में सहायक होंगे।"[4] इस परिप्रेक्ष्य में 'गोरा-वध' का मूल्य बढ़ जाता है। 'गोरा-वध' खंडकाव्य प्रस्तुत कर कविने हमारी राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति की है।

'गोरा-वध' वीर और करुणरस-सिंचित काव्य है। प्रस्तुत काव्य में ओज गुण व्याप्त है। काव्यके प्रसंग रोचक, सरस और कांतिमान हैं। प्रभावोत्पादकता, सुबोधता और ओजस्वी काव्य-शैली इसकी विशेषताएँ हैं।

'गोरा-वध' की भाषा सहज, सरल एवं प्रवाहमय है। छन्दों का चुनाव एवं अलंकारों का सृजन पर्याप्त सुव्यवस्थित है।

१-'गोरा-वध'—पृ० ८६। २-वही, पृ० ३३। ३-वही, पृ० ६२-६३।
४-डा० उदयनारायण तिवारी: 'वीर काव्य' पृ० २५।

शिवाजीः—

'शिवाजी' पं० श्यामनारायण पांडेयजी का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसका प्रकाशन ई० स० १९७० में हुआ। यह एक ऐसी कृति है, जिसकी आधुनिक युगीन श्रेष्ठ हिन्दी महाकाव्योंमें गणनाकी जा सकती है। 'शिवाजी' महाकाव्य सर्ग-बद्ध रचना है। यह महाकाव्य २५ सर्गोंमें विभक्त है। सारा संसार जानता है कि मराठा इतिहास में छत्रपति शिवाजी का स्थान असाधारण है। पाण्डेय जी के इस प्रबन्ध काव्य की कथा मराठों के इतिहास से जुड़ी है और भारतीय जन-जीवन में शिवाजी के आदर्शों को वहन करना कवि का अभीप्सितार्थ है।

प्रथम सर्ग में, नायक शिवाजी के जन्मोत्सव का वर्णन किया गया है। द्वितीय सर्ग में, दादा जी कोंडदेव की छत्रछाया में शिवाजी की अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा-दीक्षा वर्णित है। तृतीय सर्ग में, शिवाजी अपने पिताजी शाहजी के साथ बीजापुर के दरबार में उपस्थित दिखाये गये हैं। बीजापुर के भरे दरबार में आदिलशाह के सामने मुजरा का ढ़ोंग न करके उन्होंने अपने स्वाभिमानी मस्तक को झुकने नहीं दिया तथा गो-वध बन्द करने के लिए आदिलशाह से कहा। इसी प्रसंग में उन्होंने भविष्य में धार्मिक, साहसिक और निर्भीक जीवन जीने का संकेत दिया। तत्पश्चात् सईबाई के उनका विवाह हुआ। चतुर्थ सर्ग में, शिवाजी-रामदास भेंट-वार्ता का विवरण है, जिसमें समर्थ गुरु रामदास शिवाजीको स्वधर्म, स्व-स्वदेश तथा स्वजाति की रक्षा के लिए प्रेरित करते हैं।

पंचम सर्ग में शिवाजी और उनके साथियों की स्वतंत्रता विषयक मन्त्रणाओं का उल्लेख है। षष्ठ सर्ग में, शिवाजी साथियों की सहायता से तोरण किले पर स्वतन्त्रताका भगवा निशान फहराते हैं। शिवाजी के सेनानायक आबाजी सोनदेव, कल्याण-दुर्ग के मौलाना अहमद को सपरिवार जेलमें बन्दकर देते हैं। सप्तम सर्गमें, आबाजी सोनदेव अहमदकी पुत्रवधू को शिवाजी के सम्मुख उपस्थित करते हैं जिससे शिवाजी अधिक कुपित होते हैं। वे शत्रु की पुत्रवधू में भी अपनी माता के दर्शन करते हैं और उसे 'मातृवत् परदारेषु'की भावना के अनुरूप सम्मान दे विदा करते हैं। अष्ठम सर्ग में, बाजी घोरपड़े शिवाजी के स्वराज्य में अडंगे डालता है। वह शाह जी को धोखे से कैद कर लेता है। शिवाजी बाजीराव की चालबाजी देख कर उसपर आक्रमण करते हैं और उसका काम तमाम कर शाहजी को आदिलशाही कैदसे मुक्त करवाते हैं। आगे चंद्रराव मोरे शिवाजी के रास्ते में आता है। अतः शिवाजी उसे भी राघोजी बल्लाल के

द्वारा मरवाकर जावली पर अपना अधिकार कर लेते हैं। नवम सर्गमें, कृष्णाजी द्वारा अफजल खाँ के बुरे इरादों का पता लग जाता है, दशम सर्ग में, शिवाजी बाई के जंगल में 'शठं प्रति शाठ्यम्' की नीति के अनुसार अफजल खाँ का वध करते हैं। इस घटना से शिवा के बल, विक्रम की कीर्ति चारो ओर फैल जाती है और विदेशी शक्तियाँ भी उनसे डरने लगती हैं।

एकादश सर्ग में, शाहजी अपने पुत्र शिवाजी के सम्मुख बीजापुर के साथ संधि करने का विचार करते हैं। परन्तु शिवाजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते। द्वादश सर्ग में शिवाजी पूना में शाइस्ता खाँ की दुर्गति करते हैं। त्रयोदश सर्ग में आक्रमण की तैयारी के साथ आने वाले मिर्जा राजा जयसिंह को शिवाजी पत्र भेजते हैं। चतुर्दश सर्ग में राजा जयसिंह शिवाजी के सम्मुख औरंगजेब के साथ संधि करने का प्रस्ताव रखकर उन्हें आगरा दरबार में उपस्थित होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। पंचदश सर्ग में 'उत्तिष्ठत जाग्रत' मंत्र का भावार्थ समझ लेने के लिए शिवाजी राज्य की सुव्यवस्था कर आगरा चले जाने का निश्चय प्रकट करते हैं।

षोडश सर्गमें शिवाजी आगरा दरबारमें प्रवेश करते हैं जहाँ उनका अपमान होने पर वे रौद्र रूप धारण कर लेते हैं। उनके रौद्र रूप को देखकर शत्रु भयभीत हो जाते हैं और अन्तमें उन्हें बन्दी बना लिया जाता है। सप्तदश सर्गमें जेबुन्निसा के द्वारा उन्हें औरंगजेब के दुष्ट हेतु का पता लगता है और वे बड़ी सतर्कता से, बड़ी सावधानी से कैद से भाग निकलते हैं। उनके भाग जाने के बाद आगरा में हलचल मच जाती है। औरंगजेब के मन में जो डर पैदा होता है, उसका मनोवैज्ञानिक संघर्ष कवि ने बड़ी खूबी से 'शिवाजी' में अंकित किया है। अष्टदश सर्ग में शिवाजी अपने गुरु के साथ साधु का वेश धारण कर ब्रजभूमि, इलाहाबाद काशी होते हुए सकुशल रायगढ़ पहुँचते हैं। औरंगजेब उन्हें पकड़ने के लिए धरती आसमान एक कर डालता है पर उसे सफलता नहीं मिलती। एकोनविंश सर्ग में माता जीजाबाई शिवाजी के समक्ष सिंहगढ़ को प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट करती हैं। विंश सर्गमें माता की इच्छानुसार शिवाजी तानाजी को बुलावा भेजते हैं।

एकविंश सर्ग में वीर तानाजी मातुश्री जीजाबाई का शुभ आशीर्वाद ले सिंहगढ़ की ओर प्रस्थान करने का निश्चय करते हैं। द्वाविंश सर्ग

में वीर तानाजी अपने साथियों के साथ सिंहगढ़ की ओर प्रस्थान करते हैं। त्रयोविंश और चतुर्विंश सर्गमें तानाजी और उदयभानुके बीच भयंकर युद्ध होता है। इस युद्ध में तानाजी अपार शौर्य दिखाते हुए वीरगति प्राप्त करते हैं। 'सिंह खोकर केवल कंकड़ पत्थर का गढ़ पाया' कहकर शिवाजी नरवीर तानाजी के निधन पर गहरा शोक प्रकट करते हैं। पंचविंश सर्ग में औरंगजेब शासित ग्राम-निवासी दो मुसलमान शिवाजी के कल्याणकारी राज्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार इस महाकाव्य में आदर्श राष्ट्रनायक छत्रपति शिवाजी का चरित्र अंकित है।

शिवाजी इस महाकाव्य के नायक हैं। उनका चरित्र अनेकानेक आदर्श गुणों से युक्त है। तत्कालीन परिस्थिति का आकलन करते हुए भगवान रामचन्द्र के तेजोमय जीवन से प्रेरणा ले शिवाजी ने अपने कुछ साथियों सहित कड़ी तोड़कर अपनी स्वतंत्र सत्ता प्रस्थापित करने का संकल्प लिया—

'किला-किला स्वतंत्र हो
स्वतंत्र वर्ण वेश हो
स्वतंत्र जाति–जाति हो
स्वतंत्र यह स्वदेश हो

* * *

पराधीनता की कड़ी तोड़ने के लिए
प्रीति जोड़ने के लिए
धर्म-रीति नीति में
प्रतीति जोड़ने के लिए
तोरण किले की ओर
बाज शिवराज चले।'[1]

उन्होंने स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए जनता को प्रेरणा दी। उनकी वाणी का यह प्रभाव था कि उसे सुनते ही जनता में बलिदान के लिए अपरिमित उत्साह आविर्भूत होता था। यथा—

'हम सिंहगढ़ पर भगवा फहरा के रहेंगे।
प्राणों की आहुति दे ध्वजा लहरा के रहेंगे।'[2]

वे अपने लक्ष्य के प्रति सदा सजग थे—

१–'शिवाजी' पृ० ६७–७८। २–वही, आरती कैसे उतारूँ? (भूमिका), पृ० १६।

'आज से ही
बैठ रहना न ठीक है
लक्ष्य अभी दूर है
चलो धर्म युद्ध है
शत्रु के विरुद्ध काल आज बड़ा क्रुद्ध है।' [1]

देश की दुर्दशा देख शिवाजी जैसे प्रजापालक नेताका चुप बैठना अस्वाभाविक था। इसलिए उन्होंने अपनी स्वतंत्रता के शोषकों से रण छेड़ा—

'पिताजी! देख देश का नशा मुझ से बैठे रहा गया।
पिताजी! स्वतंत्रता के लिए शोषकों से रण छेड़ा है।'[2]

इस काव्य का इतिवृत ऐतिहासिक है। घटना प्रसंगों का क्रम इतिहास के अनुकूल है। इससे कथानक संगतिपूर्ण हो गया है। चरित्र-चित्रण में पात्रगत इतिहासकी रक्षा करते हुए भी कविने उसका पर्यवसान आदर्श में किया है। अतः वह इतिवृत के अतिरिक्त पाठक को और भी कुछ दे सका है।

प्रस्तुत महाकाव्य की भाषा शुद्ध, सरल तथा प्रवाहमय है। अतः 'शिवाजी' की भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी समझ लेने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। शब्दों के चयन में संतुलन रखा गया है। काव्य शैली सरल तथा बोधगम्य है। प्रभावोत्पादकता प्रस्तुत काव्य की विशेषता है। काव्य में वर्णित प्रसंग रोचक, सरस तथा कलापूर्ण हैं। इस काव्य में ओज माधुर्य और प्रसाद गुण व्याप्त है। इसमें शब्दशक्तियों तथा रीतियों का समुचित विकास दृष्टिगोचर होता है।

इस महाकाव्य में वीर, रौद्र श्रृंगार आदि रसों का सम्यक परि-पाक हुआ है तथा छन्दों का चयन और अलंकारों का सृजन सुनियोजित है।

प्रस्तुत महाकाव्य प्रकृति-चित्रण, मार्मिक स्थलों की पहचान, मनोवैज्ञानिकता, चरित्र-चित्रण, सौंदर्य-वर्णन आदिसे परिपूर्ण है। रमणी-यता, कथानक का प्रवाह, पात्रों के संवाद और वातावरण की दृष्टि से यह एक सफल रचना है। पात्रोंकी मानसिक अनुभूति, विभिन्न विचारों और परिस्थितिजन्य समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर कवि ने भाव और कला के समन्वित रूप से काव्य को सुन्दर रूपाकृति प्रदान की है। यह इस महाकाव्य की मुख्य विशेषता है।

१- 'शिवाजी' -सर्ग ६, पृ० ८१। २- वही, सर्ग ११, पृ० १३७।

(ख) अप्रकाशित रचनाएँ—

१– परशुराम—

'परशुराम' पं० श्यामनारायणजी पांडेय की अपूर्ण एवं अप्रकाशित रचना है। अपने युग में अतुलनीय साहस तथा शौर्य के बल पर बड़े-बड़े उन्मत्त सत्ताधारिओं को परास्त कर परशुराम ने अपनी वीरता का अनुपम आदर्श प्रस्थापित किया था। उनकी ओजस्वी तथा प्रेरणाप्रद कथा विविध पुराणों में मिलती है।

परशुराम का वर्णन करते हुए पांडेयजी लिखते हैं कि परशुराम का भाल पावन-त्रिपुण्ड से दीप्त है। उनके गात से किरण ज्वाल प्रस्फुटित हो रही है। उनका तप प्रखर तेज से दीप्तिमान और अंतराल दृढ़ है। उनके जटाजूट में विद्यमान बिल्व-पत्र मानों शंकर के पूजन का प्रसाद है। उनके कंठ में रुद्राक्ष की माला विद्यमान है। उनके कर में विद्यमान कुठार शक्ति तथा क्रांतिकी याद दिलाता है। उनके यज्ञोपवीतके धागों में ब्रह्मचर्य का सामगान चुप है। उन्होंने अपनी गतिशील पादुका की ध्वनि से राज-वर्ग का मान पाया है। उनका उत्तरीय वल्कल भस्मांकित तथा कटि-प्रदेश बाघम्बर से वेष्ठित है। उनका गौर-वेश गौरव-सा जलता दिख पड़ता है और उनका रुद्र-वेश आकर्षक है। उनकी कटि में मृगचर्म विद्यमान है तथा कन्धे से उलझा हुआ महाचाप मानो शिव की प्रसन्नता का निशान है।

उनका मुख तेजस्वी तथा नेत्रों में अग्नि-सरिता प्रवाहित है। उनकी जिह्वा पर शिवस्तोत्र विद्यमान है। उनके परशु की रुधिरेच्छु धार भयानक प्रतीत होती है। पांडेयजी ने परशुराम के व्यक्तित्व का वर्णन कर उन्हें ब्राह्मणत्व का साकार राम, क्षात्र-कर्म का अवतार राम, वर्णाश्रम के आधार राम कहा है। उनके मतानुसार क्षात्र-तेज से दीप्त ब्राह्मण ही इस धरती पर पूजनीय होता है।

परशुराम इस काव्य के नायक हैं। उनका चरित्र धर्म-श्रद्धा स्वाभिमान, अपरिमेय शक्ति, साहस, पराक्रम और वीरता आदि गुणों से मण्डित है। उनका चरित्र शक्ति तथा स्फूर्ति-प्रदाता है। परशुराम की वीरता का गौरव-गान करते हुए कवि ने लिखा है—

> 'स्वेच्छाचारी क्षितिपतियों के,
> जीवन के गर्वीले प्रदीप।
> बुझ गये फूँक से ही तेरी,
> उड़ गये शून्य में वे महीप।।'[1]

१– 'परशुराम' से उद्धृत।

वर्तमान धर्म, कर्म, संस्कृति और सभ्यता का विनाश होता हुआ देखकर कवि फिर से एक बार उनकी रक्षा के लिए परशुराम को जगा रहा है—

'सद्धर्म कर्म के शिथिल गात,
स्वच्छन्द, तिरस्कृत सदाचार।
तू मौन साध कैसे बैठा,
जमदग्नि रेणुका के कुमार॥'[1]

इस प्रकार यह काव्य कवि की उत्कट पौरुष-निष्ठा और परशु-राम भक्ति का प्रतीक है। इसका मूल उद्देश्य समाज का उत्थान तथा भारतीय जन-जीवन में वीरता का संचार करना है।

अपूर्ण होने पर भी यह रचना संस्कृत शब्द-सम्पदा से युक्त, ओज-गुण से आपूर्ण तथा छन्द-योजना, काव्य-प्रयोजन एवं उपयोगिता आदि की दृष्टि से सफल कृति है। पांडेयजी का 'परशुराम' 'ब्राह्मण गरिमा' तथा 'क्षात्र तेज' ले हिन्दी जगत् में यथाशीघ्र अवतीर्ण हो, यही हमारी कामना है।

२–अप्रकाशित स्फुट कविताएँ—

प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य और खण्डकाव्यों के अति-रिक्त श्यामनारायणजी पांडेय ने अनेक स्फुट कविताएँ भी लिखी हैं, पर उनमें से अधिकांश रचनाएँ अप्रकाशित हैं। भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखी गयी स्फुट कविताएँ सरस हैं। इनकी भाषा सरल तथा बोधगम्य है। कवि–जीवन के उत्तरकाल में लिखित रचनाएँ होने के कारण ये स्फुट रचनाएँ कवि के परिपक्व दृष्टिकोण की परिचायिका हैं।

पांडेयजी ने इस तरह की प्रचुर बहुमूल्य कृतियाँ रचकर हिन्दी साहित्य की पर्याप्त सेवा की है, पर उन्हें इस बात का बड़ा दुख है कि उनका 'शाश्वत' उन्हें अब तक नहीं मिला—

'मैं मन्दिर–मन्दिर ढूँढ़ चुका,
पर शाश्वत मिला नहीं।
मेरे मानस का कुसुम आज तक,
खुलकर खिला नहीं॥'[2]

शाश्वत की 'खोज' में जो आनन्द है, वह 'प्राप्ति' में नहीं है। कवि ही नहीं, ज्ञान, विज्ञान सभ्यता, संस्कृति सब के लिए यह नियम रूप से बंधनकारक है। खोजते रहने में जो रस, जिज्ञासा और कौतूहल है, पा

१–'परशुराम' से उद्धृत।
२– 'लेकिन अपनी मर्यादा की सीमा के अन्दर हूँ'–से उदधृत।

लेने पर उसकी समाप्ति हो जाती है, और यह समाप्ति साधक के साथ-साथ साधना की भी मृत्यु का कारण होती है। संक्षेप में, अतृप्ति में ही जीवन और खोज में साधना का सच्चा सुख है। पांडेयजी की यह अतृप्ति चिरंतन हो, यही हमारी शुभेच्छा है।

भोग से उनकी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं हुईं। मद-मोह और माया से बँधा हुआ कवि एक रहस्यवादी की भाँति तृष्णा के घेरे में आकर अपने घर के रतन को अँधेरे में ही खोजता फिरता है, पर उसका रतन उसे नहीं मिलता। यथा—

'मद मोह लोभ से बँधा हुआ,
तृष्णा के घेरे में।
अपने घर का ही रतन ढूँढ़ता,
निपट अँधेरे में।
चलते-चलते थक गये पाँव,
पर काशी मिली नहीं।
अविनाशी की पावन प्रतिमा,
मेरी पुकार से हिली नहीं॥'[1]

प्रिय पत्नी के निधन से कवि के हृदय पर बड़ा आघात हुआ, अतः उसे अपना जीवन नीरस और सूना-सूना-सा लगता है। कभी-कभी तो मानव-सुलभ दुर्बलता के कारण उसे जीवन से मृत्यु ही अधिक अच्छी लगती है। यह उसकी विवशता है—

"प्रिये जल रही चिता तुम्हारी अखर रही अपनी लाचारी।
मानव की इस परवशता का, बन्धन काट उतरना अच्छा॥[2]

स्वर्गगत प्रिया की याद में जब वह बिसूरता है तो उसकी आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहने लगतीं हैं—

"इति हुई अथ से कहानी हृदय पर उसकी निशानी।
याद कर बरबस दृगों से, बह रहा दो धार पानी॥"[3]

घरके एकान्त वातावरणमें उसकी हृदय व्यथा जाग उठती है। वह रात-रात भर जागता रहता है, फिर भी उसका आकुल मन शांत नहीं होता, यथा—

"एकाकीमय सूना घर है, मेरी मर्म व्यथा जग जाती।
कौन यहाँ किसका साथी है, उठ-उठकर पीड़ा समझाती॥

१– 'कैसे साष्टांग करूँ' से उद्धृत।
२–'इस जीवन से मरना अच्छा' से उद्धृत। ३–'प्राण कितनी दूर हो तुम' से उद्धृत।

जगता ही रह गया अकेला, मुर्गा बोला हुआ सबेरा।
आँखों में रजनी बीती पर थिर न हुआ आकुल मन मेरा॥
मुझे रात भर नींद न आती।"[1]

प्राकृतिक वस्तु-व्यापारों को देखकर वह अपने मन को समझाता है—

दो पक्षी बहती दुनियाँ के, मिलते ही प्रेम विभोर हुए।
उसके मधुवर्षी गीतों से, मधुवर्षण चारो ओर हुए॥
खग एक व्याध शरविद्ध हुआ, असहाय गिरा गतप्राण हुआ।
जो गया हाथ आता न कभी, बीता क्षण फिर आता न कभी।"[2]

पांडेयजी की ये रचनाएँ बच्चन जी के 'निशा निमंत्रण' से मेल खाती हैं, क्योंकि जिस मनोभूमिका पर ये कविताएँ लिखी गयी हैं वह पत्नी-वियोग बच्चन जी और पांडेय जी दोनों कवियों को अखरा है। इसीलिए इन कविताओं में मर्म-व्यथा की कचोट कसकती हुई दिखायी देती है।

दुनियाँ में तरह-तरहके लोग होते हैं। एक कहता है कि नव-वधू से इस जले घर को बसाओ और दूसरा कहता है कि गत प्रिया की याद में जीवन बिताओ "सामने दो सत्य उनमें किस तरह किसको वरूँ मैं" ....तिमिर के पथ-कुपथ दोनों किस तरह सत्पथ धरूँ मैं" में उलझा कवि पुकार उठता है—

"आज जो कुछ कर रहा हूँ, कर्म भी दुष्कर्म भी है।
पुण्य भी है, पाप भी है, धर्म और अधर्म भी है।
इसलिए दृग मूँद जग के, साथ मैं भी चल रहा हूँ।
जल रही दुनियाँ उसी के साथ मैं भी जल रहा हूँ।"[3]

कवि की जिन्दगी में अनेक व्यक्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अतः उन सभी के प्रति कवि की यह कृतज्ञ-भावना है कि

भूल गया पथ तो किसी ने पुकारा
व्यथा में पड़ा तो किसी ने दुलारा।
तिमिर में फँसे बाल-चंचल हृदय को,
सजल साधना से किसी ने सुधारा॥

किसीके विरहसे हृदय जल रहा है, हृदयकी जलनकी निशानी न पूछो॥"[4]

१-'मुझे रात भर नींद न आती' से उद्धृत।
२-'बीता क्षण फिर आता न कभी' से उद्धृत। ३-'क्या कहूँ क्या करूँ मैं' से उद्धृत। ४-'चलो जिन्दगी की कहानी न पूछो' से उद्धृत!

पांडेय जी कहते हैं कि कोई साँसों के धागों से जीवन-पतंग को खींच रहा है। 'यह जीवन पतंग कब टूट जायेगी'—इस अज्ञात भेद को कोई नहीं जानता। वह मानव तो—

'यह तेरा है, यह मेरा है, केवल नभ का यह घेरा है।
यह समझ न पाता निर्बल-धी, यह चिड़िया रैन बसेरा है।"[1]

जिन्दगी व्यर्थ ही बीतती जा रही है। उन्होंने रामायण, गीता भी नहीं पढ़ी। अतः जिन्दगी के अन्तिम दिनों में उन्हें राम- सीता के भजन की कामना लगी है—

'अकारथ जनम बीतता जा रहा है, ❀ उठो आखिरी दिन चला आ रहा है।
पढ़ी भावना से रमायन न गीता, भजो राम सीता, भजो राम सीता ॥'[2]

भगवान एक ही है और वही अमर सत्य है। नामों के भेद से उसमें कोई भेद नहीं होता। इसीलिए तो वह राम–कृष्ण के साथ-साथ ईसा, अल्ला एवं अकबर के नामों का उद्‌घोष करता है—

'चाहे मोहन कहो...............
चाहे राघव कहो...............
चाहे ईसा कहो...............
चाहे अल्ला कहो, चाहे अकबर कहो।
वही जिन्दगी का अमर सत्य है,
चाहे जैसा कहो, पर निरंतर कहो ॥'[3]

यह व्यापक धर्म-चेतना और नाम–महिमा की अनुभूति पांडेयजी के उदात्त मानव रूप का प्रमाण है।

ई० स० १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया। हिमालय की रक्षा करनेके लिए कविने देशवासियोंको बलिदानके लिए प्रेरित किया--

'गद्दारों के सीने में जो, संगीन घुसाये उसका है,
जो अपनी माँ के स्वाभिमान पर प्राण गँवाये उसका है ॥[4]

पांडेयजीकी अद्यतन अप्रकाशित रचनाओंमें कहीं कवि हृदयकी विरह-व्यथा की झाँकी प्रस्तुत है, तो कहीं भक्ति-भावना और राष्ट्र-प्रेम की तीव्र व्यंजना मुखरित है।

---

१ 'इन साँसों-सा कुछ ठीक नहीं' से उद्‌धृत।
२–'भजो राम सीता, भजो राम सीता' से उद्‌धृत।
३--'चाहे हरि–हरि कहो चाहे हर–हर कहो' से उद्‌धृत।
४–'यह तुंग हिमालय किसका है' से उद्‌धृत।

(४)

पं० श्यामनारायण पांडेय के काव्य का वर्गीकरण

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के काव्य का वर्गीकरण

पाण्डेयजी के काव्य का वर्गीकरण शैली और कथ्य के आधार पर किया जा सकता है। शैली की दृष्टि से हम उनके काव्य को प्रबन्ध काव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य या स्फुट काव्य और अनुवादों में विभक्त कर सकते हैं, तो कथ्य की दृष्टि से, वर्ण्य--विषयों के अनुसार उनका काव्य ९ वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१-राष्ट्रीय काव्य २- सांस्कृतिक काव्य ३- वीर काव्य ४- पौराणिक काव्य ५- आध्यात्मिक काव्य ६- रहस्य काव्य ७- दार्शनिक विचार-धारा का काव्य ८- प्रेम-काव्य और ९- वात्सल्य भाव से पूर्ण रचनाएँ।

१– शैलीगत वर्गीकरण—

क– प्रबन्ध-काव्य—

काव्य शास्त्र की दृष्टि से पं० श्यामनारायण पांडेय ने महाकाव्य खंडकाव्य और स्फुट-काव्य तीनों की सृष्टि की है। महाकवि, गीतकार और अनुवादक तीनों रूपों में पांडेयजी की सफलता श्लाघनीय है। महाकवि के रूप में पांडेयजी के काव्य का वर्गीकरण करने से पूर्व तात्त्विक स्वरूप का संक्षिप्त विवेचन युक्तियुक्त होगा।

अ– महाकाव्य—

महाकाव्य के स्वरूप पर अति प्राचीन काल से विचार होता आया है।

'अग्निपुराण'[1] में लिखा है—

१- महाकाव्य सर्ग बद्ध रचना है, ये सर्ग विभिन्न वृत्तांत वाले एवं विस्तृत होते हैं।

२- उसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी महात्मा या सज्जन व्यक्ति के वास्तविक जीवन पर आधारित होता है।

३- उसमें शक्वरी, अतिशक्वरी, जगती, अतिजगती, त्रिष्टुप जातिवाले पुष्पिताग्रादि छन्दों का प्रयोग होता है।

४- उसमें नगर; वन, पर्वत, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, वृक्ष, उपवन, जलक्रीड़ा, मधुपान, उत्सव आदि का वर्णन होता है। समस्त रीतियों, वृत्तियों और रसों का समावेश होता है।

१– अग्निपुराण-अध्याय ३३७; काव्यादि लक्षणं।

५- उक्ति-वैचित्र्य की प्रधानता होने पर भी उनमें प्राण–रूप में रस ही व्याप्त रहता है।
६–उसमें विश्व-विख्यात नायक के माध्यम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-चतुर्वर्ग की प्राप्ति दिखायी जाती है।
७- महाकाव्य का प्रारम्भ संस्कृत से हो और उसमें तद्भव और तत्सम प्राकृतों का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

दण्डी ने भी अपने काव्यादर्श में महाकाव्य के लक्षण दिये हैं।[1] उनके द्वारा निर्धारित लक्षण 'अग्निपुराण' के लक्षण के समान है। उनके द्वारा प्रतिपादित लक्षणों का तात्पर्य यह है कि वे काव्य में चरित्र-कथानक आदि के साथ-साथ कवित्व को विशेष आवश्यक समझते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दण्डी का लक्षण अधिक समीचीन है। साथ ही दंडी ने महाकाव्य के लक्षणों में 'अग्निपुराण' से नीचे लिखो विशेषताएँ अधिक बतलायी हैं—
१– प्रारम्भ में आशीर्वचन, स्तुति या कथावस्तु का संकेत होना चाहिए।
२- महाकाव्य विविध वृत्तांतों से युक्त लोकरंजक होना चाहिए।
३- उसमें प्रस्तुत काव्य युगों और कालों तक अमर होना चाहिए। उपर्युक्त विशेषताएँ महाकाव्य के उच्च-गौरव, उसके सामाजिक मूल्य और व्यापक प्रभाव को स्पष्ट करने वाली हैं। महाकाव्य में कल्पित वृत्तान्त का निषेध है।[2] दण्डी के अनुसार महाकवि को अपने काव्य-नायक के शत्रु के भी उच्चवंश, वीर्य, बल, विद्या आदि की महानता का वर्णन करना चाहिए, क्योंकि इससे उसके ऊपर विजय प्राप्त करने वाले नायक का उत्कर्ष स्वतः हो जाता है।[2]

'ईशान संहिता' के अनुसार 'महाकाव्य का आकार आठ सर्ग से कम न हो और तीस सर्ग से अधिक न हो तथा उसके भीतर किसी महापुरुष की कीर्त्ति का वर्णन हो।

विद्यानाथ ने अपने ग्रंथ 'प्रतापरुद्रयशोभूषण'[3] में महाकाव्य वर्णन के प्रसंग के अन्तर्गत दण्डी के काव्यादर्श के ही कुछ लक्षण दिये हैं, किन्तु उन लक्षणों में कोई विकास और नवीनता नहीं है।

सुप्रसिद्ध जैन विद्वान आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रंथ 'काव्यानुशासन' में महाकाव्य के अत्यन्त संक्षेप में लक्षण दिये हैं। उनके सूत्रों में

१– काव्यादर्श–पर: १, १४, २०।
२– काव्यादर्श- तर्कवागीश भट्टाचार्य श्री प्रेमचन्द की टीका, पृ० २७।
३- प्रतापरुद्रयशोभूषण–काव्य प्रकरण पृ० ९६।

छन्दबद्धता, सर्ग-बद्धता, संधि-संगठन, अलंकार, उक्ति-वैचित्र्य, वर्णन और भावरसादि की विशेषताओं के महाकाव्य में प्राप्त होने के संकेत मिलते है।

भामह[1] ने महाकाव्य के लक्षणों में निम्नलिखित दृष्टिकोण का परिचय दिया है—

१- सर्गों के विभाजन से महाकाव्य में एक व्यवस्था आती है। नाटकीय संधियों और कार्यावस्थाओं के प्रयोग के द्वारा महाकाव्य के कथानक के विकास में क्रमबद्धता और काव्यात्मकता आती है।

२- वर्णनात्मकता महाकाव्य के लिए अनिवार्य है, पर कथा के शिल्प एवं उसकी मनोवैज्ञानिकता के निर्वाह के लिए महाकाव्य के वर्णनों में अनावश्यक विस्तार का त्याग आवश्यक है। नायक का वध वर्जित है।

इसके बाद संस्कृत ग्रंथों के अन्तर्गत महाकाव्य सम्बन्धी धारणा का पूर्ण विकास 'साहित्य दर्पण'[3] में दिये हुए लक्षणों में मिलता है। साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार—

१- महाकाव्य का कथानक सर्गबद्ध हो।

२- नायक सुर या सद्वंशीय क्षत्रिय हो, उसमें धीरोदात्त नायक के गुण गंभीरता, क्षमाशीलता, आत्मश्लाघाहीनता, स्थिरता तथा स्वाभिमान हो। एक वंश के कई राजाओं में भी ये गुण हो सकते हैं और वे भी नायक हो सकते हैं।

३- श्रृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक रस प्रधान और अन्य रस सहायक हों।

४- कथावस्तु में सभी संधियाँ हों।

५- इतिहास प्रसिद्ध या सज्जन चरित्र से सम्बद्ध कथानक हो।

६- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्वर्ग की प्राप्ति लक्ष्य हो।

७- प्रारम्भ में मंगलाचरण, ईश्वर वंदना, आशीर्वचन या कथावस्तु के निर्देश के बाद सज्जनों की प्रशंसा और असज्जनों की निन्दा हो।

८- सर्ग के अन्त में छन्द बदल जायें पर कथा-प्रवाह के लिए छंद की एकरूपता आवश्यक है। किसी-किसी सर्ग में अनेक छन्द भी हो सकते हैं।

९- कम से कम आठ सर्ग हों जो न बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे।

१०- सर्ग के अन्त में आनेवाली कथा की सूचना (पूर्वाभास) हो।

११- यथास्थान यथावसर सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार,

---

१–काव्यालंकार - परि० १, १९, २३। ३–साहित्यदर्पण-षष्ठ परिच्छेद ३१५-३२४।

दिवा, प्रभात, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतुओं, वनों, सागरों, संयोग, विप्रलम्भ, ऋषियों, नगरों, यज्ञों, युद्धों, आक्रमणों, विवाह-उत्सवों, मंत्रणा, कुमार-जन्म आदि विषयों के सांगोपांग चित्रण हों।

१२- महाकाव्य का नाम कवि, कथानक, नायक या अन्य पात्र पर हो सकता है, पर यह नामकरण महाकाव्य के कार्य-विषय के आधार पर होना चाहिए।

पाश्चात्य विद्वानों के महाकाव्य विषयक मत—

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार महाकाव्य के निम्नलिखित आदर्श निर्धारित किये जा सकते हैं—

१- **कथानक**—केम्स (Kames) ने प्राचीन, लुकन (Lucan) ने नवीन और तासो (Tasso) ने मध्यम मार्ग का समर्थन करते हुए न बहुत प्राचीन न बहुत नवीन कथानक को महाकाव्य के उपयुक्त समझा है।[1] कुछ विद्वान महाकाव्य के कथानक में वास्तविकता, व्यापकता और लोकप्रसिद्धि की अनिवार्यता मानते हैं।[2] अधिकांश विद्वान इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि महाकाव्य के कथानक को लोक-प्रसिद्ध, मनोरंजक और विशाल पृष्ठभूमि पर आधारित होना चाहिए। मूल-कथानक को विविध-चरित्रों के मर्म-व्यापार; उपकथाओं की योजना आदि के द्वारा पुष्ट किया जाता है।

२- **नायक**—नायक महान, उदात्त, पराक्रमी और नायकत्व के अन्यान्य गुणों से संपन्न हो। कहीं-कहीं एक से अधिक नायक की स्थिति को भी विद्वानों ने स्वीकार किया है।[3] ये नायक जातीय और राष्ट्रीय भावनाओं के संवाहक होते हैं।[4]

३- **अलौकिक कृत्य**— महाकाव्य के कथानक को बढ़ाने, नया मोड़ देने तथा चरित्रों के कार्य-कलाप को प्रभावित करने के लिए पाश्चात्य आलोचकों ने अलौकिक शक्तियों का सृजन आवश्यक माना है।[5]

४- **भाषा, शैली छन्द आदि**—पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य में आद्यन्त एक समर्थ और प्रभावपूर्ण छन्द का प्रयोग आवश्यक माना है। शैली में पर्याप्त गंभीरता और भाषा पर पूर्ण अधिकार भी आवश्यक माने गये हैं। साथ

१- English Epic & Heroic Poetry, Dixon P. 2 3
२-The Epic: Abercrombie, Page. 55-56.
३- The Dictionary of universal Information, (Science, Arts & Literature) Page. 792
४- The Columbia Encyclopaedia, Page. 577.
५- Epic: Abercrombie, Page. 67.

ही; वर्णन और दृश्य-चित्रण का अपूर्व कौशल एवं कल्पना-शक्ति की उर्वरता भी महाकाव्य के लिए आवश्यक मानी गयी है।

अत: पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों के मतों की तुलना करने पर भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों के विचारों में मूलत: कोई बहुत अधिक अन्तर नहीं है। महाकाव्य का स्वरूप प्रत्येक देश में प्राय: एक-सा होता है, कुछ ऊपरी भिन्नताएँ होती हैं। कुछ देश की प्रकृत विशेषताएँ होती हैं, फिर भी उनमें बहुत अधिक समता होती है।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम सब से पहले पांडेयजी के महाकाव्यों पर विचार करेंगे।

१– हल्दीघाटी का महाकाव्यत्व—

१- नामकरण— 'हल्दीघाटी' का नाम भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में एक पवित्र तीर्थस्थान का द्योतक है। 'हल्दीघाटी' का अर्थ है वह हल्दीघाटी, जहाँ महाराणा प्रताप और मुगल सम्राट अकबर के प्रतिनिधि महाराजा मान सिंह के बीच भीषण संग्राम हुआ था जिसमें महाराणा प्रताप ने अपने स्वाभिमान; स्वातंत्र्य-प्रियता, देश-प्रेम; साहस, त्याग एवं वीरता का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर शत्रु से जमकर लोहा लिया था। अत: पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने इस काव्य का 'हल्दीघाटी' नाम रखकर अपने काव्य-कौशल का परिचय प्रस्तुत किया है।

२- मंगलाचरण—'हल्दीघाटी' का प्रारंभ नमस्कारात्मक मंगलाचरण से हुआ है। इस प्रसंग में कविने 'घनश्याम-राममय जगन्नियन्ता' की वंदना की है—

'आद्यन्त मध्य, मतिमय उदार, हे जगन्नियन्ता नमस्कार।
क्षण अस्ति-नास्ति, भ्रममय अपार, घनश्याम-राममय नमस्कार।।[2]

इसके आगे प्रस्तावना, परिचय, प्रताप, चित्तौड़, झाला मान्ना, चेतक, हल्दीघाटी, भाला आदि विषयों पर मुक्त कविताएँ हैं और १७ सर्गों के उपरान्त परिशिष्ट है।

३- कथावस्तु—राजपूतों के इतिहास में महाराणा प्रताप का नाम अमर है। इसीके आधार पर 'हल्दीघाटी' काव्य की रचना हुई है। इसमें मुगल सम्राट अकबर और मेवाड़ के महाराणा प्रताप के बीच हुए हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन है। इसकी कथावस्तु महाकाव्य की दृष्टि से दोषपूर्ण, क्षीण और विच्छिन्न है। सानुबंध कथा का अभाव संपूर्ण काव्य में दृष्टिगोचर

१- English Epic & Heroic Poetry: Dixon, Page. 24.
२- हल्दीघाटी- नमस्कार, पृ० २।

होता है। कवि का ध्यान मुख्यतः युद्ध-वर्णन पर ही केंद्रित रहा है, अतः अन्य घटनाओं का निर्वाह सुसंतुलित नहीं हुआ। भारतीय दृष्टि से इसमें पंचसंधियों का विचार भी देखने को नहीं मिलता। महाराणा प्रताप के जीवन की युद्ध-सम्बन्धी घटनाओं का ही अधिक वर्णन होने से कथा में व्यापकता नहीं है। इससे इसका कथानक अपूर्ण एवं एकांगी बन गया है। महाराणा प्रताप अपनी स्वतन्त्रता के लिए कटिबद्ध थे और अकबर साम्राज्य-विस्तार की लिप्सा से अतृप्त। इसी तथ्यको लेकर दोनों में संघर्ष हो जाता है। उक्त दोनों महान व्यक्तियोंसे सम्बद्ध होने के कारण ही पांडेयजी के इस प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु महान है।

४–सर्ग:-इस काव्य में १७ सर्ग हैं। सर्गों की यह संख्या पर्याप्त है पर इसमें कई सर्ग बड़े और कई छोटे एवं नाम-मात्र के लिए हैं। ये सर्ग शीर्षक विहीन हैं। सामान्यतः नायक के आधार पर सभी सर्गों में महाराणा प्रताप के नाम का उल्लेख होना चाहिए था, पर द्वितीय और तृतीय सर्ग में उनके नाम का उल्लेख तक नहीं है। ये सर्ग तो मान सिंह और अकबर से सम्बन्धित हैं, पर, प्रत्येक सर्ग के अन्त में भविष्य की झाँकी भी मिल जाती है—

'मान सिंह का यह प्रस्थान, सत्य अहिंसा का बलिदान।
कितना हृदय विदारक ध्यान, शत-शत पीड़ा का उत्थान।।'[1]

५-नायकः–महाराणा प्रताप 'हल्दीघाटी' के नायक हैं। वे उच्च–वंशीय क्षत्रिय राजा हैं। उनमें धीरोदात्त नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। महाराणा प्रताप अप्रतिम वीर थे। 'हल्दीघाटी'के युद्ध प्रसंगोंमें उनकी धीरता, वीरता, पराक्रम, शौर्य, साहस एवं तेज को चरम उत्कर्ष प्राप्त है।

महाराणा प्रताप महान धीर, वीर और परम सहनशील नायक थे। उन्हें अनेक विपदाओं का सामना करना पड़ा। अपने पावन ध्येय की रक्षा के लिए वे सकुटुम्ब जंगल में इधर-उधर भटकते फिरे और कभी भी संकटों के समक्ष विचलित नहीं हुए। वे अपनी अनन्य निष्ठा के चलते आजीवन संघर्षरत रहे। उनका स्वातन्त्र्य-प्रेम और देश-भक्ति अतुलनीय है। उनकी प्रतिज्ञा थी–'जब तक देश स्वतन्त्र नहीं होता तब तक विलास-वैभव त्याज्य रहेगा।' अपने जीवनमें उन्होंने इसे चरितार्थ किया। उनकी स्वातंत्र्य-प्रियता देखकर मान सिंह भी प्रभावित हुआ। मान सिंह के शब्दों में प्रताप की स्वातंत्र्य-प्रियता एवं वीरता देखिए—

१- 'हल्दीघाटी'—सर्ग ६, पृ० ८२।

'स्वतन्त्रता का वीर पुजारी संगर मतवाला है।
शत-शत असि के सम्मुख उसका महाकाल भाला है।।
धन्य-धन्य है राजपूत वह उसका सिर न झुका है।
अब तक कोई अगर रुका तो केवल वही रुका है।।[1]

शत्रु-पक्ष से प्रताप के महान चरित्र की यह स्वीकृति ही उनकी महानता का प्रमाण है। जब वे चेतक के मरने पर रोते हैं और अपनी बच्ची की तोतली बोलीसे चंचल हो उठते हैं तो अनुभव होता है कि उनके भीतर की सामान्य मनुष्यता दुर्द्धर्ष परिस्थितियों से जूझते रहने के बावजूद मरी नहीं है। जब वे सन्धि-पत्र लिखने लगते हैं तब सबको अनायास रुला देते हैं। जब वे संकटों का सामना करते-करते थककर विजन कोने में शेष जीवन बिता देने की हताश कामना प्रकट करते हैं तब भामाशाह के मुक्तिवाद की बोली के रूप में सबकी सद्भावना का अर्जन होता है।

मेवाड़ के प्रति उनकी देश-भक्ति संकुचित कही जा सकती है, पर मध्य-युग में देश-भक्ति का यही अर्थ अभिप्रेत था। परन्तु कवि ने उनके इस रूप को राष्ट्रीय रूप दे दिया है—

तू भारत का गौरव है, तू जननी सेवा-रत है।
सच कोई मुझसे पूछे, तो तू ही तू भारत है।।[2]

काव्य के अन्त में, वे स्वातंत्र्य-अभियान में यशस्वी हुए। धर्म और स्वतन्त्रताके लिए जिन वीरों ने आत्मोत्सर्ग किया, उनके अल्पसंख्यक वर्ग में उनका स्थान पर्याप्त ऊँचा है। उनका आदर्श चरित्र स्फूर्तिदायक एवं अनुकरणीय है।

६–प्रतिनायक अकबर:—मुगल सम्राट अकबर प्रतापका प्रतिद्वन्दी था। वह प्रताप की स्वतंत्रता समाप्त कर उन्हें अपने अधीन करना चाहता था। काव्य में वर्णित उसके सारे क्रिया-कलाप इसी उद्देश्य से प्रेरित हैं। पांडेय जी ने हल्दीघाटी में उसकी कामातुरता का जो चित्र उपस्थित किया है, वह किंवदन्ती के आधार पर है। वस्तुतः अकबर एक महत्वाकांक्षी शासक था। निम्नांकित पंक्तियों में उसकी अपने शत्रु के प्रति सजगता देखिए—

'राणा से मिलकर उसको भी अपना पाठ पढ़ा दो।
० ० ०
ऐसा कोई यत्न करो बंधन में कस लेने को।।[3]

कविने उसे 'सहृदय प्रतिद्वंद्वी' और 'राष्ट्र-निर्माता' कहा है, परन्तु

१–'हल्दीघाटी'– सर्ग ५ पृ० ६५। २–वही, सर्ग १५, पृ०१६६।
२–'हल्दीघाटी–सर्ग ५, पृ० ६४।

काव्य में उनकी महान विशेषताओं में से एक का भी लघुतम चित्रण नहीं हुआ। प्रताप के प्रति प्रेम एवं अत्यधिक निष्ठा होने के कारण कवि ने अकबर को प्रताप के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में पूर्णतः चित्रित नहीं किया।

७ अन्य प्रमुख पात्रः—

१-मान सिंहः— लगता है कि इस काव्य में मान सिंह को द्वेष-भाव से चित्रित किया गया है। वह अकबर का दहिना हाथ था। शोलापुर जीत इसका प्रमाण है।

उसने अकबर का साथ दिया। इस बात पर उसे पश्चाताप होता है। फिर प्रताप को शिक्षा देने के लिए उसका विद्वेषी मन मचल उठता है। उदयपुर में प्रताप के यहाँ उसका अपमान हो जाता है। तत्पश्चात् वह अकबर के सामने रोता है। हल्दीघाटी के युद्ध में पहले भीलों ने ही उसको बाँध लिया[1] और युद्ध में प्रताप को देखते ही उसके हाथ से भाला गिर गया।[2] कविने ऐसी घटनाओंका वर्णन कर उसके चरित्र के साथ समुचित न्याय नहीं किया।

२-शक्ति सिंहः—यह राणा प्रतापका सगा भाई था। शिकारकी घटनाको लेकर प्रताप के साथ उसका संघर्ष हुआ, जिसके बाद वह अकबर से जा मिला परन्तु हल्दीघाटी के युद्ध में अपने भाई को संकट में पड़ा देखकर उसका बन्धु-प्रेम उमड़ा और दो मुगलों को मारकर वह प्रताप से मिला। प्रताप से क्षमा माँगते समय वह पश्चात्तापदग्ध हो उठा।

अन्य पात्रः—महाराणा प्रतापकी रानी एवं राजपूत कन्या दोनों वीराँगनाओं के रूप में अंकित हैं।

'हल्दीघाटी'में और भी कई छोटे-छोटे चरित्र अंकित हैं। ये चरित्र ऐसे आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जिनका अनुकरण करने से समाज का कल्याण

१–'ललकार मान को घेरा हथकड़ी पिन्हा देने को।

o o o

गाकर जब आँखें फेरीं देखा अरि को बन्धन में।

o o o

लज्जा का बोझा सिर पर नत मस्तक अभिमानी था।
राणा को देख अचानक बैरी पानी–पानी था॥'

हल्दीघाटी, सर्ग १०, पृ० ११४-११५।

२– 'हाँ,हाँ लड़ना है' कहकर जब बैंरी ने उठा लिया भाला।
क्षण भौंह चढ़ाकर देख लिया, काँपे जो हाथ गिरा भाला।'

हल्दीघाटी, सर्ग १२, पृ० १४०।

हो सकता है। जिस समाज के पुरोहित 'हल्दीघाटी' के पुरोहित को अपना आदर्श मानें, जिस समाज के सिपाही झाला हों और सेठ भामाशाह हों, उसे कभी भी संकटों में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। इनके स्मरण और अनुकरणसे आज भी अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान हो सकता है।

८-रस:-'हल्दीघाटी में वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों की अच्छी व्यंजना है, परन्तु उसमें वीर रस प्रमुख है और अन्य रस गौण रूप में आये हैं। काव्य के नायक महाराणा प्रताप का समग्र जीवन वीर रस में डूबा है। राजपूत-मुगल युद्ध-वर्णन में वीर रस की निष्पत्ति बड़ी सरस है। साथ ही वीर रस के अन्तर्गत उत्साह की अनेक दशाओं का भी चित्रण हुआ है। बेटी का करुण-क्रन्दन प्रताप, का विजनवास आदि प्रसंगों में करुण रस की अभिव्यक्ति सप्राण है। चतुर्थ सर्ग में वीभत्स रस का अच्छा परिपाक हुआ है।

९-छन्द-हल्दीघाटीमें छन्दोंका प्रयोग सुव्यवस्थित है। प्रत्येक सर्गके अन्त में छन्द बदल दिया गया है। काव्य के युद्ध-वर्णन के प्रसंगों में ३१ मात्राओं के वीर छन्द का प्रयोग दर्शनीय है। युद्ध के वर्णन में छन्द की गति और चुनाव में कवि की सफलता और उसका अद्भुत कौशल सराहनीय है।

१०-युद्ध-वर्णन—'हल्दीघाटी'का युद्ध-वर्णन सरल एवं ओजस्वी शब्दोंमें हुआ है। हिन्दी के वीरगाथा काल से लेकर आज तक के युद्ध-वर्णनों की परम्परा में पांडेयजी ने युद्ध-वर्णन की संपूर्ण टेक निबाही है—

'कहता था लड़ता मान कहाँ, मैं करलूँ रक्त-स्नान कहाँ।
जिस पर तय विजय हमारी है, वह मुगलों का अभिमान कहाँ॥[1]

युद्ध-वर्णन में अतिशयोक्तियों एवं निराधार रूपकों से काम न लेकर कवि ने वास्तविता को अपनाया है। उनके युद्ध-स्थल के वर्णन चित्रात्मक एवं सप्राण हो उठे हैं—

'चिग्घाड़ भगा भय से हाथी, लेकर अंकुश पिलवान गिरा।
झटका लग गया, फटी झालर, हौदा गिर गया, निशान गिरा॥'[2]

तुकों की अनुकूलता और द्विरुक्तियों ने भी ऐसे वर्णनों में चमत्कार पैदा किया है। विषयके अनुकूल वर्णन और रस-परिपाक दोनों ही 'हल्दीघाटी की विशेषताएँ हैं। इस प्रकार प्रत्येक सर्ग इसके कथानक की सुन्दर शृंखला बन गया है।[3]

१-'हल्दीघाटी'-सर्ग १२, पृ० १३८। २-वही, पृ० १३४। ३-'हल्दीघाटी सर्ग ७ पृ० ८९।

११–प्रकृति-चित्रण:—'हल्दीघाटी' में पर्याप्त मात्रा में प्रकृति–चित्रण हुआ है। हल्दीघाटी स्वयं प्रकृति–भूमि है। इसलिए उसमें ऐसे विभाव–परक आलम्बन रूप प्रकृति–चित्रण करने में कवि ने पर्याप्त सावधानी बरती है। उन्होंने अनेक स्थलों पर प्रकृति को स्वतन्त्र रूप से भी प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए अष्टम सर्ग का वह अंश है जहाँ महाराणा प्रताप भाला उठाकर पर्वत-छवि का रसपान करते हैं। इस अवसर पर कवि ने ब्यौरे-वार पार्वत्य सुषमा का वर्णन किया है।[1] उद्दीपन परक चित्रण में प्रकृति मनुष्य के भावों के अनुकूल–प्रतिकूल चित्रित होती है। हल्दीघाटी में भी इसके प्रयोग दर्शनीय हैं—

'थे उधर लाल वन के पलाश, थी लाल अबीर गुलाल लाल।
थे उधर क्रोध से संगर में सैनिक के आनन लाल—लाल॥'[2]

कवि ने कहीं-कहीं अलंकरण के लिए स्फुट रूप में प्रकृति का अवलंबन ग्रहण किया है। प्रथम सर्ग में कवि ने कलात्मक उत्प्रेक्षा की योजना करके संध्याकालीन सूरज के स्वरूप का अंकन किया है।[3] इस वणनमें पर्याप्त चमत्कार है। यह वर्णन कवि की कल्पनाशीलता को प्रमाणित करता है। सप्तम सर्ग में प्रताप की वाणी के लिए सन्नाटे की इस भूमिका में प्रकृति का योगदान विशेष महत्वपूर्ण है। उनके साथ न केवल मेवाड़के मनुष्योंका बल्कि प्रकृतिका भी प्रतीकात्मक सम्बन्ध था। इसे कवि की काव्य प्रतिभा के महाकाव्यात्मक कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इस काव्यमें संध्या, वन, पशु-पक्षी, ऋतुओं, सूर्योदय, दोपहरी आदि का भी वर्णन हुआ है। इस तरह से 'हल्दीघाटी' में प्रकृति मानवीय भावनाओं के रंग में रँगकर हमारे सामने आयी है। वह परिस्थिति और परिवेश की पृष्ठभूमि में कवि द्वारा विशेष उद्देश्य से चित्रित की गयी है।

१२–उद्देश्य:—महाकाव्य के उद्देश्योंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से कम से कम एक फल का होना आवश्यक है। हल्दीघाटी में धर्म की स्थापना हुई है। कवि ने हल्दीघाटी का मुख्य लक्ष्य युग-धर्म और तदानुषंगिक रूप में स्वातन्त्र्य-प्राप्ति, देश, धर्म, जाति और संस्कृति की रक्षा को अपना ध्येय सिद्ध किया है। कवि ने प्रताप को युग के अनुकूल चित्रित किया है। वे केवल इतिहास के प्रताप न रहकर आधुनिक युग के स्वातंत्र्य–आंदोलन के सेनानी के रूप में अंकित हुए हैं। कवि द्वारा अंकित प्रताप

१-वही सर्ग ८, पृ० ९८-९९। २–वही, सर्ग १७, पृ० १८७। ३–हल्दीघाटी सर्ग १७, पृ० ३९।

का चरित्र उस बलि–पथ का अनुकरणीय आदर्श है जिस पर परतन्त्रता पर स्वतन्त्रताकी विजय अपेक्षित है—

'यज्ञ–अनल–सा धधक रहा था वह स्वतन्त्र अधिकारी ।
रोम–रोम से निकल रही थी चमक–चमक चिनगारी ।।
o o o
जग–वैभव–उत्सर्ग किया भारत का वीर कहाकर ।
माता–मुख–लाली प्रताप ने रख ली लहू बहाकर ।।'[1]

जब तक किसी जाति को अपने वीरों का स्मरण नहीं होता, जब तक उसे अपने महापुरुषों पर अभिमान नहीं होता, तब तक उसमें स्वाभिमान, स्वावलम्बन और स्वतन्त्रता के भाव नहीं पनप सकते । इन्हीं भावों को जागृत करने के उद्देश्य से हल्दीघाटी की रचना हुई है—

'स्वतन्त्रता के लिए मरो' राणा ने पाठ पढ़ाया था ।
इसी वेदिका पर वीरों ने अपना शीश चढ़ाया था ।।
स्वतन्त्रता की बलिवेदी है, झुककर इसे प्रणाम करो ।।[2]

१३–हल्दीघाटी का महत्व:—'हल्दीघाटी' पं श्यामनारायण जी पांडेय की प्रथम बहुचर्चित रचना है । आधुनिक वीर काव्यों में यह सर्वश्रेष्ठ रचना है, इसमें दो मत नहीं हो सकते । इस काव्य में अधिकांश शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह हुआ है । इसकी कथावस्तु महान है । इसमेंवीर शिरोमणि महाराणा प्रताप की उर्जस्वित जीवनगाथा अंकित है । हल्दीघाटी में वर्णित प्रताप का जीवन चरित्र हमारे लिए प्रेरणादायी है तथा भविष्य के लिए मार्गदर्शक है । उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर हम हल्दीघाटी को महाकाव्य कह सकते हैं

जीवन के नाना पक्षों के अभावों के कारण डा० गोविन्द राम शर्मा[3], डा० वीणा शर्मा[4], डा० शम्भुनाथ सिंह[5], डा० देवीप्रसाद गुप्त[6] आदि विद्वानों ने हल्दीघाटी को महाकाव्य नहीं माना है और तो और कवि ने स्वयं इसके महाकाव्यत्व पर संदेह प्रकट किया है-'महान ! इन्हीं कतिपय घटनाओं को मैंने कविता का रूप दिया है । यह खण्डकाव्य है अथवा महाकाव्य है, इसमें संदेह है लेकिन तू तो निस्संदेह महाकाव्य है । तेरे जीवन की एक–एक घटना संसार के लिए आदर्श है और हिन्दुत्व के लिए गर्व की वस्तु है ।'[7] वस्तुतः कवि ने हल्दीघाटी महाकाव्य के परम्परागत

१–'परिचय' पृ० ७ । २–'हल्दीघाटी'—'हल्दीघाटी'का परिचय पृ० १९ ।
३–डा० गोविन्दराम शर्मा: 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य' पृ० १२८ ।
४–डा० वीणा शर्माः 'आधुनिक हिन्दी महाकाव्य' पृ० ६० ।
५–डा० शम्भुनाथ सिंहः 'हिन्दी महाकाव्यका स्वरूप विकास' पृ० ६६१ ।
६–डा० देवीप्रसाद गुप्तः 'स्वातंत्र्योतर हिन्दी महाकाव्य' पृ० ८०-८१ ।
७–'हल्दीघाटी'-शीर्षक विहीन भूमिका' पृ० २२ ।

शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह होने के कारण नहीं, अपितु इसमें वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप जैसे महान चरित्र की जीवन गाथा का वर्णन होने के कारण इसे महाकाव्य स्वीकार किया है।

'हल्दीघाटी' में महाकाव्य के अधिकांश शास्त्रीय लक्षणों का तो निर्वाह हुआ है परन्तु इन्हीं कारणोंसे हम इसे महाकाव्य नहीं कह सकते। इसकी कथावस्तु के विविध प्रसंगों में महाकाव्योचित सम्बन्ध निर्वाह नहीं हो पाया है। विभिन्न घटनाओं के वर्णन में मुक्तकाव्य की-सी झलक दृष्टिगोचर होती है। इस रचना में नायक महाराणा प्रताप को आदि से लेकर अन्त तक सभी सर्गों में प्रधानता नहीं दी गयी है। इसमें कवि ने प्रताप के जीवन की युद्ध से सम्बन्धित घटनाओं को ही अधिक महत्व दिया है, अतः उनके जीवन के अन्य पहलुओं की उपेक्षा हो गयी है। इसलिए इस रचना में महाकाव्योचित जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत नहीं हो सका है। उपयुक्त निष्कर्षों के आधार पर हम 'हल्दीघाटी' को सर्वांग सम्पूर्ण महाकाव्य न कहकर एक वीर-चरित्रप्रधान प्रबन्धकाव्य कहना अधिक युक्तियुक्त मानते हैं।

२-जौहर का महाकाव्यत्वः—

१-नामकरण—'जौहर महाकाव्यकी प्रधान पात्री है पद्मिनी। उसके जौहर की भीषण घटना तथा राजपूती प्रथा को महत्व देकर कवि ने उसी आधार पर इस महाकाव्यका नामकरण किया है ताकि रानी पद्मिनी और उसकी प्रेरणा से प्रभावित अन्य क्षत्राणियों के कठिन जौहर व्रत की स्मृति भारतीय नारियों में युग-युगों तक वीरोचित भावनाओं को जागृत करती रहे। इस दृष्टि से इस महाकाव्य का 'जौहर' नामकरण समीचीन जान पड़ता है।

२-मंगलाचरणः—'जौहर' के मंगलाचरण में राम के प्रति कवि की प्रगाढ़ भक्ति व्यक्त हुई है—

'यदि मिला साकार तो वह, अवध का अभिराम होगा।
हृदय उसका धाम होगा, नाम उसका राम होगा॥
सृष्टि रचकर ज्योति दी है, शशि वही सविता वही है।
काव्य रचना कर रहा है, कवि वही कविता वही है॥'[1]

३-कथावस्तुः—इसकी कथावस्तु रावल रतन सिंहकी रानी पद्मिनी के जीवन पर आधारित है। इसकी कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध तथा लोकाश्रित है। कथा इस प्रकार है कि पद्मिनी के रूप पर मोहित

१-'जौहर' मंगलाचरण पृ० ३।

होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, किन्तु पद्मिनी के जौहर के समक्ष उसके सारे प्रयास निष्फल हुए । इस कथा के ऐतिहासिक आधार पर परिवर्तित रूप में जायसी ने 'पद्मावत' लिखी है।

रावल रतन सिंह को अलाउद्दीन खिलजी द्वारा कैद किये जाने के प्रसंग से कथानक में तीव्र गति है और यह प्रवाह अन्त तक बना रहता है। पद्मिनी के सौंदर्य पर अलाउद्दीन का मोहित होना, रतन सिंह को छल से कैद कर लेना और उसके द्वारा पद्मिनी को शाही हरम में भेज देने की माँग करना, पति की मुक्ति के लिए पद्मिनी द्वारा शक्ति तथा उक्ति का सहारा लेना, पति को मुक्त कराना, पुन: अलाउद्दीन का आक्रमण और उसमें चित्तौड़ का नाश होना, लड़ते-लड़ते रतन सिंह का मारा जाना तथा अन्त में अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पद्मिनी का अन्य नारियों के साथ जौहर करना आदि इस काव्य के महान प्रेरक प्रसंग हैं। इसमें भारतीय नारी की मान-मर्यादा, पद्मिनी का सतीत्व एवं देश की रक्षा के लिए कटिबद्ध गोरा-बादल जैसे वीरों का ओजस्वी चरित्र अंकित है। 'जौहर' में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पद्मिनी का प्रभावशाली चरित्र देखा जा सकता है। सम्पूर्ण महाकाव्य में कवि ने पद्मिनी के जीवन की घटनाओं को विस्तार दिया है।

कथावस्तु में कहीं-कहीं संवादात्मक[1] एवं नाटकीय प्रणाली[2] को अपनाया गया है। कथावस्तु की कतिपय चिनगारियों में कल्पना का चमत्कार[3] अवश्य मिलता है। कथावस्तु सुव्यवस्थित है पर कहीं-कहीं इतिवृत्तात्मकता[4], नीरसता[5] तथा अव्यवस्था[6] के चिह्न भी दृष्टिगत होते हैं। पद्मिनी के प्रति कवि की प्रगाढ़ आस्था होने के कारण कथावस्तु में भावुकता का प्रदर्शन अधिक है।

४–सर्ग—'जौहर' की कथावस्तु २१ चिनगारियों में विभाजित है। महाकाव्य की दृष्टि से चिनगारियों की संख्या पर्याप्त है। कई चिनगारियाँ अवश्य बड़ी हैं और कई छोटी (नाममात्र के लिए) हैं। इन चिनगारियों में रानी के जीवन के एक पक्ष को चित्रित किया गया है। प्रत्येक चिनगारी के अंत में भविष्य की झाँकी संकेतित है—

१- 'जौहर' चि०१ पृ० ५-६, चि० ३ पृ. ३१-३२, चि० ५ पृ० ५३-५४ आदि।
२- वही, चि० २ पृ० २०, चि० ६ पृ ६३, चि० ७ पृ० ७२-७३ आदि।
३- वही, चि० २० पृ० २३१; चि० १७ पृ० १९३–१९४-१९५। ४– वही चि० ६ पृ० ५८-५९। ५- वही चि० १ पृ० ४। ६– वही चि० ४ पृ० ४१।

'पहर भर के बाद रानी की कथा, साथ पीड़ा को लिये आगे बढ़ी।
देख गढ़ का ध्वंस रानी प्रात ही, साथ प्राची ज्योति के आगे बढ़ी।।'[1]

मंगलाचरण के बाद 'परिचय' चिनगारियों से काव्य की कथा-वस्तु प्रारंभ हो जाती है। शेष सभी चिनगारियाँ युद्ध, उन्माद; आखेट, दरबार, स्वप्न, उद्‌बोधन, डोला, मुक्ति, पुनर्युद्ध; चिन्ता; चित्तौड़; ध्वंस; आदेश; शृंगार; विदा; अर्चना; जौहर; व्रत; प्रवेश; दर्शन शीर्षकों में अंकित है। इन शीर्षकों के कारण हम उनके अन्तर्गत अंकित वर्ण्य-विषय को आसानी से पहचान सकते हैं।

५- नायिका—रानी पद्‌मिनी 'जौहर' महाकाव्य की नायिका है। वह उच्चवंशीय राजपूत स्त्री है। उसका चरित्र अनेक आदर्श गुणों से युक्त है। रानी पद्‌मिनी अद्वितीय रूप-यौवन संपन्ना थी। कवि के शब्दों में पद्‌मिनी के रूप का वर्णन देखिए—

'और रानियाँ हो सकतीं उसके पैरों की धूल नहीं।
सच कहता उसके समान हँसते उपवन के फूल नहीं।।
रोम-रोम लावण्य भरा है; रोम-रोम माधुर्य भरा।
बोल-बोल में सुधा लहरती; शब्द-शब्द चातुर्य भरा।।'[2]

पद्‌मिनी के इन गुणों पर मोहित हो अलाउद्दीन खिलजी उसकी प्राप्ति के लिए रतन सिंह को छल से कैद कर लेता है और पद्‌मिनी को शाही हरम में भेज देने की सूचना भिजवाता है। यह सुनकर पद्‌मिनी अवश्य दुखी हो जाती है। पर दूसरे ही क्षण वह ताड़ित सर्पिणी की तरह फुफकार उठती है। सर्वशक्तिसमन्विता वीरांगना का रूप धारण कर दरबार की ओर प्रस्थान करती है और—

'बन गया वदन ईंगुर सा; भौंहें कमान-सी लरकीं।
लोहित अधरों में कम्पन; रानी की आँखें फरकीं।।
× × ×
कस लिया वक्ष अंचल से; कटि में कटार खर बांधी।
करवाल करों में चमकी; दरबार चली बन आँधी।।'[3]

पति-मुक्ति के लिए विकल रानी लज्जा से घूंघट काढ़कर रंग-मंच पर उपस्थित होती है और फिर सबके सम्मुख पति-मुक्ति की दृढ़ प्रतिज्ञा करती है—

१- जौहर चि० १३ पृ० १५४। २- वही चि० ३ पृ० ३२-३३। ३- वही चि० ७ पृ० ७१-७२।

'आँधी से आज मिला दूँ, अपनी तूफानी गति को।
मैं मुक्त करूँ क्षणभर में, कारा से अपने पति को।।'[1]

इस प्रकार उसका पातिव्रत धर्म एक अनुकरणीय आदर्श है।

इसी समय महारानी पद्‌मिनी अपनी मान-मर्यादा, सतीत्व, एवं देश की रक्षा के लिए राजपूतों को उद्‌बोधित करती है और अलाउद्दीन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए उन्हें रण-भूमि में लाकर खड़ा कर देती है।

तत्पश्चात् उसने राजपूतों के सम्मुख अपने पति की मुक्ति के लिए शत्रु के यहाँ सात सौ डोलियाँ भेजने की जो योजना प्रस्तुत की, वह उसकी बुद्धि, दूरदर्शिता और राजनैतिक कुशलता को प्रमाणित करती है। इस योजना से वह अपने पति को मुक्त भी कर लेती है।

पर कामातुर अलाउद्दीन शांत बैठनेवाला नहीं था। वह घात की प्रतीक्षा में था। इससे रानी भी चिन्ताग्रस्त हुई। पर दूसरे ही क्षण वह जौहर करने का निश्चय कर लेती है। यह सब किसलिए? मान-मर्यादा और सतीत्व की रक्षा के लिए। जौहर से पूर्व पद्‌मिनी राजपूतों को केसरिया वस्त्र पहनकर शत्रुओं से लड़ मरने का आदेश देती है।

जौहर से पूर्व उसका शृंगार करना और पति-मिलन की इच्छा रखना आदि उनके यौवन के अनुरूप है। जौहर के पूर्व रानी पद्‌मिनी के वियोग से पिंजड़े में स्थित शुक-दम्पति दुखी बन जाता है। उसकी विरह-दग्ध दशा देखकर रानी के हृदय से मानवीय करुणा फूट पड़ती है—

अब इसकी आज मलिनता देखी न तनिक जाती है।
सखि, देख इसे अकुलाया मेरी फटती छाती है।।[2]

रानी पद्‌मिनी एक महान सती-साध्वी महिला है। उसे अपने प्राणों का भय नहीं है, प्रत्युत उसे अपने सतीत्व की रक्षाका भय है, जिसकी रक्षा के लिए वह अन्य राजपूत स्त्रियों के साथ जौहर की ज्वाला में कूद पड़ती है और सतीत्व की बलिवेदी पर अपने आप को अर्पित कर एक महान आदर्श स्थापित करती है।

इस प्रकार 'जौहर' महाकाव्य में भारतीय इतिहास की एक ऐसी नारी के चरित्र का महत्वांकन हुआ है जिसका जीवन आद्यन्त चिनगारियों से परिपूर्ण था। इस तरह से पांडेयजी ने ,जौहर' में वीर ललना, पतिव्रता, कुलवधू और राजरानी पद्‌मिनी के सतीत्व की रक्षा, देश-भक्ति, पति-

१- जौहर चि० ७ पृ० ७७। २- वही चि० १६ पृ० १८४।

भक्ति तथा अनन्त शक्ति, अदम्य उत्साह और उत्सर्ग भाव का परिचय दिया है।

६- **प्रतिनायक-अलाउद्दीन खिलजी**—अलाउद्दीन खिलजी इस काव्य का प्रतिनायक है। इस महाकाव्य में उसके कामातुर रूप का जितना चित्रण हुआ है, उतना उसके वीर रूप का नहीं।

रानी पद्मिनी के रूप सौंदर्य की ओर आकृष्ट होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। पद्मिनी को पाकर वह अपनी काम-पिपासा शांत करना चाहता था। पर इसमें वह सफल नहीं हुआ। चित्तौड़ विजय के बाद भी उसकी काम-पिपासा यथावत् बनी रही—

'पथिक; भगा दिल्ली वैरी; पर काम-पिपासा बनी रही।
प्रेम-भिखारी था; पर उसकी रावल पर भ्रू तनी रही ।।'[1]

पद्मिनी के रूप-ज्वाल से वह उन्मत्त हो उठा। पद्मिनी को अपनाने के लिए वह अधीर हो उठा। कवि के शब्दों में—

'अरि अधीर हो उठा; व्यस्त चीर हो उठा।
× × ×
देर क्यों निकाह में; पद्मिनी—विवाह में ।।'[2]

उसकी यह प्रवृत्ति मध्यकालीन राजाओं जैसी थी। अतः इस पर उस युग की बहुपत्नी प्रथा के अनुसार आपत्ति नहीं उठायी जा सकती।

पद्मिनी–प्राप्ति के लिए अलाउद्दीन ने रावल रतन सिंह को कैद कर लिया। उसके षड्यंत्र में उसकी कपटनीति और छल के दर्शन होते हैं।

रावल-मुक्तिके समय डोलीमें बैठे हुए वीरोंको देखकर वह दिल्लीकी ओर भाग जाता है।[3] कवि का यह कथन आवेश से युक्त है। वस्तुतः अलाउद्दीन एक शूर-वीर, पराक्रमी एवं महत्वाकांक्षी बादशाह था। क्या एक वीर को देखकर वह दिल्ली की ओर भाग जायेगा? उक्त प्रसंग में कवि ने अलाउद्दीन के वीर चरित्र के साथ समुचित न्याय नहीं किया।

चित्तौड़ का ध्वंस करने के उपरान्त जब अलाउद्दीन चित्तौड़ में प्रवेश करता है और बिखरी हुई लाशों के बीच पद्मिनी की खोज करने लगता है तो उसे पद्मिनी के बदले पद्मिनी की राख मिलती है। इसकी कामातुरता की तुलना अनातोले फ्रांस की रचना 'थायस' में वर्णित पाप–नाशी की कामातुरता के साथ की जा सकती है। इस तरह से 'जौहर'

१- जौहर–चि० २ पृ० २०। २– वही चि० ८ पृ० ६१।
३– 'जौहर' चि० ६, पृ० १०२।

महाकाव्य में अलाउद्दीन खिलजी क्रोधी, कामातुर, अन्यायी और अत्याचारी शासक के रूप में चित्रित किया गया है।

अन्य पात्र:—(१) रावल रतन सिंह का चरित्र इस महाकाव्य में संकेतों में आया है। आखेट, पत्नी-मिलन और युद्ध-प्रसंगों में राजा रतन सिंह का चित्रांकन हुआ है।

अलाउद्दीन उसे छल से कैद कर लेता है। पद्मिनी के प्रयत्न से उसकी मुक्ति हो जाती है। उसका पत्नी-प्रेम वर्णनातीत है। वास्तव में पद्मिनीके प्रेममें आकंठ वह डूबा हुआ था। रानीकी करुण दशा देखकर वह रोता है। उसकी यह रुलाई उसे मानवोचित बना देती है। पत्नी की मान-मर्यादा तथा सतीत्व की रक्षा के लिए वह कटिबद्ध है—

'पर हाँ, यह कह देता हूँ, रावल डगभर न हिलेगा।
उस नीच अधम पापी को तेरा दर्शन न मिलेगा।।' [1]

दूसरे ही क्षण वह पत्नी, देश, धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए युद्ध-भूमि की ओर प्रस्थान करता है। वहाँ वह अपार शौर्य दिखा कर वीरगति पाता है। इस प्रकार राजा रतन सिंह ने 'जौहर' में आत्मोत्सर्ग कर अपनी देशभक्ति, पत्नी-प्रेम एवं वीरता का परिचय दिया है।

(२) राणा लक्ष्मण सिंह एवं उनके सात पुत्रों ने चित्तौड़ की बलिवेदी पर अपने को समर्पित किया। इससे उनकी स्वामिभक्ति प्रकट होती है।

(३) वीरवर गोरा ने पद्मिनी के सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों की जो आहुति दी, उससे उसकी स्वामिभक्ति एवं देश-प्रेम की भावना का पता चलता है।

रसः—'जौहर' महाकाव्यमें वीर, करुण, रौद्र, भयानक, श्रृंगार आदि रसोंका उत्तम परिपाक हुआ है। 'जौहर' मूलतःवीररस प्रधान काव्य है और अन्य रस इसके सहायक के रूप में आये हैं। युद्ध, मुक्ति, पुनर्युद्ध आदि चिनगारियों में वीर रस की दीप्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। ऐसे प्रसंगों में सर्वत्र उत्साह की व्यंजना प्रधान है। यथा—

'फिर कोलाहल के बीच तुरत खुल गया किले का सिंहद्वार।
हुँ-हुँ कर निकल पड़े योद्धा धाये ले-ले कुन्तल कटार।।'[2]

रानी पद्मिनी ने अन्य राजपूत स्त्रियों के साथ जौहर किया। इस प्रसंग में करुण रस की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। तीसरी चिनगारी में श्रृंगार रस का सरस परिपाक देखा जा सकता है।

१-वही, चि० ११, पृ० १२८। २-'जौहर' चि० २, पृ० १५।

छन्दः–'जौहर' के छन्दोंका चुनाव विषयके अनुकूल एवं सुव्यवस्थित है। अतः कविता की विद्युत-धारा हृदय को छूती चलती है। कविने छन्दों की गति और उनमें प्रवाह का ध्यान रखा है। 'जौहर' में मधुमालती, अन्त्यानुप्रास, त्रिसम अन्त्यानुप्रास, समानिका, हाकलि, ताटंक आदि छंद प्रयुक्त हैं। 'जौहर' चिनगारी में विधाता छंद प्रयुक्त है।

युद्ध-वर्णनः-'जौहर'का युद्ध-वर्णन सजीव एवं उत्साहकी दशाओं से परिपूर्ण है—

'ले–ले वरदान कपाली से, ले-ले बल गढ़ की काली से।
अरि–शीश काटने लगे वीर, छप–छप तलवार भुजाली से ।।'[1]

इसके अतिरिक्त 'जौहर' के युद्ध–प्रसंगों को पढ़ने पर हमारे सामने युद्ध–भूमि के साक्षात चित्र उपस्थित हो जाते हैं:—

'लगे काटने वैरी–शिर, शिर से पटने लगी मही।
पाषाणों में बल खाती, गरम रक्त की धार बही ।।
दोनों ओर प्रहारों से क्षण-क्षण पिटने लगे बली।
तलवारों के वारों से क्षण-क्षण मिटने लगे बली ।।

* * ❀

तलवारों की चोटों से लहू-लुहान हुआ कोई।
भालों के बिंध जाने से गिर बेजान हुआ कोई ।।
आँखें फूटीं, अन्ध लड़े, शिर कट गये, कबन्ध लड़े।
घमासान-कोलाहल में रणधीरों के कन्ध लड़े ।।'[2]

(११)प्रकृति-चित्रण-'जौहर' महाकाव्यमें प्रकृति वर्णन प्रचुर मात्रामें मिलता है। पं· श्यामनारायण जी पाण्डेय प्रकृति वर्णनमें पटु हैं। अतएव उनका प्रकृति वर्णन सर्वत्र सुन्दर बन पड़ा है। संध्या, सूर्योदय, चंद्रोदय, अँधेरी रात, ग्रीष्म, बसंत, शिशिर आदि के चित्र उनकी लेखनी से खूब सँवरते गये हैं। कवि के शब्दों में चंद्रोदय का एक भव्य चित्र देखिए—

'नीरव थी रात धरा पर विधु सुधा उँड़ेल रहा था।
नभ के आँगन में हँस–हँस, तारों से खेल रहा था ।।
शशि की मुसकान प्रभा से गिरि पर उजियाली छायी।
कण चमक रहे हीरों से, रजनी थी दूध–नहायी ।।
वह उतर गगन से, आया, सरिता-सरिता सर-सर में।
चाँदी-सी चमकीं लहरें, वह झूला लहर-लहर में ।।'[3]

१- वही चि० १६, पृ० २१६। २-'जौहर'-चि० १३, पृ० १४६–१४७
३-वही, चि० ७, पृ०६७।

एक स्थान पर कवि ने उषा रानी का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है।[3] कहीं-कहीं प्रकृति परिस्थिति एवं परिवेश की दृष्टि से चित्रित की गयी है—

'पतझड़ के पत्ते तरु से शिर-धड़ से अलग हुए जाते थे।
अरावली-से अचल शूरमे जड़ से विलग हुए जाते थे।।'[1]

'जौहर' महाकाव्य में कहीं-कहीं प्रकृति मानवीय भावनाओं के रंग में रंगकर आयी है—

'देख भैरव दृश्य जड़-चेतन सभी लय भाँपते थे।
चीखती थी यामिनी, तारे गगन पर काँपते थे।।'[2]

(१२) **वस्तु-वर्णन**-'जौहर'महाकाव्यमें वस्तु-वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है।परन्तु यह वस्तु-वर्णन केवल परम्परा का पालन मात्र नहीं है। कवि के शब्दों में रतन सिंह के अस्त्र-शस्त्रों की सूची देखिए:—

'कहीं म्यान, शमशीर कहीं पर कहीं कुन्त, तो तीर कहीं पर।
बिखर गये सामान रतन के, कहीं ताज, तूणीर कहीं पर।।'[3]

यह केवल सूची नहीं वरन इस सूची से रसोद्रेक हो जाता है। रानी पद्मिनी के श्रृंगार के समय कवि ने विविध वस्तुओं एवं आभूषणों का जो वर्णन किया है[4], उससे काव्य की मार्मिकता बढ़ गयी है।

(१३)**अन्य-वर्णन**-कविके शब्दों में रानीके दरबारका एक दृश्य देखिए:—

'चल पड़ी, जिधर करते थे रण का विचार दरबारी।
दरबार-चतुर्दिक पहरा देते सैनिक असिधारी।।

*   *   *

रानी को देख अचानक उठ झुके सभी दरबारी।
उठ-उठ कर वीर-सलामी, जय-जय बोले अधिकारी।।'[5]

इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य में चित्तौड़ नगर[6], सभा[7], मंत्रणा[8], युद्धों एवं आक्रमणों[9] का उल्लेख मिलता है।

(१४)**उद्देश्य**-पं.श्यामनारायणजी पाण्डेयके 'जौहर'का मुख्य उद्देश्य युग-धर्म और तदानुषंगिक रूपसे स्वातंत्र्य-प्राप्ति, देश, धर्म जाति तथा

१- वही, चि० १०, पृ० १०७। २- वही, चि० १८, पृ० २१२।

३- 'जौहर', चि० ४, पृ० ४१। ४- वही, चि० १५, पृ० १६८, १६९, १७०, १७१, १७२।५- वही, चि० ७, पृ० ७२-७३। ६-वही, चि० १४, पृ० १५७-१५८। चि० १७, पृ० १९२। ७- वही, चि० ७, पृ० ७१, ७२ ७३। ८- वही, चि० ७, पृ० ७५-७६। ९- वही,चि० २, पृ० १४, १५, १६, १७, १८। चि० १०, पृ० १०६, १०७ १०८,१०९,११०, १११ आदि।

संस्कृतिकी रक्षा है। कविने अपनी इस भावना को रानी पद्मिनीके आदर्श चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'जौहर' महाकाव्य में रानी पद्मिनी केवल इतिहास की पद्मिनी न रहकर आधुनिक युग के स्वातंत्र्य-आंदोलन की प्रेरणादात्री तथा समर्थ नेत्री के रूप में अंकित है। उसका स्फूर्तिदायी चरित्र भारतीय स्वाधीनता संग्राम में जूझनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया। कवि ने अपने उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि—

'इसीलिए है विनय, चाप ले चरणों में टंकार करो।
'जौहर' के छन्दों में गरजो, वर्णों में हुँकार भरो।।
गूँज उठे ध्वनि वेद-पाठ की जड़ चेतन संवाद करें।
द्वार-द्वार के पक्षी भी सूत्रों पर वाद-विवाद करें।।
ललनाएँ सब रतन-पद्मिनी के जीवन का मनन करें।
'जौहर' के जौहर को समझें, पति-पद का अनुगमन करें।।
नर में पत्नीव्रत का बल हो, पातिव्रत-बल नारी में।
जौहर की सतियों का साहस वृद्धा युवति कुमारी में।।'[१]

इससे स्पष्ट है कि कवि समस्त देशवासियों में राजा रतन सिंह और रानी पद्मिनि के आदर्शों का वहन कर उन्हें एक पत्नी व्रत, पातिव्रत धर्म तथा स्वातंत्र्य-प्राप्ति का ओजस्वी संदेश देता है।

१५-महाकाव्यत्व—जौहर पांडेयजी का द्वितीय महाकाव्य है। इसमें वीरांगना पद्मिनी की जीवनगाथा अंकित है। इसमें महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह हुआ है। कवि ने रानी पद्मिनी, रावल रतन सिंह और अलाउद्दीन खिलजी को अपने-अपने ढाँचे में ढाल दिया है। काव्य में वीर एवं करुण रस प्रवाहित है। प्रबल शत्रु अलाउद्दीन के सामने रानी पद्-मिनी ने अपना सिर नहीं झुकाया, यही इस काव्य की महान घटना है। इस काव्य द्वारा कवि ने हमें देश-प्रेम का जो संदेश दिया है वह हमें युग-युग तक प्रेरणा देता रहेगा, इसमें दो मत नहीं हो सकते। उपर्युक्त बातों के आधार पर हम जौहर को महाकाव्य मानते हैं।

रानी पद्मिनी के एकांगी जीवन की संक्षिप्त घटना को लेकर डा. रामसकल राय शर्मा,[२] डा. वीणा शर्मा,[३] डा. शंभुनाथ सिंह[४] 'जौहर' को महाकाव्य नहीं मानते।

१- जौहर चि० २१; पृ० २५०-२५१। २- डा० रामसकल राय शर्मा— द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य- पृ० ३८५। ३- डा० वीणा शर्मा: आधुनिक हिन्दी महाकाव्य पृ० ६४-६५। ४- डा० शंभुनाथ सिंह: हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास- पृ० ६९०।

महाकाव्य के लक्षणों के अनुसार उसमें नायक के अभ्युदय का वर्णन तथा प्रतिनायक पर उसकी विजय अंकित होनी चाहिए। साथ ही, महाकाव्य के अंत में कहीं भी नायक का वध नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से देखा जाय तो रानी पद्मिनी और अलाउद्दीन खिलजी दोनों में से किसी एक को भी कवि अपने काव्य का नायक नहीं बना सकता। 'जौहर' के अंत में कवि ने नायिका (रानी पद्मिनी) के द्वारा जौहर करने के प्रसंग में उसकी मृत्यु चित्रित की है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है; पर इससे 'जौहर' के महाकाव्यत्व को बड़ी हानि पहुँची है। 'जौहर' में पद्मिनी के जीवन के विविध प्रसंगों को यथोचित स्थान नहीं मिला है। इससे पद्-मिनी का जीवन सिकुड़-सा गया है। महाकाव्योचित समग्र जीवन की उपेक्षा इस रचना में एक खटकने वाला दोष है। राजा रतन सिंह के चरित्र की सभी विशेषताएँ तो 'जौहर' में उभरकर पाठक के सामने आयी ही नहीं है।

वस्तुतः इस काव्य की रचना महाकाव्य के परंपरागत लक्षणों को ध्यान में रखकर की गयी है और स्वयं कवि ने इसे वीर–करुण-रस-सिक्त अद्वितीय महाकाव्य कहा है। किन्तु महाकाव्य में मार्ग में आनेवाली उपर्युक्त अनेक कमियों को हम भुला नहीं सकते। अतएव हम 'जौहर' को महाकाव्य न मानकर एक वीर-करुण-रस प्रधान प्रबन्ध काव्य कह सकते हैं।

३- शिवाजी का महाकाव्यत्व—

१- नामकरण—शिवाजीका नाम लेतेही महाराष्ट्र केसरी, छत्रपति शिवा जी महाराज का ऐतिहासिक चरित्र आँखों के सामने अपने पूर्ण इतिवृत्त के साथ प्रत्यक्ष हो जाता है। यह व्यक्तित्व परिचायक नाम है। इसकी कथा सर्वजन विदित है। इसमें सरलता है। इसके साहित्यक चरित्र में भी पर्याप्त आकर्षण है। यह नाम प्रत्यक्ष वर्ण्य-विषय की घोषणा करता है। अतः इस महाकाव्य का शीर्षक 'शिवाजी' सभी दृष्टियों से महाकाव्योचित है।

२- मंगलाचरण— 'शिवाजी' के मंगलाचरणमें कविने 'केवल मैं हूँ' की वंदना कर उसका रहस्योद्घाटन किया है। यथा

'मैं करता अपना अभिवादन, मैं करता अपने को प्रणाम।
मैं ही अरूप मैं ही अनाम, मैं रूप-रूप मैं नाम-नाम॥
× × ×
मैं बन्ध-मोक्ष मैं ही रहस्य, मैं प्रकृति-पुरुष, मैं ही विवेक।
मैं मोह-तिमिर, शिव-सत्य-ज्ञान मैं एक मगर आकृति अनेक॥

मैं आदि शब्द नभ प्यारा हूँ, क्षिति-अनल-अनिल-जलधारा हूँ।
मैं अपना स्वयं सहारा हूँ, केवल मैं हूँ केवल मैं हूँ॥''[1]

३- **कथावस्तु**-'शिवाजी' महाकाव्य स्वराज्य-संस्थापक छत्रपति शिवाजी की जीवनी से संबंधित है। इसके कथानक का आधार ऐतिहासिक इतिवृत्त है। पं० श्यामनारायण पांडेय ने उसी इतिवृत्त का संयोजन कर 'शिवाजी' को काव्यात्मक रूप प्रदान किया है। 'शिवाजी' की कथा उस युग-पुरुष की है, जिसने तत्कालीन जनता को विदेशी शासन से मुक्त कर उसे स्वातंत्र्य-सूर्य के दर्शन कराये। अतः यह कथा साधारण कथा नहीं, वरन् एक महान, व्यापक, विशाल तथा महत्त्वपूर्ण कथा है।

कथावस्तु के अनुरूप इसके प्रसंग भी महान हैं। छत्रपति शिवाजी के द्वारा स्वराज्य-स्थापना का निश्चय करना, मावलियों का सहयोग पाकर स्वराज्य स्थापना का श्रीगणेश करना, शत्रु के साथ संघर्ष करना, बलशाली अफजल खाँ और देश-द्रोही चंद्रराव मोरे का वध करना, शाइस्ता खाँ को पराजित करना; आगरा में जाकर औरंगजेब जैसे प्रबल शत्रु को ललकारना तथा उसकी कैद-व्यवस्था से सकुशल वापस लौटना; पुनः अपनी क्रियाशीलता का परिचय देना आदि इसकी प्रधान घटनाएँ हैं।

अहमद की पुत्र-वधू के प्रति मातृवत् सम्मान की भावना प्रदर्शित करना तथा उसे अपने घर बेटी की तरह सकुशल भेज देना, किलेदार को पुरस्कार देना और आगरा में शिवाजी एवं जेबुन्निसा की भेंट हो जाना तथा शिवाजी द्वारा उसके प्रति बहनवत् प्रेम-भाव प्रदर्शित करना, तानाजी की वीरता आदि इसकी गौण घटनाएँ है। फिर भी ये सब प्रधान और गौण घटनाएं शिवाजी के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान करती हैं। इस कथावस्तु में कवि ने कहीं-कहीं अपनी मौलिक उद्भावना एवं पर्याप्त सूझ-बूझ का परिचय दिया है। जैसे—आगरा में शिवाजी एवं जेबुन्निसा का वार्तालाप[2] तथा औरंगजेब शासित ग्राम निवासी दो मुसलमानों के द्वारा शिवा-स्वराज्य की प्रशस्ति[3] आदि उदाहरण कवि की निजी मौलिक उद्भावना के निदर्शक हैं।

कवि ने इसमें वर्णनात्मक,[4] संवादात्मक[5] एवं नाटकीय[6] शैलियों का प्रयोग किया है।

इसकी कथावस्तु सुसंगठित, सुव्यवस्थित तथा देश-काल अन्विति

१- शिवाजी- केवल मैं हूँ, पृ० १-२। २- वही सर्ग १६, पृ० २०५-२०६। ३- वही सर्ग २५ पृ० ३०४-३१४। ४-शिवाजी सर्ग १० पृ० १२७-१२८, सर्ग १२ पृ० १४७-१४८। ५-वही सर्ग १२ पृ० १५०-१५१, सर्ग १५, पृ० १८०-१८२। ६- वही सर्ग १२ पृ० १४६, सर्ग १७ पृ० २१० सर्ग, १३ पृ० २८६।

से युक्त है। इसमें कहीं भी नीरसता एवं रूक्ष इतिवृत्तात्मकता नजर नहीं आती। तात्पर्य यह है कि इसकी कथावस्तु महाकाव्योचित गरिमा से परिपूर्ण है।

४- सर्ग—'शिवाजी' महाकाव्य में पच्चीस सर्ग हैं। महाकाव्य की दृष्टि से सर्गों की संख्या पर्याप्त है। सर्ग न बड़े हैं न छोटे। थोड़े से परिवर्द्धन को छोड़कर सभी सर्गों का आकार एक-सा है। प्रत्येक सर्ग में स्वतंत्र घटना या प्रसंग का वर्णन है। एक दो सर्गों में एक से अधिक प्रसंगों का चित्रण है। प्रत्येक सर्गान्त में भविष्य की झाँकी प्रस्तुत है—

'मैं आज रात में ठीक-ठीक अरि बल का पता लगा लूँगा।
कल साथ तुम्हारे दौड़-दौड़ बैरी के मस्तक काटूँगा।।'[1]

५-नायक-शिवाजी—शिवाजी इस महाकाव्यके नायक हैं। वे उच्चवंशीय क्षत्रिय राजा हैं। महाकाव्योचित नायक के सभी गुण उनमें विद्यमान हैं।

स्वराज्य-स्थापना के लिए शिवाजी द्वारा की गयी क्रांति भारतीय इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है और इस क्रांति के अग्रदूत के रूप में शिवाजी का स्मरण होना अनिवार्य हैं। शिवाजी की अमर कहानी के द्वारा भारत का कण-कण जगाया जा सकता है। शिवाजी के जन्म से भारत, गो-ब्राह्मण, धर्म, संस्कृति का कल्याण हुआ। अतएव कवि ने शिवा-जन्म को भारत के भाग्य-विधाता का अवतरण माना है—

'भारत भाग्य विधाता जागा, जागा हिन्दुस्तान।
गो ब्राह्मण कुल त्राता जागा, जागा कुल अभिमान।।[2]

बीजापुर की ओर प्रस्थान करते समय बालक शिवाजो ने अपनी माता के प्रति जो वचन कहे, उनसे उनकी सूझ-बूझ तथा नीति-चातुर्य प्रकट होता है। यही नहीं, बीजापुर के भरे दरबार में मुजरा का ढोंग न करके उन्होंने अपने स्वाभिमानी मस्तक को ऊँचा रखा और भविष्य में धार्मिक साहसिक और निर्भीक जीवन जीने का संकेत दिया।

माता जीजाबाई तथा समर्थ गुरु रामदास से प्रेरणा लेकर शिवाजी स्वराज्य-स्थापना के प्रति क्रियाशील हुए। शिवाजी ने अपने मावली साथियोंको एकत्र कर उन्हें मुसलमानों द्वारा ढायी गयी विपत्तियों और अत्याचारों की कहानियाँ सुनायीं और स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। उनके विचारों में देश, धर्म, जाति एवं स्वातंत्र्य के प्रति जो प्रेम-भाव है, पांडेयजी की कवितामें उसी की काव्यमयी व्यंजना है। उनके विचारों में स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए वैचारिक स्पष्टता और

१- वही सर्ग २२ पृ० २७८। २- वही सर्ग १ पृ० ४।

वाणी का ओजस्वी प्रवाह इतनी परिणामकारिणी शक्ति रखता था कि उसके संस्पर्शमात्र से उनके सैनिक उत्तेजित हो उठते थे–

'हमें न दूसरे पिशाच की पनाह चाहिए।
हमें शिवा समर्थ की सदैव छाँह चाहिए।

* * *

करें न देर देव, हम प्रवाह की तरह बढ़ें।
प्रचण्ड वेग से दवाग्नि देव की तरह बढ़ें।'[1]

शिवाजी की चुनौती का यह परिणाम था—

'हम सिंहगढ़ पर भगवा फहरा के रहेंगे।
प्राणों की आहुति दे ध्वजा लहरा के रहेंगे।'[2]

इस उत्तेजना एवं उत्साह का यह परिणाम हुआ कि अत्यंत विषम परिस्थितियों में भी शिवाजी के सैनिक कभी अपनी हिम्मत नहीं हारे।

शिवाजी की वीरता और उनका पराक्रम तथा शौर्य अतुलनीय है। उन्होंने अपने जीवन-कालमें मदान्ध बलशाली अफजल खाँको मारकर शाइस्ताखाँ को पूना में परास्त कर दिया। आगरा में जाकर तत्कालीन मुगल सम्राट औरंगजेब को भरे दरबार में ललकारा और फिर वहाँ से रायगढ़ सकुशल लौटे। शिवाजी के आगरा से पलायन का समाचार सुनकर दगाबाज औरंगजेब के शरीर से पसीना छूट गया और अपनी इस पराजय को वह आजीवन नहीं भूला। इन सारे प्रसंगों से शिवाजी की बुद्धिमत्ता, उनके साहस और चातुर्य का पता चलता है।

अहमद की पुत्रवधू के प्रति शिवाजी के मातृवत् सम्मान से उनकी नारीके प्रति पूज्य–भावना प्रदर्शित होती है। उनकी आज्ञानुसार उनके सैनिक भी मस्जिद, यवन–धर्म, कुरान और स्त्रीकी अवज्ञा नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा शासित प्रदेश में मुसलमानों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। इससे उनकी परधर्मसहिष्णुता प्रकट होती है। तोरण किले के किलेदार को अपनी वत्सलता का भाजन बनाकर उन्होंने अपनी शरणागत-वत्सलता का परिचय दिया।

शिवाजी ने राजा जयसिंह को पत्र भेजकर अपनी जो राष्ट्रीय योजना उनके सामने प्रस्तुत की, वह उन्हें राष्ट्रनेता सिद्ध करती है। उनके पत्र के एक-एक शब्द में स्वजाति, स्वधर्म, स्वदेश एवं स्वातंत्र्य के

१– 'शिवाजी'-सर्ग ५, पृ० ७०। २- वही,-'आरती कैसे उतारूँ? (भूमिका) पृ० १६।

प्रति प्रेम-भाव व्यंजित हैं। इस पत्र के द्वारा उनकी राजनैतिक कुशलता, दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता प्रकट होती है।

तानाजी की मृत्यु पर उनकी करुणा उमड़ पड़ती है। यह प्रसंग उन्हें मानवोचित बना देता है। उनकी पितृभक्ति, मातृभक्ति एवं गुरुभक्ति अवर्णनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिवाजी में शील, सदाचार संगठन-चातुर्य, नीति-चातुर्य, बुद्धिमत्ता, धर्म-निरपेक्षता, वीरता, शौर्य, नैतिक मूल्यों में श्रद्धा, श्रम–साधना, नेतृत्व-शक्ति आदि अनेक महत्वपूर्ण गुण थे, जिनके बल पर उन्होंने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। उनकी शक्ति, साहस, दूरदर्शिता एवं राजनैतिक कुशलता, सुचिंतित योजनाएँ महत्वपूर्ण कार्य-कारण शृंखलाएँ थीं, जिनके कारण प्रबल शत्रुओं के समक्ष उनका आत्म-बल कभी भी क्षीण नहीं हुआ।

(६) **प्रतिनायक-औरंगजेब**—औरंगजेब 'शिवाजी' महाकाव्य का प्रतिनायक है। शिवाजी यदि प्रजापालक, स्वराज्य तथा धर्मके संस्थापक-संरक्षक थे तो औरंगजेब अधर्म, अन्याय, अत्याचार एवं विध्वंस की प्रतिमूर्ति था।

औरंगजेब के पूर्वज हिन्दुओं के प्रति इतना रोष-भाव न रखते थे जितना औरगजेब। औरंगजेब ने अपने शासन-काल में हिन्दुओं पर जजिया कर लगाकर उन्हें आर्थिक दृष्टि से जर्जर बना दिया। यही नहीं, उसने हिन्दुओं के पवित्र धर्म-स्थानों, मूर्तियों एवं मन्दिरों का विध्वंस भी कराया। इन्हीं कारणों से गया, काशी आदि तीर्थस्थानों पर उदासीनता का वातावरण फैल गया। औरंगजेब के ये सारे क्रिया-कलाप उसकी धार्मिक कट्टरता, धर्मान्धता, हिन्दू-द्वेष और अत्याचारी वृत्ति के प्रमाण हैं।

शिवाजी के क्रोध, शौर्य एवं चातुर्य का औरंगजेब को प्रत्यक्ष अनुभव था। शिवाजी के कैद से निकल जाने का समाचार सुनकर वह एकदम काला पड़ गया। शिवाजी तो उसकी जिंदगी का दर्द बन गये थे, अतः वह शिवाजी से सदैव आतंकित रहता था। शाइस्ता खाँकी दुर्गति देखकर तो उसका सिंहासन हिल उठा। वह अपनी इस पराजयको कभी नहीं भूल सका।

औरंगजेब दुष्टता, अशिष्टता और अहम्मन्यता का प्रतीक था। आगरा दरबार में उसने शिवाजी के साथ जो बर्ताव किया, वह इसका प्रमाण है।

औरंगजेब क्रूर और स्वार्थी भी था। दिल्ली का तख्त प्राप्त करने के लिए उसने अपने भाइयों को मारा, पिता को जेल में बन्द कर दिया। स्वयं जेबुन्निसा ने शिवाजी के समक्ष औरंगजेब की क्रूर, स्वार्थी, अन्यायी एवं अत्याचारी प्रवृत्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला।

पांडेयजो ने औरंगजेब का जो चित्रांकन किया है, वह केवल कवि-कल्पना का चमत्कार मात्र नहीं है अपितु उसमें वास्तविकता है, सत्य है, प्रामाणिकता है क्योंकि वे सभी गुण (दुर्गुण) औरंगजेब में थे।

(७) **माता जीजाबाई**–इस महाकाव्यमें माता जीजाबाईको प्रधान नारी–पात्र के रूप में स्मरण किया जा सकता है। इस काव्य में उनके मातृत्व का जितना विशद वर्णन है, उतना पत्नीत्व का नहीं उनके विचारों में स्वजाति स्वधर्म और स्वदेश के प्रति प्रेम-भाव मिलता है। इस काव्य में वह शिवाजी को प्रेरणादात्री के रूप में अंकित हैं। उन्होंने शिवाजी को धार्मिक शिक्षा देकर स्वराज्य की नींव को पुष्ट किया। शिवाजी के लिए माता जीजाबाई जननी ही नहीं, जगन्माता थीं—

'तुम न मेरी ही, जगन्माता बनीं, कौन जो मातृत्वका वर्णन करें?

* * *

धन्य माँ जीवन तुम्हारा धन्य है, मधुर जीवन के सभी क्षण धन्य हैं।
जागरूक स्वधर्म हित माँ हो तुम्हीं, देश-रक्षण के सुलक्षण धन्य हैं।'[1]

(७) **अन्य पात्र**— 'शिवाजी' महाकाव्य में अच्छे-बुरे, सज्जन–दुर्जन सभी पात्रों की सृष्टि हुई हैं। वीर तानाजी शिवाजी की लक्ष्य सिद्धि के लिए प्रयत्नशील हैं। शिवाजी के आमंत्रण पर वे यह कहकर प्रस्थान करते हैं—

'रहता तुम्हारे ब्याह में
होती खुशी पर राह में
कर्तव्य आकर है खड़ा
जो ब्याह से भी है बड़ा।'[2]

पारिवारिक प्रेम को देशप्रेम ने दबा दिया। सिंहगढ़ के अभियान में उनकी वीरता, धीरता, शौर्य, कर्तव्यतत्परता और साहस दर्शनीय है। अन्त में लड़ते-लड़ते वीरगति पाते हैं।

दादाजी कोंगदेव और समर्थ गुरु रामदास दोनों ही शिवाजी के प्रेरक थे।

शाइस्ता खाँ और उदयभानु दोनों औरंगजेब के पक्ष के वीर थे। दोनों ही धर्मान्ध, अनुदार, अन्यायी और अत्याचारी थे।

१– 'शिवाजी' - सर्ग १९, पृ० २३७। २– वही, सर्ग २०, पृ० १४९।

इस काव्य में दोनोंका यही रूप अंकित है। बीजापुरी सरदार अफजल खाँ का चरित्र भी इसी कोटि में आता है। बाजीराव घोरपरे और चन्द्रराव मोरे देश-द्रोही के रूप में अंकित हैं तथा कृतकर्मानुसार कवि ने उनका नाश भी दिखाया है।

९-रस—'शिवाजी' महाकाव्य में वीर, करुण, शान्त, शृंगार, भयानक, रौद्र, वीभत्स वात्सल्य आदि रसों की व्यंजना हुई है।

चन्द्रराव मोरे और अफजल खाँ का वध, शाइस्ता खाँकी पराजय, सिंहगढ़का युद्ध आदि प्रसंगों में वीर रस की गंगा प्रवाहित है। प्रथम सर्ग में, माता जीजाबाई का अपने पुत्रके प्रति वात्सल्य भाव अंकित है। द्वादश सर्ग में, शृंगार की अभिव्यक्ति है। षोडस सर्ग में, आगरा दरबार में उपस्थित शिवाजी का रौद्र-रूप दर्शनीय है। अन्तिम सर्ग में, शान्त रस की धारा प्रवाहित है। इस प्रकार इस महाकाव्य में लगभग सभी रसों का सम्यक् निर्वाह हुआ है।

१०-छन्द—'शिवाजी' महाकाव्य में छन्दों का चुनाव विषय के अनुकूल है। कवि ने छन्दों की गति का पर्याप्त ध्यान रखा है। इस काव्य में छन्दों का वैविध्य दर्शनीय है। इसमें सरसी, ताटंक, रूपमाला, हंसगति आदि छन्दों का सफलता के साथ प्रयोग हुआ है। षष्ठ, अष्ट और द्वादश सर्ग मुक्त छन्दों में लिखे गये हैं।

११-प्राकृतिक-चित्रण—'शिवाजी' काव्य में प्रकृति के सुन्दर चित्र अंकित हैं। निम्नांकित पंक्तियों में प्रकृति परिस्थिति एवं परिवेश की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित की गयी है—

'चारो ओर अँधेरी रात तम की खुली भयावह जटा
रह-रह बिजली की कँप-कँपी नीचे जल, ऊपर घन-घटा

o o o

कहाँ जा रहा जाने कौन लेकिन थी कुछ अद्भुत बात
कहो, नहीं तो, काली रात सकती रोक न उसे बलात्[1]

कहीं-कहीं प्रकृति अलंकरण के रूप में प्रस्तुत है—

'शाह-श्री आगे थी गतिमान घटा पीछे सरदारों की
गगन में जैसी होती छटा चाँद के साथ सितारों की'[2]

इस काव्य में रात, वन; सन्ध्या, सूर्योदय, उषा, पर्वत, पशु-पक्षी, ऋतु आदि के वर्णन बहुत सुन्दर हैं।

१-'शिवाजी', पृ० ५३।
२-'शिवाजी'—सर्ग ११, पृ० १३४।

इस महाकाव्य में २५ सर्गोंमें से १२ सर्गोंका प्रारम्भ प्रकृति वर्णन से होता है और शेष सभी सर्गों का प्रारम्भ या अन्त वर्णनात्मक प्रसंगों से हुआ है।

इस प्रकार इस काव्य में प्रकृति-वर्णन प्रचुर मात्रा में विद्यमान है जिससे हमारी आँखें तृप्त होती हैं और हृदय आनन्दित होता है।

१२-वर्णन की विशदता—महाकाव्यमें वर्णन की विशदता का होना आवश्यक हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत महाकाव्य पर्याप्त सफल है। शिवाजी की सेना ने अफजलखाँ की सेना पर जो भयंकर आक्रमण किया उसकी एक झाँकी देखिए—

डंके के निनाद पर धाये वीर बाँकुरे
काल सम चारों ओर छाये वीर बाँकुरे
झाड़ी से निकल घाटी–घाटी से निकल के
टूटे अरि सेना पर धनी बाहु-बल के ॥[1]

इस प्रकार इस महाकाव्य में शिवा-जन्मोत्सव[2], शिवाजी का विवाहोत्सव[3], बीजापुर दरबार[4], आगरा दरबार[5], पूना और आगरा नगरों का वर्णन[6] तथा दूत-मन्त्रगा[7], युद्धों[8] आदि विषयों के सांगोपांग चित्र प्रस्तुत हैं।

(१३)यथार्थ,आदर्श और स्वाभाविकता–इस महाकाव्य में आदर्श के साथ यथार्थ का भी चित्र अंकित है। इसमें कवि द्वारा घटनाओं एवं चरित्रों को अधिक से अधिक स्वाभाविक एव मानवोचित बनानेका सफल प्रयास किया गया है। इसमें शिवाकालीन परिस्थिति का यथार्थ चित्र अंकित है।

(१४) उद्देश्य—कवि ने 'शिवाजी' महाकाव्य का उद्देश्य युग-धर्म और तदानुषंगिक रूप में समाज तथा देश का विकास रखा है।

भारतीय जनता को यह आशा थी कि स्वतंत्र भारत में उसे कुछ सुख-शान्ति मिलेगी, किन्तु भारत की स्वतंत्रता के बाद इस ओर से संपूर्ण निराशा ही जनताको प्राप्त हुई। स्वतंत्र भारतमें धर्म-श्रद्धा, संस्कृति तथा देश के प्रति प्रेम–भावना शिथिल हो गयी है। आपसी ईर्ष्या, द्वेष,कलह, मत्सर आदि का सारे देश में ज्वार आया है। देश की सीमाओं पर

१-'शिवाजी' सर्ग १०, पृ० १२८। २-सर्ग १, पृ० ८-१०। ३-सर्ग ३, पृ० ४६-४७। ४-सर्ग ३, पृ० ३५-३६। ५-सर्ग १६ पृ० १६२–१६७। ६–सर्ग १२ पृ० १४६।, सर्ग १६, पृ० १६०–१६२। ७–सर्ग ६, पृ०११४-११५। ८–सर्ग ८, पृ० १०५-१०६।

महत्वाकांक्षी, विस्तारवादी, दुष्ट एवं प्रबल शत्रु भयंकर आक्रमण के लिए अनुकूल क्षण की प्रतीक्षा में सन्नद्ध होकर खड़े हैं। राष्ट्रद्रोह, विश्वासघात करने वाले लोग सज्जनताका ढोंग कर भारतीय जनता को पथभ्रष्ट करने में लगे हुए हैं। बड़े-बड़े उच्चपदस्थ लोग स्वार्थ के वशीभूत हो उचित-अनुचित कर्म का भेद भूल गये हैं। स्वार्थ ने राष्ट्र-प्रेम को दबा दिया है। फलतः शुद्ध चारित्र्य, सदाचार, सभ्यता आदि को जीवन में अर्थहीन माना जाने लगा है। तात्पर्य यह कि देश के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में आज निराशा का जो घोर अंधकार छाया हुआ है, उससे एक प्रकार से देश का भविष्य धूमिल दिखायी दे रहा है।

पं० श्यामनारायणजी पाण्डेय राष्ट्रभक्त कवि हैं। देशके कलुषित वायुमण्डल से वे ऊब गये हैं। अतः उन्होंने आदर्श चारित्र्य-सम्पन्न, देशभक्त, धर्मभक्त, साहसी, नीतिचातुर्य की मूर्ति, जननेता, स्वराज्य-संस्थापक वीर शिवाजी को स्मरण कर देश तथा समाज की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय ने 'शिवाजी' की कथा इतिहास से ली है, पर इस कथा को उन्होंने काव्यात्मक परिवेश प्रदान किया है। अतः 'शिवाजी' के शिवाजो को कवि ने इतिहास के शिवाजी के ही रूप में नहीं बल्कि आधुनिक युगके प्रजापालक, लोक-मंगल-विधायक, समाजोद्धारक, राष्ट्रनेता एवं अच्छे शासक के रूप में अंकित किया है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में परतंत्रता पर स्वतंत्रता की, अन्याय पर न्याय की और दुष्टता पर सज्जनता की विजय है—

'अब चाहिए क्या, हर्ष है
उत्थान है. उत्कर्ष है

*　　*　　*

बहुजन हिताय सुखाय जो
तुमने दिया है न्याय जो
उसकी हृदय पर छाप है
वह अमिट अपने आप है'[1]

सांप्रत परिस्थिति में जातीय जीवन, भारतीय संस्कृति का महत्व एवं राष्ट्र की वर्तमान समस्याओं पर शिवाजी के चरित्र और प्राचीन व्यक्तित्व और कथा के माध्यम से, युग के माध्यम से विचार किया गया है। अतः प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने अपने समय के अनुकूल नये शिल्प

१— शिवाजी—सर्ग २१, पृ० २६१।

का निर्माण किया है। वस्तुतः शिवाजी में भारत की वर्तमान समस्याओं से संत्रस्त राष्ट्र की आत्मा की पुकार है।

(१५)महाकाव्यत्व—इस महाकाव्य में कवि ने शिवाजी के जीवन का सर्वांगपूर्ण चित्र अंकित किया है और नायक शिवाजी की प्रतिनायक औरंगजेब पर विजय दिखायी है। चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता है। मार्मिक प्रसंगों की पहचान, मौलिक उद्भावना, सर्गबद्धता, प्रसंगानुकूल भाषा, शैली, रसात्मकता; छन्दविधान, वर्णनकौशल, प्रकृति चित्रण और महाकाव्योचित शास्त्रीय नियमों के पालन आदि की दृष्टि से यह एक सफल महाकाव्य है।

(ख) खंडकाव्य और उसकी परिभाषा:—

प्रबन्ध काव्य का दूसरा भेद है खंडकाव्य या खंडप्रबन्ध। खंड-काव्यों के लक्षणों पर अधिक विस्तार से विचार नहीं किया गया है। 'खंडकाव्य' नाम विश्वनाथ कविराज का दिया हुआ है।[1] खंडकाव्य का उन्होंने स्वतंत्र लक्षण न देकर उसे काव्य के लक्षणों पर आधृत कर दिया है। विश्वनाथ प्रतिपादित काव्य को भूलकर लोग उसे महाकाव्य का खंड समझने लगे।[2] खंडकाव्य के लिए डा० भगीरथ मिश्र ने एक अन्य नाम 'खंडप्रबन्ध' दिया है।[3]

हिन्दी के विद्वान विश्वनाथ के प्रतिपादित सूत्र का ही उल्लेख करते रहे हैं, परन्तु इससे उनके द्वारा खंडकाव्य के स्वरूप चिन्तन में कोई योग नहीं मिला। फिर भी बाबू गुलाब राय,[4] डा० भगीरथ मिश्र,[5] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र,[6] डा० हरदेव बाहरी,[7] बलदेव उपाध्याय[8] डा० सरनाम सिंह,[9] डा० शंकुतला दुबे,[10] सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा[11], सं० नगेन्द्रनाथ बसु[12], सं० राजेन्द्र द्विवेदी[13] आदि विद्वानों ने खंडकाव्य की परिभाषाएँ देने का प्रयत्न किया है।

१-विश्वनाथ- साहित्य दर्पण ६। ३२९। २- डा० शंकुतला दुबे: काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास पृ० १४५। ३- डा० भगीरथ मिश्र: काव्यशास्त्र, पृ० ६७। ४- गुलाब राय: काव्य के रूप, पृ० २३। ५- डा० भगीरथ मिश्र: काव्यशास्त्र, पृ० ६६-६७। ६- आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र: वांड़मय विमर्श, पृ० ४६। ७- डा० हरदेव बाहरी: हिन्दी काव्य-शैलियों का विकास, पृ० ५। ८- बलदेव उपाध्याय: संस्कृत आलोचना द्वि० खं०, पृ० ६२। ९- डा० सरनाम सिंह: हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव, पृ० २८। १०- डा० शंकुतला दुबे: काव्यरूपों के मूल स्रोत और उनका विकास: पृ० १४३-१४७। ११- सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा: हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २४८। १२ सं० नगेन्द्रनाथ बसु: हिन्दी विश्वकोश, पृ० ८०। १३- सं० राजेन्द्र द्विवेदी: साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश पृ० ८०।

इन सब में डा० भगीरथ मिश्र ने खंडकाव्य के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया है। अपने काव्य शास्त्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि खंड-काव्य में मुख्यतः तो किसी एक घटना अथवा दृश्य की योजना ही होती है लेकिन अन्य प्रसंग भी संक्षेप में रहते हैं। अपने 'हिन्दी काव्य शास्त्र' के इतिहास में उन्होंने खंडकाव्य के नायक की ओर संकेत किया है। उनके विचारानुसार नायक ख्यात, अख्यात; कल्पित, देव; दनुज, मनुज, शांत, ललित, उदात्त, उद्धत—किसी प्रकार का हो सकता है। मिश्रजी ने इसमें कथा-संगठन को आवश्यक माना है, सर्ग-बद्धता को नहीं।

खंडकाव्य के इन भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये लक्षणों को मिलाने पर उसके निम्नांकित लक्षण निर्धारित किये जा सकते हैं—

१- खंडकाव्य का कथानक किसी ऐतिहासिक नायक-नायिका से सम्बद्ध हो।

२- खंडकाव्य में कथा-संगठन आवश्यक है। कथा-विन्यास में क्रम, आरंभ, विकास और चरमोत्कर्ष निश्चित हो।

३- खंडकाव्य का नायक सुर, असुर, मनुष्य अथवा इतिहास-प्रसिद्ध किसी भी प्रकार का हो सकता है।

४- खंडकाव्य में नायक के जीवन की एक ही घटना का वर्णन होता है जिसके द्वारा कवि उसके जीवन के किसी एक ही पक्ष को झलक प्रस्तुत करता है।

५- खंडकाव्य के लिए सर्गबद्धता अनिवार्य नहीं है।

६- खंडकाव्य में प्रासंगिक कथाओं का अभाव होता है।

७- खंडकाव्य अपने छोटे आकार में ही पूर्ण होता है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व होता है। नाम के 'खंड' शब्द से उसे महाकाव्य का खंड नहीं समझना चाहिए।

८- खंडकाव्य का उद्देश्य चतुर्वर्ग-फल में से किसी एक की प्राप्ति होता है।

९- खंडकाव्य में एक रस समग्र अथवा अनेक रस असमग्र रूप में रहते हैं।

१० महाकाव्य की तरह खंडकाव्य में भी मंगलाचरण रहता है।

११- खंडकाव्य सरल, सुबोध होना चाहिए, उसमें पांडित्य का प्रदर्शन नहीं होता। इसमें छंद-अलंकारों का विशिष्ट आग्रह भी अपेक्षित नहीं है।

१२- इसमें वस्तु-वर्णन की अपेक्षा चरित्र की महत्ता का वर्णन विशिष्ट होता है।

१३- खंडकाव्य में महाकाव्य की तरह प्रकृति-वर्णन होता है, किन्तु संक्षिप्त ही।

पांडेयजी के खंडकाव्य—

खंडकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर हम पं० श्यामनारायणजी पांडेय के खंडकाव्यों का विवेचन प्रस्तुत करते हैं—

१–तुमुल—

क–नामकरण—'तुमुल' नाम लेने से हमारे सम्मुख लक्ष्मण और मेघनाद का 'तुमुल' संग्राम आ जाता है। लक्ष्मण नाम सर्वजन परिचित है और उनकी वीरता तथा उनका शौर्य सराहनीय है। अतः यह शीर्षक विषयानुरूप, साहित्यिक, आकर्षक एवं उचित है। यदि इसके स्थान पर दूसरा शीर्षक 'त्रेता के दो वीर' रखा गया होता (जैसा कि इस पुस्तक के प्रथम प्रकाशन में था) तो वह शीर्षक अधिक लम्बा एवं असाहित्यिक होता। अतः इस काव्य को 'तुमुल' शीर्षक देकर कवि ने अपना विवेक एवं कौशल प्रदर्शित किया है।

ख–मंगलाचरण—कवि ने मंगलाचरण में भगवान की वंदना कर उसकी महिमा का गायन किया है। यथा—

'वही सिद्धि है, वही साध्य है, वही साधना का वरदान।
फूलों में मुसकाता जो है,
कवि के स्वर में गाता जो है।
दाता जो है, त्राता जो है,
माता, पिता, विधाता जो है।[1]
उसी देवता के चरणों पर मेरे मस्तक का अभिमान।

इसके बाद 'तुमुल' की कथावस्तु प्रारम्भ होती है। इसमें १६ सर्ग हैं।

ग–कथावस्तु—'तुमुल' की कथावस्तु लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध से सम्बन्धित है। इसमें कवि ने लक्ष्मण के चरित्र को महत् बनाने का प्रयास किया है। यही कारण है कि यह खंडकाव्य वस्तु परक न होकर चरित्र-प्रधान खण्ड-काव्य की श्रेणी में स्थान पाने का अधिकारी है। लक्ष्मण का जन्मोत्सव दिखलाकर अत्यन्त सुखद वातावरण में काव्य का प्रारंभ हुआ है। 'तुमुल' में कथा का विकास भी नाटकीय धरातल पर हुआ है। उसमें रावण और मेघनाद, मेघनाद और लक्ष्मण; लक्ष्मण और राम, राम और विभीषण आदि पात्रों के संवादों द्वारा कथा स्वाभाविक गति से आगे बढ़ती है। कवि ने जिस कथानक को चुना है, निश्चय ही वह धार्मिक एवं भाव-पूर्ण है। कथानक का अंत लक्ष्मण की विजय और राम-द्वारा लक्ष्मण की प्रशंसा से होता है।

१- 'तुमुल' अलख वही है वही महान (मंगलाचरण)

घ–पात्रों का चरित्र–चित्रण—

१–लक्ष्मण—लक्ष्मण इस खंडकाव्य के नायक हैं। उनके चरित्र में अनेक आदर्श गुण विद्यमान हैं। वे आज्ञापालक तथा कर्तव्यपरायण हैं। पर-दुख से उद्विग्न तथा पर–सुख से हर्षित होनेवाले उदारमना व्यक्ति हैं। शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण होते हुए भी वे छोटे-बड़े सभी के साथ समता का व्यवहार करते हैं। वे नीतिज्ञ, गुणज्ञ, सच्चरित्र तथा उदार हैं। उन्हें अपनी शक्ति पर प्रगाढ़ आत्म-विश्वास है—

'घननाद क्या यदि काल भी, मेरा करेगा सामना,
तो आज मारूँगा उसे, ऐसी प्रबल है कामना ॥'[1]

युद्ध-भूमि में जब लक्ष्मण और मेघनाद दोनों में वार्तालाप होता है, तब उस वार्तालाप के बीच लक्ष्मण की विनयशीलता प्रकट होती है। लक्ष्मण मेघनाद के रूप–सौंदर्य एवं शौर्य की प्रशंसा करके उससे कहते भी हैं—

'आके आँखों से तुझे देख के तो,
इच्छा होती युद्ध की ही नहीं है।
कैसे तेरे साथ में मैं लड़ूँगा;
कैसे बाणों से तुझे मैं हतूँगा ॥'[2]

मेघनाद जब उनकी बात नहीं मानता और लक्ष्मण युद्ध के लिए सन्नद्ध होते हैं तब युद्ध–भूमि में वे अपार शौर्य और वीरता दिखाते हैं। पर मेघनाद द्वारा शक्ति प्रहार किये जाने पर वे मूर्छित हो जाते हैं। तत्पश्चात् हनुमान के द्वारा संजीवनी आनयन से वे स्वस्थ होते हैं। फिर राम का आदेश मानकर वे मेघनाद–वधार्थ निकुंभिला की ओर प्रस्थान करते हैं और वे वहाँ मेघनाद का वध करते हैं। यज्ञरत मेघनाद को मारने में उनकी लोक-कल्याण की कामना निहित है। उन्होंने अपनी इस विजय को रामकी कृपाका फल माना है। इससे उनकी निरभिमानता सूचित होती है।

लक्ष्मण का चरित्र आद्यन्त उत्साह प्रधान है। उनमें अहं भाव नहीं है। उनके चरित्रकी विशेषता है भ्रातृ-प्रेम, आज्ञा पालन और कर्तव्य-परायगता। 'तुमुल' खण्डकाव्य में आत्म-विश्वास, शक्ति, साहस, धीरता, वीरता एवं शौर्य से लक्ष्मण का चरित्र मण्डित है।

२–मेघनाद–मेघनाद 'तुमुल' काव्य का प्रतिनायक है। वह विक्रमी तथा महाप्रतापवान था। उसने समस्त फणी-समाज को भी परास्त कर दिया था। उसे अपनी शक्ति पर दृढ़ विश्वास था। इसीलिए उसने राम

१- 'तुमुल' सर्ग १७, पृ० ११७। २– वही सर्ग १०; पृ० ५५।

के साथ लड़ने की भीषण प्रतिज्ञा की। तत्पश्चात् उसने युद्ध-भूमिकी ओर प्रस्थान किया, जिसे देख सुर भी चिंतित हो गये।

उसकी वाणी गर्वोक्ति से परिपूर्ण थी। अपनी शक्ति के मद में वह रसातल को उखाड़ फेंकने की कामना करता था।

मेघनाद विवेकी तथा सजग वीर था। लक्ष्मण द्वारा अपनी प्रशंसा सुनने पर भी वह लक्ष्मण के प्रति सजग था।

'कलश हैं, विषपूर्ण सुवर्ण के'
ज्वलित पावक-पुंज समान हैं।
इसलिए इनसे बच के मुझे,
तुरत ही करना रण चाहिए॥'[1]

युद्ध-भूमि में अपने भागते हुए सैनिकों को देखकर मेघनाद ने उन्हें डराया, धमकाया तथा धिक्कारा और वह स्वयं युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया। इस समय उसमें अपार उत्साह का संचार हुआ। युद्ध-भूमि में उसने अपार शौर्य दिखाते हुए लक्ष्मणको मूर्छित कर दिया और जब उसने अपना अजय मख प्रारम्भ किया तब वह लक्ष्मण के द्वारा मारा गया। इस प्रकार से 'तुमुल' में मेघनाद एक शूर, पराक्रमी योद्धा के रूप में अंकित है।

३-राम—'तुमुल' में राम का चरित्र संकेतों में आया है। मकराक्ष का वध करने के प्रसंग में उनकी वीरता प्रकट हुई है। मेघनाद द्वारा शक्ति चलायी जाने पर जब लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं तब लक्ष्मण के प्रति उनका विलाप उन्हें मानवोचित बना देता है तथा इससे उनका प्रगाढ़ बन्धु-प्रेम भी प्रकट होता है। लक्ष्मण की विजय सुनकर राम उनकी खूब प्रशंसा कर उन्हें गौरवान्वित करते है। इससे लक्ष्मण के प्रति उनके उदार तथा उदात्त भावों का परिचय मिलता है। वस्तुतः 'तुमुल' में राम का चरित्र बन्धु-प्रेम, वीरता तथा उदात्त भावों से युक्त है।

ङ-**विचारधाराः**—लक्ष्मण ने मेघनाद को मारने में जिस नीति से से काम लिया, वह धार्मिक रीति-नीति सम्मत नियमोंके अनुसार नहीं थी। तत्कालीन जनता सुख-शान्ति की इच्छुक थी। वह मेघनाद का विध्वंसक और विघातक शौर्य, पराक्रम नहीं चाहती थी। इसलिए उसको किसी भी तरह मारना आवश्यक था। एक के निधन का पाप अनेक के कल्याण के पुण्य में विलीन हो जाता है। लोक-कल्याण के लिए कटिबद्ध लक्ष्मणने वही कार्य किया जो उन्हें करना चाहिए था। यहाँ लक्ष्मण और मेघनाद क्रमशः सत् और असत् धार्मिक और अधार्मिक प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। मेघनाद

१—'तुमुल' सर्ग ११ पृ० ५८।

का वध और लक्ष्मण की विजय मानो असत् पर सत् की और अधर्म पर धर्म की विजय है।

च-छन्द, रस और अलंकार:—

१-छन्द— 'तुमुल' में हरिगीतिका, दिग्पाल, विधाता सरसीआदि मात्रिक छंद प्रयुक्त है। कहीं-कहीं यति-भंग भी मिलता है-जैसे—

'खग का समूह खग-
राज का करेगा क्या।'[1]

२-रस—इस काव्यमें वीर, करुण, रौद्र, भयानक, शान्त आदि रसों की अभिव्यक्ति हुई है। लक्ष्मण मेघनाद के युद्ध-प्रसंग में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर राम के विलाप में करुण रस अभिव्यक्त हुआ है। अंतिम सर्ग में शान्त रस की व्यंजना प्रधान है।

३-अलंकार—'तुमुल'में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकार प्रयुक्त हैं।

छ-प्रकृति-चित्रण—'तुमुल' में प्रकृति परिस्थिति एवं परिवेश की पृष्ठभूमि के रूप में अंकित है।—

दो नाग करते हैं समर जैसे परस्पर रोष से।
उन्मत्त दोनों लड़ रहें वैसे, परस्पर रोष से।।
विकसित पलास--समान वे, रक्ताक्त-तन देखे गये।
लड़ते हुए दो सिंह के से वीर वे लेखे गये।।'[2]

ज-उद्देश्य—'तुमुल' यद्यपि पौराणिक गाथाओं का अंश मात्रहै किन्तु भक्ति के कारण यह काव्य सबके लिए हितकारी है। इस काव्य का उद्देश्य धर्म और मोक्ष भी है क्योंकि इसको प्राप्ति प्रस्तुत काव्यसे हो जाती है। इसके लिए इस काव्य का अन्तिम सर्ग भी देखा जा सकता है।

'तुमुल' के सृजन के समय देश पर अंग्रेजों का राज्य था। उनके अन्याय, अत्याचार एवं अधर्म से भारतीय जनता दीन-हीन बन गयी थी। सारी जनता की आँखों के सामने घोर अंधकार फैला था। सुख-शान्ति के लिए तत्कालीन अंग्रेजी शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना आवश्यक था। अतः तुमुल' का कवि लक्ष्मण के आदर्श चरित्र का गौरव-गान कर देश-वासियों में साहस तथा उत्साह का संचार करना चाहता था। अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में कवि पर्याप्त सफल हुआ है।

१-'तुमुल'-सर्ग ६, पृ० ३१। २-वही सर्ग १२, पृ० ७०,७१।

(झ) **खंडकाव्य**—यथास्थान प्रकृति चित्रण, सरल छन्द, स्वाभाविक अलंकारों से युक्त भाषा, संवादों से परिपूर्ण शैली में 'तुमुल' की सृष्टि कर कवि ने अपनी श्रेष्ठ कला का परिचय दिया है। अपने १६ सर्गों के आकार में 'तुमुल' स्वतः में पूर्ण है। यही उसके सफल खंडकाव्य होने का प्रमाण है।

(२) **जय हनुमान**

(क) **नामकरण**—हनुमान का सम्बन्ध काव्य की प्रत्येक घटना से है। सीता की खोज का उद्देश्य भी अन्तमें हनुमान द्वारा पूर्ण होता है। प्रस्तुत काव्य में कवि का प्रमुख उद्देश्य हनुमानजी के उत्साह, साहस और वीरता आदि गुणों का वर्णन करना है। इसी ध्येय से कविने हनुमान के चरित्र को उत्कृष्ट रूप प्रदान किया है। लंकासे लौटने पर सभी बानर हनुमान की जय-जयकार करते हैं। इस आधार पर कवि ने प्रस्तुत काव्य को जो 'जय हनुमान' नाम दिया है, वह सर्वथा मनोवैज्ञानिक, व्यावहारिक, उपयुक्त तथा सार्थक है।

(ख) **मंगलाचरण**—मंगलाचरण में कवि ने हनुमान जी, गणेश तथा माँ सरस्वती की वन्दना की है—

हनुमान जी की वन्दना में--

'उस अजेय जेता के
कपि-कुल नेता के
वन्दनीय
वज्र-सम चरणों में
शत बार वन्दन
सहस्र बार वन्दन
असंख्य बार वन्दन।'[1]

गणेश जी की वन्दना में—

'मंगल-भवन गणाधिपति के चरणों में मस्तक झुकता है।
सब से दूर खड़ा हूँ मन वन्दन करने का रुकता है॥
श्री गणेश का नाम लिया ता बाधा फटक न पाती है
देवों का वरदान बरसता बुद्धि विमल बन जाती है॥'[2]

तथा विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को तो कवि पांडेय जी अपने हृदय में ही बैठाना चाहते हैं—

१–'जय हनुमान' - श्री 'रामदूत को प्रणाम', पृ० २।
२–'जय हनुमान' - 'गणेश की वंदना', पृ० १।

'माँ मैं तेरे पाँव पड़ूँ, तू मुझको तजकर जा न कहीं
बीन बजे मेरे अन्तर में आसन और लगा न कहीं'[1]

इसके बाद 'जय हनुमान' की कथा प्रारम्भ होती है। इसमें सात सर्ग हैं।

(ग) **कथावस्तु**—'जय हनुमान' का कथानक रामायणाश्रित है। इसका कथानक हनुमान द्वारा सीतान्वेषण की कथा से सम्बन्धित है। किन्तु इस काव्य में जीवनका विस्तृत रूप न देकर कविने हनुमानके चरित्र के एक ही पक्ष का उद्घाटन किया है। परन्तु इस संक्षिप्तता के बीच भी कवि ने अपनी कुछ मौलिक उद्भावनाओं के द्वारा हनुमान के चरित्र को महान बनानेका प्रयत्न किया है। यही कारण है कि 'जय हनुमान' वस्तु-परक न होकर चरित्र-प्रधान खंडकाव्य की श्रेणी में आता है। हनुमान, गणेश एवं सरस्वती की वंदना के बाद कवि ने कपीश-कहानी का प्रारम्भ किया है। बाद में जाम्बवन्त द्वारा हनुमान को उनके वीर-कृत्यों का स्मरण दिलाये जाने के प्रसंग से कथा का प्रारम्भ हुआ है। 'जय हनुमान' में कथा का विकास भी नाटकीय धरातल पर होता है। हनुमान और सुरसा, हनुमान और सिंहिका, सीता और रावण, हनुमान और सीता, मेघनाद और रावण, हनुमान और रावण, हनुमान और राम आदि पात्रों के संवादों में कथा स्वाभाविक गति से आगे बढ़ती है। कवि ने जिस कथानक को चुना है, निश्चय ही वह मार्मिक एवं भावपूर्ण है। इसमें कवि ने हनुमान, सीता की मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया है।

(घ) पात्रों का चरित्र चित्रण

(१) **हनुमान**—हनुमान इस खंडकाव्य के नायक हैं। वे अनेक गुणों से युक्त हैं। प्रारम्भ में जाम्बवन्त द्वारा शक्ति का स्मरण दिलाने पर उनका वीरत्व जाग जाता है। उनकी वीरताका दिग्दर्शन सुरसा, सिंहिका, लंका-दहन, राक्षस मर्दन आदि प्रसंगों में होता है। आकाश-मार्ग से लंका की यात्रा करना, पृथ्वी को उठाकर उड़ जाने की क्षमता रखना, तीव्र वेग को सहने में असमर्थ महेन्द्र गिरि के वृक्षों का उनके पीछे उड़ जाना उनकी वीरता और उनके पराक्रम के अतिशयोक्तिपूर्ण प्रमाण हैं।

हनुमानजी शास्त्रों के ज्ञाता, मन्त्रों के निर्माता, विद्वान और कल्याणी शक्ति के धारक हैं। 'जय हनुमान' में जाम्बवन्त के भाषण से ये बातें स्पष्ट हो गयी हैं।

१-वही सरस्वती की वंदना, पृ० २। २-जय हनुमान सर्ग १ पृ० ११।

अपने बल और साहस पर उन्हें विश्वास है। इसीलिए तो वे अपने साथियों से सम्पूर्ण लंका नगरी को ही उठा लानेकी बात करते हैं।[1] वे निर्भीक तथा सत्यवादी हैं। लंकेश के सम्मुख प्रहस्त द्वारा परिचय-प्रश्न पूछे जाने पर वे अपना उद्देश्य और सही परिचय देते हैं, जैसे—

'महामहिम हे राक्षसराज!
मैं हूँ काल राम का दूत।'[2]

भरे दरबार में वे रावण को उपदेश देनेमें भी नहीं चूकते यथा—

'धर्म-कर्म के ज्ञाता आप
कैसे किया पर-स्त्री हरण
यह तो बुध-जन-निन्दित कर्म
इसका फल है केवल मरण'[3]

इसके अतिरिक्त वे रावण से सीता को लौटाने के लिए भी कहते हैं। सारी सेना का संहार करने वाले हनुमान जी समयानुसार अपने को बँधवा लेते हैं, यह उनकी सहनशीलता का प्रमाण है। अपनी कार्यसिद्धि के लिए वे सर्वत्र नीति और चतुराई से काम लेते हैं। 'साधु कार्यमें बाधक की निन्दा होती विद्वानों में' [3] कहकर वे सुरसा को विचलित करते हैं और माँ कहकर समय की याचना करते है। क्षुधा-पीड़ित होने पर सीता से आज्ञा लेकर वे फल खाते हैं और रावण से मिलने की लालसा से वे अशोक वाटिका का विध्वंस करते हैं।

दूत-कार्य में भी वे दक्ष हैं। अपना अंग-अंग छिल जाने पर भी वे रावण के सम्मुख अपनी बात कह सुनाते हैं। लंका से स्वयं अपने बल पर वे सीता का समाचार ले आये और लंका जला आये किन्तु विनीत भाव से उन्होंने इस विराट पराक्रम का सारा श्रेय राम को दिया। इससे उनकी निरभिमानता प्रकट होती है। राम भी उनका महत्व स्वीकार करते हैं। वे राम के अनन्य भक्त हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में उन्हें राम-सीता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार से उनका चरित्र अनेक सद्गुणों का भाण्डार है।

(२) **रावण**—'जय हनुमान' काव्य में रावण प्रतिनायक के रूप में अंकित है। उसमें प्रतिनायक के सभी गुणावगुण विद्यमान है। उसके तेज और आतंक से देवता तक काँपते थे। अशोक वन में जब उसका आगमन हुआ, तो वहाँ चारो ओर आतंक का वातावरण फैल गया और

१- सर्ग ५, पृ० ७३। २- सर्ग ५ पृ०७४। ३- 'जय हनुमान'-सर्ग १, पृ० १४।

उसे देखकर सत्य की जानकारी के लिए हनुमानजी भी वृक्ष के ऊपर छिप गये। रावण और उसकी लंका का वैभव देख स्वयं हनुमानजी विस्मित हुए।

रावण अत्यंत विलासी एवं कामान्ध व्यक्ति था। अशोक-वाटिका में प्रवेश करना उनकी विलासी प्रवृत्ति का प्रतीक है। अशोक वन में राम की निन्दा करता हुआ सीता से जितनी बातें वह कहता है, उनमें उसकी कामान्धता के दर्शन होते हैं। परायी स्त्री से ऐसी बातें करने से उनका व्यक्तित्व निकृष्ट कोटि का बन जाता है। उक्त संवाद किसी भी शीलवंत राजाके लिए लज्जास्पद है।

रावण एक उत्तम राजनीतिज्ञ था। हनुमान को प्राणदण्ड दिये जाने पर विभीषण ने 'दूत अवध्य होता है' कहकर निषेध किया। उसकी बात मानकर रावण ने हनुमान को कुछ न कुछ दण्ड देने की नीति का अनुसरण किया। वह वेद–वेदांग पारगत,धर्मज्ञ,एवं महाज्ञानी था। हनुमान द्वारा उसके प्रति कहे गये बचनों में उसकी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

रावण एक कुशल प्रशासक भी था। उसके प्रशासन में सभी अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते थे। उसके राज्य में चारो ओर इतना कठिन पहरा था कि पक्षी भी लंका में बिना जानकारी हुए प्रवेश नहीं कर सकते थे। सीता द्वारा प्रणय-प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर वह उन्हं मारने के लिए तत्पर हो गया था। क्रोधोन्माद में वह अपना विवेक खो चुका था, अतः मन्दोदरी द्वारा स्थिति का परिचय कराये जाने पर भी वह उसका बात नहीं मानता।

अशोकवाटिका में हनुमान के भय से लौट आने वाले राक्षसों को उसने खूब डाँटा और धिक्कारा जिससे उसकी वीरता का आभास मिलता है।

ज्ञानी, शक्तिशाली, वैभव-सम्पन्न, वीर कुशल–प्रशासक होते हुए भी विलासिता एवं क्रूर प्रवृत्ति से उसका नाश हुआ।

(३) **सीता**—'जय हनुमान' में हमें सर्वप्रथम अशोक वन में सीता के दर्शन होते हैं। रामके वियोगसे उनका शरीर क्षीण था। अशोक वन में वे रावण के आगमन से भयभीत थीं। उन्हें अपने प्राणों का भय नहीं, प्रत्युत अपने सतीत्व की रक्षा की चिन्ता थी यथा—

'तन-मन काँपा सीता का
सीता का यौवन काँपा
असहाय सिकुड़ कर बैठीं
पातिव्रतका धन काँपा ॥'[1]

विरहीणी सीता न डरते हुए, किन्तु प्रतिकार की भावना से प्रेरित हो रावण के समक्ष ही उसके निन्दित कर्मों का उल्लेख करती हैं, जैसे—

'ज्यों सूनी मखशाला से, कुत्ता हवि ले भगता है।
त्यों मुझे चुराया, अघ से, क्या तुझे न डर लगता है?

* * *

तू धर्म-निपुण होकर भी, मद-वश करता पातक है।[2]

और उसे राम के पराक्रम का भी परिचय दिया। यथा—

'जिस तरह सोख लेते हैं, रवि के कर सरिता-जल को।
वैसे ही पी जायेंगे, प्रभु के शर तेरे बल को॥
दुम दबा श्वान भगता है, पा गन्ध सिंह की जैसे।
रघुकुल-नायक के डर से, तू भग जायेगा वैसे॥'[3]

इस प्रसंग में सीता-रावण संभाषण सक्षिप्त किन्तु सारगर्भित है।

सीता में आदर्श भारतीय नारी के गुण विद्यमान हैं। पर-पुरुष से बात न करना,यदि करना तो मध्यमें व्यवधान रखकर बातचीत करना, अपने वंश-गौरव की रक्षा को धर्म समझना, पातिव्रत धर्म, पति में अचल निष्ठा, सहसा किसी पर-पुरुष पर विश्वास न करना आदि बातें उनके आदर्श गुणों के अन्तर्गत आती हैं।

संकटकाल में भी वे पति-प्रेम नहीं छोड़ती। हनुमान से राम की दिनचर्या ही पूछ डालती है। रावण की कैद में रहकर भी-विषम परिस्थिति में भी-वे पातिव्रत-धर्म का पालन करती हैं।

त्रिजटा उनकी सहायिका थी। हनुमानके प्रति वात्सल्य-भाव और आशीर्वाद देना सीताकी उदारता का प्रमाण है। दीन और असहाय स्थिति में सीता अपने शत्रु रावणको भी सदुपदेश देती हैं। 'बुरे में भलाई जगाना' उनकी सदाशयता है।

आजकी भारतीय नारियोंमें जीवनके प्रति जो असंतोष है, उसका मुख्य कारण यह है कि उनके चरित्र में भारतीय नारी के आदर्श गुणों का अभाव है। सीताका यह आदर्श चरित्र भारतीय नारियों के लिए अनुकरणीय है।

१-'जय हनुमान'-सर्ग २, पृ० ३१। १-'जय हनुमान'-सर्ग २, पृ० ३३-३४। ३-वही, सर्ग २ पृ० ३५।

ङ-**विचारधारा**—प्रस्तुत काव्य मानव की धार्मिकता एवं भक्ति भावना को जगाने वाला काव्य है। कवि के मतानुसार 'जय हनुमान' के पठनसे पाप-तापोंका नाश होता है। और मानव–जीवनकी कर्तव्य-शीलता विकास पाती है। काव्य के प्रारम्भ में कवि ने इसका स्पष्ट संकेत दिया है।

इस काव्यमें नारी का सम्मान भी दिखाया गया है। रावणके प्रति मय-सुता द्वारा कहे गये वचनों से इसका प्रमाण मिलता है। मार्ग में आने वाली सुरसा को माँ कहकर हनुमान जी उससे समय की याचना करते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें भारतीय संस्कृतिके अनेक आदर्श अंगों का भी विवेचन मिलता है। जैसे—

कर्तव्यपरायणता एवं निरभिमानता भारतीय संस्कृति का प्राण है। हनुमान 'सीतान्वेषण' का उद्देश्य लेकर कर्तव्य-रत हुए, उसमें उन्हें विजय मिली। सीता का पता अपने बल पर लगाया किन्तु इसका श्रेय वे अपने साथियों को देते हैं—

'भद्र साथियों राम कृपा से,और तुम्हारे ही बल से।
मैंने सीता के चरणों का, दर्शन किया पुण्य-फल से ॥'[1]

इस प्रकार हनुमान के हृदय में अभिमान का लेशमात्र भी स्थान नहीं है। उन्हें अपने पर विश्वास है, गर्व नहीं।

भारतीय संस्कृति में नारी देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। हनुमान ने सुरसा को माँ कहकर उससे समय की याचना की। यथा—

'हनूमान सुरसा से बोले-—
माँ क्षण करो प्रतीक्षा तुम
× × ×
और प्रणाम किया सुरसा को
वह भी बहुत प्रसन्न हुई '[2]

इसके अतिरिक्त इस काव्य में धर्म-कर्म-न्याय,[3] सत्यवादिता,[4] देवताओं में विश्वास,[5] बड़ों का सम्मान[6] आदि तत्त्वों का विवेचन भी मिलता है।

१-'जय हनुमान', सर्ग ७ पृ० ९८।
२-'जय हनुमान' सर्ग १, पृ० १४। ३-सर्ग ५, पृ० ७४। ४–सर्ग ५, पृ० ७३
५-सर्ग ७, पृ० १०५ । ६-सर्ग ७, पृ० ९७।

आज का भारत जिस भौतिकवादी प्रगति से आगे बढ़कर सुख-शान्ति की कल्पना कर रहा है, उसका यह प्रयत्न उपर्युक्त आदर्श गुणों के अभाव में असफल रहेगा। उसके बिना उसे शान्ति नहीं मिल सकती।

इस काव्य में सर्वत्र धर्म-भ्रष्ट और कर्तव्य पराङ्मुख रावण का विनाश तथा धर्मात्मा और कर्तव्यतत्पर हनुमानजी की सफलता का विवेचन किया गया है।

च-उद्देश्य—कवि ने इस काव्य के माध्यम से देश और समाज की उन्नति का मार्ग प्रस्तुत किया है। काव्य-रचना के प्रारम्भ में कविने इसका स्पष्ट संकेत भी दिया हैं—

'मांनव समाज की, अनीतियों को दूर कर,सफल बनाये
जन जीवन जगाये देश जाति को उठाये
नित, जय हनुमान' यह।[1]

रावण शासित लंका में निरुद्योगी आलसी,कर्तव्यभ्रष्ट लोगों के बीच धर्म-कर्म का अभाव, विलास-वैभव का प्राधान्य तथा सती अपहरण आदि का बोल-बाला था। यही कारण है कि हनुमान जैसे एक वानर ने सारी लंका हिला दी। रावण और उसके अनुयायियों के दुर्गुणों के कारण ही लंका का नाश हुआ।

रावण अन्यायी, अत्याचारी था और हनुमान सदाचारी एवं कर्तव्य-निष्ठ। अन्ततः सदाचारी हनुमान के सम्मुख अत्याचारी रावण को झुकना पड़ा।

आज भारत की स्थिति भी लंका जैसी हो गयी है। चारो तरफ अन्याय, अत्याचार और अधर्म का राज्य है। इस राष्ट्रव्यापी अनीति, अत्याचार और अधर्मसे कवि ऊब गया है। अतः उन्होंने 'जय हनुमान' काव्य द्वारा सदाचार, कर्तव्यशीलता, स्वामि-भक्ति आदि का संदेश देकर आधुनिक भारत की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। 'जय हनुमान' का ध्येय मानवों में शक्ति, बुद्धि तथा साहस भरना तथा अनीति और अन्याय का नाश कर मानव-जाति को सुख तथा शन्ति प्रदान करना है।

छ-खंडकाव्यत्व—कथानक का प्रवाह, चरित्र-चित्रण, पात्रों के संवाद, वातावरण तथा शब्दार्थ व्यंजना पात्रों की मानसिक अनुभूतिसे विभिन्न विचारों एवं परिस्थितिजन्य समस्याओं का समाधान, सहज-सरल

१-'श्री राम दूत को प्रमाण' पृ० ४।

शैली, भावानुकूल भाषा, छन्द, रस और अलंकारके समन्वित रूप से 'जय हनुमान एक सफल खंडकाव्य है।

३-गोरा बध—

क–नामकरण—इस खण्डकाव्य में वीरवर गोरा ने अलाउद्दीन खिलजीके बन्दी रावल रतन सिंह की मुक्ति के लिए, चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी के सतीत्व की रक्षा के लिए तथा देश की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए देश की बलिवेदी पर अपनी बलि चढ़ा दी। प्रस्तुत खण्डकाव्य में उसी वीरवर गोरा के बध का वर्णन है। अतः इस रचना का 'गोरा-बध' नाम रखकर कवि ने अपनी काव्य-कला का परिचय दिया है।

ख–मंगलाचण—मंगलाचरण में भगवानकी वंदना करते हुए कवि ने लिखा है कि—

'पैरों पर हम गिरे रहेंगे कभी उठाओगे भगवान।
हमको गोरा सदृश वीरवर कभी बनाओगे भगवान॥
दीन जान हमको छाती से कभी लगाओगे भगवान।
हम सोयों को हाथ थामकर कभी जगाओगे भगवान॥'[1]

ग–कथावस्तु—'गोरा-बध' 'जौहर' से निकाला गया है। इस काव्य में कवि ने गोरा के वीर–चरित्र को ऊँचा उठाने का प्रयास किया है। 'गोरा-बध' में प्रथम सर्ग में गोरा के गौरव-गान से कथा आरंभ होती है और उसके बाद कथा का विकास नाटकीय धरातल पर होता है। गोरा और पद्मिनी, गोरा और अलाउद्दीन खिलजी; बादल और गोरा की पत्नी आदि पात्रों के संवादों द्वारा कथा स्वाभाविक गति से आगे बढ़ी है। गोरा के ऐतिहासिक रूप को अक्षुण्ण रखते हुए कवि ने उसे काव्यमयी व्यंजना दी है।

घ–पात्रों का चरित्र-चित्रण—

१–गोरा—गोरा इस खंडकाव्य का नायक है। उसमें अनेक आदर्श गुण हैं, वह वीर है। स्वामि–भक्त है, दृढ़-प्रतिज्ञ है, अतः उसने भरे दरबार में रानी पद्मिनी के सम्मुख शत्रु का दलन कर स्वामी को मुक्त कराने की भीषण प्रतिज्ञा की। इसमें उसके आत्म–विश्वास एवं उत्साह की झाँकी मिलती है—

'यदि हम गोरा बादल तो, वैरी दल दलन करेंगे।
बन्दी को मुक्त करेंगे, क्षणभर भी कल न करेंगे॥'[2]

१- गोरा-बध-मंगलाचरण, पृ० १। २- वही पृ० ३३।

जब वह डोलियाँ लेकर अलाउद्दीन के पास पहुँचता है, तब उसकी व्यवहार-कुशलता, नीति-चातुर्य एवं सजगता देखते ही बनती है।

उसमें अप्रतिम वीरोत्साह और विजय-प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा थी।

युद्ध-प्रसंग में उसका रौद्र रूप, उत्साह; धीरता और वीरता श्लाघनीय है। यही नहीं, मरते समय वह अपने दल के वीरों को महान संदेश देता है—

'निकली बोटी-बोटी से ध्वनि, मिटो जवानों, सती-मान पर।
वीर, मर मिटो आन-बान पर, वीर, मर मिटो स्वाभिमान पर ॥'[1]

उसके प्रत्येक शब्द में देश-भक्ति, आत्मोत्सर्ग तथा पातिव्रत रक्षा की भावना है। इस प्रकार से प्रस्तुत काव्य में वह एक शूरवीर के रूप में अंकित है।

२–अलाउद्दीन खिलजी—इस काव्य में अलाउद्दीन खिलजी प्रतिनायक के रूप में अंकित है। पद्मिनी के रूप की ओर आकृष्ट हो वह चित्तौड़ को धूल में मिला देता है। उसकी वासना की धधकती हुई अग्नि की लपटों से गोरा जैसा वीर भी नहीं बचा। अतः अलाउद्दीन खिलजी अपने मूल रूप में नृशंस अत्याचारी एवं कामान्ध प्रवृत्ति का प्रतीक है।

ङ–उद्देश्य—कवि ने इस रचना के माध्यम से भारत की वर्तमान समस्याओं का हल प्रस्तुत किया है।

वीरवर गोरा मेवाड़ के यशःशरीर का एक आकर्षक अंग था। उसने अलाउद्दीन खिलजी के बन्दी रावल रतन सिंह की मुक्ति के लिए, चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी के सतीत्व की रक्षा के लिए और अपनी पवित्र मातृ-भूमि मेवाड़ की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए मेवाड़ की बलिवेदी पर आत्मोत्सर्ग किया। उसका बलिदान हमारे लिए प्रेरणादायी तथा अनुकरणीय है। कवि की निम्नांकित पंक्तियों में इसकी झाँकी देखने को मिलती है—

'प्रभो पुजारी की पूजा यह, गोरा का वीरोचित व्रत।
रवि-मयंक सम अजर-अमर हो मुख-मुख में मुखरित सन्तत ॥

× × ×

पांचजन्य की ध्वनि स्वर-स्वर में जगा रही सन्तानों को।
हुं-हुं हुंकृति तुक-तालों में उठा रही बलिदानों को ॥'[2]

१– गोरा-वध सर्ग ६, पृ० ७०। २– वही सर्ग ७, पृ० ८६।

आज भारत स्वतंत्र है। यह स्वतंत्रता हमें अनेक बलिदानों से प्राप्त हुई है। इस स्वातंत्र्यकी रक्षा करना हमारा प्रधान कर्तव्य है और यह तभी संभव है जब देश में वीरता जागृत हो। देश में वीरता के भाव भरने के लिए अतीतकालीन वीर पुरुषों के शौर्य का गौरव-गान आवश्यक है। गोरा का गौरव-गान करने का कवि का यही उद्देश्य है।

आज भारतवर्ष में चारो तरफ निराशा व्याप्त है। देश-भक्ति की भावना मृतप्राय है। स्वार्थ के वशीभूत हो कई लोग कालाबाजार, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी कर धन जुटाने में संलग्न हैं। अनेक पथ-भ्रष्ट, देश-द्रोही देश में अराजकता पैदा करने के कार्य में संलग्न हैं। नैतिकता और कर्तव्यदक्षता का अभाव सारे देश में खटक रहा है। ऐसी स्थिति में वीरवर गोरा का स्फूर्तिदायी चरित्र हमारे लिए अतीव उपकारक है।

काव्य-कृति का मूल उद्देश्य भी देशवासियोंमें स्वातंत्र्य रक्षा के भाव भरना है। जन-मन में चेतनाका संचार करना है। उसमें साहस, शक्ति और वीरता पैदा करना है। वीरवर गोरा जैसे सद्‌गुणों से युक्त भारतवासी देश के स्वातंत्र्य की रक्षा कर सकते हैं। इसमें दो मत नहीं।

च–खण्डकाव्यत्व—पात्रों के भाव-पूर्ण संवाद, सरल शैली, यथास्थान प्रकृति-चित्रण, छन्द और अलंकारों की सुव्यवस्थित योजना, रस-परिपाक, उत्साह की तीव्र व्यंजना, युगानुसार उद्देश्य का वहन आदि दृष्टियों से 'गोरा-बध' एक सफल खंडकाव्य है।

ग–गीति-काव्य—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने महाकाव्य और खंडकाव्य ही नहीं लिखे, अनेक स्फुट कविताएँ भी लिखी हैं, जो उनके कवि–व्यक्तित्व की विविधता को सूचित करती हैं। इन रचनाओं में विषय–वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। इन कविताओं में एक ओर कवि आराध्य न मिलने के कारण अपने दुख को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर उसे परमेश्वर प्राप्ति की तीव्र कामना लगी है। इन कविताओं में कवि कहीं प्रिया की याद में बिसूरता हुआ दिखायी देता है तो कहीं उसके हृदय की व्यथा फूट पड़ती है। प्राकृतिक वस्तु-व्यापारों और घर के एकान्त वातावरण में उसे अपनी प्रिया की याद सताती है। पांडेयजी के स्फुट काव्य में कहीं कवि की भक्ति-भावना मुखरित है तो कहीं देश की रक्षा के लिए बलिदान की भावना उमड़ रही है। इस तरह से उनकी कविताओं के विषय भिन्न-भिन्न है। ये सभी फुटकर कविताएँ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में लिखी गयी हैं। विशेषकर कवि-जीवन के उत्तरकाल में लिखित कविताओं में कवि के

विचारों एवं उनके काव्य-प्रवाह का स्पष्ट निर्देश उपलब्ध है, जिसकी चर्चा आगे की गयी है।

२–विषयगत वर्गीकरण—

वर्ण्य-विषयों के आधार पर पांडेयजी का काव्य ९ वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

क- राष्ट्रीय काव्य, ख- सांस्कृतिक काव्य, ग- वीर काव्य, घ- पौराणिक काव्य, च-आध्यात्मिक काव्य, छ-रहस्य काव्य, ज- दार्शनिक विचारधारा का काव्य, झ- प्रेम-काव्य, ट- वात्सल्य भाव से परिपूर्ण रचनाएँ।

उपर्युक्त वर्गों का संक्षिप्त विवेचन निम्नानुसार है—

१–राष्ट्रीय काव्य—

राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय काव्य के सम्बन्ध में पाण्डेयजी के विचार—

पांडेयजी ने अपनी रचनाओं में कहीं प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र की परिभाषा, राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय काव्य का विवेचन तो नहीं किया है परंतु उनकी साहित्यिक कृतियों के अनुशीलन के आधार पर राष्ट्र-रूप में उनकी भारत के बारे में जो कल्पना है, उससे हम आसानी से परिचित हो सकते हैं।

कवि के शब्दों में भारत राष्ट्र का चित्र निम्नानुसार है—

'उधर आगे पहाड़ों के अभी आसाम आता है।
हमारा नव गुरुद्वारा अभी बंगाल आता है॥
वहाँ से दस कदम दिल्ली वहाँ से दीखती दिल्ली।
चलो लें खून का बदला व्यथा से चिखती दिल्ली॥
जलाया जा रहा काबा लगी है आग काशी में।
युगों से देखती रानी हमारी राह झाँसी में॥
शिवा की आन पर गरजो कुँवर-बलिदान पर गरजो।
बढ़ो दरते पहाड़ों को भगत की शान पर गरजो॥
हिमालय ने पुकारा है जननि-पय ने पुकारा है।
हमारे देश के लोहिया-उषा-जय ने पुकारा है॥'[1]

राष्ट्र के प्रति कवि के जो भाव हैं, यहाँ उनकी काव्यमयी व्यंजना है। कवि के शब्दों में उनके भारत राष्ट्र की भौगोलिक सीमा रेखा के साथ ही उनके राष्ट्र का ऐतिहासिक मानचित्र भी अभिव्यंजित हुआ है और उनके राष्ट्र में काबा भी सम्मिलित है, जो उनकी उदारता को सूचित करता है। कवि के शब्दों में एक ओर राष्ट्र की दुर्दशा के प्रति उनके हृदय में आकुलता है; तो दूसरी ओर इस दुर्दशा को दूर करने की तीव्र उमंग भी

१- आरती पृ० ९२।

है। कवि ने भारत-भूमि को मातृ-शक्ति के रूप में देखा हैं। उनके काव्य में 'जननि' शब्द इसका प्रमाण है।

भारत जैसे राष्ट्र में विविधता में भी एकता होनी चाहिए। इस राष्ट्रीय एकता से ही राष्ट्र का विकास संभव है। पांडेयजी के शब्दों में राष्ट्र-विकास के लिए एकता तथा भ्रातृत्व भाव का सुन्दर संदेश विद्यमान है—

'ओ महाराष्ट्र के रणधीरों!
ओ मुगल पठानों माबलियों!
ओ गढ़ के वासिन्दों वीरों!
× × ×
मालिन्य परस्पर दूर करो
× × ×
सब के गले से गले मिलो
साथी हो भाई-भाई हो
ऐसा हो भरत-मिलाप मधुर
जो मंगलमय सुखदायी हो ॥'[1]

राष्ट्रीयता की आवश्यकता—पांडेयजी ने अपनी राष्ट्रीयता के संबंध में अलग से विचार व्यक्त नहीं किये हैं। फिर भी उनको कविताओं के माध्यम से हम उनकी राष्ट्रीयता को पहचान सकते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी के अनुसार 'राष्ट्र के झंडे और विधान से बढ़कर उसके पास और क्या होता है, जिस पर गर्व किया जा सके? और इस गर्व की निरन्तर सुरक्षा की भावना से बढ़कर और क्या हो सकता है जिसे हम राष्ट्रीयता कहें।'[2] 'वे नैतिकता को राष्ट्र की रीढ़ की हड्डी मानते है और राष्ट्र-निर्माण के लिए वे ईमान और आदर्शों का बल, अभिमान करने योग्य वस्तुओं की उपस्थिति और बलिदान का निश्चय अनिवार्य समझते हैं।'[0] पांडेय जी के काव्यमें उपर्युक्त सभी बातें मिलती हैं। उनके शब्दों में राष्ट्रीयता, राष्ट्र-निर्माण की तीव्र उमंग और बलिदान की भावना का सुन्दर संयोग देखिए—

'चाहो तो तिरंगा फहरा करे खमण्डल में।
चाहो तो कुलाबा मही-व्योम का मिला दो तुम ॥
एक ही निमेष में खलों को बरबाद करो।
पहला जमाना फिर विश्व पर ला दो तुम ॥

१- शिवाजी सर्ग २४, पृ० ३००। २-'हिन्दुस्तान' -रवि० दि० ८-१-१९६१, राष्ट्रीयता की आवश्यकता कालम ४।

चहल-पहल का तहलका मचा दो फिर।
कण्ठ में वितुण्डमाल के वितुण्ड-माल दो॥
बाज-सा हहा के हहरा के लहरा के उठो।
युवक, फरेरा फहरा के जान डाल दो॥

* * *

बढ़ो जयहिन्द नारों से कलेजा थरथरा दें हम।
किले पर तीन रंगों का फरेरा फरफरा दें हम॥[1]

उक्त मन्तव्य के अनुसार पांडेयजी का प्रचुर काव्य राष्ट्रीयता की भाव-भूमि पर आधारित है।

कविवर पांडेयजी राष्ट्रीय कविता के सम्बन्ध में कहते हैं—

'हल्दीघाटी के छन्द निर्झर की तरह अबाध गति से बहते रहें, उनमें वह बिजली पैदा हो जिससे मुर्दों की भी भुजाएँ फड़कने लगें, उनसे वह 'टानिक' उद्भूत हो जिससे पढ़नेवालों का खून बढ़ने लगे और वह प्रकाश फूट पड़े जिससे एक बार सारा राष्ट्र जगमगा उठे।[2] उनके मतानुसार वे समस्त रचनाएँ जो समस्त राष्ट्र को जगमगाने का सामर्थ्य रखती हैं और जिनमें प्रेरणा, उद्बोधन और उत्तेजनादि भाव मिलते हैं, राष्ट्रीय मानी जा सकती हैं। ऐसी राष्ट्रीय कविताओं की आवश्यकता कल भी थी; आज भी है, कल भी रहेगी।

अर्थात् केवल मार-काट का वर्णन करनेवाली कविताओं को राष्ट्रीय कविता नहीं कहा जा सकता है। पं० श्यामनारायण पांडेयजी के शब्दों में केवल मार-काट का वर्णन नहीं है। उनके काव्य में भारतीय जन-जीवन की राष्ट्रीय भावनाओं को सदा प्रबुद्ध करने की कामना तथा राष्ट्रीय भावों को उद्दीप्त करने की अद्भुत शक्ति विद्यमान है।

राष्ट्र के प्रति साहित्यकार का दायित्व—डा० संपूर्णानन्द के अनुसार 'जो साहित्यकार देश के जन-जीवन की उपेक्षा कर मौज का राग अलापता है, उसे साहित्यकार कहलाने का अधिकार नहीं है।'[3]—और उनके अनुसार—'कोई साहित्यकार राष्ट्र के लिए उपयोगी साहित्य की सृष्टि कर रहा है, इस बात की अकेली पहचान यह है कि साहित्यकार सत्य तथा राष्ट्रीयता को अपनी श्रद्धा के अनुसार जिस रूप में ग्रहण करें, उसी रूप में निर्भय होकर व्यक्त करे, भागे नहीं।

१- आरती, पृ० ७६, ७९, ९१, ९२।
२- हल्दीघाटी, पुनरावृत्ति के लिए, पृ० २५।
३- सं० डा० लक्ष्मीचंद्र खुराना- हिन्दी गद्य रत्नावली, पृ० १०० पर उद्धृत।

यदि वह ऐसा करता है, तो बिना किसी वाद का प्रचारक हुए उसका साहित्य राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी होगा।'[1]

पराधीन एवं विपन्न लोगों के देश के लिए शृंगार रसाप्लावित एवं ओछे गीतों की आवश्यकता नहीं होती। उसके लिए वह कविता निरर्थक है, जो मौज का राग अलापती हो। पराधीन भारत में, पांडेय जी की दृष्टि से, वीर रसाप्लावित कविताओं की आवश्यकता थी, जो राष्ट्र की सूखी धमनियों में उष्ण रक्त का संचार करतीं। यही कारण है कि उनका काव्य वीर रस से ओतप्रोत है। उसका मूल उत्स स्वर्णिम अतीत है। उन्होंने ऐसे नायकों का गौरवगान किया है जिन्होंने स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए अपना जीवन सर्वस्व समर्पित किया था। ऐसे स्वातंत्र्य-प्रेमी धीर वीर चरित्रों के माध्यम से कवि ने अपनी स्वातंत्र्य-अभिलाषा प्रकट कर देशवासियों में नयी उमंग, नयी उत्तेजना एवं नयी स्फूर्ति पैदा की है। बिना किसी 'वाद' का प्रचारक हुए पांडेयजी पूर्ण आत्मविश्वास और ध्येय के साथ अपने काव्य-पथ पर अग्रसर हुए। राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रोत्थान, स्वातंत्र्य-भावना तथा त्याग और बलिदान के समर्थक होने के कारण पांडेय जी राष्ट्रीय साहित्यकार हैं और उन्होंने राष्ट्रके प्रति अपने दायित्व को,कवि-कर्तव्य को पूरी तरह से निभाया है। पांडेयजी के सम्बन्ध में डा० शर्माकी निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए-'वीर पूजा, अतीतके गौरव-चित्र, राष्ट्रीय सम्मान, उद्‌बोधन के सरस स्वर इनकी वाणी से स्वतः फूट पड़े।'[2]

डा० गुप्त के अनुसार-'स्वाधीन देश के कवि से यह भी अपेक्षित है कि-'वह राष्ट्रवाद और मानवतावाद का व्यापक आधार लेकर काव्य रचना करे।'[3]

पांडेयजी के काव्यने मानव-समाज और देश-हित का भाव प्रचारित कर, राष्ट्रीय विकास एवं उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। उनकी स्वातंत्र्योतरकालीन रचनाएँ (जय हनुमान, शिवाजी) आदि इसके प्रमाण हैं। अतएव हमारे मत से उनकी ये रचनाएँ भी राष्ट्रोत्थान के भावों से ओतप्रोत है।

१-डा० लक्ष्मीचन्द्र खुराना-हिन्दी गद्य रत्नावली, पृ० १०० पर उद्‌धृत।
२-डा० रामसकल राय शर्मा : 'द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य'-पृ० ३८२।
३- डा० सुरेशचन्द्र गुप्त : 'आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त' पृ० २७१।

पांडेयजी के काव्य में राष्ट्रीय भावना के विभिन्न रूप–

आधुनिक हिन्दी की राष्ट्रीय कविता को विभिन्न धाराओं में विभाजित करने का प्रयास डा० लक्ष्मीनारायण दुबे[1], डा० क्रांतिकुमार शर्मा[2], और डा० कलवडे[3] आदि लेखकों ने किया है। पं० श्यामनारायण जी पांडेय के काव्य में राष्ट्रीय भावना के जो रूप मिलते हैं, उनका विश्लेषण एवं विवेचन निम्नानुसार है—

क–देश-प्रेम, देश–वंदना तथा प्रशस्ति के गीत—हिन्दी का काव्य देश–प्रेम, राष्ट्र-वंदना पूजा एवं प्रशस्ति गानों से परिपूर्ण है। मातृ-भूमि के प्रति स्वाभाविक प्रेम की व्यंजना भारतेन्दु युग से लेकर आज तक की राष्ट्रीय कविताओं में हुई है। पं० श्यामनारायण जी पांडेय के काव्य में भी उक्त भावना पायी जाती है। कवि के शब्दों में महाराणा प्रताप का देश–प्रेम देखिए—

रख लो अपनी मुख लाली को मेवाड़ देश हरियाली को।
दे-दे नर–मुण्ड कपाली को शिर काट–काटकर काली को।।

* * *

जब तक दुख में मेवाड़ देश, वीरों तब तक के लिए क्लेश।।
विष बीज न मैं बोने दूँगा, अरि को न कभी सोने दूँगा।
यों दूध कलंकित माता का मैं कभी नहीं होने दूँगा।।'[4]

इस प्रकार से देश के लिए सदा त्याग, तपस्या और बलिदान की आवश्यकता का प्रतिपादन पांडेयजी के काव्य में स्थान-स्थान पर किया गया है। अपने देश के लिए सर्वस्व त्याग करने वाला व्यक्ति ही आदर्श देश–प्रेमी बन सकता है। हर देश-प्रेमी अपने देशकी सुरक्षा के लिए मर मिटने की आकांक्षा रखता है और अवसर आने पर तद्वत आचरण भी करता है। उपर्युक्त पंक्तियों में महाराणा प्रताप का यही रूप झलकता है।

भारत–भूमि के तरंगायित समुद्र, प्रफुल्ल वनराजि, गिरिकन्दरा, धवल किरीट हिमालय और सदा प्रवहमान सरिताओं ने प्राचीन काल से यहाँ के कवियों को मोहित कर रखा है और आज भी उनका ऐसा प्रभाव

१–लक्ष्मीनारायण दुबे-'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' व्यक्ति और काव्य पृ० १६३।
२- डा० क्रान्तिकुमार शर्मा - 'नयी दुनियाँ'–दीपावली विशेषांक, राष्ट्रीय काव्य के विभिन्न रूप, सं० २०१८, पृ० ५८।
३- डा० सुधाकर शंकर कलवडे-'आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० ११८-११६। ४-हल्दीघाटी सर्ग ५ पृ० ८७, ६०।

है। आधुनिक युग के भी अनेक कवि मातृ-भूमि के सौंदर्य-गान में मग्न दिखायी देते हैं। पं० श्यामनारायण पांडेयजी में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है। कवि के शब्दों में भारत राष्ट्र की प्राकृतिक सुषमा की भव्य झाँकी के साथ ही उसकी महानता का सांगोपांग स्वरूप देखिए—

'भारत महान था
साथ-साथ योग और कर्म का विकास देख
विस्मित जहान था
उसके समान अन्य देश में
न बुद्धि थी, न शुद्धि थी
न विद्या थी, न कला थी
गुरु था, धुरीण था
सब से प्रवीण था
एक ओर नगराज
तीन ओर तोयनिधि
उसकी सुरक्षा-हित
बड़े जागरूक थे।'[1]

यहाँ कवि की दृष्टि सहज ही भारत के पर्वत, समुद्र, योग-कर्म, बुद्धि, विद्या आदि विभूतियों पर गयी है। मातृ-भूमि से संबंधित होने के कारण इन सब से उसकी स्वाभाविक ममता है। इनके प्रति अनन्य आत्मीयता और श्रद्धा है। इसलिए उसके वर्णन में प्रभावोत्पादन की भरपूर क्षमता है।

एक स्थान पर कवि ने छत्रपति शिवाजी की कर्म-भूमि एवं साधु-संतों की धर्म-भूमि (महाराष्ट्र) के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है, जैसे—

'आगे महाराष्ट्र है
रुको
विनीत भाव से बढ़ो
कर्मशील सूरमा
शिवा की कर्म-भूमि है
सन्त तुकाराम की
समर्थ रामदास की
अकाम ज्ञानदेव नामदेव
एकनाथ की
पवित्र धर्म भूमि है
झुको
नमस्कार करो।'[2]

१– शिवाजी, सर्ग ८, पृ० १०१। २– वही, सर्ग १२, पृ० १४३।

महाराष्ट्र में वीरों एवं संतों की सदा पूजा एवं वंदना होती रहे, यही कवि की कामना है।

ख-अतीत का गौरव गान—अतीत का गौरवगान वर्तमान को प्रेरणा और भविष्य को मार्गदर्शन देता है। अतीत द्रष्टा कवि अतीत के गौरव-गान द्वारा ही वर्तमान समस्याओंका समाधान प्रस्तुत करता है और भविष्य के लिए—युग-युग के लिए—जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। पं० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'[1], डा० शम्भुनाथ पांडेय[2]; डा० कलवडे[3], बाबू गुलाबराय[4] आदि लेखकों ने कवियों द्वारा अतीत के गौरव-गान का यही महत्व आँका है।

द्विवेदी युगीन कवियों का राष्ट्र-प्रेम के लिए अतीत की ओर आकृष्ट होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उस समय ब्रिटिश साम्राज्यके भीषण दमन-चक्रके कारण मुक्तकंठ से वर्तमान की आलोचना करना कठिन था। ऐसी अवस्थामें इस युग के कवियोंको वर्तमानकी क्षति-पूर्ति के लिए अतीत के गौरव में पर्याप्त साधन मिले। अंग्रेजों के शासन काल में स्वतन्त्रता का उद्घोष करना तथा तदानुषंगिक साहित्य-रचना एक अपमान माना जाता था,अतः तत्कालीन स्वातन्त्र्य आंदोलनमें कवियों ने देश-भक्ति एवं स्वातन्त्र्य-प्रियता जैसी प्रस्तुत बातोंको अप्रस्तुतके माध्यम से अधिक अभिव्यक्ति दी। डा० नगेन्द्र के अनुसार—'कवियों के लिए यह पथ अधिक प्रशस्त था।'[5] कवि श्यामनारायण पांडेय भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं हैं। उनके शब्दों में अतीत के गौरव-गान का लक्ष्य देखिए—

'जन में जाग्रति पैदा कर दूँ, वह मन्त्र नहीं, वह तन्त्र नहीं।
कैसे वांछित कविता कर दूँ, मेरी यह कलम स्वतन्त्र नहीं॥
अपने उर की इच्छा भर दूँ, ऐसा है कोई यन्त्र नहीं।
हलचल-सी मच जाये पर मैं, लिखता हूँ रण षड्यन्त्र नहीं॥
× × ×
फिर भी पीड़ा से भरी कलम लिखती प्राचीन कहानी है।
× × ×
लिखती हल्दीघाटी रण की वह अजर अमर कुर्बानी है।'[6]

१—लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'—'साहित्यिक निबन्ध'-पृ० ३३। २-डा० शम्भुनाथ पांडेय-'आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद'-पृ० ५७। ३-डा० सुधाकर शंकर कलवडे-'आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना'-पृ० १३३। ४-बाबू गुलाब राय—'काव्य विमर्श'-पृ० १६७। ५- डा० नगेन्द्र—'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ'-पृ०३। ६—'हल्दीघाटी' सर्ग ११ पृ०११६।

उपर्युक्त भावोद्गार में कवि का स्वातन्त्र्य-प्रेम, उसके हृदय की छटपटाहट बड़ी प्रामाणिकता के साथ प्रकट हुई है। भारत का स्वर्णिम अतीत पांडेयजी की कवि कल्पना को स्फुरित करता है। उससे उनके हृदय में आत्म-सम्मान का भाव जागृत हुआ है तथा अतीतके गौरव ने उसे संकट के समय उत्साह और साहस प्रदान किया है। भारतीय अतीत की भव्यता कवि के हृदय में केवल आशाका संचार ही नहीं करती, अपितु उसे देश के आशापूर्ण भविष्य का विश्वास भी दिलाती है।

मध्यकालीन राजपूतों में महाराणा प्रताप प्रख्यात वीर थे। वे सही अर्थों में भारतीय शौर्य एवं पराक्रम के प्रतीक हैं। पांडेयजी के काव्य में राणा प्रताप की वीरता, शौर्य एवं साहस देखिए—

'आग बरसती हो पर जिसको, आगे बढ़ने की लय थी।
शस्त्र-हीन घिर जाने पर भी किसकी जय आशामय थी॥
रोम–रोम जिसका वैरी था, जो सहता था दुख पर दुख।
काँटों के सिंहासन पर भी शत सविता–सा जिसका मुख॥

० ० ०

भाई ने भी छोड़ दिया-पर रखा देश का पानी है।'[1]

महाराणा प्रताप उस महाराणा सांगा के वंशज थे, जिसने अपने शरीर पर अस्सी घाव खाकर भी अनेक शत्रुओं को यमलोक का मार्ग दिखलाया था। कवि के शब्दों में महाराणा सांगा की वीरता देखिए:—

'सांगा को अस्सी घाव लगे, मरहम पट्टी थी आँखों पर।
तो भी उसकी असि बिजली-सी, फिर गयी छपाछप लाखों पर॥'[2]

राजपूत स्त्रियाँ भी पुरुषों में कम वीर न थीं। उन्होंने अपने अद्भुत शौर्य और वीरता से अनेक युद्ध किये और अनेक बार शत्रुओं को परास्त किया। राजपूत वीरांगनाओं की वीरता राजपूतों के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है।

अकबरके प्रति सन्धि-पत्र लिखने वाले महाराणा प्रताप को अपने कर्तव्य के प्रति सचेत करते हुए उनकी रानी-राजपूत वीरांगना-अपने हाथ में तलवार लेकर और रण-चण्डी का रूप धारण कर युद्ध-भूमि में कूद पड़ना चाहती है। कवि के शब्दों में उनका युद्धोत्साह देखिए—

'तू सन्धि-पत्र लिखने का कह कितना है अधिकारी?
जब बन्दी माँ के दृग से अब तब आँसू हैं जारी॥

१-'हल्दीघाटी'–सर्ग ११, पृ० ११६ वही—प्रस्तावना-पृ० ३।
२-'हल्दीघाटी' परिशिष्ट, पृ० २००।

थक गया समर से तो अब रक्षा का भार मुझे दे।
मैं चण्डी-सी बन जाऊँ, अपनी तलवार मुझे दे।।[1]

स्वपक्ष की पराजय की संभावना देखकर राजपूत वीरांगनाओं का जौहर-व्रत उनकी वीरताकी पराकाष्ठा था। पांडेय जी ने 'जौहर' में वीरांगना पद्मिनी के सतीत्व और बलिदान का अनुपम चित्र उपस्थित कर, उसके कोमल एवं रौद्र रूप को एक साथ अंकित किया है—

'हिम-माला है, पर ज्वाला भी,
लक्ष्मी है, पर काली भी।
दो डग चलना दुर्लभ, पर
अवसर पर रण-मतवाली भी।।[2]

इनके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्यमें ऋषि, मुनि, गुरु, धार्मिक ग्रन्थ, सीता सावित्री आदि के पुनीत प्रभावों का वर्णन कर भारतीय जन-जीवन में सांस्कृतिक दृष्टि से भी राष्ट्रीय भावों को वहन करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

(ग) विदेशी शासन के प्रति असंतोष की भावना—

अंग्रेजों की दमन–नीति, उनकी भारतीयों के प्रति भेद-भावना और उनके द्वारा किये गये अन्याय एवं अत्याचारका परिचय भी पांडेयजी के काव्य में मिलता है। पांडेयजी स्वयं अंग्रेजों के अत्याचारों के प्रभाव में जी रहे थे। कवि के शब्दों में अंग्रेजों के प्रति उनकी असंतोषकी भावना देखिए—

'असहायों की गर्दन पर दुश्मन की फिरती हो तलवार।'[3]

कवि के मतानुसार भारत कुबेरपुरी है और अंग्रेज अलाउद्दीन है। चित्तौड़गढ़ में अलाउद्दीन का प्रवेश मानो भारत में अंग्रेजों का प्रवेश है। कवि के शब्दों में इन भावों की अभिव्यंजना कितनी सुन्दर बन पड़ी है—

'सिंह-द्वार से घुसे जा रहे, चोर कुबेरपुरी के अंदर।
* * *
जगो, तुम्हारी अलका में पर-तापी घुसते जाते हैं।
उठो, तुम्हारी स्वर्गपुरी में पापी घुसते जाते हैं।।
जगो, तुम्हारी काशी में हत्यारों ने घेरा डाला।
* * *
जगो, तुम्हारी जन्मभूमि को रौंद लुटेरे लूट रहे।
जगो, तुम्हारी मातृ–भूमि के जीवन के स्वर टूट रहे।।

१–'हल्दीघाटी' सर्ग; १५, पृ० १७०। २–'जौहर' चि० ३, पृ० ३३।
३- 'आरती'-पृ० ६०।

जगो, तुम्हारे अन्न-वस्त्र पर राह बनायी जाती है ।
उठो, तुम्हारी हरियाली में आग लगायी जाती है ।।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में विदेशी शासन के प्रति असंतोष, देश-दुर्दशा एवं उद्बोधन के भाव द्रष्टव्य हैं।

(घ) देश की दुर्दशा का चित्रण—

कवि ने जहाँ अतीत का गौरव-गान कर हमारी नसोंमें उत्तेजना पैदा की, वहाँ देश की वर्तमान दुर्दशा का चित्रण कर देशोद्धार के लिए हमें अपने कर्तव्य के प्रति सचेत भी किया है। पराधीन भारत में कृषक एवं गरीबों का सबसे अधिक शोषण हुआ । किसान तो हमारे राष्ट्र का मेरु-दण्ड है, जिसे विदेशी शासन ने दीन-हीन बनाकर बरबाद कर दिया। कवि के शब्दों में किसानों एवं गरीबों की दुर्दशा का यथार्थ चित्र देखिए—

'जहाँ गरीबों की आहों से राख हो रहा हो संसार ।

*　　　　*　　　　*

बरस रहे हों आसमान से दीन किसानों पर अंगार ।
जहाँ लोग भूखों मरते हों और मचा हो हाहाकार ।।'[2]

पराधीन भारत की दुर्दशा का यह काल्पनिक चित्र नहीं, अधिकृत फोटोग्राफ है।

(ङ) दासता का चित्र—

स्वातंत्र्य-आंदोलन में अंग्रेजों ने अनेक देशभक्तों को जेल की सीखचों में बन्द कर दिया था और वे दुःख के दिन गिन रहे थे। अतः कवि को अपनी पराधीन अवस्था खलती थी। देशभक्तों की दुर्दशा पर वह क्षुब्ध हो उठता था, अतः उसकी वाणीमें उसकी विवशता एवं हृदयकी छटपटाहट भली-भांति प्रकट हुई है—

'झन-झन-झन माँ की हथकड़ियाँ ।।
पैरों में हैं बँधी बेड़ियाँ,
गिनती दुख की व्याकुल घड़ियाँ ।
कारागृह में झनक रही हैं,
झन-झन-झन माँ की हथकड़ियाँ ।।

*　　　　*　　　　*

तो भी टूट सकीं न अभी तक
पराधीन जननी कड़ियाँ ।।'[3]

१-'जौहर'– चि० २०, पृ० २२७-२२८। २– 'आरती'-पृ० ६०।

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि देशवासियों को अपनी पराधीनता को जंजीर तोड़ फेंकने के लिए संकेत करता है।

त्यागमय प्रेम और आत्मोत्सर्ग की भावना—

महाराणा प्रताप का देश-प्रेम एक आदर्श एवं अनुकरणीय उदाहरण है। अपने देश के लिए वे बड़े से बड़ा त्याग करनेके लिए प्रस्तुत थे। इसके लिए उन्होंने जीवन भर कष्ट सहने की प्रतिज्ञा भी की थी।[1] देशवासियों का दुख उन्हें असह्य था। स्वदेश और समाज को सुखी करने के लिए वे फकीरी बाना धारण करने पर भी यही कहते हैं कि—

'परवाह नहीं, परवाह नहीं मैं हूँ फकीर अब शाह नहीं।
मुझको दुनियाँकी चाह नहीं, सह सकता जनकी आह नहीं।'[2]

देश को स्वतंत्र करने के लिए वे अपना आत्मोत्सर्ग तक करने के लिए प्रस्तुत थे—

'स्वतंत्रता का कवच पहन विश्वास जमाकर भाला में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस समर-वह्नि की ज्वाला में।।'[3]

(छ) श्रृंगार के प्रति उपेक्षा भाव और राष्ट्रीय भावना

अंग्रेजों के अधीन भारत में सर्वत्र दुर्दशा व्याप्त थी। भूखों-नंगों का चीत्कार सुनायी देता था। ऐसी स्थिति में वासना के प्यार में डूबे रहना पांडेयजी की दृष्टि में एक प्रकार से राष्ट्र-द्रोह था। अतः पराधीन राष्ट्र की प्रेयसि प्रियतम से कहती है—

'प्रियतम चलो चलें उस पार।
तजो वासना का अब प्यार।।
* * ०
देखो मत मेरा श्रृंगार।
० ०
ले लो हाथो में तलवार,
करना है माँ का उद्धार।।'[4]

कवि के भाव-जगत में वासना और श्रृंगार के बदले देशोद्धार की तीव्र अभिलाषा प्रबल है।

(ज) अभियान गीत

देश में चतुर्दिक राजनैतिक हलचल हो रही थी और भारतीय जनता जी जान से स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने में व्यस्त थी। पं०

१- 'हल्दीघाटी'-सर्ग ७, पृ० ८८-८९। २- वही, पृ० ८९। ३-वही, सर्ग ५, पृ० ७४। ४-आरती-पृ० ९०।

श्यामनारायण जी पांडेय ने जनता में अदम्य उत्साह तथा अपूर्व स्फूर्ति जागृत करने के लिए अभियान-गीत लिखे और उसे कर्तव्य की ओर प्रेरित किया। कवि की निम्नांकित पंक्तियों में ओजस्वी सिंह गर्जना करते हुए वीरवर गोरा अपने सैनिकों को अनेक संकटों का मुकावला करते हुए द्रुत गति से आगे बढ़ने का प्रोत्साहन देता है-

'पर न तुम रुको कभी,
पर न तुम झुको कभी।
o o o
त्रिपुर सुर विरुद्ध हों,
दिग्दिगन्त क्रुद्ध हो।
भूलकर न भय करो,
युद्ध में विजय करो ।।
o o o
तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो ।।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो ।।[1]

कवि के 'शिवाजी' काव्य में भी अनेक अभियान गीत सम्मिलित हैं।[2]

यह बात सही है कि अभियान-गीत कवि के कंठ से फूटता है, पर जब वह कोटि-कोटि कण्ठों का गीत बन जाता है, तब उसके स्वरों के सामने तूफान नतमस्तक तथा संकटों के उत्तुंग शिखर धूल-धूसरित हो जाते हैं। पांडेय जी के अभियान गीतों में प्राण-शक्ति का प्रखर प्रवाह और प्रेरणा का अदम्य उत्साह प्रवहमान है। सच्चे अभियान-गीत में वह जीवनी शक्ति होती है, जिसके दायरे में 'रुकना', 'थमना' जैसे शब्द कभी प्रविष्ट नहीं होते।

(क्ष) उत्तेजना का स्वर तथा जागरण का संदेश

युगीन परिस्थितियों और राष्ट्र की दुर्दशा के प्रभाव से भारत की पीड़ा से क्षुब्ध कविवर श्री श्यामनारायण पांडेय के मुख से उत्तेजना एवं जागरण का स्वर जो फूट पड़ा है, वह उनकी अन्तर्पीड़ा की, राष्ट्रीय चेतना की कसक का स्वर है। इसीलिए उनके एक-एक शब्द में ओज है, पंक्ति-पंक्ति में प्रलयंकारी चेतना है और वीर-चरित्रों के प्रत्येक सर्ग में

१- 'जौहर'-चि० ८, पृ० ८६-८६।
२- 'शिवाजी'- सर्ग ५, पृ० ६५-६६।, सर्ग २२, पृ० २७०, २७१, २७२।

मातृ-भूमि पर जीवनोत्सर्ग करने की उत्तेजना अक्षरमूर्त है। स्वदेश की रक्षा के लिए कटिबद्ध वीरों के अस्त्र-शस्त्रों की टंकार और वीर सैनिकों की हुंकार से रण-भूमि का सजीव चित्र उनकी आँखों से सम्मुख मँडराने लगता है, और वे गा उठते हैं–

'जय रुद्र बोलते रुद्र सदृश, खेमों से निकले राजपूत।
झट झंडे के नीचे आकर, जय प्रलंयकर बोले सपूत॥
अपने पैने हथियार लिये, पैनी-पैनी तलवार लिये।
आये खर-कुन्त-कटार लिये, जननी सेवा का भार लिये॥'[1]

शत्रु का भयंकर आक्रमण देख रानी पद्मिनी देश की सुरक्षा के लिए अपनी ओजस्वी वाणी में वीरों को जागरण का संदेश देती हैं। उसके हृदय में जन्म-भूमि के प्रति अचल भक्ति और देश हित के लिए प्राण विसर्जन करने की अदम्य भावना परिव्याप्त है–

'ललकार रहा बैरी दल, तुम रण-विचार में डूबे।
तलवार शीश पर लटकी, तुम बाँध रहे मनसूबे॥
अब समय न है सोने का, अब समय नहीं रोने का।
यह समय रुधिर-गंगा में तलवार-धार धोने का॥
स्वर निकल रहा है प्रतिपल, मेवाड़-भूमि-कण-कण से।
मर मिटो आन पर अपनी, अब डरो न हिचको रण से॥[2]

छत्रपति शिवाजी के निम्नांकित शब्द वीरों को देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं—

'दवाग्नि की तरह उठो, चपेटते हुए बढ़ो।
समस्त गढ़ स्वबाहु में, लपेटते हुए बढ़ो।
किला-किला स्वतंत्र हो, स्वतंत्र वर्ण वेश हो।
स्वतंत्र जाति-जाति हो; स्वतंत्र यह स्वदेश हो।'[3]

ञ–क्रान्तिवादी स्वर—

देश-दुर्दशा से क्षुब्ध कवि के काव्य में जहाँ एक ओर असंतोष की भावना व्याप्त है; वहीं दूसरी ओर उसके विरुद्ध विद्रोह तथा परिवर्तन की भावना भी जागृत है। कवि की निम्नांकित पंक्तियों में, विद्रोह, क्रांति, उथल-पुथल एवं विनाश के स्वर मुखरित हैं—

'चाहो तो उखाड़ दो उभाड़ दो रसातल को।
× × ×
क्रोध की तुम्हारी कहीं आग जो भभक उठे

१– 'हल्दीघाटी' सर्ग ११, पृ० १२२। २–जौहर चि० ७; पृ० ७४। ३–शिवाजी सर्ग ५, पृ० ६६।

कलिका डभक उठे भस्म हो महीकुटी ।।
विष से बुझी जो तलवार लहरा के उठे
देखो फिर विधि की विधानता टूटी–फुटी ।।
धर के दबा दो तो महीधर दरक उठे
युवक, तुम्हारी जो फरक उठे भृकुटी ।।
× × ×
चहल पहल का तहलका मचा दो फिर ।
कण्ठ में वितुण्डमाल के वितुण्ड-माल दो ।।'[1]

कवि के शब्दों में क्रान्ति का यह रौद्र रूप देखिए—

'लो आग, क्रन्ति की भभक उठी,
डूबे रवि–शशि, डूबे तारे ।।'[2]

इतिहास साक्षी है कि सामाजिक एवं राजनीतिक क्रांति के स्वर प्राय: सर्वप्रथम कवि के कंठ से चिनगारी बनकर बरसते हैं तथा उन स्वरों की चिनगारी के संसर्ग से युगीन शोषण, दमन व अत्याचार के बारूद के ढेर में आग भड़कती है, धमाका होता है, धरती डगमगाती है, पर्वत थर-थर काँपते हैं, रूढ़ियों के महल धूल में मिल जाते हैं और अनीति की चिता धू-धूकर जल उठती है। क्रांति रण-चण्डी बन आततायियों के रुण्ड-मुण्डों से महाकाली–सा श्रृंगार करती है। पांडेयजी के क्रांतिवादी स्वरों के पीछे भी यही भावना है, यही प्रचण्ड शक्ति है।

ट–बलिदान की भावना—

विदेशी सरकार द्वारा प्रदत्त यातनाएँ भारतीयों के स्वातंत्र्य-संघर्ष को रोक नहीं सकीं। ज्यों-ज्यों अंग्रेजों की दमन–नीति चली, त्यों-त्यों गाँव–गाँव से देश-भक्त सिर पर कफन बाँधकर झूमते–झामते बलि-पथ पर अग्रसर होने लगे। इन वीरों को देख कवि की कविताओं में बलिदान की भावना का ओजस्वी रूप अभिव्यक्त हुआ। देशोद्धार के लिए कवि भारतीयों को बलि-वेदी पर चढ़ने का संदेश देता है। जैसे—

'बलिवेदी पर चढ़ो, देश का कुछ भी हो जाये उद्धार।'[3]

मराठा वीरों में देश के लिए बलिदान करने की कितनी उमंग है-

'प्राणों की आहुति दे ध्वजा लहरा के रहेंगे।'[4]

महाराणा प्रताप की एक आवाज ने जनता में बलिदान का एक अदम्य आवेग पैदा किया—

१-आरती पृ० ७९। २-आरती पृ०८६। ३—वही पृ०९०। ४—शिवाजो–आरती कैसे उतारूँ ? (भूमिका) पृ० १९।

'उसके एक इशारे पर वीरों ने ले तलवारें।
पर्वत पथ रँग दिये रक्त से ले शत-शत खर धारें।।'[1]

चित्तौड़ के एक सामंत राणा लक्ष्मण सिंह ने देश की सुरक्षा के लिए वीरों को मर-मिटने का ज्वलंत संदेश दिया—

'मारना या स्वयं मरना चाहिए।।
× × ×
सिंह की संतान का यह अर्थ है,
देश–गौरव-मान के हित प्राण दें।
मर मिटे, जब प्राण सबके उड़ चलें,
तब कहीं निर्जीव यह मेवाड़ दें।।'[2]

माँ के सपूत स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए आतुर हो रहे थे, अतः उन्हें मृत्यु की क्या चिन्ता ? उनके लिए तो वे सहर्ष तैयार थे। कवि के शब्दों में स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए बलिदान का महत्व देखिए—

'लड़ते–लड़ते मर जायेंगे, मेवाड़ न जब तक पायेंगे।।
× × ×
कूद पड़े सब वीर सिपाही, इसी धधकती ज्वाला में।
× × ×
भारत जननी का मान किया, बलिवेदी पर बलिदान किया।
अपना पूरा अरमान किया, अपने को भी कुर्बान किया।।'[3]

बलिदानके अभाव में कोई राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित नहीं रख सकता। वस्तुतः स्वतंत्रता बलिदान के पालने में झूलती है, श्रम और साधना की छाया में पलती है तथा स्वार्थों के संघर्ष के विषाक्त वायु-मंडल में तड़प–तड़प कर दम तोड़ देती है। भारत पर चीनी आक्रमण के समय संकटापन्न स्थिति में कवि हिमालय की सुरक्षा के लिए बलिदान का उद्–घोष करते हुए कहता है कि—

'यह तुंग हिमालय किसका है ?
उत्तुंग हिमालय किसका है ?
× × ×
जो सीने पर गोली खाये
पर कदम-कदम बढ़ता जाये
जो महामृत्यु को भी ढकेल

१—हल्दीघाटी–प्रताप (परिचय) पृ० ९।
२—जौहर,चि०६,पृ०६२ –६३। ३—हल्दीघाटी, वीर सिपाही–१४-१५-१६

अरि मस्तक पर चढ़ता जाये।
जो मरकर भी जीनेवाला
जनता-हित विष पीनेवाला
संगर में प्रलयंकर बनकर
जो मुण्डमाल सीनेवाला।'[1]

ठ– वीर–पूजा, संस्मरण, प्रशस्ति आदि—

वीर–पूजा की भावना का जन्म हृदय की श्रद्धा से होता है। जब व्यक्ति की श्रद्धा देश के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले वीरों के प्रति प्रकट होती है तो उसे वीर-पूजा कहा जाता है। वीर–पूजा मूलतः एक राष्ट्रीय भाव-धारा है। कविवर श्यामनारायण पांडेय ने अपनी कविताओं में इस भावना का विस्तार से वर्णन किया है। स्वदेश-प्रेम और आत्म-बलिदान के लिए महाराणा प्रताप मेवाड़ के इतिहास में अमर हैं। उनके प्रति कवि का पूज्य भाव देखिए—

'यज्ञ अनल-सा धधक रहा था, वह स्वतंत्र अधिकारी।
रोम-रोम से निकल रही थी, चमक-चमक चिनगारी।।
अपना सब कुछ लुटा दिया जननी-पद-नेह लगाकर।
कलित कीर्ति फैली दी है, निद्रित मेवाड़ जगाकर।।
× × +
फूँक दिया अपना शरीर हम दुखियों की आहों से।।
× × ×
रक्षा की तलवार उठाकर समर किया लाखों से।
पोंछ दिये आँसू प्रताप ने माता की आँखों से।।'[2]

छत्रपति शिवाजी के अतुलित शौर्य एवं अद्भुत साहस से कवि प्रभावित है। कवि के शब्दों में उस वीर-भद्र का पुण्य स्मरण देखिए—

'आदमी कहूँ कि देवता
ओ कालद्रष्टा, तू बता।'[3]

सन् १८५७ के स्वातंत्र्य–आंदोलन की प्रमुख नेत्री महारानी लक्ष्मीबाई की अप्रतिम शौर्य–सम्पन्ना, लोकविश्रुत, उत्सर्गमयी जीवनगाथा से कौन परिचित नहीं है? स्वाधीनता–संगर में महारानी लक्ष्मीबाई के आदान का पुण्य–स्मरण करते हुए कवि ने लिखा है कि—

१—यह तुंग हिमालय किसका है? से उद्धृत।
२—हल्दीघाटी प्रताप (परिचय) पृ० ७–८। ३—शिवाजी–आरती कैसे उतारूँ? (भूमिका) पृ० १७।

'सन् सत्तावन में जिसकी तलवार तड़ित–सी चमकी।
जो स्वतंत्रता–बलवेदी पर मख–ज्वाला सी दमकी॥
मुसकायी वह झाँसी के कण–कण में लक्ष्मीबाई।'[1]

कवि ने रानी पद्मिनी को परम–पुनीता, सती–साध्वी सीता, तथा देवी के रूप में स्मरण किया, जिसकी भव्यता हमें वंदना के लिए बाध्य करती है—

'साध्वी परम पुनीता है वह, रामचन्द्र की सीता है वह।
अधिक आप से और कहूँ क्या, रामायण है गीता है वह॥
× × ×
राख को सिर से लगाकर पाप-ताप शमन करो तुम।
देवियाँ इनमें छिपी हैं, बार-बार नमन करो तुम॥'[2]

राष्ट्रीय भावना को वहन करने में देश-भक्तों की समाधि एव शहीदों के स्मारकों का बड़ा योगदान है। महाराणा प्रताप की समाधि की ओर निर्देश कर कवि कहता है कि वह स्वतंत्रता का वैरागी अब भी अपनी समाधि में इधर–उधर कहीं छद्म रूप में पड़ा है। यथा—

'निकल रही जिसकी समाधि से स्वतंत्रता की आगी।
यहीं कहीं पर छिपा हुआ है वह स्वतंत्र वैरागी॥'[3]

पांडेयजी की 'हल्दीघाटी' स्वातंत्र्य–प्राप्ति के लिए महाराणा प्रताप की कर्म–साधना का प्रतीक है। कवि के शब्दों में उसकी प्रशस्ति देखिए—

'स्वतंत्रता के लिए मरो' राणा ने पाठ पढ़ाया था।
इसी वेदिका पर वीरों ने अपना शीश चढ़ाया था॥
तुम भी तो उनके वंशज हो, काम करो, कुछ नाम करो।
स्वतंत्रता की बलिवेदी है, झुककर इसे प्रणाम करो॥'[4]

कवि ने चित्तौड़ को इसीलिए स्मरण किया है कि वह हमारे वक्ष में ओज एवं हमारी बाँहों में शक्ति का संचार कर सकता है। चित्तौड़ के प्रति कवि का यह सम्बोधन देखिए—

'ए मेरे चित्तौड़ देश; बिखरे प्रश्नों को कर दे हल।
साहस भर दे हृदय–हृदय में, बाहु–बाहु में भर दे बल॥
वीर–रक्त से तू पवित्र है, तू मेरे बल का साधन।
बोल-बोल तू एक बार फिर कब देगा राणा-सा धन॥'[5]

१—जौहर चि० २१, पृ० २४५। २—जौहर चि० ५, पृ० ५० और चि० १८, पृ० २१३। ३—हल्दीघाटी, प्रताप (परिचय) पृ०९। ४—वही, हल्दी-घाटी (परिचय) पृ० १६। ५—वही चित्तौड़ (परिचय) पृ० ११।

पांडेय जी के इन वीर पूजा, संस्मरणों और प्रशस्तिपरक उद्गारों का पराधीन भारत के राष्ट्रीय चरित्र पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। निश्चय ही भारतीय संस्कृति का यह अंग देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने का उत्कृष्ट साधन है।

ड-राजनैतिक घटनाएँ—रानैतिक घटनाओं का संकेत भी राष्ट्रीय कविताओं में होता है। देश की तत्कालीन राजनीति में जो उतार-चढ़ाव आते हैं, परिवर्तन होते हैं, उनका प्रभाव राष्ट्रीय भावना के गायक कवि पर पड़े बिना नहीं रहता। पांडेयजो पर भी यह प्रभाव पड़ा है; पर राजनीति उनके जीवन का प्रमुख अंग नहीं रही। एक प्रारंभिक रचना समसामयिक राजनीति पर कवि की मानसिक प्रतिक्रिया का सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। खादीधारी नेताओं एवं उनके कार्यों के प्रति कवि का व्यंग देखिए—

'बन के कराल बक्रव्याल डँस लेंगे कहीं,
तेज हर लेंगे बने वीर-व्रत-धारी हैं।
खादी पहनेंगे मसलेंगे तुम्हें पैरों तले,
औरों से तुम्हारे लिए लाते महामारी हैं॥

× × ×

जानते नहीं हो हम देश के पुजारी हैं ?'[1]

भारत के खादीधारी नेताओं एवं उनके अहिंसक आंदोलन पर प्रारंभ में कवि का विश्वास नहीं रहा। उनका मत है—'अहिंसक आंदोलन के कारण कहीं शौर्य-प्रदर्शन नहीं हो सका। हमारा नेतृ वर्ग गोलियों का शिकार तो हुआ; लेकिन स्वयं दुश्मनों को गोली मारकर उन पर अपना आतंक नहीं जमा सका। गरम दल के नेताओं एवं क्रांतिकारियों ने सर उठाया तो उन्हें बदनाम करके कुचल डालने का प्रयत्न किया गया। यहाँ से ऊबकर तथा बाहर जाकर सुभाष ने भारतीय सेना का संगठन किया, इससे प्रभावित यहाँ की सेना में फूट पड़ी और वही स्वराज्य प्राप्ति का कारण हुआ।'[2] अब वह सुभाष के झंडे के नीचे दिखलायी पड़ता है। कवि की निम्नांकित पंक्तियाँ स्पष्ट रूप से उसकी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व की स्वीकृति है—

'भारत के मनमाने गुलाम, जिसको न विधाता जान सके।
गांधी, आजाद, जवाहर भी जिस वीर को न पहचान सके॥

१—'आरती' पृ० १६०। २—'संशोधक के प्रति कवि द्वारा दिनांक १-७-१९७१ को भेजे गये पत्र से उद्धृत।

तुम पग-पग वीर चलो दिल्ली, जिसका जयहिन्द प्रयाणगीत।
जिसके चरणों से लिपट गयी, हिन्दू-मुस्लिम की हार-जीत॥
मेरे सुभाष, तुम चिरंजीव, मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥'[1]

अब वह सुभाष की क्रांतिकारी वाणी में गरज उठता है—

'तोड़ेंगे, हाँ तोड़ेंगे अब तोड़ेंगे जननी की कड़ियाँ।
चालिस कोटि जनों के सिर की पग पर रहती पड़ी पगड़ियाँ॥
× × ×
चलो मन्त्र पढ़-पढ़ देंगे तिल-तिल आगे बढ़ने की जड़ियाँ।
देखो अपने आप टूटतीं माँ के हाथों की हथकड़ियाँ॥'[2]

क्रांतिकारियों एवं उनके कार्योंके प्रति कवि की यह सम्मानांजलि देखिए—

'अपने तन को बरबाद किया, उजड़े घर को आबाद किया।
माता की जय का नाद किया, पर हम सब को आजाद किया॥
आजाद भगत सिंह, चिरंजीव।
मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥'[3]

ढ–वर्तमान के प्रति असंतोष की भावना—

स्वातंत्र्योत्तरकालीन भारत में भी प्रजा को सुख-शांति नहीं मिली। देश में चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ है। इस अवस्था से कवि का हृदय व्यथित है। वर्तमान के प्रति असंतोष की यह भावना कवि ने समर्थ गुरु रामदास के मुख से कहलवायी है—

'दुखी प्रजा होती दिन-रात धर्म-हानि है अत्याचार।
अब न तनिक होता है सहन, भलेमानुसों का अपकार॥
पक्षपात दूषित है न्याय, भूखों-नंगों का चीत्कार।
शासक नाशक है स्वच्छन्द, कलह परस्पर दम्भ अपार॥
सभी स्वार्थ से अन्ध हुए ऊँच-नीच का नहीं विचार।
× × ×
धर्म हीन है अर्थ विषाक्त बात-बात में जन-संघर्ष।
चाटुकारिता में दिन बसर जीवन में रह गया न हर्ष॥
× × ×
सब कुछ करवाता है वत्स यवन महीपतियों को त्रास॥'[4]

इस प्रकार से कवि ने अतीत के वर्णन द्वारा वर्तमान देश की दीन-हीन दशा का चित्रण करने का प्रयास किया है। एक प्रकार से

१—'आरती' पृ० ८७। २—वही, पृ० ८९। ३—वही, पृ० ८६।
४- शिवाजी, सर्ग ५, पृ० ५७-५८।

उन्होंने देश की धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दशा पर निजी क्षोभ को ही वाणी दी है और देश की वास्तविक स्थिति को जनता के सामने रखा है। इसे हम यथार्थवादी दृष्टिकोण भी कह सकते हैं।

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के राष्ट्रीय काव्य पर सांप्रदायिकता का आरोप करते हुए डा० शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि-'आपकी वाणी में ओज, ललकार अथवा पौरुष अवश्य है, पर भावनाएँ बहुधा ही संप्रदायवादी परिधि में घिर जाने के कारण समस्त राष्ट्र को अभिव्यक्त नहीं कर सकी हैं, वे उस मार्ग का सम्यक् अनुसरण करने से पिछड़ गयी हैं, व्यापक आधारों को लिये हुए हमारा राष्ट्रीय आंदोलन जिस पर गतिशील हो रहा था। यदि कहें कि आपने हिन्दू राष्ट्रीयता को स्वर दिया तो अत्युक्ति नहीं होगी।'[1] श्री शिवदान सिंह चौहान का भी यही मत है।[2] हिन्दी कविता में वर्णित अतीत गौरव वर्णन पर यह दोष लगाया जा सकता है।[3]

उक्त लेखकों ने हिन्दी कविता में अंकित अतीत गौरव वर्णन पर सांप्रदायिकता का जो आरोप लगाया है, उसके निराकरण के कई कारण दिये जा सकते हैं–'कवियों ने हिन्दू संस्कृति का ही गौरव गान किया, मुस्लिम संस्कृति की ओर अधिक ध्यान क्यों नहीं दिया–कारण है कि— 'हिन्दू जाति का पराभव मुसलमानी शासकों द्वारा हुआ था .... मुसलमानी शासन को वह अपने राष्ट्रीय पराभव के लिए उत्तरदायी ठहराता है और मुसलमानी शासन की घोर निन्दा करता है।'[4] इसका एक और कारण है कि 'मुसलमानों ने राष्ट्रीय भावना के विकास में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं किया। लार्ड कर्जन की बंग-भंग की नीति ने हिन्दू-मुस्लिम वैषम्य का बीज-वपन कर मुस्लिम लीग जैसी सांप्रदायिक संस्था को जन्म दिया .... आर्य-समाज, स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवादी नेता-गण यथा लोकमान्य तिलक आदि की प्राचीन भारतीय संस्कृति, हिन्दू धर्म, वेद-ग्रंथों पर अटूट श्रद्धा थी, जिनसे अधिकांश कवि प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त गांधीजी के आगमन के पूर्व राष्ट्रवाद का विस्तृत रूप नहीं आ पाया था। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत कर कवियों की अतीत कालीन हिन्दू–सांस्कृतिक चेतना न्यायपूर्ण एवं संगत लगती है।'[5]

२– डा० शिवकुमार मिश्र, 'नया हिन्दी काव्य' पृ० ६४-६५।
३– शिवदान सिंह चौहान, 'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष' पृ० ८१-८२।
४– डा० केसरीनारायण शुक्ल, 'आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक स्रोत' पृ० १०७।
५– डा० शंभुनाथ पांडेय 'हिन्दी काव्य में निराशावाद' पृ० ५७।

मुसलमानी शासन-काल में मुगल संस्कृति से हिन्दू जाति एवं संस्कृति की रक्षा के लिए हिन्दुओं ने जो आंदोलन किया था, उनकी अतीत कहानी से आधुनिक कालीन हिन्दू समाज को देशोन्नति की प्रेरणा मिली।[1]

विशेष ध्यान देनेकी बात यह है कि इन कवियों ने मुसलमान जाति, इस्लाम धर्म एवं संस्कृति के प्रति कहीं भी विद्वेष की भावना प्रकट नहीं की; पर उन्होंने अन्याय और अत्याचार करनेवाले मुगल-शासकों की अवश्य कटु निन्दा की है।

मुगल शासकों के अन्यायपूर्ण शासन का वर्णन करते समय अंग्रेजी शासन के अन्याय और अत्याचार का अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन करना ही इन कवियों का अभिप्रेतार्थ था। अँग्रेजी शासन से मुक्ति पाने के लिए तथा जन-जीवन में राष्ट्रीय भावों का वहन करने के लिए द्विवेदीकालीन कवियों ने मुगलकालीन इतिहास का उपयोग एक साधन के रूप में किया है। डा० कलवडे का भी यही मत है।[2] डा० नगेन्द्र तो यहाँ तक घोषित कर देते हैं कि 'प्राचीन गौरव के पुनरुत्थान की भावना में स्वभावतः आर्य-संस्कृति की ही जयजयकार है। परन्तु यह भावना कहीं भी संकीर्ण तथा सांप्रदायिक न होने पायी है।'[3]

पं० श्यामनारायण पांडेयजी का समस्त काव्य अतीतकालीन हिन्दू संस्कृति के वर्णन से ओतप्रोत है। उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में उनके काव्य का अध्ययन, विश्लेषण और विवेचन अभीप्सित है। उनके काव्य को सांप्रदायिक चश्मे से देखना न्यायसंगत नहीं है।

(२) **पांडेयजी का सांस्कृतिक काव्य—**

संस्कृति—सस्कृति मानव-जीवन की सर्वतोमुखी उपलब्धि से संबद्ध है। उसे परिभाषाबद्ध करना कठिन है। फिर भी डा० राधाकृष्णन्[4], मंगलदेव शास्त्री[5], डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी[6], श्री दिनकर[7], डा० सत्यकेतु[8] आदि विद्वानों ने उपर्युक्त विषय पर अपने मत

१– डा० सुषमा नारायण: भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति, पृ० ७४।
२– डा० सुधाकर शंकर कलवडे: आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना, पृ० १५६।
३– डा० नगेन्द्र–'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ'– पृ० ३०।
४– डा० राधाकृष्णन्–'स्वतंत्रता और संस्कृति'-पृ. ५३१।
५– मंगलदेव शास्त्री-भारतीय संस्कृति का विकास, पृ. ४।
६- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'अशोक के फूल'–पृ. ६४।
७– श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'–संस्कृति के चार अध्याय', पृ० ६५३।
८- डा० सत्यकेतु- 'भारतीय संस्कृति और उसका विकास'–पृ० १९।

व्यक्त किये हैं। इन विद्वानों के मतानुसार संस्कृति मन और मस्तिष्क का संस्कार-परिष्कार करने वाली, मानव जाति का श्रेय संपादन करने वाली है।

संस्कृति पर विचार करते समय सामाजिक विद्वानों के अन्तर्राष्ट्रीय विश्वकोश में कहा गया है कि-"Culture or Civilization, taken in its wide ethnographic sense, is that complex whole, which includes knowledge, belif, art, morals, law, customs and any other capabilities and habits, acquired by man, as a member of society."[1]

एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका में समाज और संस्कृति के संबंध में यही कहा गया है कि—'The terms 'society'and 'culture' refer to different aspect of the same basic material, the actions and relations of human beings in social-living ....culture lays more emphasis on the creative achivement the objects and ideas,which are brought into being and transmitted from one generation to another by acts of men in society ,[2]

संस्कृति के व्यष्टिगत और समष्टिगत रूप पर विचार करते हुए साहित्यमहोपाध्याय, तत्त्व-भूषण डा. भगवानदास तिवारी ने लिखा है कि—'मनुष्य के व्यक्तिगत और लोकमानस में संस्कृति द्वारा प्रतिष्ठित संस्कारों से ही सभ्यता का विकास होता है और सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य की आचार-संहिता, उसके नैतिक मूल्य, आस्था, विश्वास और आदर्शों की समृद्धि होती है, जिससे मनुष्य व्यक्तिगत जीवन से लेकर, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्वजनीन जीवन तक आदर्श जीवन जीने का सायास प्रयास करता है, अतः मैं समझता हूँ कि संस्कृति वह जीवन-दृष्टि और जीवन-प्रक्रिया है, जो मानव सभ्यता की जीवनी-शक्ति के रूप में मनुष्य की भावना, विचारधारा, क्रिया, व्यावहारिकता और सामाजिक जीवन प्रणाली को निरन्तर उर्ध्वमुखी गति प्रदान करती है।'[3]

१- 'International Encyclopedia of the social sciences', Macmillan and free press. Editor-Devid L. sills. vol. III. p. 527 The concept of culture.

२- Encyclopedia Britanica, vol. xx. William Benton Publisher. Londan. Page 862-863

३- 'रामचरित मानस का सांस्कृतिक योगदान'-आबासाहेब गरवारे, महाविद्यालय, पूना के स्नातकोत्तर विभाग द्वारा आयोजित मानसचतुःशती समारोह में दि० ३० सितम्बर १९७३ को सायंकालीन सत्र में प्रमुख वक्ता के रूप में प्रदत्त भाषण से उद्धृत।

उपर्युक्त विद्वानों के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि क्रिया-कलाप, आदतें, रीति-नीतियाँ, नैतिक मूल्य, कलात्मक अभि-रुचियाँ, आस्था, विश्वास, लौकिक व्यवहार आदि संस्कृति के अंग हैं।

उक्त परिप्रेक्ष्य में पं. श्यामनारायण पांडेयजी के काव्य का अध्य-यन एवं विवेचन अभिप्रेत है। पं. श्यामनारायण पांडेयजी ने अपने काव्य में महाराणा प्रताप, महारानी पद्मिनी, छत्रपति शिवाजी, हनुमान आदि के साहस, शौर्य, शक्ति, सौन्दर्य और शील का यशोगान ही नहीं किया, अपितु उसके अन्तर्गत नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति के आचार, धर्म, रीति-नीति, लोकव्यवहार, परिवार, शिष्टाचार और समाज-दर्शन के विभिन्न पक्षों को भी अपने काव्य में अंकित करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनके काव्य के अध्ययन के उपरांत मेरा मत यह है कि उनके काव्य में भारतीय संस्कृति के लोकमांगलिक स्वरूप की व्याख्या विद्यमान है।

डा० तिवारी का मत है-'लोक-संस्कृति के संदर्भ में यह जान लेना आवश्यक है कि मनुष्य के व्यक्तिगत और सामूहिक मन में अति-प्राचीन काल से कुछ एक ऐसी बद्धमूल अनुभूतियाँ अस्तित्व बना बैठी हैं, जो आज लोकजीवन में परम्परित संस्कारों, अनुष्ठानों, आस्थाओं, विश्वासों और मान्याओं के रूप में विद्यमान हैं और जिनका परिचय हमें विविध उत्सवों, समारोहों, शकुनों, अंधविश्वासों,सामयिक क्रियाकर्मों और आयो-जनों में प्राप्त होता है।'[1] पं० श्यामनारायण पांडेय जी के काव्य में इन सब का विवरण यथोचित रूप में विद्यमान है।

पाण्डेयजी के काव्य में भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य

(अ) **अभिजात संस्कृति**—पांडेयजी के काव्य में नागरिक जीवन से सम्बद्ध अभिजात संस्कृतिके अनेक पक्ष चित्रित हैं। उदाहरणार्थ शाहजी का जब पूना में आगमन होता है तब नगरवासी एवं ग्रामीण जन उनका उत्स्फूर्त स्वागत करते हैं। तात्कालिक स्वागत-समारोह का स्वरूप इस प्रकार था—

'शाह दर्शन हित आये लोग, नगर से, पुर से, गाँवों से।
राजपथ पर थी ऐसी भीड़ कि जैसी नभ पर तारों की॥
राशि थी लगी शाह के पास विविध हारों-उपहारों की॥'[2]

१- 'रामचरित मानस का सांस्कृतिक योगदान'-आबासाहेब गरवारे महा-विद्यालय, पूना के स्नातकोत्तर विभाग द्वारा आयोजित मानस चतुःशती के समारोह में दि० ३० सितम्बर १९७३ को सायंकालीन सत्रमें प्रमुख वक्ता के रूप में प्रदत्त भाषण से उद्धृत।

२-'शिवाजी' -सर्ग ११, पृ० १३७-१३८। ३-'हल्दीघाटी'-सर्ग ५, पृ० ६७-६८।

उदयपुर में महाराणा प्रताप मान सिंह के सहज आदरातिथ्य के उत्सुक हैं—

कहा-'पुत्र' मिलने आता है मान सिंह अभिमानी।
छल है, तो भी मान करो लेकर लोटा भर पानी॥
× × ×
किया अमर ने धूमधाम से मान सिंह का स्वागत।'[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने यहाँ आये हुए अतिथि को एक लोटा पानी लाकर देने में जो आतिथ्य सत्कार है, वह भारतीय संस्कृति की अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति है।

पं० श्यामनारायण पांडेय ने अपने काव्य में राक्षसी संस्कृति का भी संक्षिप्त वर्णन किया है। रावण एवं मेघनाद सम्बन्धी प्रसंग इसके प्रमाण हैं। ये राक्षस बड़े शक्तिशाली, अत्याचारी व दुष्ट थे। मेघनाद तो आकाश में जाकर वहाँ से ही युद्ध करता था।[2] यहीं नहीं, राक्षसियाँ भी महाभयानक थीं। सुरसा-मुख एवं छायाग्राहिणी सिंहिका का वर्णन इसका प्रमाण है।[3]

अद्‌भुत शक्तियों से संपन्न होने पर भी सभी राक्षस या राक्षसियाँ बुरे नहीं थे। विभीषण राम-भक्त था। उसने राम के सत्य एवं न्याय के पक्ष का समर्थन किया था। मन्दोदरी रावण की पत्नी थी। फिर भी वह नारी के सतीत्व एवं शील की रक्षा करना अपना धर्म समझती थी।[4] पर इन अपवादों को छोड़ देने पर राक्षसी संस्कृति अपने मूल रूप में आततायियों की संस्कृति थी।

पं० श्यामनारायण पांडेय ने अपने काव्य में आरण्यक संस्कृति का भी उल्लेख किया है। वानर-जाति के अन्तर्गत सुग्रीव, जाम्बवन्त, अंगद, हनुमान आदि वीरों का वर्णन हुआ है। यह जाति नीच समझी जाती थी। कवि ने सुग्रीव एवं हनुमान से राम की भेंट करवाकर उनके (राम के) शील, सौजन्य एवं औदार्य को प्रदर्शित किया है। कवि के शब्दों में ऊँच-नीच एवं छुआछूत की भावना को मिटाने का राम का सामाजिक आदर्श देखिए—

'कपि को खींच पुलक आँखें भर गले लगाया राघव ने।'[5]

आजकल के मानवीय भेद-भाव के निवारण के लिए पांडेयजी द्वारा प्रस्तुत राम का कार्य एवं व्यवहार निस्संदेह आदर्श एवं अनुकरणीय है।

१–'हल्दीघाटी'-सर्ग ५, पृ० ६७-६८। २–तुमुल, सर्ग १२, पृ० ६९–७३।
३– जय हनुमान, सर्ग १, पृ० १३, १५, १६। ४- वही सर्ग २, पृ० ३६।
५–वही सर्ग ७, पृ० १०४।

विवाह-संस्कारों की पृष्ठ-भूमि अभिजात संस्कृति का अभिन्न अंग हो जाने पर भी लोक-संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित है। उनके काव्य में एक स्थान पर शिवाजी एव सईबाई के विवाह का वर्णन हुआ है। उनके विवाह के अवसर पर मण्डप की साज-सज्जा तथा क्रिया-कलापों का वर्णन पढ़ने योग्य ही नहीं, रस लेने योग्य भी है। लोक-विश्वासों के अनुसार विवाह के समय कदली स्तम्भ प्रयुक्त हुए और उन पर ललित कला अंकित की गयी। यथा—

'कोण-कोण पर कदली स्तम्भ जिन पर ललित कला के काम।'[1]

विवाह के समय गंगा जल से पूर्ण कलश तथा उसमें कुश-पल्लवों आदि का रखना; वेदी पर गौरी गणेश की प्रतिष्ठा करना,[2] वेदों के मंत्रोच्चारण के साथ नारियों का मंगलमान,[3] ब्राह्मणों एवं दीन-हीन याचकों को दान[4] तथा जन्म के अवसर पर नाम रखने के प्रसंग में जीजाबाई द्वारा सब सामानों को लुटा देना[5] आदि बातें भारतीय लोक-संस्कृति के प्रमाण हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पं० श्यामनारायण पांडेय के काव्य में भारतीय संस्कृति के तत्वों से परिपूर्ण अनेक अंश यथोचित रूप में विद्यमान हैं।

आ— लोक-संस्कृति—

अंध-विश्वास में परिणत लोक-विश्वास, लोक-संस्कृति का महत्वपूर्ण पहलू है। शुभाशुभ शकुन, अंगों का फड़कना, छींक, स्वप्न-फल, आकाशवाणी, प्राकृतिक रूपों में देवी-देवताओं की कल्पना, देव-पितरों की पूजा आदि लोक-संस्कृति के अंग है।

शुभाशुभ शकुन—

पांडेयजी ने अपने काव्य में शुभाशुभ शकुनों का वर्णन किया है। कवि के शब्दों में अशुभ शकुनों का बर्णन देखिए—

'गीधों की जमात घूरने लगी सिपाहियों को।
भय से धड़क उठी छाती अरिजन की।।'[6]

लोक-विश्वास के अनुसार गिद्ध का उड़ते-उड़ते रथ के केतुदण्ड पर आकर बैठना, उनकी जमात का घूरना, स्यारिन का भयद क्रंदन करना, आकाश से मांस-सहित हड्डी का गिरना[7] आदि अशुभ शकुन है।

१-शिवाजी, सर्ग ३, पृ०४६। २-वही, वही, पृ०४७। ३-वही, वही, वही। ४-वही, वही, वही। ५-वही, सर्ग १, पृ० ९। ६-वही; सर्ग ८; पृ० १०८। ७- वही; सर्ग ८; पृ० १०८।

अंगों का फड़कना–प्राकृतिक प्रसंग ही नहीं, शरीर के विशिष्ट अंगों का फड़कना भी शुभाशुभ शकुन सूचक होता है—

'मावलियों का तरुण समूह मेरे और तुम्हारे साथ।
फिर क्या चिन्ता है शिवराज फड़क रहा है दक्षिण हाथ ॥'[1]

आँखों का फड़कना–पुरुषों की बायीं आँख फड़कना अशुभ-शकुन माना जाता है–

'नंगी तलवार देख वार पर वार देख।
मान सिंह कायर की बायीं आँख फरकी ॥'[2]

आकाशवाणी—शिवाजी जब अफजल खाँ से मिलने के लिए चले तो आकाशवाणी हुई, जो शुभ-शकुन द्योतक है—

'हुई आकाशवाणी फल मिला शिव-श्रम का
× × ×
खाँ की मृत्यु आ गयी है घोर धुंधकारी है।'[3]

स्वप्नफल—स्वप्न भी शुभ-अशुभ फल देते हैं। सीता हरण के बाद त्रिजटा ने एक स्वप्न देखा था, जिसमें भावी घातक घटनाओं के संकेत तथा 'कट गये शीश दशमुख के, लंकामें दुख छाया है।'[4] -में रावण की निश्चित मृत्यु की असंदिग्ध सूचना विद्यमान है।

इन 'शुभाशुभ शकुनों' को अन्धविश्वास कहकर भले टाल दिया जाय परन्तु लोक-संस्कृतिमें ये अन्धविश्वास अटल लोक-विश्वासके अभिन्न अंग तथा लोक-मानस के अनुरूप लोक-सांस्कृतिक चेतना के संवाहक हैं।

देव–पितरों की पूजा, प्रसन्नता, तर्पण आदि– देव–पितरों की पूजा, प्रसन्नता, श्राद्ध, तर्पण आदि लोक–संस्कृति, लोक–परंपरा और लोक-विश्वास के अंग है।[5]

देवी–देवताओं में विश्वास — लोक-संस्कृति के अनुरूप सफलता के लिए देवी–देवताओं की पूजा प्रार्थना की जाती है।'[6] हमारी संस्कृति में गणेशको विघ्ननाशक और माँ सरस्वतीको बुद्धि,विद्या एव कला की देवी माना गया है। 'जय हनुमान' काव्य रचना के प्रारम्भ में कवि ने अपनी सफलताके लिए गणेश एवं सरस्वती की वंदना कर आशीर्वाद पाने की कामना प्रकट की है।[7]

१– 'शिवाजी'–सर्ग ४, पृ० ५६। २– 'आरती'–पृ० ५६। ३–'शिवाजी' सर्ग ६, पृ० ११४। ४–'जय हनुमान'- सर्ग २, पृ० ३८–३६। ५-'शिवाजी' सर्ग २, पृ० २४ और सर्ग ३, पृ० ४७ तथा सर्ग ७, पृ० ८६। ६-'शिवाजी' सर्ग १, पृ० ५ और सर्ग ६ पृ० ७७। ७-'जय हनुमान'' मंगलाचरण'-पृ० १-२।

जीवन-सिद्धांत--

सर्वप्रथम पांडेय जी के आदर्श जीवन-सिद्धांत को देख लिया जाये-क्योंकि किसी व्यक्ति और उसकी कृतियों का मानदण्ड उसकी जीवन दृष्टि होती है। इसके पश्चात हम उनके धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदर्शों पर विचार करेंगे। अस्तु।

महाराणा प्रताप ने अपनी मातृ-भूमि के लिए समस्त विलास-वैभव को त्याग दिया था।[1] यही नहीं उन्होंने अपने वीरों को आत्मत्याग करने का महान संदेश दिया—

'वीरों दिखला दो आत्म-त्याग।'[2]

देश के लिए महाराणा प्रताप फकीरी बाना धारण करते हैं।[3] देश की स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए वे अकेले ही प्रतिज्ञाबद्ध हैं।[4]

पं० श्यामनारायण पांडेय जी द्वारा प्रतिपादित त्याग, वैराग्यजन्य नहीं वरन अनुरागपुष्ट है। रानी पद्मिनी अपने वीरों से कहती है—

'यह तुम्हारा त्याग युग-युग तक अमर।
दुर्ग पर अनुराग युग-युग तक अमर॥'[5]

पाण्डेय जी के काव्य के सभी पात्र जीने और जूझने को जीवन का चिह्न मानते हैं। इसलिए काव्य के अधिकांश पात्र कर्तव्यनिष्ठ और ध्येयनिष्ठ हैं। महाराणा प्रताप अपनी मातृभूमि के सम्मान के लिए सदा कटिबद्ध हैं।'[6] झाला मान्ना देश को स्वतंत्र करनेका हौसला रखता है।[7] देशोन्नति के लिए अपने जीवन को समर्पित करना ही उसकी दृष्टि में मुक्ति का उपाय है। पद्मिनी अपने वीरों से कहती है-

'मुक्ति आगे से बुलाती हैं तुम्हें,
मुक्ति हित दोगे न क्या जीवन लड़ा।'[8]

ध्येय के लिए सारे जीवन को लगा देना ही कर्मनिष्ठ जीवन है। किलेदार ने शिवाजी से कहा—

'कर्तव्य पर जीवन बहा देना किले का कर्म है।'[9]

जब तक लक्ष्य-सिद्धि न हो, तब तक अनवरत कर्म करते रहना ही कर्मयोग है। पांडेय जी के काव्य के चरितनायक 'शिवाजी' कर्मयोग की प्रतिमूर्ति हैं। वे सोचते हैं—

१-'हल्दीघाटी'-सर्ग ७, पृ० ८८-८९। २-'वही' सर्ग ७, पृ० ८८। ३- वही-सर्ग ७, पृ० ८९। ४-वही-सर्ग ७, पृ०९०। ५-'जौहर'-चि०,१४, पृ० १६० ६-'हल्दीघाटी' सर्ग ७ पृ० ९०। ७-'हल्दीघाटी'-'झाला मान्ना' [परिचय], पृ० १३। ८-'जौहर'-चि०१४ पृ० १६१। ९-'शिवाजी'-सर्ग १५, पृ०१७९।

'आज से ही
बैठ रहना न ठीक है
लक्ष्य अभी दूर है ।'[1]

कर्म करने से पहले कर्म को पहचानना आवश्यक है ।[2] पांडेयजी दुष्कर्म के विरोधी हैं ।[3] हनुमान जी रावण को धर्म-कर्म का लाभ भी बताते हैं ।[4]

धार्मिक उदारता—

पं० श्यामनारायण जी पांडेय को हिन्दू-धर्म के सभी अंगों में आस्था है। वे राम-कृष्ण के भक्त हैं। यों भक्ति में सांप्रदायिक संकीर्णता की आशंका हो सकती है। किन्तु पांडेयजी की भक्ति-भावना में यह बात नहीं मिलेगी। वह राम कृष्ण के साथ ईसा, अल्ला, अकबर के नाम का भी उद्घोष करते हैं-

'चाहे मोहन कहो चाहे मनहर कहो ।
चाहे राघव कहो चाहे रघुवर कहो ।
चाहे ईसा कहो चाहे ईश्वर कहो ।
चाहे अल्ला कहो चाहे अकबर कहो ।'[5]

यही नहीं, उनके चरितनायक शिवाजी परधर्मसहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पांडेय जी दूसरों के मत के विरोधी नहीं है, किन्तु अपने मत में उनकी दृढ़ आस्था है। अपने मत में दृढ़ आस्था रखते हुए भी वे परधर्मसहिष्णु हैं। अतः हम उन्हें भक्ति और धर्म के आस्थावान, उदारमना सत्कवि कह सकते हैं।

राजनैतिक आदर्श—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय राजनैतिक पंडित नहीं हैं। वे निर्वाचन-क्षेत्र में दौड़-धूप करने वाले राजनैतिक नेता भी नहीं हैं। फिर भी राजनीति और शासन आदि के विषय में पांडेय जी के अपने विचार हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

राजा के मन में देश के प्रति प्रेम होना चाहिए। महाराणा प्रताप देश का दुख देखकर व्यथित हो उठते हैं—

१-वही, सर्ग ६, पृ० ८१ । २ 'तुमुल'- सर्ग १७, पृ० १११ । ३-वही,- वही, पृ० १११ । ४-'जय हनुमान'-सर्ग ५, पृ० ७४ । ५-एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत ।

'जब तक दु:ख में मेवाड़ देश
वीरों, तब तक के लिए क्लेश।'[1]

शाहजी और शिवाजी के वार्तालाप के प्रसंग में शिवाजी राजा के कर्तव्य की ओर संकेत करते हैं—

'पिताजी-गो-द्विज-कुल का ह्रास, न मुझ से देखा सहा गया।
पिताजी, देख देश का नाश, न मुझ से बैठे रहा गया॥'[2]

राज्य प्रजा का है और राजा उसका रक्षक मात्र है-

'शिवा ने कहा देव, यह राज
.... प्रजा जन का
पिताजी! मैं तो पहरेदार'[3]

राज्य बहुजन हिताय, सुखाय तथा न्यायप्रद होना चाहिए—

'बहुजन हिताय सुखाय जो, तुमने दिया है न्याय जो'[4]

प्रजा-हित-दक्ष राजा ही जनता का आदरपात्र होता है। कवि के शब्दों में महाराणा प्रताप की यह उक्ति देखिए—

'यद्यपि जनता के उर में मेरा ही अनुशासन है।'[5]

ऐसा शासक ही प्रजा का स्नेह-भाजन बनता है। शिवाजी के प्रति जीजाबाई की युक्ति देखिए—

'आस्तिक प्रजा है सामने।'[6]

पांडेयजी ने जहाँ राजा के अद्वितीय गौरव का गान किया है वहीं उसके असाधारण कर्तव्यों का भी निर्देश किया है। मनु[7] एवं तुलसीदास[8] के समान ही पांडेयजी भी प्रजा का हित न करने वाले मन्दाध राजा को क्षमा करना उचित नहीं समझते—

'प्रजा हितार्थ जो कभी सहे न ताप क्लेश को।
क्षमा करो न उस मदान्ध मन्द-धी नरेश को॥'[9]

राज्य में सुसंगठन एवं अनुशासन रखना राजा का कर्तव्य है। शिवाजी के प्रति किलेदार की उक्ति देखिए—

'संगठन, अनुशासन धरा पर आप का ही ध्येय है।'[10]

१-'हल्दीघाटी' - सर्ग ७, पृ० ८८। २-'शिवाजी'-सर्ग ११, पृ० १३६। ३-वही, सर्ग ११, पृ० १३८। ४-शिवाजी सर्ग २१, पृ० २६२। ५-हल्दीघाटी सर्ग १६, पृ० १७८। ६-शिवाजी सर्ग २१, पृ० २६१। ७-मनुस्मृति ७।११२ ८-गोस्वामी तुलसीदास-'मानस' अयोध्या कांड, पृ० ३६०। ८-शिवाजी सर्ग ५, पृ० ६६। ९-वही सर्ग १५, पृ० १८१। १०-वही सर्ग १५, पृ० १८०

शासन प्रणाली में भी राजा को, चाहे वह चक्रवर्ती ही क्यों न हो, स्वेच्छाचारिता से काम नहीं लेना चाहिए, उसे राज-नियम का पालन करना चाहिए। इस प्रसंग में शिवाजी के प्रति किलेदार की उक्ति देखी जा सकती है।[1]

शिवाजी ने राजा जय सिंह को पत्र लिखकर राज्य में शांति-स्थापना की इच्छा प्रकट की है—

'परम शांति हिन्दू जनों में विराजे।'[2]

कभी-कभी अधिकारों की रक्षा एवं स्वत्व की माँग के लिए भी युद्ध अनिवार्य हो जाता है। जय सिंह के प्रति शिवाजी की उक्ति देखिए—

'सदा स्वत्व की माँग फिर भी रहेगी,
न माने अगर तो दवा आप जाने।'[3]

पांडेयजी द्वारा प्रतिपादित राजनैतिक आदर्श वर्तमान शासकों के लिए भी अनुकरणीय हैं।

सामाजिक आदर्श—

समाज पर भी पांडेयजी का ध्यान केंदित रहा है। समाज मानव-जीवन के अस्तित्व एवं विकास के लिए अनिवार्य संस्था है। लास्की का भी यही मत है।[4] शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए मर्यादा, सौहार्द्र, परस्पर सामंजस्य और एकता समाज-संगठन के अनिवार्य उपबंध हैं। मेल-मिलाप समाज-संगठन का अनिवार्य उपबंध है, जिससे बड़े-बड़े काम आसानी से हो जाते हैं—

'सब का सभी से मेल था, पर्वत उठाना खेल था।'[5]

परस्पर सौहार्द्र ही समाज में उत्कर्ष, सुख एवं हर्ष पैदा करता है—

'साथी हो, भाई-भाई हो ऐसा हो भरत-मिलाप मधुर।
× × ×
सब लोग पहले से सुखी उत्कर्ष हर्ष चतुर्मखी॥'[6]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पांडेयजी सामाजिक एकता, स्नेह और सहकार्य के आकांक्षी है।

परिवार कल्पना—

परिवार समाज का लघु संस्करण है। वास्तव में परिवारों का संघटन ही समाज है। चारित्र्य उन्नयन के लिए सम्मिलित परिवार की

१–गोस्वामी तुलसीदास-'मानस' अयोध्या कांड पृ० ३९०। २-शिवाजी: सर्ग १३, पृ० १६०। ३-वही वही; पृ० १६१। ४-राजनीति के मूल तत्व-ए ग्रामर आफ पालिटिक्स का अनुवाद पृ० ३। ५- शिवाजी: सर्ग २५, पृ० ३०५। ६- वही सर्ग २४, पृ० ३००।

बड़ी आवश्यकता है। परिवार की उन्नति ही समाजोन्नति की नींव है। पांडेयजी के काव्य में वर्णित पात्र भी सम्मिलित परिवार के सदस्य हैं। कवि के आदर्श परिवार के सदस्य राम की अपने अनुज लक्ष्मण के प्रति यह उक्ति देखिए—

'मम परम सहारा, जीवनाधार जो था।
लखकर जिसको थी, तृप्त नेत्राभिलाषा॥
निशि-दिन करता था गेह की साथ चर्चा।[1]

और लक्ष्मण सदा अपने परिवार की रक्षा का विषय सोचते थे—

'कुल-धर्म-रक्षा का विषय नित सोचते थे ध्यान दे॥'[2]

स्वयं पांडेयजी भी अपने भाई के प्रति बड़ी उदार भावना व्यक्त करते हैं।[3]

परन्तु भारतवर्ष से सम्मिलित परिवार की संस्था का लोप होता जा रहा है। अब तो यहाँ सहोदर भाई शक्ति सिंह प्रताप से बदला लेने के लिए तैयार है—

'..................इसका बदला लूँगा मैं।
पर प्रताप अपराध कभी क्षन्तव्य नहीं, क्षन्तव्य नहीं॥[4]

नारी सम्मान—

आर्य-संस्कृति में नारी को लक्ष्मी-स्वरूपा माना गया है। वह शक्ति की देवी है, जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। रावण इन मान्यताओं का विरोधी था, इसीलिए उसका नाश हुआ। सीता ने रावण से वार्तालाप करते समय यह बताया कि परनारी की रक्षा करनी चाहिए—

'वैसे ही तू रक्षा कर रे मुझ-सी परनारी की।'[5]

परनारी पर कुदृष्टि डालने के उद्देश्य से देवराज की महिमा का उपहास हुआ था—

'इसी दोष से देवराज की महिमा का उपहास हुआ।'[6]

यहाँ की स्त्रियाँ सदा साध्वी परम पुनीता मानी गयी हैं।[7]

अहमद की पुत्र-वधू के प्रति शिवाजी ने मातृवत् सम्मान की भावना ही प्रकट नहीं की अपितु उन्होंने उसे अपनी बेटी की तरह उसके घर पहुँचाया। यहीं नहीं, उसमें उन्हें देवी, दुर्गा और सती-सावित्री के दर्शन हुए—

१- तुमुलः सर्ग १५, पृ० ६३-६४। २- वहीः सर्ग १, पृ० ५। ३- आरतीः पृ० १२२। ४- हल्दीघाटीः पृ० ३८। ५- जय हनुमानः सर्ग २, पृ० ३४। ६- शिवाजीः सर्ग ७, पृ० ६७। ७- जौहरः चि० ७, पृ० ६६।

'लेकिन दिव्य रूप के भीतर झाँक रही है माँ मेरी।
× × ×
रोम-रोम में नव दुर्गा के रूप निखरते जाते हैं।
सती और सावित्री के सौंदर्य उभरते आते हैं।।'[1]

लंका जाते समय हनुमान जी सुरसा को माँ कहकर उससे समय की याचना करते हैं —

'हनूमान सुरसा से बोले-माँ, क्षण करो प्रतीक्षा तुम।'[2]

स्त्री अबला है। उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। तलवार उठा कर सीता को मारने के लिए उद्यत रावण को मयसुता समझाकर कहती है—

'अबला है, स्वयं मरी है इसको तुम क्या मारोगे ?'[3]

ये अबलाएँ परिस्थिति वश कभी-कभी प्रबलाएँ भी बन जाती हैं रानी पद्मिनी तो यहाँ तक कहती है—

'पति मुझसे मुक्त न होगा ? क्या सचमुच मैं अबला हूँ ?
* * *
आँधी से आज मिला दूँ, अपनी तूफानी गति को।
मैं मुक्त करूँ क्षणभर में, कारा से अपने पति को।।'[4]

प्रताप को अपने प्रण से विचलित होते देख रानी तलवार लेकर रण में कूद पड़ना चाहती है।[5]

भारतीय संस्कृति में नारी को सदा सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। महाराणा प्रताप का कथन है—'हो गया निहाल जगत में, मैं तुझ-सी रानी पाकर।'[6] यहाँ पुरुषों ने सदा पतिव्रता स्त्रियों की जय गायी है—

'उठ गये, बोले पुरुष जय-जय सती।
जननि तेरे पातिव्रत की जय सदा।।'[7]

भौतिक समृद्धि—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के काव्यों की पृष्ठ-भूमि स्वरूप जो भौतिक जीवन उपस्थित हुआ है, वह काफी समृद्ध एवं ऐश्वर्यपूर्ण है।

१-शिवाजी: सर्ग ७, पृ० ९४-९५। २- जय हनुमान: सर्ग १ पृ० १५। ३-वही सर्ग २ पृ० ३६। ४- जौहर: चि० ७, पृ० ७४-७५। ५- हल्दीघाटी: सर्ग १५, पृ० १७०। ६–हल्दीघाटी: सर्ग १५, पृ० १७१। ७-जौहर: चि० १४, पृ० १६०।

मान सिंह के स्वागत के समय महाराणा प्रताप ने अपने राजमहल को आकर्षक बनाया। उदयपुर में उनके मनोहारी राजमहल का कवि ने सविस्तार वर्णन किया है।[1] उस समय जो भोज्य-सामग्री प्रस्तुत की गयी, वह तत्कालीन वैभव, संपन्नता एवं समृद्धि की द्योतक है—

'चावल के सामान मनोहर सोने की थाली में।
घी से सनी सजी रोटी थी, रत्नों के बरतन में।
शाक खीर नमकीन मधुर, चटनी चमचम कंचन में ॥[2]

कवि के शब्दों में अफजल खाँ के स्वागत के समय रत्नों से सुसज्जित शामियाना देखिए—

'इतने जवाहरत लगे शामियाने में
मुश्किल पाना जिन्हें आज के जमाने में।'[3]

यह तो हुई राजमहलों एवं शामियानों की बात।

चित्रकला भी निहायत उन्नत थी। राजपूती दरबार का एक दृश्य देखिए—

'चित्र वीरों के लटकते थे कहीं, वीर प्रतिविम्बित कहीं तलवार में।
युद्ध की चित्रावली दीवार पर, वीरता थी खेलती दरबार में ॥[4]

उपयोगी विद्याओं का प्रसार भी बहुत व्यापक था—

'कोदण्ड विद्या में निपुण, चौंसठ-कला-मतिमान थे।
संहार में वे सर्वथा भीषण कृतान्त-समान थे ॥
शस्त्रास्त्र में अपने सदृश वे आप ही थे लोक में ॥'[5]

इस तरह पांडेयजी के काव्य में उपयोगी कलाओं के वैभव का चित्रांकन देखते ही बनता है।

सब मिलाकर पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने अपने काव्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अत्यन्त प्रभावशाली चित्र उपस्थित किये हैं। आज चाहे इस देश की जो दशा हो गयी हो, किन्तु पांडेय जी जिस ऐतिहासिक-सांस्कृतिक युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, वह युग भौतिक समृद्धि की भी दृष्टि से निश्चय ही गौरवपूर्ण रहा है। यही प्राचीन संस्कृति पांडेय जी के काव्यमें मूर्तिमान हो उठी है। अतः उनके काव्य को राष्ट्रीय भावना से संपुष्ट सांस्कृतिक काव्य कहना अधिक उत्तम है।

१-हल्दीघाटी: सर्ग ५; पृ० ६७। २-वही वही; पृ० ६६। ३-शिवाजी: सर्ग, १०; पृ० १२६। ४-जौहर: चि० ६; पृ० ५७-५८।
५-'तुमुल'-सर्ग १, पृ० ५-६।

रीति-नीति

आत्मनिग्रह सभी अवस्थाओं में अनिवार्य है। यों तो कोई भी वृत्ति अप्रतिबद्ध नहीं होनी चाहिए। परन्तु मुख्यत: अतृप्त लोभ और काम का निग्रह परमावश्यक है। इनमें से प्रथम का उपचार अपरिग्रह तथा दूसरे का पुरुष के लिए एक पत्नी व्रत और पत्नी के लिए पातिव्रत है। पांडेय जी के काव्य में दूसरी नीति पूर्णरूपेण प्रतिफलित हुई है। उनके सभी पात्र नियंत्रित काम हैं।

छत्रपति शिवाजी ने अहमद की अनिंद्य सुन्दरी पुत्र-वधू को अपनी बेटी की तरह जब विदा किया तब—

'बड़े वेग से चली पालकी श्वसुरालय की ओर मुड़ी।'[1]

संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण दुर्लभ है। आबाजी सोनदेव के प्रति कहे गये वचनों में रीति-नीति, सदाचार का विशद विवेचन मिलता है। सदाचार की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप निकल पड़ते थे—

'जब प्रताप सुनता था ऐसी सदाचार की करुण पुकार।
रण करने के लिए म्यान से सदा निकल पड़ती तलवार॥'[2]

हनुमान की सत्यवादिता से रावण क्रुद्ध होकर प्राणदण्ड की घोषणा करता है किन्तु नीतिवान विभीषण उसे तत्काल नीतिधर्मानुसार दूत की अवध्यता से अवगत कराते हैं—

'दूत न मारा जाता कहीं, यही महीपतियों की रीति।
धर्म-नीति का पालन करें इससे कभी न होगी भीति॥'[3]

एक पत्नी-व्रत और पातिव्रत धर्म में पांडेय जी के सभी सुपात्रों की अचल निष्ठा है। रतन सिंह के हृदय पर रानी पद्मिनी ही विराजमान है—

'पति के प्राणों में पत्नी थी।'[4]

वह अपनी रक्षा के लिए कटिबद्ध है—

'उस नीच अधम पापी को तेरा दर्शन न मिलेगा।'[5]

राम के प्रति सीता का प्रेम प्रगाढ़ है—

'जग वन्दनीय रघुनन्दन, मैं उनके तन की छाया।'[6]

रावण जैसे परपुरुष से संभाषण करते समय सीता मध्य में तृण का व्यवधान रखती है—

१-'शिवाजी'-सर्ग ७, पृ० ९६-९७। २-'हल्दीघाटी'- सर्ग २, पृ० ४७। ३- 'जय हनुमान'-सर्ग ५, पृ० ७६। ४- 'जौहर'-चि० १; पृ० ९। ५- 'वही'-चि० ११, पृ० १२८। ६- 'जय हनुमान' -सर्ग २, पृ० ३४।

'तृण पात बीच में रखकर, सीता बोली खिजलाकर।'[1]

सीता के सतीत्व से लंका की राक्षसियाँ भी प्रभावित हैं।[2] भारतीय नारियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए सिंहिनी का रूप धारण कर लेती हैं।[3]

पद्मिनी का नारीत्व पति के चरणों पर समर्पित है।

'.......... नारीत्व ...., पति के चरणों से भेंटा।'[4]

उसके पातिव्रत पर नारी जाति गौरवान्वित हुई—

'रूपवती के पातिव्रत पर गर्वित नारी जाति हुई।'[5]

शिष्टाचार

शिष्टाचार भी रीति-नीति के अंतर्गत आता है। व्यवहार-सौष्ठव के लिए जीवन में इसकी आवश्यकता है। पांडेय जी का काव्य तो मानवीय संबंधों का काव्य है, अतः उसमें सुष्ठु शिष्टाचार के राशि-राशि निदर्शन सहज उपलब्ध हैं।

गुरु आदरणीय हैं। राजा शिवाजी अपने गुरु की वंदना करने में नहीं चूकते—

'छूकर चरण सामने रुके।'[6]

शिवाजी की पितृभक्ति प्रशंसनीय है। पिताजी के पदत्राण लेकर वे कहारों के साथ चल पड़े—

'शाह के पदत्राण ले हाथ चले शिव साथ कहारों के।'[7]

माता पूजनीय एवं वंदनीय होती है। शिवाजी अपनी माता को 'अम्ब' नाम से संबोधित करते हैं और उनकी वंदना करते हैं—

'हे अम्ब ... .

यह कहकर माता के चरण छुए।'[8]

गुरु अपने शिष्य को 'वत्स' कहकर संबोधित करते हैं—

'लो वत्स .... ।'[9]

राजा आदरणीय होता है। मावली वीरों ने शिवाजी की अगवानी की और उन्हें झुक-झुककर प्रणाम किया—

'तरुण मावली आगे बढ़े-बढ़कर धर ली अश्व लगाम।

उतर पड़े शिव हय से तुरत, सबने झुक-झुक किया प्रणाम।[10]

शिवाजी अपने पिता को 'देव' और अहमद की पुत्र-बधू को 'देवि' कहते हैं।[11]

१–'जय हनुमान' सर्ग ५, पृ० ३३। २-'वही'-वही, पृ०३६। ३–'हल्दीघाटी' सर्ग २, पृ० ४६। ४-'जौहर'-चि०१६, पृ० १७८। ५– वही–चि० १, पृ०९। ६–शिवाजी, सर्ग २ पृ० २६। ७–'शिवाजी'-सर्ग ४, पृ० ५६। ८-वही; सर्ग ११, पृ. १३७। ९-वही, सर्ग २, पृ. २८-२९। १०--वही, पृ०५४। ११--वही, पृ०९५।

शाहजी ने अपने पुत्र को आशीर्वाद देकर प्यार से सहलाया—

'शाह ने कहा जिओ कुलदीप,
सुत को सहलाया, प्यार किया ।'[1]

पत्नी पति के लिए प्राणनाथ, प्रियतम आदि शब्दों का प्रयोग करती है—

'बनकर प्राणनाथ, अनजान ।

× × ×

प्रियतम तेरे अन्तर में,'[2]

पति-पत्नी के लिए प्रिये, धनी आदि शब्दों का प्रयोग करता है-

'क्यों प्रिये, स्वीकार होगा हृदय का उपहार मेरा।
.... धनी तू ॥'[3]

'शील संकोच' नारियों का अनिवार्य गुण है। पतिका प्रसंग चलने पर सीता संकोच का अनुभव करती है—

'सूर्यवंश के सूर्य, कर्म से सबके मन हरते होंगे ।'[4]

अहमद की पुत्र-वधू भी संकोच का अनुभव करती है—

'............................. बड़ी सकुचाती...... ।'[5]

हनुमान जी बड़े-बूढ़ों और पंचदेव को प्रणाम करके ही लंका को प्रस्थान करते हैं—

'झुके बड़े बूड़ों के सम्मुख, पचदेव को कर जोड़ा।
पिता वायु को नमस्कार कर, लंका का अंतर जोड़ा॥'[6]

लंका से वापस आने के बाद उन्होंने राम की वंदना की—

'हरि चरणों में माथ नवा अद्वैत मिलन का सुख पाया।'[7]

मेघनाद-वध के लिए प्रस्थान करते समय लक्ष्मण ने बड़े भाई रामचन्द्र के चरण छुए—

'रघुनाथ सम्मुख हो खड़े, बोले चरण छू भाव से।'[8]

विजय-प्राप्ति के बाद भी वे राम की वंदना करते हैं।'[9]

शुभ-कार्य के लिए आशीर्वाद का विधान मंगलमय माना जाता है।

१-'शिवाजी' सर्ग २, पृ. ३१। २-'आरती'-पृ० ४६। ३-'वही'-पृ० ५६। ४- 'जय हनुमान'-सर्ग ३, पृ० ४८। ५-'शिवाजी'- सर्ग ७, पृ० ६२। ६- 'जय हनुमान'-सर्ग १,पृ० ८। ७- वही, सर्ग ७ पृ० १०२। ८-'तुमुल' सर्ग १७ पृ० ११७। ९-'वही'- सर्ग १९, पृ० १२९ ।

शिवाजी अपनी माता के आशीर्वाद के इच्छुक हैं—

'दो आशीर्वाद जननि मुझको।'[1]

तात्पर्य यह है कि पांडेयजी भारतीय संस्कृति के आदर्श शिष्टाचार के अपूर्व प्रस्तोता हैं। काव्य में ही नहीं, उनके व्यक्तिगत जीवन में भी इसकी सहज परिणति देखी जा सकती है।

३. पं० श्यामनारायणजी पांडेय का वीर काव्य—

वीरकाव्य: स्वरूप और विकास—साहित्य दर्पणकार ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीर:' लक्षण देकर 'वीर रस' को उत्तम प्रकृति मूलक माना है। उनके मतानुसार वीर रस का स्थायी भाव उत्साह, देवता महेन्द्र, और रंग स्वर्ण के सदृश है। इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव हैं तथा उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन बिभाव हैं। युद्ध के सहायक सैन्य, अस्त्र-शस्त्रादि का अन्वेषण इसके अनुभाव हैं। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांचादि इसके संचारी भाव हैं। दान, धर्म, युद्ध और दया के आधार पर वीर रस चार प्रकार का होता है। यथा दानवीर, धर्मवीर, दयावीर और युद्धवीर।[2]

वीर काव्य-धारा वैदिक काल से सतत प्रवहमान है। ऋग्वेद में त्वष्टा और इन्द्र का संघर्ष, दाशरथ यज्ञ में तृत्सुवंशीय राजा सुदास की दस राजाओं पर विजय, दिवोदास की संबर विजय, देवासुर संग्राम में वृत्रवध-प्रसंग युद्ध-वर्णनों से भरपूर हैं। इन प्रसंगों में बीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों में इन्द्र की वीरता प्रशंसित है।[3] जिनके आधार पर बार्नेट का मत है कि इन्द्र और आश्विन ऋग्वेद के प्रधान वीर थे।[4] केगी के मत से इन्द्र वैदिककालीन आर्यों के वीर नेता, आदर्श पुरुष, संरक्षक और सम्राट थे।[5] इन्द्र की महिमा युद्धवीर के ही रूप में अधिक है।

अथर्ववेद के कुंतापसूक्त में ऋषियों ने आश्रयदाताओं के नाम और उनके वंशादि का ब्यौरा दिया है।[6] इसी तरह शतपथ ब्राह्मण में भी अनेकानेक राजाओं की युद्धवीरता और दानवीरता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की गयी है।[7] इन वर्णनों को श्री एम्० विण्टर नित्ज ने वीरगाथात्मक महाकाव्यों की सृजन-परम्परा की आधार भूमियाँ कहा है।[8]

१–'शिवाजी'-सर्ग २, पृ० २६। २–साहित्यदर्पण: परि० ३। ३–ऋग्वेद: स २।१२। ४–हिन्दू गॉड्स एण्ड हीरोज-लायोनेट डी बार्नेट, पृ० २५। ५–द ऋग्वेद-केगी; पृ०४३। ६–अथर्ववेद: २०।१२७।१३७। ७–शतपथ ब्राह्मण १०।५-६-८। ८–ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-विंटरनित्ज: जिल्द १, पृ० ३१४।

पुराणों में सूर्यवंशी राजाओं की युद्धवीरता, दानवीरता; दया-वीरता और धर्मवीरता के अनेकानेक आख्यान भरे पड़े हैं; पर इन पुराणों में ऐतिहासिक पूर्वापर सम्बन्ध निश्चित कर इनकी वीरकाव्य परंपरा का क्रमिक विकास निरूपति करना यदि असंभव नहीं; तो आज दुस्साध्य अवश्य हो गया है। वीर रस की दृष्टि से रामायण में युद्धों के इतने अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है कि वहाँ युद्ध के अवसर पर असंख्य राक्षसों का मारा जाना तथा दिग्गजों एवं पृथ्वी का कम्पायमान होना एक साधारण-सी बात है। वास्तव में वीर-रस के पोषणके लिए ओजपूर्ण उक्तियाँ आवश्यक है। परन्तु रामायण में ऐसी उक्तियाँ कम हैं। 'महाभारत' में तो युद्ध, दान, दया और धर्मवीरों के विवरणों का भाण्डार है। पांडेयजी के काव्य में अनेक पौराणिक पात्रों के संदर्भ और उनसे महारानी पद्मिनी और शिवाजी की तुलना देखी जा सकती है।

अश्वघोष के बुद्धचरित (सर्ग १३), सौदरानन्द (सर्ग १७), कालिदास के रघुवंश में रघु का युद्ध कौशल (सर्ग ३-४) और दानवीरता (सर्ग-५), महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' में किरात और अर्जुन का युद्ध (सर्ग १५); भट्टि कवि के रावण-वध और महाकवि माघ के 'शिशुपाल-वध' में वीर रस का प्राधान्य है। शिशुपाल वध के सत्रहवें और अठारहवें सर्ग में सेना की तैयारी तथा उन्नीसवें और बीसवें सर्ग में युद्ध का बड़ा प्रभावशाली वर्णन है। माघ के युद्ध-वर्णन और हिन्दी वीरकाव्यों के अन्तर्गत विद्यमान सैनिकों की साज-सज्जा; सैन्य प्रयाण; अस्त्र-शस्त्रों की चमक-दमक; मार-काट; युद्धोद्धत हाथियों के चिग्घाड़ आदि के वर्णन परस्पर तुलनीय हैं। माघ के उपरान्त श्री हर्ष के नैषधचरित (सर्ग ११; १२; १३); भवभूति कृत महावीर चरित; बाण कृत हर्षचरित और भट्टनारायण कृत वेणीसंहार में वीरता की छटा दर्शनीय है।

राजनैतिक एवं सामाजिक अशांति के वातावरण में वीररस का अच्छा परिपाक मिलता है। स्वयंभू अपभ्रंश के काल के प्रथम महाकाव्य लेखक माने जाते हैं। उनके 'पउमचरिउँ' में स्थान-स्थान पर वीर-रस का सुन्दर चित्रण मिलता है।[1] पुष्यदन्त कृत महापुराण में योद्धाओंके मन का आवेग एवं भारतीय वीर नारी के उज्ज्वल चरित्र की सुन्दर झलकियाँ दिखायी देती हैं।[2] 'कीर्तिलता' में कीर्ति सिंह की शूरता का निरूपण विद्यापति ने परंपरित ढंग से किया है।[3] वीरकाव्य की दृष्टि से

१– पउमचरिउँ (सं० हरिवल्लभ चूनीलाल मायाणी) पृ० ५६–३।

२– महापुराण: (सं० डॉ० पी० एल० वैद्य, भाग २, १९४०, ५२-१२-१३।)

३– कीर्तिलता (सं० डॉ० बाबूराम सक्सेना, इण्डियन प्रेस, प्रयाग वि० सं० १९८६, पृ० ११०)

रासो ग्रंथों का बड़ा महत्व पूर्ण स्थान है। विशेषकर खुमानरासों, बीसलदेवरासो और पृथ्वीराज रासो में वीर रस की सरस अभिव्यक्ति पायी जाती है।

भक्ति-काल में वीरकाव्य का अभाव ही है। फिर भी 'रामचरित मानस' में कई स्थलों पर युद्ध-वर्णन बड़े सजीव हैं। रीतिकाल में मान कृत 'राजविलास' भूषण कृत 'शिवराजभूषण' गोरेलाल 'लाल' कवि कृत 'छत्रप्रकाश' एवं सूदन कृत 'सुजान चरित' आदि अनेक ग्रन्थों में वीर रस की धारा अत्यंत वेगवती है।

हिन्दी का आधुनिक युग भारतेंदु हरिश्चन्द्र से प्रारंभ होता है। भारतेन्दु वीर रस के कवि नहीं थे, किन्तु उनके नाटकों में वीर रस की कतिपय कविताएँ मिलती हैं। उन्होंने भारतवासियों को युद्ध के लिए आमंत्रित किया —

'चलहु वीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहिं उड़ाओ।'

कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् सारे राष्ट्र में देश-प्रेम की एक लहर दौड़ गयी। इसके अनेक कारण हैं— रूस–जापान युद्ध, बंग-भंग आंदोलन और गांधीजी का आगमन। इन सब का प्रभाव हिन्दी कवियों पर भी पड़ा, जिसके परिणाम स्वरूप लाला भगवानदीन, श्री मैथिली–शरण गुप्त, पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' पं० माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, पं० अनूप शर्मा, श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि ने अपनी कविताओं में वीर काव्य का सजीव चित्र उपस्थित किया। पं० श्यामनारायणजी पांडेय इसी परम्परा की कड़ी हैं।

पं० श्यामनारायण पांडेय और वीर काव्य—

पांडेयजी का अधिकांश काव्य वीर काव्य है। वीर चरित्र उनके काव्य के नायक हैं। पराक्रमी लक्ष्मण, महाराण प्रताप, रानी पद्मिनी, महावीर हनुमान, वीरवर गोरा, छत्रपति शिवाजी का जीवन वीर रस में डूबा हुआ है। पांडेयजी के काव्य में वीर-रस-पोषक अनेक क्रिया-कलापों का वर्णन किया गया है। विशेषतः युद्ध वर्णन में कवि ने अपने समस्त कौशल की बाजी लगा दी है। उनके छन्दों की लय में तो जहाँ ओजवत्ता है, वहीं उन्होंने शब्दों की नाद-ध्वनि से भी पूरा काम लिया है। ऐसे नादात्मक ध्वनियुक्त वर्णनों की परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश वीर काव्यों से चलकर चंद और भूषण के माध्यम से हिन्दी में आयी है। वीर काव्य का यह ध्वन्यात्मक शब्द-विन्यास वातावरण-निर्मिति में सहा-

यक होता है। इस दृष्टि से यदि हम 'साकेत' और 'कामायनी' के युद्ध-वर्णनों पर विचार करें तो हमें यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि दूसरे कवियों ने जहाँ रस्म निभायी है, वहाँ पं० श्यामनारायण पांडेय ने युद्ध-वर्णन की पहली टेक रखी है। कवि के शब्दों में युद्ध-वातावरण की निर्मिति देखिए—

'वह कड़-कड़-कड़-कड़-कड़क उठी, यह भीम नाद से तड़क उठी।
भीषण संगर की आग प्रबल बैरी सेना में भड़क उठी॥
डग-डग-डग-डग रण के डंके मारू के साथ भयद बाजे।
टप-टप–टप घोड़े कूद पड़े, कट-कट मतंग के रद बाजे॥
कल-कल कर उठी मुगल सेना, किलकार उठी, ललकार उठी।
असि-म्यान विवर से निकल तुरत अहि नागिन-सी फुफकार उठी॥'[1]

इस युद्ध-वर्णन को कलात्मक सूत्र का भी पर्याप्त अवलंब प्राप्त है। प्रकृति-सापेक्ष प्रसंग-विधानों से कवि के युद्ध-वर्णन अधिक मार्मिक और प्रभावशाली हो गये हैं, यथा—

'खुल गये कमल-कोषों के कारागृह के दरवाजे।
उससे बन्दी अलि निकले संगर के बाजे बाजे॥[2]

पांडेयजी के काव्य में युद्ध से पहले अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना के दृश्य भी अंकित हैं। कवि के शब्दों में अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना का एक दृश्य देखिए—

'शुचि सजी शिला पर राणा भी बैठा अहि-सा फुंकार लिए।
फर-फर झंडा था फहर रहा भावी रण की हुंकार लिए॥
भाला-बरछी तलवार लिये आये खरधार कटार लिये।
धीरे-धीरे झुक-झुक बैठे सरदार सभी हथियार लिये॥
तरकस में कस–कस तीर भरे कन्धों पर कठिन कमान लिये।
सरदार भील भी बैठ गये झुक-झुक रण के अरमान लिये॥[3]

'जौहर' महाकाव्य में भी इसी प्रकार के दृश्य अंकित है।[4] इसके अतिरिक्त पांडेयजी के काव्य में युद्ध से पहले होनेवाली मंत्रणाओं का भी उल्लेख मिलता है—

'रण के विचार-विनिमय में वीरों! इतनी देरी क्यों।
अरि को दहलानेवाली बजती न समर–भेरी क्यों॥

१– हल्दीघाटी: सर्ग ९, पृ० १०७ और सर्ग ११, पृ० १२१। २– सर्ग १६, पृ० १८३। ३–हल्दीघाटी. सर्ग ७, पृ० ८५। ४–जौहर, चि० ७,।

इस तरह विचार करोगे, तो किला न रह सकता है।
इस वीर-प्रसविनी माँ का मुख खिला न रह सकता है।।
ललकार रहा वैरी-दल, तुम रण-विचार में डूबे।
तलवार शीश पर लटकी, तुम बाँध रहे मनसूबे।।

× × ×

माँ उसी ओर हम होंगे, तेरा जिस ओर इशारा।
खिलजी दल-पर लहरेगा, माँ, पी-पी रक्त दुधारा।।[1]

पातिव्रत के सम्मान की रक्षा के लिए वीरवर गोरा का रौद्र रूप देखिए—

'किन्तु गोरा की कुटिल भौहें हुईं,
लाल आँखों से उड़ी चिनगारियाँ।
पातिव्रत सम्मान रक्षा के लिए,
क्योंकि मुरझायी हुई थीं रानियाँ।।'[2]

हल्दीघाटी युद्ध के बाद महाराणा प्रताप अनेक विपदाओं का सामना करते रहे हैं। वे विचलित होते हैं। किन्तु यह क्षणभर के लिए ही है। दूसरे ही क्षण रानी के ओजस्वी शब्दों से सुस्थिर हो जाते हैं और देश के लिए लड़ते-लड़ते मरना-मारना उनके जीवन का अंग बन जाता है। उनका जीवन इसका प्रमाण है।

प्रताप संकट में थे। इस समय कुछ भी हो सकता था। इस समय झाला की उत्साहपूर्ण उक्ति देखिए —

'तब तक झाला ने देख लिया राणा प्रताप हैं संकट में।
बोला न बाल बाँका होगा जब तक हैं प्राण बचे घट में।।'[3]

युद्ध के लिए प्रस्थान करनेवाली सेना में अपूर्व उत्तेजना एवं साहस विद्यमान है—

'मन भर लोहे का कवच पहन, कर एकलिंग को नमस्कार।
चला पड़ा वीर, चली पड़ी साथ जो कुछ सेना थी लघु अपार।।
घन-घन-घन-घन-घन गरज उठे रण-वाद्य सूरमा के आगे।
जागे पुश्तैनी साहस-बल वीरत्व वीर उर के जागे।।'[4]

महारानी पद्मिनी अपने वीरों को युद्ध के लिए आमंत्रित करती है—

१-'जौहर, चि० ७३-७४ ७७। २-गोरा वध, सर्ग २, ६९। ३-हल्दीघाटी: सर्ग १२, पृ० १४२। ४-वही सर्ग ८, पृ० ९६।

'स्वर निकल रहा है प्रतिपल, मेवाड़-भूमि कण-कण से।
मर मिटो आन पर अपनी, अब डरो न हिचको रण से ॥'[1]

दूसरे ही क्षण वीर सैनिकों ने शत्रु–सेना पर भयंकर आक्रमण किया—

'परदे उठे सूरमे निकले; मानों निकले सिंह माँद से।
दशों–दिशाएँ थर–थर काँपीं, हर–हर के हुंकार नाद से॥
एक साथ ही सिंहनाद कर बोल दिया धावा डेरों पर।
आग बरसने लगी अचानक, खिलजी के निर्दय घेरों में॥'[2]

कवि के शब्दों में राजपूत वीर की वीरता देखिए—

'पी खून जगी खूनी कटार, वैरी उर के थी आर-पार।
अरि कण्ठ-कण्ठ पर कर प्रहार पी रही रक्त तलवार धार॥
सौ–सौ वीरों के चक्रव्यूह में घूम रहा था एक वीर।
सौ–सौ धीरों के आवर्त्तन में झूम रहा था एक धीर॥[3]

प्रताप सिंह का वह उज्जवल रूप देखिए—

'स्वतंत्रता का कवच पहन विश्वास जमाकर भाला में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस समर वह्नि की ज्वाला में॥'[4]

कवि ने अपने वीर रसात्मक वर्णनों में वास्तविकता को अधिक प्रश्रय दिया है, अतः उसके काव्य में कहीं भी बनावट का चिह्न नजर नहीं आता। पांडेय जी के युद्ध-वर्णन बड़े सजीव और गतिशील चित्र उपस्थित करते हैं। जिनसे हमें वीर रस की सच्ची अनुभूति प्राप्त होती है।

संक्षेप में, पांडेय जी के काव्यग्रन्थों में जिन युद्धों का वर्णन है, उन की प्रेरणा का सम्बन्ध स्वाभिमान और स्वातंत्र्य की चेतना से है। उन्होंने युद्धों को तपश्चर्या तक विस्तृत कर अपने वीर काव्यों में आदर्शों की महती योजना अंकित की है।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय के काव्य में चारों प्रकार के वीरों का वर्णन उपलब्ध है। उनका विवेचन इस प्रकार है–

(क) युद्धवीर

'चढ़ चेतक पर तलवार उठा रखता था भूतल पानी को।
राणा प्रताप सिर काट-काट करता था सफल जवानी को॥
× × ×
क्षण मार दिया कर कोड़े से रण किया उतर कर घोड़े से।
राणा रण–कौशल दिखा दिखा चढ़ गया उतर कर घोड़े से।[5]

१–जौहर: चि० ७, पृ० ७४। २-वही चि० १०, पृ० ११०। ३–वही चि० १६, पृ० २१६। ४–'हल्दीघाटी'- सर्ग ५, पृ० ७४। ५–वही, – सर्ग १२, पृ० १३६-१३७।

लक्ष्मण, हनुमान, गोरा, रावल रतन सिंह तथा शिवाजी की वीरता के वर्णन में युद्धवीर के मनोहारी चित्रण दर्शनीय हैं।

(ख) दानवीर

कवि के शब्दों में महाराणा प्रताप की दानवीरता देखिए—

'धन दिया गया भिखमंगों को अविराम भोज पर भोज हुआ।
दीनों को नूतन वस्त्र मिले, वर्षों तक उत्सव रोज हुआ॥'[1]

इसी प्रकार 'शिवाजी' काव्य में शिवाजी की दानवीरता का सुन्दर वर्णन है।[2]

(ग) दयावीर

'विजयी शिवा ने किलेदार को उठा लिया
वक्ष से सटा लिया
सूँघ लिया माथा और
फेरा हाथ पीठ पर
स्नेह भरी डीठ
शरणागत की डीठ पर
शत्रु को बनाया मित्र एक ही निमेष में
कौन साधु है शिवा समान आज देश में
दीन शरणागत का रक्षग तो धर्म है
वीर का सुकर्म है।'[3]

इसी प्रकार 'हल्दीघाटी' में महाराणा प्रतापकी दयावीरता श्लाघनीय है।[4]

(घ) धर्मवीर

पांडेयजी के शब्दों में धर्मवीर शिवाजी का उत्साह देखिए-

'पुनः स्वदेश जाति में स्वधर्म का प्रचार हो।'[5]

कवि के शब्दों में शिवाजी की धर्मवीरता देखिए-

'मठों मन्दिरों की प्रतिष्ठा बढ़ी।
कला धर्म में जो कि निष्ठा बढ़ी॥'[6]

इस प्रकार पं. श्यामनारायण जी पांडेय का वीर काव्य अपने में विशालता एवं व्यापकता को समेटे हुए है। इस प्रकार का वीर काव्य आधुनिक काल में नहीं के बराबर है, जो हैं भी वह कहीं न कहीं से प्रभावित है। इस दृष्टि से पं. श्यामनारायण पांडेय को आधुनिक हिन्दी वीर काव्य का भूषण कहा जाय तो इनमें अत्युक्ति नहीं होगी।

१–'हल्दीघाटी' सर्ग १७, पृ. १६३। २-'शिवाजी'-सर्ग २५, पृ ३१०।
३-शिवाजी-सर्ग ६ पृ. ८०-८१। ४– हल्दीघाटी-सर्ग १० पृ० ११५-११६
५-शिबाजी-सर्ग ५, पृ. ६५। ६- वही-सर्ग १६ पृ. २३३।

(४) पौराणिक काव्य की परिभाषा और उसकी विशेषताएं

सामान्यत: अति प्राचीन धर्म-कथाओं को जब काव्य का रूप दिया जाता है; तब उसे पौराणिक काव्य कहा जाता है।

पं० श्यामनारायण पांडेय कृत 'तुमुल' और 'जय हनुमान' रचनाएँ पौराणिक काव्य हैं या नहीं, इसका निर्णय करने का उपाय यही है कि उसमें पुराण के लक्षण खोजे जायँ। पुराण का प्राचीनतम अर्थ प्राचीन आख्यान होता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (१-५) में इतिहास के अंतर्गत ही पुराण और इतिवृत्त को भी माना गया है जिससे सिद्ध होता है कि उस समय इतिवृत्त का अर्थ ऐतिहासिक तथ्य और पुराण का अर्थ पौराणिक और निजन्धरी आख्यान माना जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और बौद्ध साहित्य में भी पुराण शब्द में इतिहासके अर्थ प्रयुक्त हुआ है और बहुधा दोनों शब्दों का प्रयोग एक साथ (इतिहास पुराण) हुआ है।[1] कालान्तर में जब पौराणिक कथाओं का संग्रह किया गया और उनका उपयोग ब्राह्मणों द्वारा धर्मग्रंथ के रूप में किया जाने लगा तो उनमें कर्मकांड, तीर्थव्रत, धर्म, उपासना, दर्शन, धर्मशास्त्र आदि की बातें भी जोड़ दी गयीं। इस तरह से परवर्ती काल में पुराण धार्मिक साहित्य के रूप में मान्य हुए और १८ पुराण हमें अपने वर्तमान रूप में उपलब्ध है, वे प्राचीन हिन्दू धर्मके प्रधान धर्म-ग्रंथ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह अवश्य है कि उनमें प्राचीन इतिहास और ज्ञान की बातें बिखरे रूप में अवशिष्ट रह गयी हैं। पर उनका जो वर्तमान रूप है उसमें न तो प्रबन्ध काव्य (कथानक सम्बन्धी अन्विति) है न अलंकृति, छन्द-योजना तथा भाषा-सौंदय आदि काव्यात्मक तत्वोंका ही विधान है। अत: उन्हें काव्य या महाकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता और न पहले कभी रखा गया है।

पुराण-साहित्य एक भिन्न ही प्रकार का साहित्य है जिसके पाँच आवश्यक लक्षण माने गये हैं—

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं–पंच लक्षणम् ॥

अर्थात्- (१) सर्ग (२) प्रतिसर्ग (३) ऋषियों और देवताओं का वंश-वर्णन, (४) मन्वन्तरों का वर्णन (५) वंशानुचरित अर्थात् राजवंशोंका वर्णन। इस तरह से उनमें सृष्टि की उत्पत्ति की कथा से लेकर अनेकानेक राजवंशों के शासकों तक का इतिहास मिलता है। किन्तु पुराणों में केवल

१–एम् विन्टरनित्स: 'ए हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर' प्र०भाग, पृ०५१८।

इतनी ही बातें नहीं हैं, उनमें ज्ञान-कोश और धर्म-शास्त्र की भी अनेक विशेषताएँ दिखलायी पड़ती हैं, जैसे अग्निपुराण में विभिन्न अवतारों के वर्णन के साथ-साथ, देवताओं की पूजा-विधि, देवालय, प्रासाद आदि की निर्माण-विधि, राज्याभिषेक विधि, प्रायश्चित, मंत्र-तंत्र, श्राद्धकल्प, तीर्थ-व्रत, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, शकुन-शास्त्र, युद्ध-विद्या, छन्द, अलंकार और रस-शास्त्र, संगीतशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, दर्शनशास्त्र, महात्म्य-स्तोत्र आदि का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। विंटरनित्स ने पुराणों का एक सामान्य लक्षण यह बताया है कि उनमें से प्रत्येकमें किसी न किसी देवता या अवतार को आधार बनाकर किसी संप्रदाय विशेष का प्रचार किया गया है।[1] पुराण साहित्य की प्रतिष्ठा हिन्दू-धर्म में ही नहीं, बौद्ध और जैन धर्मो में भी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विषय-वस्तु, शैली और उद्देश्य सभी दृष्टियों से पुराण, काव्य से बिलकुल भिन्न प्रकार का साहित्य है।

(१) तुमुल

'तुमुल' में सर्ग; प्रतिसर्ग, मन्वन्तर आदि का वर्णन तो नहीं हुआ है, विभिन्न राजाओं का वंशानुक्रम, तोर्थव्रत का माहात्म तथा अन्य बातें भी जो प्रायः सभी पुराणों में मिलती हैं;उसमें नहीं हैं। ऋषियों और देव-ताओं का वंश-वर्णन तो दूर, उसमें काव्य के नायक के वंश का भी वर्णन नहीं है।

पं० श्यामनारायणजी पांडेय को यदि पुराण रूप में ही 'तुमुल' लिखना होता तो उन्होंने लक्ष्मण के पूर्वजों का भी उसी प्रकार क्रमबद्ध विवरण लिखा होता जैसा पुराणों मे मिलता है। पर इसमें रघु, अज, दिलीप आदि की कौन कहे, लक्ष्मण के पिता दशरथ का भी पूर्ण इतिहास नहीं है। इस तरह तुमुल पूर्णतः सर्वलक्षणों से युक्त पुराण नहीं है। उसका मात्र कथानक पुराणाश्रित है। उसमें पुराण की कुछ बातें अवश्य पायी जाती हैं—

१—इसमें कहीं-कहीं छोटे-छोटे उपदेशात्मक संवाद हैं।

२—इसमें कहीं-कहीं देवताओं द्वारा पुष्प-वर्षा तथा अन्य कई अलौकिक कार्यों का वर्णन किया गया है।

ये बातें पुराणों में भी होती हैं। पर इन्हीं के कारण कोई काव्य पुराण नहीं हो सकता। पुराणों में इन बातों के अतिरिक्त और भी बहुत-सी बातें होती हैं जो तुमुल में नहीं हैं।

१- एम्० विन्टरनित्स : 'ए हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर'– प्र० भा० पृ० ५२२।

उनके 'तुमुल' का प्रतिपाद्य विषय किसी अवतार या ब्रह्म का प्रतिपादन करना नहीं; बल्की नायक लक्ष्मण की वीरता का चित्रांकन करना है। उन्होंने लक्ष्मण की वीरता के अतिरिक्त उनके साहस; बन्धु-प्रेम आदि गुणों का भी वर्णन किया है। इस प्रकार उन्होंने दशरथ-पुत्र लक्ष्मण को अपने काव्य का नायक बनाया है जो देश तथा समाज के कल्याण के लिए कार्य-रत है। यथा—

'अपमान करते दानियों का; दुर्बलों को दान दे।

× × ×

करते निराले कर्म जिससे; देश भर का त्राण हो।
करते वही जिससे महीतल का सदा कल्याण हो।'[1]

इससे स्पष्ट है कि कवि ने लक्ष्मण के आदर्श चरित्र का प्रचार साध्य और काव्य-रचना को साधन माना है।

'तुमुल' के फल के संबन्ध में इतना ही कहना है कि भारतीय संस्कृति में चार प्रकार के फलों-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-के अतिरिक्त कोई पाँचवा फल मान्य नहीं है। 'तुमुल' का फल धर्म और मोक्ष है। पर 'धर्म' कवि के युगानुसार है।

यदि पांडेयजी का उद्देश्य पुराण ही लिखना होता तो इसका उल्लेख कहीं न कहीं अवश्य करते कि वे पुराण लिख रहे हैं। परन्तु 'तुमुल' को उन्होंने कहीं भी पुराण नहीं कहा।—और कोई भी पुराणकार अपने ग्रंथ को काव्य नहीं कहता, न अपनी कला-कुशलता का परिचय देने की आवश्यकता ही समझता है। निम्नांकित काव्य-पंक्तियों में उनका काव्योद्देश्य स्पष्ट है।

'उनको न अपने दिव्य यश के गौरवों का गर्व था।
ऐसे महात्मा से जगत-हित क्यों न होगा सर्वथा॥
पर दुःख से उद्विग्न, सुख से मग्न होते हर्ष में।
ऐसे जनों का सर्वदा हो जन्म भारत वर्ष में॥[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में पांडेयजी की काव्य-रचना का उद्देश्य स्पष्ट है। उनकी यह रचना जगत-हित साधन अथवा लोकमंलल की भावना से युक्त है।

'तुमुल' में पौराणिक शैली की कतिपय विशेषताएँ पायी जाती हैं, वे इस प्रकार हैं—

१- 'तुमुल' सर्ग १, पृ० ५। २–'तुमुल' सर्ग १, पृ० ७।

१- उपदेशात्मक वर्णन—पुराणों में यह वर्णन विचार-गोष्ठी अथवा दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर रूप में किया जाता है। 'तुमुल' में इस प्रकार का वर्णन जाम्बवन्त और राम के बीच हुए प्रश्नोत्तरों में मिलता है।— और विभीषण बिना पूछे ही मेघनाद वध का महत्व प्रतिपादित करते हैं।

२–माहात्म्य और स्तोत्र—पौराणिक शैली के काव्यों में महात्मय और स्रोत्र का वर्णन इसीलिए किया जाता है कि लोग धर्मग्रंथ समझकर इनका पठन एवं मनन करें। 'तुमुल' के मंगलाचरण में भगवान माहात्म्य वर्णित है।

३–अलौकिक-अतिप्राकृतकार्य एवं अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन— पौराणिक शैली के काव्यों की भाँति 'तुमुल' में भी अलौकिक कार्यों का वर्णन मिलता है, जैसे हनुमान का आकाश मार्ग से गमन करना, गिरि को उठाकर ले आना आदि।

२–जय हनुमान—

पुराण के लक्षणों के अनुसार 'जय हनुमान' में भी 'तुमुल' की ही भाँति सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर आदि का वर्णन नहीं है। देवालय, अभिषेक-विधि, प्रासाद निर्माण; तीर्थ-व्रत का माहात्म्य, देवताओं की पूजा-विधि, विभिन्न अवतारों के वर्णन, ऋषियों और देवताओं का जो वर्णन पुराणों में मिलता है, वह भी इस काव्य में नहीं है। इस काव्य में काव्य के नायक हनुमान के वंश का वर्णन भी नहीं है। पं० श्यामनारायणजी पांडेय को यदि पुराण रूप में ही 'जय हनुमान' लिखना होता तो उन्होंने हनुमान के पूर्वजों का भी उसी प्रकार क्रम-बद्ध इतिहास लिखा होता जिस प्रकार पौराणिक ग्रंथों में मिलता है। विशेष बात यह है कि इस काव्य में काव्य के नायक हनुमान जी के पिताजी का पूर्ण परिचय भी नहीं दिय गया है। इसलिए शुद्ध तात्विक दृष्टि से 'जय हनुमान' को पुराण नहीं कहा जा सकता; किन्तु 'जय हनुमान' का कथानक मात्र पौराणिक है और उसमें पुराण की कतिपय विशेषताएँ भी मिलती हैं। यथा—

१—इस काव्य की कथा के बीच–बीच में उपदेशात्मक संवाद अधिक हैं।

२—इसमें कहीं-कहीं आकाश से देवों द्वारा पुष्प-वृष्टि एवं अलौकिक कार्यों का वर्णन किया गया है।

'जय हनुमान' का प्रतिपाद्य विषय किसी अवतार या ब्रह्म का वर्णन नहीं; हनुमान के चरित्र को प्रकाश में लाना है। पांडेयजी के मतानुसार हनुमानजी का चरित्र आज के संक्रांति-काल में भारतीय जन-जीवन को प्रेरणा दे सकता है। अतः पांडेयजी ने इसका स्पष्ट संकेत भी

दिया है—

'जिसके स्मरण मात्र से विपन्न मानव को
मिलती महान शक्ति, ज्ञान; भक्ति..........
काल को निगलने का
विघ्न को कुचलने का
शत्रु-व्यूह दलने का
अप्रमेय साहस, उत्साह, ओज, धीरता'[1]

इस प्रकार से पांडेयजी ने 'जय हनुमान' में हनुमान के उस सोद्देश्य चरित्र-चित्रण को, जिसमें लोक-प्रेरणा प्रधान है, प्रमुखता प्रदान की है।

'जय हनुमान' एक पौराणिक गाथा का अंश मात्र है किन्तु इसकी कथा कर्त्तव्य-बुद्धि की प्रेरणा देने के कारण यह सबके लिए समान रूप से हितकारी एवं मंगलमय है। आर्य-संस्कृति का निरूपण करने और निराश मानवों की शक्ति को उद्‌बुद्ध करने के लिए इस काव्य रचना का प्रणयन हुआ। आर्यों द्वारा बताये गये चार उद्देश्यों में से धर्म और मोक्ष इस काव्य के लक्ष्य हैं।

यदि पांडेयजी का उद्देश्य पुराण ही लिखना होता तो इसका उल्लेख कहीं न कहीं वे अवश्य करते; किन्तु 'जय हनुमान' में उन्होंने कहीं भी ऐसा नहीं कहा है। इसके विपरीत उन्होंने उसे सदैव 'चरित', 'कपीस-कहानी' और 'प्रबन्ध' कहा है। कोई भी पुराणकार ग्रंथ को काव्य नहीं कहता और न अपने काव्य-शास्त्रीय ज्ञान का ही परिचय देने की आवश्यकता समझता है। कवि ने 'जय हनुमान' में प्रबन्ध-काव्य की शैली तो अपनायी है, प्रारम्भ में ही अपने काव्य-शास्त्रीय ज्ञान का परिचय भी दिया है, जिससे यह स्पष्ट है कि वे काव्य या प्रबन्ध लिखना चाहते थे; पुराण नहीं।

१– 'अगर कहीं भटकूँगा तो माँ हंस लिए मिल जायेगी।
फिर क्या कहना है, प्रबन्ध में काव्य-कला खिल जायेगी॥[2]

२– 'उठो केसरीनन्दन तुम अपने प्रबन्ध में भाव भरो।
लिखूँ तुम्हारी कार्य दक्षता मुझ में ऐसा चाव भरो॥[3]

३– 'पाठक, पढ़ो कपीस-कहानी पाप-ताप हरने वाली।
अन्तर से कर्त्तव्य शीलता भाव-भक्ति भरने वाली॥'[4]

१–'जय हनुमान' श्री रामदूत को प्रणाम-पृ० २।
२-जय हनुमान : मंगलाचरण, पृ०२। ३–सर्ग १, पृ०५। ४-सर्ग १, पृ०६।

उपर्युक्त पंक्तियों में पांडेयजी ने न केवल यह संकेत दिया है कि हनुमान के चरित्र का आश्रय लेकर प्रवन्ध काव्य की रचना कर रहे हैं बल्कि यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उसकी काव्य रचना का मूल उद्देश्य क्या है ? उनके पुनीत संकल्प के अनुसार 'जय हनुमान' लोक-मंगल का साधन है। पांडेयजी के ही शब्दों में देश तथा समाज हित की कामना देखिए—

'मानव समाज की अनीतियों को दूर
सफल बनाये
जन-जीवन जगाये
देश-जाति को उठाये
नित
'जय हनुमान'
यह।'[1]

हनुमान की पौराणिक कथा—वीर हनुमान की पौराणिक कथा इस प्रकार है— हनुमान वायु-पुत्र थे। वे प्रारम्भ से ही पराक्रम एवं शौर्य के प्रतिरूप दिखायी देते हैं क्योंकि पवनदेव की प्रेरणा के अनुसार बुद्धिमान, पराक्रमी एवं तेजस्वी पुत्र की उत्पत्ति होगी, यह उनके जन्म के पूर्व ही निश्चित हो चुका था। जन्म लेते ही बाल-सूर्य के ग्रहण करने की इच्छा करना उनकी जन्मजात शौर्य-प्रवृत्ति का निदर्शन है।[2]

रामायण में उनके गुणों का संक्षिप्त परिचय निम्नांकित श्लोक से मिल जाता है—

'शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमतिः कृतालयाः॥'[3]

रामायण में हनुमानजी के पराक्रम के असंख्य प्रसंग हैं। इनमें से कतिपय प्रमुख प्रसंग अवलोकनीय है। मुहूर्त भर में समुद्रोल्लंघन,[4] अशोक वाटिका विध्वंस[5], लंका-दहन[6], हनुमान-रावण युद्ध[7], कुंभ-कर्ण के प्रबल अस्त्रों को केवल हस्त बल से चूर-चूर कर डालना[8], देवान्तक, त्रिशिरा किकुंभ[9] आदि प्रमुख राक्षस सेनानियों का वध करना आदि प्रसंग आप की अलौकिक शक्ति के परिचायक हैं। इसी कारण राम और सीता[10] ही

१-श्री रामदूत को प्रणाम, पृ० ४। २–बाल्मीकि रामायण ४।६६।२१। ३–वही ७।३५।३। ४–वही ५।१।१३७। ५-वही ५।४३। ६-वही ५।५४।५५। ७-वही ६।५६।५३।६६।५।५६।१११४। ८-वही ६।६७।६३। ९-वही ६।७०। २३।२६।६।७०।४९।६।७७।१२।२४। १०-वही ६।१।१।११। ५।३६।८।६।११३। २४।२६।

उनकी शौर्य-प्रशंसा नहीं करते अपितु वानरगण[1] एवं विपक्षी राक्षसगण[2] भी उनके पराक्रम एवं बल की भूरि-भूरि सराहना करते हैं।

उनके पराक्रमशील शारीरिक बल के अनुरूप ही उनका तेजस्वी स्वरूप भी है। रामायण में समुद्रोल्लंघन करते समय उनका विभ्राजमान तेज दर्शनीय है।[3]

बल के अनुरूप बुद्धि विरले व्यक्तियों में ही होती है। सूर्य से विषयों की शिक्षा प्राप्त करने से हनुमान को प्रखर बुद्धि होना स्वाभाविक ही है। इसका विवरण रामायण में पर्याप्त है। सम्यक् रूपेग शिक्षित पवन-तनय विविध भाषाओं के ज्ञाता हैं। वे जानकी से संस्कृति में परिचय देने का विचार करते हैं। शिक्षा एवं संस्कार के अनुरूप ही उनका विवेक है। वे तत्वज्ञ, व्यवहारज्ञ, अर्थगर्भित रहस्यों के उद्घाटनकर्त्ता हैं एवं नीतिज्ञ भी हैं। इसका परिचय हमें तब मिलता है जब वे कांचन–कामिनी में लिप्त सुग्रीव को 'राम कार्य' का स्मरण कराते हैं।[4] सीता और रावण के साथ उपयुक्त व्यवहार उनकी व्यवहार–कुशलता के प्रमाग हैं।

वेनिपुण राजनीतिज्ञ हैं[5] इसीलिए वे सचिवोत्तम रूप में समयोचित मंत्रणा देते हैं।[6] वे कुशल एव श्रेष्ठ दूत तथा स्वामि-भक्त सेवक हैं। अशोक-वाटिका में वे सुयोग कार्यकर्त्ता के लक्षण बताते हुए अपना अर्थ साधक का रूप भी प्रमाणित कर देते हैं।[7]

उनके कुशल दूत का रूप उनके लंका के कार्यों एवं रावण के साथ संभाषणादि से तो प्रकट होता ही है। इसके अतिरिक्त वे स्वयं दूतों के विभिन्न रूपों का विवरण देते हुए अपने कार्य–कुशल दूत धर्म के विवेक का परिचय देते हैं।

इसी प्रकार 'रामायण' में अनेक स्थलों में उनका नैतिक रूप भी उल्लिखित है। उदाहरणतः नारी पर पराक्रम दिखाना उनकी दृष्टि में वर्जित था। अतएव लंकिनी पर अत्यधिक पराक्रम से प्रहार नहीं किया[8], रावण के भवन में नारी-दर्शन मात्र के पाप से वे चिंतित हो उठते हैं।[9]

उनका धार्मिक रूप श्लाघनीय एवं अनुकरणीय है। वे राम के अतिरिक्त भी अन्य देवों[10] एवं महर्षियों से[11] अपनी कार्य–सिद्धि की प्रार्थना करते हैं।

१-बाल्मीकि रामायण ५।६३।२०।२१, ५।५७।४६।, ६।७४।१८, २३। २-वही ५।५२।२०। ३-बाल्मीकि रामायण ५।१।५६, ५७, ६०। ४-वही ४।२६।६, २८। ५-वही ५।१७।५०, ६८। ६-वही १।१।६। ७-वही ५।४१।५ से ७ तक। ८-वही ५।३।४१। ६- वही ५।११।३६। १०-वही ५।१३।५५ से ६४ तक। ११-वही ५।१३।६३।

इतने विशाल व्यक्तित्व से युक्त होने पर भी विनम्रता, निरभिमानता, दीनता,[1] वाणी की मनोहारिता,[2] कृतज्ञता[3] इत्यादि सत्वगुण उनकी महानता में स्वर्ण सुगंधि संयोग उपस्थित करते हैं।

अणिमा, महिमादि सिद्धियों से युक्त[4], नैतिक, धार्मिक एवं तेजस्वी लक्षणों से समन्वित हनुमान रामायण में देव-तुल्य[5] माने गये। इतना ही नहीं, राम ने स्वयं उनको इन्द्र विष्णु एवं कुबेर से भी अधिक माना. जैसे—

'न कालस्य न शक्रस्य विष्णोर्विपत्तस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनुमतः॥'[6]

समस्त वानर सेना के एकमात्र आधार[7], सेना के प्रमुख एवं एक मात्र नेता[8] तथा वानर-सैन्य को सतत् प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करने वाले[9] हनुमान का अप्रतिम चरित्र वस्तुतः अनुकरणीय है।

इस प्रकार बाल्मीकि के शब्दों में हनुमानजी का चरित्र अंकित है—

'पराक्रमोत्साहमतिप्रताप. सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च।
गाम्भीर्य चातुर्य सुवीर्य धैर्यैर्हनूमतः कोऽप्यधि कोऽस्ति लोके॥'[10]

३-परशुराम—

'परशुराम' पं० श्यामनारायणजी पांडेय की अधूरी एवं अप्रकाशित रचना है। इसकी कथा पुराणाश्रित है परन्तु उनकी अन्य रचनाओं की ही तरह इसमें भी पुराण की सम्पूर्ण विशेषताएँ नहीं मिलतीं। कवि ने इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है कि वे पुराण लिख रहे हैं। इसके विपरीत. प्रस्तुत कृति उनकी काव्य कला कुशलता का निदर्शक है। इस काव्य का प्रतिपाद्य है परशुराम के चरित्र का निरूपण और कवि ने उसे वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। अतएव हमारा कहना है कि 'परशुराम' पुराण नहीं, एक पौराणिक कथाश्रित सुन्दर काव्य-कृति है।

परशुराम की पौराणिक कथा—तपसिद्धि के लिए जाने से पूर्व ऋचीक भार्गव ने पुत्र-प्राप्त्यर्थ ब्राह्म तेज से युक्त एक मंत्र-चरु अपनी पत्नी सत्यवती को दिया और आदर्श राज-पुत्र प्राप्ति के लिए दूसरा मंत्र-चरु अपनी सास को दिया। परन्तु दोनों ने एक दूसरे का मंत्र-चरु खा

१-बाल्मीकि रामायण ५।३९।३९। २-वही ६।११३।२४। ३-वही ५।१।१०६ ४-वही ५।१।११५। ५-वही ५।५४।३५,३७, ५।४६।१३,१४। ६-वही ७।३५।८। ७-वही ४।६७।३५। ८-वही ६।७४।१८, २३। ९-वही ६।६२।१३, १९। १०-वही ७।३६।६३।

लिया। फलतः ब्राह्म-तेज से युक्त बिश्वामित्र ने राजपुत्र के रूप में जन्म लिया और आगे चलकर उन्होंने 'ब्रह्मर्षि' पद प्राप्त किया तथा क्षात्र तेज से युक्त जमदग्नि ने ऋचीक के पुत्र रूप में जन्म लिया। आगे चलकर उन्होंने धनुर्विद्या में विशेष योग्यता अर्जित की।

प्रसेनजित् राजा की कन्या रेणुका के साथ जमदग्नि का विवाह हुआ। वैशाख तृतीया के अवसर पर परशुराम ने जमदग्नि के पुत्र रूप में जन्म लिया। कुछ दिन बाद जमदग्नि रेणुका पर क्रुद्ध हुए। उन्होंने परशुराम को रेणुका का शिरच्छेद करने की आज्ञा दी और परशुराम ने बिना सोचे-विचारे पिता की आज्ञा का पालन किया। तदनंतर परशुराम ने अपने अन्य भाइयों के साथ अपनी माता को देखने की इच्छा प्रदर्शित की और जमदग्नि ने अपने आज्ञाकारी पुत्र की इच्छा पूर्ण की।

भार्गवराम (परशुराम) ने महर्षि कश्यप से धनुर्विद्या में कुशलता प्राप्त की। उनके शस्त्रास्त्र कौशल को देखकर शंकर ने उन्हें तेजस्वी परशु प्रदान किया। तत्पश्चात् भार्गवराम लोक में परशुराम नाम से विख्यात हुए। उनका परशु ही उनके सामर्थ्य एवं यश का प्रतीक था।

एक बार कार्तवीर्य ने जमदग्नि की कामधेनु का अपहरण कर लिया, जिससे क्रुद्ध होकर परशुराम ने उसके वध के लिए प्रस्थान किया। अत्यन्त अल्पावधि में परशुराम ने कार्तवीर्य का वध किया और तत्कालीन भारतमें जो अन्यायी अत्याचारी थे, उनका सर्वनाश कर प्रजामें सुख-शांति की स्थापना की। अन्त में वे सिद्ध-वन की ओर चले गये।

पौराणिक विवेचन—

मराठी साहित्य में परशुराम के संबंध में चार उल्लेखनीय ग्रंथ मिलते हैं।[1] 'तेजस्वी परशुराम' में परशुराम की कथा विस्तार से लिखी गयी है। 'परशुराम चरित्र' में केवल २३ पन्नों में परशुराम चरित्र वर्णित है। 'सह्याद्रि' में परशुराम के संबंध में ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाया गया है। 'राजराजेश्वर परशुराम' में परशुराम के राजराजेश्वर रूप से संबंधित बातों का विवरण दिया गया है।

महाभारत[2] और कौटिल्यके अर्थशास्त्र[3] में परशुराम का नृपाल और भूपाल कहकर उल्लेख किया है। 'नारद पंचरात्र'[4] में परशुराम के अनेक नामों का उल्लेख किया गया है।

१- पं० दा० प्र० पाठकशास्त्री : 'तेजस्वी परशुराम' भाग १।२. प्र० सं० १९७०। प्रा० माटे-परशुराम चरित्र। कै० जोगळेकर : सह्याद्रि। म० स० तथा बाबूराव पारखे तेजस्वी. परशुराम। २-महाभारत- द्रोणपर्व- ७०-२३ ब-२४ अ। ३-'कौटिलीय अर्थशास्त्र'-१-६-१-२। ४-'नारद पंचरात्र' ४, ३, ८६, ८३।

परशुराम को राजनीति का पूर्णज्ञान तो था पर कुछ बातों के संबंध में संदेह था।[1] आगे चलकर उन्होंने पुष्कर के पास राजनीति के पाठ पढ़े।[2] इस राजनीतिमें विविध विषय सम्मिलित हैं, जिनका विवेचन 'विष्णुधर्मोत्तर' में मिलता है।

परशुराम ने स्वार्जित नवोन प्रदेश में वेदकालीन समाज की प्रतिष्ठापना की और उसकी सुरक्षा के लिए स्वयं अनेक कष्ट उठाये। इसलिए 'भार्गवमेदिनी' अनेक वस्तु संयुक्ता जनैः सर्वैः समन्विता' बन गयी। वहाँ की प्रजा जब-जब बलिष्ठों द्वारा त्रस्त हुई तब तब परशुराम ने उसकी रक्षा की थी। एक बार वैनतेय से भयभोत प्रजा परशुराम के पास गयी तब परशुराम ने कहा—

'भवतां भवनाशाय क्षेत्रस्य रक्षणाय च।
आनयामि शिवं देवं पार्वत्या सह शंकरम्॥'[3]

आदर्श राजा का यह कर्तव्य है कि वह प्रजा का भय दूर करे, उसमें विश्वास निर्माण करे तथा उसमें धर्मपरायणता बढ़ाकर सारे राज्य में अच्छा वातावरण स्थापित करे। परशुराम ने यह कार्य अच्छी तरह से किया। अतः परशुराम को राजेराजेश्वर कहना अत्युक्ति नहीं है।

परशुराम ने शिव से धनुर्विद्या प्राप्त की और उसके प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व भी निभाया, यथा—

'शिवो भार्गवरामाय धपुर्विद्यामदात्पुरा।
पारम्पर्येण शिष्याणां तेन लोके प्रचारिता॥'[4]

परशुराम ने इस विद्या में द्रोण भीष्मादि को पारगत किया।[5]

उन्होंने इस विद्या का उपयोग अन्याय के पारमार्जन के लिए किया और उसमें वे सफल भी हुए। उस काल से ही यह विद्या 'जामदग्न्य धनुर्वेद नाम से प्रसिद्ध हुई। श्री कृ०वि० बझेकृत 'प्राचीन युद्धविद्या' ग्रंथ में इस धनुर्वेद का उल्लेख है।[6] इस धनुर्वेद का उल्लेख 'विष्णुधर्मोत्तर' में भी द्रष्टव्य है।

'जामदग्न्य धनुर्वेद' में उल्लिखित धनुष्य का उपयोग सर्वप्रथम शंकर; तत्पश्चात परशुराम एवं दाशरथी राम ने किया। इसका विवरण 'धनुर्वेदसंहिता' में मिलता है।[7]

१-'विष्णुधर्मोत्तर'-२,१,११। २-वही २,२-२ २,२-३ २,२-४ २,२-५ २,२ ६ २,२-१३ २,२-११, २,४-१२, २,७-६, २,२४-१०, २,२४-११।
३-सह्याद्रि खंड-नागाव्हय माहात्म्य-१-८ १०-१३ कड-१४ अब। ४-शिव धनुर्वेद, वीरेश्वरमतोत्पति'-श्लोक १३। ५-वीर चिन्तामणि' पृ०२। ६-श्री म०स० पारखे : 'राजराजेश्वर परशुराम'-पृ० ३५ पर उद्धृत। ७-महर्षि-वसिष्ठ विरचिता धनुर्वेदसंहिता-पृ० ६।

सीता-विवाह के उपरांत अयोध्या लौटते समय दाशरथी राम एवं परशुराम की भेंट होती है। उस समय दोनों के बीच जो संवाद होता है, उसका वर्णन रामायण में किया गया है।[1] तत्पश्चात् धनुष्य देने का कारण निकालकर भगवान विष्णु के एक अवतार ने अपना तेज दूसरे अवतार में निक्षिप्त किया। धनुष्य से सम्बन्धित यह तेज क्षात्र-तेज था।[2] इसका कारण यह है कि—'धर्म रक्षण तुझे माथां। लोक-पालणां त्वां कीजे ॥'[3]—और यह भी कहा जा सकता है कि सीता के स्वयंवर के समय राम ने जनक के धनुष्य को तोड़ दिया था इसलिए लोकपालन के लिए परशुराम ने राम को दूसरा धनुष्य प्रदान किया।

और एक बात है कि पांडेय जी द्वारा वर्णित परशुराम का रूप सौंदर्य तुलसी द्वारा वर्णित परशुराम के रूप सौंदर्य से मेल खाता है। पर तुलसी ने इसका वर्णन विस्तार से किया है।[4]

परशुराम के संबंध में एक बात सूचित कर देना आवश्यक है कि उनके द्वारा किया गया क्षत्रिय संहार का कार्य अन्यायी, अत्याचारी राजाओं के विरुद्ध था, न कि क्षत्रिय जाति के विरुद्ध।

परशुराम के कार्य का भारतीय जनमानस पर काफी प्रभाव पड़ा है। स्व० रामधारी सिंह दिनकर ने देशवासियों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से 'परशुराम की प्रतीक्षा' और 'जनता जगी हुई' काव्यों का सृजन किया है। निराशमय वातावरण में परशुराम के आगमन का वर्णन करते हुए दिनकर जी ने लिखा है—

'है एक हाथ में परशु, एक में कुश हैं,
आ रहे नये भारत का भाग्य पुरुष हैं।'[5]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि परशुराम ने राजनीति एवं धनुर्वेद में अद्वितीय निपुणता प्राप्त की थी। इसी के बल पर उन्होंने अन्यायी, अत्याचारी राजाओं का नाश किया और प्रजा में सुख-शांति की स्थापना कर दीर्घकाल तक राज्य किया। द्रोण और भीष्म को धनुर्विद्या में पारंगत बनाकर उन्होंने उसके प्रचार का भी कार्य किया। अतएव परशुराम एक महान विभूति कर्तृत्वसंपन्न राजा और आदर्श प्रजापालक थे।

१- रामायण-बालकाण्ड, ७५. १.४।
२- 'रामायण' बालकांड, ७५-२८। ३- 'भावार्थ रामायण'-२६-६२-६६।
४- 'मानस'-बालकांड, २६७-२,३,४, २६८-१,२, पृ० २५४-२५५।
५- 'परशुराम की प्रतीक्षा'-पृ० १५।

(५) आध्यात्मिक काव्य—

आध्यात्मिक भावना पं० श्यामनारायण जी पाण्डेय के काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। उनकी इस आध्यात्मिकता में भक्तों की सी भक्ति-भावना और रहस्य-भावना का सम्मिलित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। तदनुसार पांडेयजी के आध्यात्मिक काव्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं— भक्ति काव्य और रहस्य काव्य। इनमें से प्रथम के अंतर्गत कवि की वे रचनाएँ आती हैं जिनमें उसकी भक्ति भावना का आलम्बन किसी न किसी प्रकार से स्पष्ट है—चाहे वह राम रूप में हो, चाहे कृष्ण रूप में। इन कविताओं में भक्तों की भक्ति-भावना का स्वर अधिक मुख-रित है। दूसरे वर्ग में कवि की वे रचनाएँ आती हैं, जिनमें आलम्बन का रूप अस्पष्ट है, जहाँ कवि की रहस्यमूलक भक्तिभावना एक अज्ञात आल-म्बन की ओर उन्मुख दिखायी देती है।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय जिस धार्मिक एवं भक्तिपूर्ण वाता-वरण में पैदा हुए, पले और बड़े हुए हैं- उनका उन पर यथेष्ट प्रभाव है। उनकी काव्यकृतियाँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं। वे राम के अनन्य भक्त हैं। अपने आराध्य के प्रति उनकी आस्था प्रगाढ़ है। वे उनको अपने हृदय में बसा लेना चाहते हैं—

‘यदि मिला साकार तो वह, अवध का अभिराम होगा।
हृदय उसका धाम होगा, नाम उसका राम होगा॥’[1]

यही नहीं, उनके काव्य का प्रत्येक वर्ण राम-राम कह रहा है—

‘हल्दीघाटी का वर्ण वर्ण, कह रहा निरन्तर राम-राम।’[2]

राम-सीता के भजन के बिना कवि का जीवन निरर्थक बीतता जा रहा है। इसलिए वह राम-सीता का भजन करना चाहता है। कवि के शब्दों में उसकी भक्ति-भावना देखिए—

‘अकारथ जनम बीतता जा रहा है,
दिवस जिन्दगी का ढला जा रहा।

× × ×

बहुत दूर मंजिल अभी कुछ न बीता।
भजो राम सीता भजो राम सीता॥’[3]

कवि सदैव ही ‘दैव’ के सहारे पर रहता आया है। उस दैव को वह साष्टांग नमस्कार करना चाहता है। किन्तु भीतर का द्वार बंद है

१– ‘जौहर’-मंगलाचरण, पृ० ३। २- हल्दीघाटी-सर्ग १७, पृ० १६३।
३– ‘भजो राम सीता भजो राम सीता’-अप्रकाशित रचना से उद्धृत।

अतः वह रह-रहकर अपने आराध्य के लिए तड़पता है। उसके निम्नांकित आत्म-निवेदन में एक भक्त हृदय की झाँकी प्रस्तुत है—

'भीतर मंदिर का द्वार बंद, कैसे साष्टांग करूँ?
× × ×
धारा में बहते पत्ते सा, आ लगा किनारे हूँ।
मुझ में मेरा कुछ नहीं, सदा से दैव सहारे हूँ।
* * *
अपने घर का ही रतन ढूढ़ता निपट अँधेरे में।
* * *
अविनाशी की पावन प्रतिमा मेरी पुकार से हिली नहीं।'[1]

देश की तत्कालीन विषम परिस्थितियों के कारण कवि देश-सेवा के लिए भक्ति तथा शक्ति का वरदान माँगते हुए अपने आराध्य से प्रार्थना करता है—

'राणा सदृश तू शक्ति दे, जननी-चरण अनुरक्ति दे।
या देश-सेवा के लिए झाला सदृश ही भक्ति दे।'[2]

कवि अपने आराध्य के प्रति प्रगाढ़ आस्था रखता है। निम्नांकित पंक्तियों में नित्य नवीन प्रकृति, प्रभु की सत्ता में विश्वास और हृदय में असीम आह्लाद की उसकी उन्मुक्त व्यंजना देखिए—

'निशि दिन सजग हैं आपकी,
यह प्रकृति नित्य नवीन है॥
* * °
रघुवंश के अवतंस जय जय,
आप की जय हो प्रभो॥'[3]

कवि शंभु की पूजा कर उसको रिझाना चाहता हैं। निम्नांकित पंक्तियों में उसका आनंदोल्लास प्रस्तुत है—

'अक्षत-धतूर, फल-फूल-भंग बेल-पत्र
प्रेम में मिला के पदकंज पै चढ़ायेंगे।
गायेंगे बजायेंगे लजायेंगे दिगम्बर से न,
जैसे हो सकेगा आज शंभु को रिझायेंगे॥'[4]

१- 'अप्रकाशित रचना से उद्धृत। २- 'हल्दीघाटी' सर्ग १७, पृ० १९५।
३- 'तुमुल'-सर्ग १६, पृ० १३७। ४- 'आरती'- पृ० ७५।

भगवान कृष्ण के प्रति कवि का प्रेम प्रगाढ़ है। वह कृष्ण के प्रेमाश्रु में नहाने की अभिलाषा रखता है। कवि के शब्दों में उनकी प्रेम कामना देखिए—

'बन के सुदामा दिखला के भाव पारथ सा,
कामना बड़ी है प्रेम-अश्रु में नहाने की ॥'[1]

कृष्ण के प्रति उसके भक्त हृदय की पुकार देखिए—

'श्याम की पुकार बिना श्याम के सुनेगा कौन ?
अहे घनश्याम, फिर देर क्यों लगाते हैं।
जान के हमारे मन को यमुना का कूल,
क्यों न वहाँ मुग्धकारी मुरली बजाते हैं ॥'[2]

आलोच्य कवि एक साथ विश्ववन्द्य राम, श्याम, विष्णु एवं शंभु की वंदना करता है—

'घनश्याम-राममय नमस्कार—
× × ×
हे विश्ववन्द्य हे करुणाकर
× × ×
....तू अभिराम है।

तू विष्णु है, तू शंभु है,
तू विधि अनन्त प्रणाम है ॥'[3]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि पांडेयजी भक्तिमार्ग के अनुयायी होते हुए भी सांप्रदायिक भेद-भावना से दूर हैं। वे कहीं राम के सामने आत्म-निवेदन करते हैं, तो कहीं कृष्ण या शिव के सामने अपनी श्रद्धा–भक्ति प्रस्तुत करते हैं।

उनकी भक्ति में आस्था, श्रद्धा, प्रेम, अभिलाषा, प्रार्थना, उल्लास आदि भाव सम्मिलित हैं। अतः उन्हें वीर कवि के साथ-साथ एक सद्भक्त भी माना जा सकता है।

६– रहस्य काव्य—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के काव्य का दूसरा पक्ष रहस्यवाद है, जिस पर रहस्यवादी कवियों एवं अद्वैतदर्शन का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। उनकी कविता में रहस्यमयी भावना की अभिव्यक्ति प्रायः सर्वत्र दिखायी देती है। उनके काव्य में यदि एक ओर भक्तों की वाणी स्पष्ट है, तो दूसरी ओर उसमें कवि की रहस्य भावना के भी दर्शन होते हैं।

१– 'आरती' पृ० २३। २– वही, पृ० २२। ३– 'हल्दीघाटी' मंगलाचरण पृ० २ और सर्ग १७, पृ० १६३।

उनकी रहस्यवादी रचनाओं के अन्तर्गत अनेक विचारधाराएँ सम्मिलित हैं। जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है—

काव्यगत रहस्यवाद का प्राण जीव एवं जगत में विद्यमान सचेतन सत्ता में एक रहस्यानुभूति की भावना है, जिसका उद्‌गम स्रोत एक रहस्य, कवि का हृदय होता है। उस अज्ञात सत्ता के प्रति कवि के जो भाव हैं, उनका विवेचन निम्नानुसार है—

क– सर्वव्यापकता की भावना—

श्वेताश्वर उपनिषद में वर्णित आराध्य के समान ही पांडेयजी का आराध्य भी सर्वव्यापी है—

'घट घट के अधिवासी जय !'[1]

और—

'आँख में है ज्योति बनकर, साँस में हैं वायु बनकर।
देखता जग निधन पल-पल प्राण में है आयु बनकर॥[2]

पांडेयजी की अनेक कविताएँ प्रकृति-पूजा-भावना की ओर इंगित करती हैं और तब यह प्रतीत होता है कि कवि का यह रहस्य भाव रसानुभूति के आकाश में अपने संपूर्ण सम्मोहन के साथ साकार हो उठा है। प्रकृति व्याप्त क्रीड़ा-क्षेत्र में कवि निरन्तर किसी विराट-सत्ता की अभिव्यक्तियों और अनुभूतियों का अस्तित्व अनुभव करता है–

'देते हो दिखायी कंज-छबि में छबीले बने,
मिलते हमें हो तुम प्रेम के मिलन में।
कोकिल के कण्ठ में निवास करते हो तुम,
अपनी दिखाते कान्ति हरे भरे बन में॥
चारु चन्द्रिका में नित्य देखते तुम्हारी छटा,
पाते मुसकाते तुम्हें खिलते सुमन में।
दृष्टि डालते हैं जहाँ देखते वहाँ ही तुम्हें,
मंजुता तुम्हारी ही, बसी है मंजु घन में॥[3]

इससे जगव्यापी चेतना और उसकी रूपमाधुरी के प्रति कवि का प्रगाढ़ अनुराग प्रकट होता है।

ख– जिज्ञासा-भाव—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के रहस्य काव्य में अन्य रहस्यवादी कवियों की तरह अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल अथवा विस्मय

१– 'जय हनुमान' सर्ग ७, पृ० १०६। २– 'जौहर' मंगलाचरण, पृ० २।
३–'आरती' पृ० १२।

की भावना भी पायी जाती है। वस्तुतः विस्मय और कौतूहल ही जिज्ञासा के जनक हैं। कवि के मन में यह भाव उठने लगता है कि यह जग जिस पर थमा है, उसका आधार क्या है? तारों के दीप जलाकर सदा कौन दीवाली करता है? ये सूर्य-चंद्र किसकी आरती उतारा करते हैं।

'.................. जग जिस पर थमा आधार क्या है?
दीप तारों के जलाकर कौन नित करता दिवाली?
चाँद-सूरज घूम किसकी आरती करते निराली?'[1]

कभी-कभी वह प्रकृति के व्यापार की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखता है। इसलिए उसका विस्मयाभिभूत हृदय प्रश्न कर बैठता है–

'तिमिर पलकें खोलकर प्राची दिशा से झाँकती है,
माँग में सिन्दूर दे ऊषा किसे नित ताकती है?
गगन में सन्ध्या समय किसके सुयश का गान होता?
पक्षियों के राग में किस मधुर का मधु दान होता?
पवन पंख झल रहा है, गीत कोयल गा रही है।
कौन है? किसमें निरन्तर जग-विभूति समा रही है?'[2]

एक स्थान पर कवि पूछता है कि उसके हृदय में जिज्ञासा का संचार करनेवाला कौन है? ये सूर्य, चन्द्र, तारे, झरने किसकी देन हैं? यह मनोहर दरबार किसका हैं? इसका निर्माता कौन है? कहाँ है वह? कवि की जिज्ञासा भरी उक्ति देखिए–

'सूर्य चन्द्रमा की जलती है ज्योति दोनों ओर।
सुन्दर दिशाओं का हरेक खुला द्वार है॥
झरने फुहारे बने–तारे बने फूल–फल।
पंखा मलयाचल की-झलती बयार हैं॥
न्याय करने के लिए- बैठते कहाँ हो तुम।
कितना मनोहर--तुम्हारा दरबार है॥'[3]

× × ×

कौन निर्माता? कहाँ है? नाम क्या है? धाम क्या है?'[4]

ग– दर्शन के लिए प्रयत्न—

उस परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा की भावना होने के उपरान्त भावुक रहस्यवादी कवि उसके दर्शन का प्रयत्न करता है। अपने प्रिय का सान्निध्य और निकटता प्राप्त करने के लिए साधक या कवि के मन

१– 'जौहर' मंगलाचरण, पृ० १। २– वही, पृ० १-२। ३– आरती, पृ० ७। ४– 'जौहर' मंगलाचरण, पृ० २।

में एक नये प्रकार का उत्साह और आकुलता पैदा होती है। हमारा कवि भी अपने आराध्य के दर्शन के लिए उत्सुक है–

लगन लगी है मुझे आँख भर देखूँ तुम्हें;
× × ×
मेरी कुटिया की राह तुमने न देखी कभी,
भूल मत जाना किसी और के सदन में।
पथ में बिछी हैं प्रीति-पलकें तुम्हारे लिए,
× × ×
आओ समा जाओ तुम प्राण, मेरे मन में।'[1]

कवि अपने प्रिय के प्रेम का पयपान करने के लिए मत्त-सा बन गया है, वह अपनी संपूर्ण सुध-बुध खो चुका है–

'प्रेम का तुम्हारे पय-पान करने ने लिए,
मत्त-सा बना हूँ सुध-बुध खो चुका हूँ मैं ।।[2]

अपने प्रिय के द्वार पर पड़े हुए शरणागत कवि की आकुलता देखिए–

'आर्त होके द्वार पर शरण तुम्हारी पड़ा,
नाथ, रो चुका हूँ मैं अनाथ हो चुका हूँ।'[3]

उसकी एक ही अभिलाषा है-

'सेवक बना लो यही मेरी अभिलाषा है।'[4]

घ– अदृश्य सत्ता से संबंध स्थापन—

रहस्यानुभूति के उपरान्त रहस्यवादी कवियों में साधक और साध्य के बीच विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों की उद्भावना होने लगती है। कभी-कभी साधक अपने प्रिय को स्वामी, नाथ आदि के रूप में देखकर स्वयं को उसका दास या सेवक समझता है। आलोच्य कवि ने भी अपने परमाराध्य से यही सम्बन्ध जोड़ा है। अपने उस प्रियतम के प्रति कवि की आत्मा में अटूट प्रेम, अपूर्व आकर्षण विद्यमान है, जिसकी अभिव्यक्ति उसके काव्य में हुई है। क्षपने प्रिय को नाथ, घनश्याम आदि नामों से संबोधित करते हुए वह कहता है–

'नाथ; बसते हो कहो कौन-से भवन में?
× × ×
अहे घनश्याम, अब मुझको बना लो दास।
लालसा लगी है मुझे दास कहलाने की।।'[5]

१– 'आरती' पृ० १४। २– वही, पृ० १६। ३– वही, पृ० १६। ४– वही, पृ० १७। ५–आरती: पृ० १५.२३।

ये 'नाथ', 'घनश्याम' और कोई नहीं, कवि का आराध्य है, जिसके दर्शन के लिए कवि उत्सुक है।

प्रेम के क्षेत्र में, प्राकृतिक उपकरणों में जिस प्रकार का अटूट सम्बन्ध है, ठीक उसी प्रकार का सम्बन्ध वह अपने प्रिय से जोड़ता है—

'चातक, तुम्हारे प्रेम-स्वाति बिन्दु का हूँ बना,
मधुप तुम्हारे पद कंज का विभोर हूँ॥
हो जो कुसुमाकर तो कोकिल मुझे भी कहो,
तुम जो रसीले घनश्याम हो तो मोर हूँ।
हो तुम दिवाकर तो जान लो मुझे भी कंज,
मोहन तुम्हारे मुख-चन्द का चकोर हूँ॥'[1]

इस प्रकार कवि अलौकिक सत्ता से अपना अटूट संबंध जोड़ना चाहता है।

ङ- अदृश्य सत्ता से तादात्म्य—

रहस्यवाद की अन्तिम स्थिति है प्रभु से एकात्मकता, जिसमें साधक को प्रभु में तन्मयी भावत्व की उपलब्धि होती है। इस अवस्था की प्राप्ति होते ही साधक और साध्य के बीच से माया का आवरण बिलकुल हट जाता है और आनन्द, अनुपम उल्लास और असीम चिन्मय विलास की स्थिति आ जाती है। यह आत्मा और परमात्मा के एकीकरण का परिणाम है। पांडेयजी के काव्य में इस भूमिका के दर्शन होते हैं।

श्यामनारायणजी प्राकृतिक उपकरणों से अपने प्रिय का संकेत प्राप्त करते हैं—

'गगन नहीं है यह नीलम तुम्हारा शीश,
मोती अलकों में गुथे हैं उगे न तारे हैं।
बहता न वायु यह श्वास ले रहे हो तुम,
मन्द-मन्द-हास है, न सुमन सँवारे हैं॥'[2]

ब्रह्म में ध्यान-मग्न कवि, आत्म-विभोर हो, आत्म-विस्मृत हो, अनहद नाद सुनने लगा—

'ध्यान जो लगा के बैठ गया कंज पद का।
× × ×
सुनने समोद लगा नाद अनहद का॥'[3]

फिर कुण्डली जगाकर उसने आत्म-दीप जलाया और ब्रह्म में एकाकार हो गया—

१–'आरती' पृ० १३। २–आरती: पृ० ६। ३–पृ० १८।

'कुण्डली जगा ली आत्म दीप जल जाने को ।।

× × ×

नयन खुले तो ब्रह्म बन्द भी रहे तो ब्रह्म ।
रह गया ब्रह्म ब्रह्म-ब्रह्म बन जाने को ।।'[1]

वह अपने ब्रह्म के सामीप्य का अनुभव करता है—

'खुलकर मेरी आँखों ने जो अन्तस्तल पर देखा ।
तो केवल झलक रही थी झिलमिल-झिलमिल पद रेखा ।।'[2]

कवि के शब्दों में साक्षात्कार का एक मार्मिक चित्र देखिए—

'पलकें उठा के तब-देखा अपने में तुझे ।
अन्तर न पाया अपने में और तुझमें ।।'[3]

इस प्रकार कवि ने अज्ञात सत्ता से साक्षात्कार की अनुभूति का वर्णन किया है ।

संक्षेप में, श्यामनारायणजी के काव्य में रहस्यवाद की अनेक भाव स्थितियाँ दिखायी देती हैं, जिनमें उसके भाव-पक्ष के साथ ही साधना पक्ष भी प्रस्तुत है । उसका यह रहस्यवाद वस्तुतः उसके व्यापक व्यक्तित्व का एक अंशमात्र है ।

७- दार्शनिक विचारधारा का काव्य—

दार्शनिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि मतवादों का समावेश है । पांडेयजी के काव्य में दर्शन प्रमुख न होते हुए भी महत्वपूर्ण है । पं० श्यामनारायणजी के काव्य में जो विविध दार्शनिक मतवाद व्यक्त हुए हैं, उनका विवेचन इस प्रकार है—

य- अद्वैतवार—

शंकर का अद्वैतवाद ' सर्वं खल्विदंब्रह्म, तज्जलानिति शान्त उपासीत'[4] की विचारधारा का समर्थक है । यह समग्र जगत् ब्रह्म हो है, अन्य सब असत् है ।

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के काव्य में अद्वैतभावना की झाँकी देखिए–

'शिव सत्य सुन्दर ब्रह्म चिद्घन अपरिणामी आप ही ।
अव्यक्त अक्षर, एक अद्वय अथकगामी आप ही ।।
वह ब्रह्म शासक आप ही है............
× × ×
हे भिन्न रूप अभिन्न स्रष्टा..........

१–'आरती' पृ० ७१ । २–पृ०२६ । ३-पृ०७ । ४–छान्दोग्य उप०, ३,१४,१ ।

हे दृश्यरूप अदृश्य द्रष्टा.........

× + ×

व्यापक अजन्मा ब्रह्म ही अविकार मेरे सामने'[1]

और

'जो अजर, अमर, अव्यक्त रूप, अविकार, अनघ, अक्षर, अनूप।
जो नभ समान है निराकार, उस विविध वेश को नमस्कार॥'[2]

जगत् की प्रतीति और माया— अद्वैतवादियों ने ब्रह्म की एक शक्ति स्वीकार की है, जिसको माया कहा गया है। वह त्रिगुणात्मिका है। विद्या और अविद्या नाम से अभिहित उसके दो स्वरूप हैं। अविद्या रूप में वह सत्स्वरूप को आवृत्त करती है तथा उस पर दूसरी वस्तु का आरोप भी कर देती है। माया की यह आवरण शक्ति ब्रह्मके वास्तविक स्वरूप को छिपा लेती है और विक्षेप-शक्ति उसे संसार के रूप में आभासित करती है। अद्वैतवादी माया को भी अनादि मानते हैं।[3]

पं० श्यामनारायण पांडेय ने अद्वैतवाद की इस मान्यता को अपने काव्य में व्यक्त किया है। अद्वैत प्रसंग में उन्होंने कहा है-

'जय कारण, जय कार्य सनातन।'[4]

और—अविद्या से घिरा जीव 'मैं-तुम' में भेद भाव पाता है—

"हो स्वप्न चाहे सत्य जग की, द्वैत ही से प्रीति है।
कोई अकेला रह न सकता, लोक की यह रीति है॥'[5]

और—

"मैं-तुम मायिक प्रपंच से अलग खड़े अविनाशी जय
वनवासी का वृथा बहाना...................................॥"[6]

२—जगत् की सत्यासत्यता—

शंकर जगत् को मिथ्या मानते हुए उसे व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मानते हैं। नानारूपात्मक जगत् सत्तारूपेण सत्य है, पर अपने विशेष रूप से असत् है।

कवि के निम्नांकित शब्दों में उपर्युक्त भावों की व्यंजना है। यथा—

१–'तुमुल' पृ० १३२.१३४.१३५.१३६।
२–'हल्दीघाटी' मंगलाचरणः पृ० १। ३–भारतीय दर्शनः दत्त एवं चट्टोपाध्याय, पृ० २३७-२३८। ४–'जय हनुमान' सर्ग ७, पृ० १०६।
५-'तुमुल'–सर्ग १७, पृ० ११०। ६-'जय हनुमान'-सर्ग ७, पृ० १०६।

"पहले अलख अव्यक्त में यह मग्न दृश्य प्रपंच था।
कोई विधान न था कहीं कोई न लीला मंच था॥
इस रूप में फिर जग हुआ इसके विधाता आप ही।[1]

ल—सगुण-निर्गुण ब्रह्म—

उपनिषदों क स्वर में स्वर मिलाकर शंकर भी दो दृष्टियों से ब्रह्म-विचार करते हैं, एक तो व्यापक दृष्टि से और दूसरे तात्विक दृष्टि से ब्रह्म सृष्टि-कर्ता पालक एवं संहारक है। वह सर्वशक्तिमान है—
कवि के शब्दों में—

"तू सृष्टि करता, पालता, संहार करता सर्वदा॥"[2]

और—

'छू भी न छाया तक सकी, वह आप जैसी शक्ति की॥'[3]

जगत्-कर्तृत्व ब्रह्म का स्वरूव लक्षग न होकर उसका तटस्थ या औद्योगिक लक्षण हैं और इस दृष्टि से ब्रह्म सगुण-साकार एवं सोपाधि है, परन्तु पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म एक मात्र निर्गुण, निर्विकार, निर्लिप्त है। अद्वैतवादियों का यह दार्शनिक बोध पांडेयजो के काव्य में मिलता है—

'निर्गुण तत्त्व ब्रह्म कहा गया॥

० ० ०

ब्रह्म तो अविकार है।
…………… सत्य निर्गुण,
निर्गुण नियामक, गुरु गिरामय
आप को जय हो प्रभो!

० ० ०

आकार हीन अरूप ही—
साकार मेरे सामने।
अविकार मेरे सामने।'[4]

ब—जीव और अविद्या—

अद्वैत ब्रह्म के ज्ञान के प्रतिपादन को ही शंकर अपने ग्रंथ का प्रयोजन बतलाते हैं। ब्रह्म के विषय में गुण-गुणी की कल्पना द्वैत भेद लाती है इसलिए वह किसी विशेषण गुण से रहित निर्वेश चित् मात्र है।

ब्रह्म ही सिर्फ एक तत्त्व है। उसमें भेद या नानापन का विचार

१-'तुमुल'-सर्ग १६, पृ० १३०-१३१ २-'हल्दीघाटी'-सर्ग १७, पृ०१६४।
३-'तुमुल'-सर्ग १६, पृ० १३५।
४- 'तुमुल' सर्ग १७, पृ० ११० और सर्ग १६, पृ० १३२,१३६।

करना गलत है। इसे मान लेने पर उससे भिन्न कोई ज्ञाता-जीव का विचार ठीक नहीं रहता।

चिन्मात्र निर्विशेष ब्रह्म में 'अहं' या ज्ञाता का विचार सिर्फ भ्रम है, अविद्या है। वस्तुतः ब्रह्म में ज्ञाता-जीव के विचार की जननी यही अविद्या है— ब्रह्म पर पड़ा अविद्या का पर्दा जीव को उत्पन्न करता है। श्यामनारायणजी के काव्य में इसका प्रभाव परिलक्षित होता है—

'मन पर प्रभाव अभाव के ले, मैं अविद्या से घिरा।
× × ×
ज्यों-ज्यों हिला फँसता गया, अज्ञान से घिरता गया।
गुण में फँसा वह जीव, निर्गुण तत्व ब्रह्म कहा गया।।
सुख दुःख अनुभव जीव को है, ब्रह्म तो अविकार है।
यह जीव अपने रूप को भूला, यही संसार है।।'[1]

श–मुक्ति या मोक्ष–

जब जीव को 'मैं ही ब्रह्म हूँ' का ज्ञान हो जाता हैं, तो अविद्या दूर हो जाती है और माया बद्ध होने का भ्रम हट जाता है। जीव की इसी दशा को मुक्ति कहते हैं।

राम के प्रति जाम्बवन्त का मुक्ति के विषय में प्रश्न—
'दो देखता है एक को क्या, विश्व सारा अन्ध है।।
है द्वैत ज्ञान परन्तु उससे दुःख की न निवृत्ति है।
चिर सुख मिले कैसे मिलन की ओर लोकप्रवृत्ति है।।'[2]
जाम्बवन्त के प्रति राम का उत्तर—
'जिस दिन स्वयं को जान लेगा, फिर वही बन जायेगा।
अज्ञान बन्धन खोलकर, अक्षर सही बन जायेगा।।'[3]

(स) अवतार—

दुष्टों का विनाश, सज्जनों की रक्षा एवं धर्म-स्थापना आदि के लिए भगवान अवतार धारण कर लेते है।[4] पं० श्यामनारायण जी पाँडेय भी अपने रामसे अघ-भार दूर करनेके लिए अवतार ग्रहण करनेकी प्रार्थना करते हैं—

१-तुमुल सर्ग १७, पृ० ११० और सर्ग १९, पृ० १३३।
२-'तुमुल'-सर्ग १७,पृ०१०६,१०७। ३-वही, पृ०११०। ४-'रामानुजदर्शन' अनु० १७ और गीता ४-७,८।

'हे राम, है अभिराम, तू कृतकृत्य कर अवतार से।
दबती निरन्तर जा रही है मेदिनी अघ भार से।'[1]

इस प्रकार पांडेय जी के काव्य में भारतीय दर्शन की स्पष्ट झांकी दृग्गोचर होती है। उनकी दार्शनिकता के सूत्र मूलतः पुराण, उपनिषद तथा संस्कृत के अन्य दर्शन ग्रंथों से ग्रहण किये गये हैं।

(८) प्रेम काव्य—

पांडेयजी की प्रेम से परिपूर्ण रचनाओं के पीछे निज की सच्ची अनुभूति काम रही है। तीव्र अनुभूति ही उनकी काव्याभिव्यक्ति का प्राण है। दाम्पत्य प्रेम संबंधी कविताओं में प्रेम का चित्रण मिलता है। ऐसी कविताओं में संयोग एव वियोग के चित्र मिलते हैं। किन्तु वियोग का चित्रण अत्यधिक है। उनकी प्रेम कविताओं में जो विभिन्न प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं, उनका विवेचन इस प्रकार है—

(च) प्रेम का आलम्बन—

पांडेयजी के प्रेम काव्य का आलम्बन है पुरुष और स्त्री। उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रेम के आलम्बन के प्रति अपनी सरल, मार्मिक और कारुणिक प्रणयाभिव्यक्ति की है। अपने प्रेम के आलम्बन अपनी प्रिया को कवि देवी, दुर्गा, रानी आदि नामों से संबोधित करता है—

'देवी, दुर्गा, श्री की श्री, तुम आदि शक्ति हो रानी।
तुम से ही नव-जीवन-पाती, शैशव-जरा-जवानी॥'[2]

कवि हृदयमें स्थित प्रेयसी अपने प्रियतमको प्रियतम, नाथ आदि नामों से संबोधित कर अपनी वियोग व्यथा प्रकट करती हैं—

'प्रेमासव से भरा हुआ था, मेरे उर का प्याला।
क्यों रे निठुर उसे ठुकराकर, चूर-चूर कर डाला॥
० ० ०
प्रियतम, तेरे अन्तर में, कैसे, किस भाँति समाऊँ॥
मैं तो बिजली-सी न पापिनी, बन सकती हूँ मेरे नाथ!'[3]

(छ) रूप-वर्णन—

कवि ने अपने प्रेम गीतों में रूप दर्शन नख-शिख वर्णन प्रणाली से तो नहीं किया है, परन्तु उनमें अनेक स्थानों पर उसके मादक रूप के चित्र अवश्य खींचे हैं। वस्तुतः ये रूप-चित्र कवि के प्रेम की तीव्र अभि-व्यक्ति करने के लिए उद्दीपन का काम करते हैं। कवि के शब्दों में उसकी प्रिया का रूप-चित्र देखिए—

१-'हल्दीघाटी'- सर्ग १७, पृ० १६५। २-'आरती'-पृ० ३७। पृ० ४२, ४४, ४७। ३-पृ० ५६।

'प्यार से भुज पाश क्या मेरे गले में डाल दोगी?

o o o

गुदगुदाता है मुझे यह आज का शृंगार तेरा।

o o o

चाँद का घूँघट हटा क्या मुस्करा के बोल दोगी?'[1]

(ज) प्रेमाभिव्यक्ति–

एक स्थान पर कवि अपने वासनाजन्य-प्रेम को अभिव्यक्ति प्रदान करता है—

'उठ रहीं मस्तिष्क पर अब-मधु-मिलन की कल्पनाएँ।
दिन ढला, सन्ध्या हुई जब, तब जगी हैं वासनाएँ।'[2]

परन्तु क्षणभर में ही वह अपनी इस भावना से पाश्चाताप-दग्ध हो उठता है—

'पतन दिन दिन हो रहा है,
भूल अपना पथ गया है।
हाय, काँटों के विपिन में
सारथी का रथ गया है।

o o o

मिल रहा सुख क्यों उसे,
अब क्षणिक जग के भोग ही से।'[3]

शेष स्थानों पर कवि की प्रेम भावना औचित्य एवं संयम से परिपूर्ण है। सामने प्रेमियों का मेला देखकर कवि विवाहबद्ध हो जाता है—

'सामने जब देखता हूँ प्रेमियों का एक मेला।

o o o

अब चला जामा पहनकर पालकी पर मुस्कराने।
अब चली बारात सजकर गा बजाकर जग बनाने॥'[4]

इस मधु–वेला पर कवि का हृदय फूट पड़ता है—

'आज मेंरी असि-परीक्षा हाथ के सिन्दूर में हैं।'[5]

कवि के शब्दों में उसकी प्रणय-भिक्षा देखिए—

'प्रणय-भिक्षा माँगता हूँ, आज मैं निर्धन, धनी तू।'[6]

१–'आरती' पृ० ५७। २–'आरती'- पृ० ५७।३–वही-पृ० ५६-५७। ४-वही पृ० ५८। ५-वही-पृ० ५६।

(झ) प्रिय-दर्शन और मिलन के क्षण–

कवि के प्रेम काव्य में संयोग-चित्र अत्यल्प हैं, पर जो हैं, वे सजीव बन पड़े हैं—

मिलन से पहले कवि-हृदय का आनंदोल्लास देखिए—

"कह रहा सच, आज से पहले पुलकता उर नहीं था।
आ रही मधुयामिनी के सँग मिलन की मधुर वेला॥"[1]

किन्तु सबसे उल्लासमय चित्रांकन 'मधुर मिलन' में हुआ है। प्रिय के मधुर मिलन के मादक क्षणों का यह मनोहारी चित्र अविस्मरणीय है–

'मधुर मिलन, मधु-आलिगन में, नत-मस्तक छवि-भार।
o o o
दो के बन्धन का शिर की रजनी में अरुण बिहान।
कितना सरस मनोहर है, नव-यौवन का उद्यान॥'[2]

ञ–वियोग चित्रण–

अपनी जीवन संगिनी के छूट जाने पर विरह-दिदग्ध कवि की अन्तर्पीडा इतनी प्रबल हो उठी की उसको काव्य-सृजन की चिरन्तन अभिलाषा भी कुछ क्षणों के लिए मूक हो गयी—

'तुम गीत साधना में मेरी व्याकुल वाणी से काम न लो।
मैं विकल हृदय चिंतित मानव, मुझसे कविता का नाम न लो॥
मुझको एकाकी रोने दो, तुम मत करुणा का दान करो।'[3]

वह अपनी ममन्तिक पीड़ा को दबाये रखना चाहता था, परन्तु वह व्यथा उसके हृदय से फूठ पड़ी—

'धधक रही चिन्ता की ज्वाला आकुल अन्तर मन बतलाता।
जल-जल घुल-घुल कर जीने से कूच यहाँ से करना अच्छा॥
प्रिय-जल रही चिता तुम्हारी, अखर रही अपनी लाचारी।'[4]

प्रिय-विछोह से उसके हृदय में प्रखरतर वेदना सुलग उठती है। अतः उसे एक-एक दिन एक-एक युग के समान असह्य प्रतीत होता है—

'एक युग का एक दिन है।
* * *
इस तरह मेरे हृदय में वेदना जलती प्रखरतर।
आज मेरी भू मलिन है, आज मेरा नभ मलिन है।'[5]

१–'आरती' पृ० ५८। २–वही-पृ० ५५। ३–'आरती' पृ० १३७। ४–इस जीवन से मरना अच्छा, से उत्धृत। ५–'आरती' पृ० ६०-६१।

'मुझे रातभर नींद न आती' शीर्षक कविता में उसके हृदय की मार्मिक आकुलता प्रकट हुई है।

इन सभी कविताओं में कवि के विधुर जीवन की वेदना और टीस अक्षर मूर्त हो गयी है।

ट–स्मृति–तत्व–

पांडेयजी का प्रेम-काव्य स्मृति-तत्व पर आधारित है। पत्नी की मृत्यु के बाद उनकी स्मृति में पांडेयजी ने जो कविताएँ लिखी हैं; उनके विगत जीवन के विलास-वैभव के चित्र अंकित हैं। प्रकृति के विलास-वैभव को देखकर कवि को अपने विगत विलास-वैभव का स्मरण हो जाता है—

'पवन जब प्रात का चलता कली कल हास करती है।
निशा जब अरुण किरणों से उषा की माँग भरती है॥
विवाहित नव-वधू सी जब अरुणिमा मुस्कराती है।
हृदय में पीर उठती है, तुम्हारी याद आती है॥'[1]

'प्राण कितनी दूर हो तुम' शीर्षक कविता में कवि ने अपनी विगत प्रेम-कहानी का चित्र अंकित किया है। प्रकृति के मौन वातावरण में प्रिया का स्मरण उन्हें सताता है।[2]

निष्कर्ष यह कि उनका प्रेम काव्य अधिकतर उनके दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित है। इसमें संयोग पक्ष का वर्णन अपेक्षाकृत कम है। उसका संयोग कुछ देर बाद विरह-काव्य बन जाता है। वह सदा वियो-गाग्नि में जलता रहा है। अतः उसके काव्य में प्रेम की पीर, टीस, वेदना सदा वर्तमान है। इस प्रकार उनका प्रेम-काव्य एक प्रकार से निजानुभूति पर आधारित वेदना और टीस का काव्य है।

६–वात्सल्य-भाव से परिपूर्ण रचनाएँ–

पांडेयजी के काव्य में वात्सल्य भाव की भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं। अपनी दोनों जीवन-संगिनियों से कवि ने वात्सल्य भाव को भी ग्रहण किया है। उनके इस भाव का प्रतिबिम्ब उनके काव्य पर स्पष्ट दिखायी पड़ता है। वात्सल्य का वर्णन करने के लिए माता का जो हृदय अपेक्षित है, वह पांडेयजी में विद्यमान है। उनकी 'खाले, खाले मेरे लाल, खाले खाले रे गोपाल' शीर्षक कविता इसी प्रकार की है, जिसमें कवि की वात्स-ल्य भावना का मार्मिक चित्रण अत्यन्त हृदयगाही बन गया है। निम्नांकित

१–आरती, पृ० १३२। २–वही पृ० १३२।

पंक्तियों में कवि के अन्तस्तल में बैठी माता रूठे हुए बाल कृष्ण से माखन खा लेने का अनुरोध करती है—

'क्यों दाऊ गोरा मैं काला, सिसक-सिसक हरि बोले
विह्वल हुई यशोदा सुनकर, वचन करूण रस घोले
बोली गोरा बन जायेगा मत रो रे गोपाल।
खाले खाले मेरे लाल खाले खाले रे गोपाल।।
माखन खा खा दूध पियाकर, भर-भर गरम कटोरा
चन्द दिनों में बन जायेगा, तू चन्दा–सा गोरा
रोने से सब ग्वाल हँसेंगे ले यह कौर सम्हाल।
खाले खाले मेरे लाल,खाले खाले रे गोपाल।।'[1]

उक्त कविता में श्रीकृष्ण के बालोचित स्वभाव एवं मनोभाव का हृदयग्राही वर्णन देखते ही बनता है। माता यशोदा के हृदय में अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव का जो सागर उमड़ा था; उसी का सुन्दर चित्रण उक्त कविता में हुआ हैं।

उल्लेखनीय है कि जहाँ कवि के काव्य में एक ओर वात्सल्य भाव की रम्यातिरम्य अभिव्यक्ति हुई है वही दूसरी ओर कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ कवि का वर्णन हमारे हृदय को छू नहीं पाता। उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं–

'नाचो नाचो रे कन्हैया मैं बलैया लूँगी ना।
रे तुम थिरक-थिरक कर नाचों, रे तुम थैया-थैया नाचो।।'[2]

यहाँ कवि ने माता के मन को चित्रित करने का प्रयास किया है; परन्तु इसमें मातृ-हृदय के सच्चे और तीव्र भावो द्वेलन का अभाव है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने मातृ-हृदय को अच्छी तरह पहचान कर वात्सल्य भावना का सहज, स्वाभाविक और सजीव चित्रण किया है। कवि की वात्सल्य-रसपूर्ण रचनाएँ संख्या में कम होने पर भी रसानुभूति की दृष्टि से वात्सल्य भावना की पोषक हैं।

हम कह सकते हैं कि पं० श्यामनारायण पांडेय का काव्य कथन-शैली और कथ्य दोनों दृष्टियों से पर्याप्त सम्पन्न, वैविध्यपूर्ण और प्रेरणा-प्रद है। उनकी भाव सम्पदा, विचार-विभूति तथा साहित्यिक प्रतिभा उन्हें आधुनिक युग का एक श्रेष्ठ महाकवि सिद्ध करती है।

१–खाले खाले मेरे लाल, खाले खाले रे गोपाल, से उद्धृत। २– वही।

(५)

साहित्यिक अनुशीलन भाव पक्ष और कला पक्ष

साहित्यिक अनुशीलन: भाव-पक्ष

काव्य के भाव-पक्ष से हमारा तात्पर्य काव्य के अंतरंग से है, जिसे एक प्रकार से कविता की आत्मा, उसकी आन्तरिक रूप-रचना और सुषमा कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत समग्र वर्ण्य विषय का समावेश होता ह, भाव-पक्षका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप रस-निष्पत्ति है। रस-पक्ष भाव-पक्षका प्रधान अंग है। भाव और रस में अन्योन्याश्रित संबंध है, अत: काव्य के भाव-पक्ष का विवेचन रस-विवेचन के विना अपूर्ण रह जाता है। भाव रस कोटि पर पहुँच कर ही आस्वाद्य बनते हैं। फलत: साहित्य या काव्य के अन्तर्गत भाव की सत्ता बड़ी महत्वपूर्ण है। स्थायी भाव को रस स्थिति तक ले जाने में प्रमुख रस के अंग; यथा आलम्बन अनुभाव और संचारी भाव सभी भाव-पक्ष के अन्तर्गत आते हैं।

भाव-पक्ष में कल्पना का विशेष महत्व है, उसका लक्ष्य है—अपूर्वत्व की स्थापना। श्रेष्ठ काव्य में भावना, कल्पना अथवा विचार अन्यतम रीति से स्वीकृत हो जाते हैं। परन्तु जहाँ ऐसे आदर्श समन्वय की स्थापना नहीं होती, वहाँ वस्तुस्थिति के अनुरूप काव्य को भाव-प्रधान या कल्पना प्रधान मान लिया जाता है। काव्य में विचार की अपेक्षा भावना या कल्पना की महत्ता अधिक होती है। विचार-पक्ष पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक प्रखर और मुखर होता है, किन्तु इसका यह प्रयोजन नहीं है कि पद्य में विचारों के लिए कोई जगह ही नहीं है। पद्य में भावना और कल्पना के उपरांत विचारों को स्थान दिया जाता है। इस तरह काव्य के भाव-पक्ष के अन्तर्गत भावना, कल्पना और विचार (बुद्धितत्व) तीनों का विवेचन अपेक्षित है।

भाव-क्षेत्र का विस्तार—

काव्य के विधायक तत्वों में भाव-तत्व की स्थिति सर्वोच्च है। मनोवेग, जिन्हे भाव ही कहा जाता है, काव्य के भाव-पक्ष के प्राण हैं। मनोवेगों के किसी उद्रेक द्वारा कवि जीवन और जगत के विविध वातावरणों के मार्मिक चित्रों को आत्मसात् कर वाग्धारा के माध्यम से काव्य सृजन करता है। काव्य के कल्पना-तत्व, बुद्धि-तत्व और शैली-तत्व तीनों भाव-तत्व पर आश्रित हैं। भावों का उदय अनुभूति से होता है। शुक्लजी के अनुसार—'प्रत्यक्ष बोध; अनुभूति और वेगयुक्त प्रवृत्ति इन तीनों के

गूढ़ संश्लेष का नाम 'भाव' है। काव्य-शास्त्र में साधारणतया बयालीस भावों का उल्लेख किया गया है; जिनमें से ९ को आचार्यों ने स्थायी और शेष तैंतीस को संचारी भाव कहा है। आचार्यों ने स्थिर मनोवेगों-रति-हास, विस्मय, उत्साह, क्रोध, जुगुप्सा; भय, शोक और निर्वेद को 'स्थायी' संज्ञा दी है और चिन्ता. मोह आदि अन्यान्य भावों को संचारी नाम से अभिहित किया है।

विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के द्वारा स्थायी भाव जब पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है; तभी उसकी संज्ञा 'रस' होती है। रस नौ है—शृंगार, हास्य; अद्भुत; वीर, रौद्र, भयानक, करुण; बीभत्स और शांत। कुछ आलोचकों ने वात्सल्य और भक्ति को भी रसों में परि-गणित किया है।

पांडेयजी के काव्य में रसाभिव्यक्ति— पं० श्यामनारायणजी पांडेय रस-सिद्ध कवि हैं। उनके काव्य का प्रधान रस वीर और गौण रस करुण है। अन्यान्य रस भी उनके काव्य में हैं; पर उनकी सत्ता या तो वीर रस के पोषक के रूप में है अथवा उनकी अभिव्यक्ति पात्र एवं परि-स्थिति सापेक्ष है। पांडेयजो के काव्य में हास्य रस का वर्णन अपेक्षाकृत कम है। उनके काव्य में पाये जाने वाले सभी रसों के उदाहरण इस प्रकार है—

१-वीर रस—

पांडेयजी प्रधानतः पुरुषार्थ के कवि हैं, अतः उनके काव्य में वीर रस प्रधान है। वीर रस के अन्तर्गत भी उन्होंने युद्धवीर, दानवीर, दया-वीर और धर्मवीर चारों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं —

क-युद्धवीर—

'कटकर गिर गया मोरे एक क्षण में;
भगदड़ मच गयी चारों ओर रण में।
बैरी सब भागे शव छोड़ बुरी हार से;
गूँज गयी जावली शिवा के जयकार से ॥'[1]

उनके काव्यग्रंथों में महाराणा प्रताप, वीरवर गोरा, रावल रतन सिंह, वीर हनुमान, लक्ष्मण आदि के युद्ध-वर्णनों में 'युद्धवीर' के बड़े सरस चित्र और भाव अंकित हैं।

ख-दानवीर—छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले ने पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष में कुल-परम्परा और अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप जी खोलकर दान दिया। यथा—

१-शिवाजी; पृ १०६।

'जितने मिले रतन उपहार, उससे अधिक दक्षिणा दान।
किया शाहजी ने दिल खोल, सद्ब्राह्मण कुल का सम्मान।।
अन्न, वस्त्र, हय, गज, गोदान, तृप्त हुए सब याचक दीन।
तृप्त हुए सब साधु फकीर, कलाकार धन-हीन कुलीन।।'[1]

ग-दयावीर--'हल्दीघाटी' में राणा प्रताप की दयावीरता देखिए

'दौड़ा अपने हाथों से जाकर अरिबन्धन खोला।
वह वीर-व्रती नर-नहर विस्मित भीलों से बोला।।
अरि को भी धोखा देना शूरों की रीति नहीं है।
छल **से** उनको वश करना यह मेरी नीति नहीं है।।'[2]

घ-धर्मवीर—धर्मवीर शिवाजी की शक्ति के परिणामस्वरूप-

'महाराष्ट्र का अभ्युदय जो हुआ,
परम शक्तिशाली अभय जो हुआ।
मठों-मन्दिरों की प्रतिष्ठा बढ़ी,
कला धर्म में जो कि निष्ठा बढ़ी।।'[3]

२-शृंगार रस-शाइस्ताखाँ के विलासपूर्ण हरम में **बेगमों** के शृंगार के दृश्य देखिए-

'किसी के कठोर वक्ष खुले गोल गोल थे
होता भ्रम बेल या अनार अनमोल थे
नाभी से छलक त्रिवली के बीच डूबी थी
किसी युवती की फुफुदी की यही खूबी थी
× × ×
किन्तु रस केलि में विभोर सब सोयी थीं
कौन दूसरा था खाँ के प्रेम में ही खोयी थीं'[4]

३-रौद्र रस--रौद्र रस वीर रस का पोषक है, जिसे डॉ० भगवानदास तिवारी ने वीर रस का विकसनशील रस कहा है।[5] उदाहरणार्थ आगरा दरबार में शिवाजी का वीरोचित रौद्र रूप देखिए—

'क्रुद्ध शिवराज ने कड़कते हुए कहा
सारे दरबार को झिड़कते हुए कहा
* * *
आये कोई सामने जगह से हटाये तो
खून चूस लूँगा तिलभर उझकाये तो

१-शिवाजी; पृ० ४७। २-हल्दीघाटी, पृ० ११५-११६। ३-शिवाजी, पृ० २३३। ४-शिवाजी, पृ० १४८। ५-डॉ० भगवानदास तिवारी: भूषण: साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० ६४।

इसीलिए मुझको बुलाया गया पूने से
मौत घोंट जायेगी अही के फन छूने से
*　　　*　　　*
बेशऊर, पागल, गँवार, बदहोश हूँ
होश में जबान खींच लूँगा, वह जोश हूँ।'[1]

४-वीभत्स रस--युद्ध-क्षेत्र में वीरों के कटे-छँटे अवयव, रक्त, मांस, मज्जा की कीच, चील, कौवे और गिद्धों की क्रीड़ाएँ वीभत्स रस की पोषक हुआ करती हैं। यथा हल्दीघाटी में—

'आँखें निकाल उड़ जाते, क्षणभर उड़कर आ जाते।
शव-जीभ खींचकर कौवे चुभला-चुभलाकर खाते॥
*　　　*　　　*
ऊपर मँडरा-मँडराकर चीलें बिट कर देती थीं।
लोहू-मय लोथ झपटकर चंगुल में भर लेती थी॥'[2]

५-भयानक रस-हनुमान की वीरता और उनके आतंक का प्रभाव दिखाने के लिए पांडेयजी ने भयानक रस का प्रभावोत्पादक चित्र खींचा है—

'शेष निशाचर प्राण बचाकर भागे लंका के अंदर।
रावण से बोले अजेय है महाभयंकर है बंदर॥
पलक भाँजते परिघ उठाकर सजग राक्षसों को मारा।
उसे मारना कठिन काम है उसने सबको ललकारा॥
कौन काल के मुख में जाये, कीश काल बन आया है।
लंका के माथे पर जैसे महानाश मँडराया है॥'[3]

६-अद्भुत रस—सीता की खोज के समय जब हनुमान समुद्र मार्ग से लंका जा रहे थे, तब सुरसा ने हनुमान को निगलने के लिए मुँह फैलाया। अद्भुत मुह-विस्तार का वर्णन करते हुए पांडेयजी कहते हैं कि-

'नरक द्वार की तरह भयावह जब सुरसा का बदन हुआ।
एक होंठ पानी में पैठा और दूसरा गगन छुआ॥'[4]

इक्कीस तालों के होते हुए भी शिवाजी के आगरा से पलायन की घटना का वर्णन भी पांडेयजी ने अद्भुत रस के अन्तर्गत किया है।[5]

१-शिवाजी, पृ० १६६-१६७। २-हल्दीघाटी, पृ० १५७-१५८। ३-जय हनुमान, पृ० ५८-५६। ४-जय हनुमान, पृ० १५। ५-शिवाजी, पृ० २०६-२१०।

७-हास्य रस--पांडेयजी के काव्य में हास्य रस के उदाहरण कम हैं, फिर भी उन्होंने हास्यास्पद कथनों द्वारा विनोदाभिव्यक्ति के अच्छे प्रयास किये हैं। पद्‌मिनी प्राप्ति के लिए आतुर अलाउद्दीन का यह हास्यास्पद चित्र देखिए—

'पर तत्क्षण बिस्तर के नीचे देखी नव खिजाब की गठरी।
हिली खून से लथपथ दाढ़ी, विहँस उठी पागल की ठठरी॥
तुरत खोल गठरी दाढ़ी पर, बारंबार खिजाब लगाया।
परम परिश्रम कर कामी ने बन-बकरे-सी उसे बनाया॥
पुनः मुकुर के संमुख जाकर सुषमा देखी अपने मुख की।
मलिन वदन खिल उठा हर्ष से, रही न सीमा उसके सुख की॥'[1]

बूढ़े का इस तरह जवान बनना सचमुच हास्यस्पद है।

८-करुण रस-मकराक्ष की मृत्यु के उपरांत पुत्र-शोक संतप्त रावण का क्रंदन देखिए—

'मम प्राण प्रिय मकराक्ष, हा, अब है कहाँ फिर यों कहा॥

* * *

खोने लगा सर्वस्व उसके शोक में रोने लगा।
अति पीतभूत कपोल को, नयनाम्बु से धोने लगा॥

* * *

अस्त हो गया हा हन्त देश का दिनेश आज,
अरमान के सुमन तोड़ के चला गया।
सबको बना के दीन, दे के दुख-दैन्य-दान,
दीन दुनियाँ से मुँह मोड़ के चला गया॥'[2]

९-शान्त रस-निर्वेद या शम दोनों में से कोई भी स्थायी बन सकता हैं। आचार्यों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है।[3] यथा—

'था मौन गगन, नीरव रजनी; नीरव सरिता, नीरव तरंग॥'[4]

(१०) वात्सल्य और भक्ति रस

पं० रामदहिन मिश्र ने वात्सल्य[5] और भक्ति[6]-को स्वतंत्र रस के रूप में परिभाषाबद्ध भी कर दिया है। फिर भी इन दोनों का रसत्व विवादग्रस्त है। रस की दृष्टि से इन दोनों में रस-दशा तक पहुँचने की क्षमता है।

१-जौहर; पृ० ६७-६८। २-तुमुल, पृ० १४-१५। ३-कन्हैलाल पोद्दार: काव्य कल्पद्रुम, पंचम संस्करण, पृ० २३४। ४-हल्दीघाटी, पृ० ८६। ५-पं० रामदहिन मिश्र: काव्य दर्पणद्वि० सं०-पृ० २१८। ६-पं० रामदहिन मिश्र--काव्य दर्पण, द्वितीय सं०, पृ० २१८।

(क) वात्सल्य रस

'यह कह ममतामयी नयी माँ झुकी पलंग की ओर।
लगी चूमने नन्हें शिशु को झुक-झुक स्नेह विभोर ।।'[1]

(ख) भक्ति-रस

'मंगल-भवन गणाधिप के चरणों में मस्तक झुकता है।
सबसे दूर खड़ा हूँ, मन वन्दन करने को रुकता है ।।
श्री गणेश का नाम लिया तो बाधा फटक न पाती है।
देवों का वरदान बरसता, बुद्धि विमल बन जाती हैं ।।'[2]

इस तरह हम देखते हैं कि पांडेयजी के काव्य में साहित्य के सभी रस विद्यमान हैं। पांडेय जी की विशेषता यह है कि उनके अधिकांश वर्णन रस-दशा के साधारणीकरण के सहायक हैं।

(ख) रस से सम्बन्धित अन्य विषय

पांडेयजी के रस-निरूपण के साथ ही साथ हमें रस से सम्बन्धित कुछ अन्य विषयों पर भी विचार कर लेना चाहिए। ये विषय हैं-रसाभास, भाव-दशा, भाव-शान्ति; भावोदय, भाव-सन्धि और भावशबलता। यहाँ पं० श्यामनारायणजी पांडेय के काव्य में इन सबकी स्थिति पर सक्षेप में विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा।

(क) रसाभास

जब रस-निष्पत्ति में या तद्विधायक विभवादि में किसी भी प्रकार का अनौचित्य दोष आता है, तब उसे रसाभास कहते हैं। दूसरे शब्दों में अनुचित प्रवृत्तिमूलक रस ही रसाभास है। यथा-

'देख पिता को दुखी पुत्र भी दुखी हुआ, फिर बोल उठा।
o o o
धर्म-कर्म सन्ध्या वन्दन में जिनको चाह न होती है।
उन इच्छाचारी मूर्खों की कोई राह न होती है ।।'[3]

कुकर्म-रत रावण की स्वपुत्र के द्वारा ऐसी अवहेलना अवांछनीय है।

(ख) भावदशा

विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है, किन्तु जहाँ इनमें से किसी के अभाव या उसकी अपूर्णता के कारण रस निष्पन्न नहीं होता, वहाँ रस-दशा की जगह भाव-दशा मानी

१-शिवाजी-पृ० १२। २-जय हनुमान-मंगलाचरण, पृ० १। ३५- वही-पृ० ६३-६४।

जाती है। काव्यशास्त्र में इस अपुष्ट रस को ही भाव कहा है। उदाहरणार्थ, वीर की भावदशा का अंकन देखिए-

'कपि स्वभाव से हूँ लाचार और न सूझा मिलन उपाय।
जिसने मारा, मारा उसे मैं जीवित हूँ दैव सहाय॥
फिर भी तो बांधा गया.................. .... ।'[1]

अन्तिम पंक्ति पर आकर भाव-धारा को झटका लगता है। उसी के कारण उक्त काव्यांश में रस परिपुष्ट नहीं हो पाया, अपितु वह अपुष्ट ही रह गया। अतः यहाँ वीर रस न होकर वीर भाव दशा मात्र अंकित है।

(ग) भाव-शान्ति

जब एक प्रवेग से उदय होते हुए भी भाव विशेष की, कारण-विशेष से शांति दिखायी जाय, तब भाव-शान्ति नामक असंलक्ष्य-क्रम-व्यंग-ध्वनि होती है। यथा—

'सह न सका कपिवर की बात उठ रावण बोला ललकार।
× × ×
क्षमा न हो सकता अपराध प्राण दण्ड दो मारो चलो
० ० ०
रावण को उत्तेजित देख कहा विभीषण ने कर जोड़-
प्रभो, शांत हो, रोकें क्रोध, मत बोलें मर्यादा तोड़
० ० ०
नाथ, किसी का यह तो दूत, केवल कहता है संदेश
इस वानर का क्या अपराध, प्राण–दण्ड मत दें लंकेश'[2]

(घ) भावोदय

जहाँ एक भावके शान्त होते ही किसी दूसरे भाव का चमत्कार-पूर्ण उदय दिखाया जाय, वहाँ भावोदय माना जाता है। उदाहरणार्थ—

'स्वयं आप दक्षिण विजय हेतु आते,
सदल बल शिवा को मददगार पाते।
मगर आप आये घृणा हो रही है,
स्वयं आपकी सभ्यता रो रही है॥'[3]

उपर्युक्त छन्द में पांडेयजीने स्नेह और सद्भाव की चर्चा करते करते घृणा का भावोदय अंकित किया है।

१- 'जय हनुमान'-पृ० ७३। २- वही- पृ० ७५-७६। ३- 'शिवाजी' पृ० १६०।

ङ-भाव-सन्धि-

सम चमत्कारक दो भावों की योजनाको भाव-सन्धि कहा जाता है। यथा—

'विष-बीज न मैं बोने दूँगा; अरि को न कभी सोने दूँगा।
पर दूध कलंकित माता का मैं कभी नहीं होने दूँगा॥'[1]

यहाँ दोनों भावों के सम्मिलन से काव्य में भाव-सन्धि की प्रतिष्ठा हुई है।

च-भाव-शबलता-

जहाँ एक ही क्रम से दो से अधिक चमत्कार-कारक समान भावों का उदय हो, वहाँ भाव-शबलता होती है। यथा—

'बार-बार बिसूरती थी विलपती,
कह रही थी व्यग्र हूँ मैं हूँ विकल।
हूँ अधिष्ठात्री तुम्हारे दुर्ग की,
चैन से अब रह न जाता एक पल॥

× × ×

हूँ क्षुधा से व्यग्र, अन्न न चाहिए।
हूँ तृषाकुल, पर न पानी चाहिए,
भूख नर-तन की, रुधिर की प्यास है,
भूप, मुझको नव जवानी चाहिए॥'[2]

चित्तौड़ की रक्षा के लिए चिन्तित इष्टदेवी दुर्गा का यह आत्मोद्गार है। यहाँ दुःख, वितर्क उत्साह, निर्वेद के संयोजन से भाव-शबलता व्यंजित है।

अनुभाव विधान-

रस के विभिन्न अवयवों में अनुभाव की भी परिगणना होती है। अनुभावों के द्वारा रस परिव्यक्त होता है या यों कहिए कि अनुभाव उद्बुद्ध स्थायीभाव का अनुभव कराते हैं। यथा—'अनुभाव्यन्ते-अनुभव विषयी क्रियन्ते, रत्यादि स्थायी भावा एभिः इति अनुभावाः।'[3]

अनुभाव चार प्रकार के माने गये हैं— १-कायिक २-मानसिक ३-आहार्य, ४-सात्त्विक। इन चारों प्रकारों में स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग आदि सात्त्विक अनुभाव प्रमुख एवं प्रभावशाली हैं। पांडेयजी के काव्य में इन चारों अनुभावों के वर्णन निम्नानुसार है—

१-हल्दीघाटी, पृ० ९०। २-जौहर, पृ० ६०। ३-वाग्भयलंकार, 'वाचस्पति-प्रेस' चतुर्थ संस्करण, पृ० १८०।

क-स्तम्भ—

'घन-धूम-राशि से आवृत अग्निज्वाला सी सीता,
भू पर बैठी थीं, कपि की तप-सिद्धि-समान-पुनीता।'[1]

ख-अश्रु—

'यह सोच बिलपती रानी, मुख पर दुख दरस रहे थे।
आँखों से सावन के घन अंचल पर बरस रहे थे।।'[2]

ग-प्रलय—

प्रलय में मूर्च्छा या मरण दशा चित्रित होती है। यथा—

'दशशीश डरा-धमका कर, जब चला गया तब सीता।
मूर्छित हो गिरी धरा पर, उच्छ्वसिता परम पुनीता।।'[3]

संचारी भाव—

रस-चर्वणा में सक्षम भाव स्थायी होते हैं, शेष सब अस्थायी। इन अस्थिर भावों को ही संचारी अथवा व्यभिचारी कहा जाता है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'अस्थायी भाव वे हैं, जो निरन्तर बने नहीं रहते, प्रत्युत् समय-समय पर जिनका उदय हुआ करता है और जो क्षणिक होते हैं। यदि ये किसी स्थायी भाव के साथ दिखायी पड़ते हैं तो उसके सहायक हो जाते हैं और यदि स्वतंत्र रूप में भी आते हैं तो थोड़े ही समय के बाद मन से हट जाते हैं।[4] पांडेयजी की रचनाओं में से ऐसे अनेक संचारी भावों के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत हैं। यथा—

क-असूया—

करो न बकझक लड़कर ही अब साहस दिखलाना तुम।
भगो, भगो अपने फूफाको भी लेते आना तुम।।'[5]

यह प्रताप और मान सिंह के वार्तालाप के समय एक वीर सिपाही की उक्ति है। इसकी पृष्ठभूमि में जो असूया भाव विद्यमान है, उसका कारण यह है कि उक्त सिपाही का प्रताप के प्रति अनन्य अनुराग तादाम्य की सीमा तक पहुँच गया है।

ख-दैन्य—

मेवाड़, तुम्हारी आगे अब हा, कैसी गति होगी।
हा, अब तेरी उन्नति में क्या पग-पग पर यति होगी।।'[6]

उक्त अवतरण में मेवाड़ की चिंता करनेवाले महाराणा प्रताप का परिस्थिति-सापेक्ष दैन्य भाव अभिव्यंजित है।

१—'जय हनुमान' पृ० २८। २—जौहर—पृ० ७०। ३-जय हनुमान, पृ० ३७। ४-वाङ्-मयविमर्श, तृतीय संस्करण-पृ० १२६। ५-हल्दीघाटी, पृ० ७३। ६—हल्दीघाटी, पृ० ४०।

ग-व्रीडा-

'आज लज्जा से न घूँघट था कढ़ा।'[1]
गद्गद, नीचे मुख कर बोली।'[2]

काव्य में साधारणत: स्त्रियों में व्रीड़ा का जो प्रदर्शन किया जाता है, वह उचित है क्योंकि 'लज्जा नारीणां भूषणम्।'

घ-विषाद-

'मेवाड़ न दे सकता है तिलभर भी भू सोने को॥

* * *

चल किसी विजन कोने में अब शेष बिता दो जीवन।
इस दुखद भयावह ज्वर की यह ही है दवा सजीवन॥'[3]

उपर्युक्त उदाहरण में इष्टहानि तथा असहायावस्था आदि के आलेखन द्वारा गहन विषाद की व्यंजना हुई है।

संवेदनीयता-

संवेदनीयता को काव्य का सर्वप्रथम और अनिवार्य उपबंध माना गया है। काव्य का सारा प्रपंच इसी संवेदनीयता को लेकर रचा जाता है। अपने भावों, अपनी अनुभूतियों अथवा मनोदशाओं को संवेद्य बनाना तथा पाठक या श्रोता को उसी स्थिति में ले आना-कवि कर्म का प्रमुख अंग है। सरस काव्य निर्मिति के लिए कवि को अपनी अनुभूति को सहृदय-संवेद्य बनाना ही पड़ता है। कवि की संवेदनीयता में अनुभूति की सुष्ठु व्यंजना अन्तर्निहित रहती है। काव्य के लिए अनिवार्य होते हुए भी संवेदनीयता की अनुभूति से पृथक् कोई सत्ता नहीं होती है। जब इसे पृथक् माना जाने लगता है, तब यह काव्य के लिए घातक सिद्ध होती है। रिचर्डस् का भी यही मत है।[4] पांडेयजी के काव्य की संवेदनशीलता की शक्ति के अनेक कारणों में से कुछ प्रधान कारण निम्नानुसार है—

क-प्रबल भावानुभूति-

संवेदनीयता के लिए सर्व प्रथम कवि के भावों में प्राबल्य की अपेक्षा होती है। विस्तार के साथ-साथ पांडेयजी के भावों में प्रबलता और सूक्ष्मता भी है। पहले प्रबलता को लीजिये—

क्या गुरु ही काल-कलेवा ?

० * *

करुणा विलाप करती है,

१-जौहर, पृ० १५६। २-शिवाजी, पृ० ९६। ३-हल्दीघाटी, पृ० १४१।
४-Principles of Literary criticism, Sixth Impression, P. 27.

रोता क्रन्दन आया है ।।

* * *

प्राणों में कैसी हलचल,

मानस में कैसी आँधी ।।'[1]

ये पंक्तियाँ महाकवि हरिऔध के निधन से शोक-संकुल कवि के करुणोच्छ्वास 'आरती' से अवतरित हैं। हरिऔधजी सच्चे अर्थों में हिन्दी के महान कवि थे। किसी हिन्दी प्रेमीको उनको मृत्यु पर दुख नहीं हुआ।[1] हमारा कवि तो उनका चिरभक्त है। यह दुखद समाचार सुनते ही वह शोक-संतप्त हुआ।[2] वही हार्दिक शोक यहाँ उद्वेलित हो उठा है। निम्नांकित पंक्तियों में राम-भक्ति की तीव्र कामना भी द्रष्टव्य है—

'धन के न धाम के न काम के गुलाम रहे,

राम के गुलाम रहे, चाहना जगी रहे।'[3]

जीवन और मृत्यु के संबन्ध में भी कवि की यह संवेदना बड़ी तीव्र है—

१- 'मृगमरीचिका ही सम्बल है, माया मोह व्यथा ही बल है।
नकली फूलों पर चलने से, काँटों पर उग मरना अच्छा ।।[4]

२- 'संसृति में पग-पग पर दुख है।
मृत्यु-अंक में सुख है ।।'[5]

कवि का अन्तर्मन प्रेम-आभा से दीप्त हो रहा है, अतः उसे संसार की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य और प्रेम व्याप्त दीखता है—

'बनती है मुसकान तुम्हारी शीतल शशि की लेखा।

मेरे उर में खिच जाती है, मधुर हास की रेखा ।।

० * *

किस रसाल की लोन लता हो, किस शिरीष की छाया।'[6]

(ख) परानुभूति का स्वानुभूति में रूपान्तरण

उपर्युक्त उदाहरणों में तो हुई स्वानुभूत अर्थात् व्यक्तिगत राग विराग की बात। किन्तु कवि की आत्मा जनसाधारण की अपेक्षा अधिक चैतन्य और विशाल हुआ करती है, उसमें परस्थ भावनाओं को आत्मवत्

१-आरती, पृ० १२५-१२६।

२-हा, विकल कल्पनाएँ हैं, व्याकुल है कविता मेरी।
कैसे कुछ छन्द लिखूँ मैं, पीड़ा देती है फेरी ।। आरती पृ० १२५।

३-आरती, पृ० ४७। ४-एक अप्रकाशित रचना से उदधृत। ५-आरती, पृ० १०६। ६-आरती, पृ० ३४-३२।

अनुभव करने की शक्ति होती है। कहा जाता है कि सभी कवियों के अंतस् में एक विरहिणी निवास करती है। पं० श्यामनारायण जी के विषय में यह कथन चरितार्थ है। सीता के रूप में उनकी हृदयस्थ वियोगिनी प्रकट हुई है—

'हिल जीभ कदाचित कहती हा राघव! हा रघुनन्दन!
हा! रघुनायक रघुनन्दन कह अन्तर्व्यथा जगाकर ।।'[1]

इन पंक्तियों में विरहिणी का ही सघन उच्छ्वास है। कवि का अपना जन्मजात पौरुष विरहिणों के नारीत्व में विलीन हो जाता है। भावयोग की साधना में वह इतना तल्लीन हो जाता है कि सीता में और उसमें कोई अन्तर ही नहीं रहता। निम्नांकित पंक्तियों में कवि का पदमिनीमय हृदय फूट पडता है—

'मेरी पुकार नीरस है, गज की पुकार में करुणा।
तब तो तू दौड़ पड़ा था, लेकर आंखों में करुणा ।।
इस बार न जाने क्या है, उर द्रवित न होता तेरा।
मेरी दुनिया चंचल है, सौभाग्य विकल है मेरा ।।'[2]

विरह और विरहजन्य विषाद कितना तीव्र है? यह तीव्रता ही कवि और अकवि का निर्णय करती है। पदमिनी की उक्ति में और भी अधिक तीव्रता है—

'जब नहीं पिघलता उर है, तब मत आ प्रभु, जाने दे।
अन्यायी जग के ऊपर, मुझको भी मिट जाने दे ।।'[3]

उक्त पंक्तियों में पाठकों के भावों को झंझोड़ डालने वाला घनीभूत प्राबल्य है। पदमिनी के व्यक्तित्व की यह प्रबलता उसे सीता से अलग करती है। पांडेय जी द्वारा चित्रित सीता और पदमिनी में प्रकृतिगत अन्तर है-एक प्रबल है तो दूसरी तीव्र। किन्तु दोनों का चरित्र अपने आप में आकर्षक है।

पांडेय जी की 'आरती' में ठुकरायी गयी प्रेयसी का अपने प्रिय के प्रति यह कथन है—

'प्रेमासव से भरा हुआ था, मेरे उर का प्याला।
क्यों रे निठुर, उसे ठुकराकर, चूर-चूर कर डाला ।।
मुझे भले ही आप छोड़ दें, पर मैं कैसे दूंगी छोड़।
रति-बन्धन को आप तोड़ दें, मैं तो उसे न सकती तोड़ ।।'[4]

१-'जय हनुमान'-पृ० २९-३१। २-'जौहर'-पृ० १२६। ३-वही-पृ०१२६। ४-'आरती'-पृ० ४२, ४७।

कैसा मधुर उपालम्भ है? हम समझते हैं कि ऐसी पंक्तियों में कवि या तो स्वयं ठुकरायी गयी एक स्त्री बन गया है या फिर वह स्त्री ही उसके अन्तस् में आ बैठी हैं। यही तो भाव-योग है।

(ग) सूक्ष्म भावानुभूति और कल्पना

अब सूक्ष्मता को लीजिए—वास्तव में कवि कल्पना की सूक्ष्मता तीव्रता और प्रबलता प्रायः एक साथ नहीं मिला करती। फिर भी, पांडेय जी के काव्य में सूक्ष्मता का अभाव ही हो—ऐसी बात नहीं। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'शैलराज के तरुवर मस्त झूम रहें तो झूमें खूब।
पर्वत से चिपटी चुपचाप पुलकित बहुत मगन हो दूब ॥

o o o

पर गिरि के ये हरे जवास क्यों खुश हैं डहडहे मदार।'[1]

यहाँ प्रकृति का संश्लिष्ट एवं जीवन्त चित्रण है। पांडेय जी जैसे कवि की सूक्ष्म दृष्टि से प्रकृति का छोटे से छोटा एव सूक्ष्मातिसूक्ष्म कार्य व्यापार भी नहीं छिपा।

(घ) काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में अनुल्लिखित भावों का चित्रण

सूक्ष्मता के साथ-साथ उनके काव्य में परम्परा प्रसिद्ध मोटे-मोटे संचारी नहीं. वरन् शास्त्र में अनुल्लिखित छोटे-छोटे भाव भी मिलते हैं। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'ऐसी कीर्त्ति किसी ने न पायी है मराठों में
ऐसी धाक किसने जमायी है मराठों में
सभी महाराष्ट्रियों की ·जिन्दगी तुम्हारी है

o o o

आज से प्रतिज्ञा करता हूँ, मैं तुम्हारा हूँ
डूबता था यकायक. पा गया किनारा हूँ'[2]

वस्तुतः उक्त अवतरण में शिवाजी के कार्य पर मोहित कृष्णाजी की कृतज्ञता प्रस्तुत है। यहाँ सौजन्य या विनम्रता जैसे किसी कोमल संचारी की सहज कल्पना की जा सकती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि—'जब उग्रताको संचारी माना जाता है तो उसके प्रतियोगी सौजन्य या विनय की गणना भी संचारियों में की जानी चाहिए।'[3] इसका तात्पर्य यह है कि पांडेयजी के काव्य में सौजन्य जैसे संचारी की भी उपस्थिति पायी जाती है। किन्तु ऐसे प्रसग कम हैं। भाव प्रबलता की दृष्टि से अवश्य पांडेयजी प्रथम श्रेणी के कवि ठहरते हैं।

१-'शिवाजी'-पृ० ५१। २-'शिवाजी' पृ०११८। ३-आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'रस मीमांसा'-प्र० सं०, पृ० २२०।

(ङ) बिम्ब विधान

संवेदना-प्रियता के निमित्त, दूसरी अपेक्षित वस्तु है सहृदय को बिम्बग्रहण कराने की। कवि अपने मानस में उद्भूत रूप अथवा भाव कल्पना को सहृदय तक यथावत् पहुँचाने के लिए एक विम्ब खड़ा करता है, जिससे पाठकोंमें अभिलषित भाव जागृत होता है। ये बिम्ब कई प्रकार के हो सकते हैं। उनका चयन प्रकृति से हो सकता है, मानव जीवन से हो सकता है या फिर परिचित और प्रख्यात पुस्तकों,कथाओं के द्वारा यह कार्य संपादित किया जा सकता है। यहाँ पर एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'नभ पर व्याकुल बादल था, बिजली की आग छिपाये।
भू पर रानी व्याकुल थी, उर में पति राग छिपाये।।'[1]

उक्त उदाहरण में कवि पाठक के मन पर व्याकुल रानी का चित्र अंकित करने के लिए, 'नभ पर व्याकुल बादल था बिजली की आग छिपाये' का चित्र उपस्थित करता है। किन्तु कवि के लिए एकान्ततः प्राकृतिक बिम्ब ही अभीप्सित नहीं है। अपने विचार और अनुभवों को संवेद्य बनाने के लिए उन्होंने दूसरे प्रकार का भी विधान किया है, जैसे—

(य) 'रामायण है, गीता है वह।'[2]
(र) 'उसके आँसू के मोती, पौधों के दल पर बिखरे।
नित उन्हें पोंछता सूरज, कवि और व्यथा कुछ लिख रे।।'[3]

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में प्रख्यात पुस्तकों से और द्वितीय उदाहरण में काव्य-जगत से बिम्बों का चयन कर पांडेयजी ने अनुभव प्रेषण का प्रयत्न किया है।

(च) ध्वन्यात्मक नाद-सौंदर्य

पांडेयजी ने ध्वन्यात्मक शब्द योजना के द्वारा भी दृश्यात्मक बिम्ब विधान में नाद–सौंदर्य की सुषमा अंकित की है। यथा—

(क) 'था मेघ बरसता झिमिर-झिमिर
तटिनी की भरी जवानी भी।'[4]
(ख) वह कड़-कड़-कड़–कड़–कड़क उठी
यह भीम-नाद से लड़क उठी।'[5]

प्रथम में वर्षा का और द्वितीय में तलवार की ध्वनि का स्वर अंकित किया है।

१-'जौहर'-पृ० १२३। २–वही पृ० ५०। ३–वही पृ० १२५। ४-'हल्दीघाटी' पृ० १२०। ५-'वही'-पृ० १२१।

पांडेयजी के काव्य में ऐसे अनेक उदाहरग स्थान–स्थान पर मिलेंगे ।

(छ) कवि की ईमानदारी और मानवस्वभाव का ज्ञान

काव्य को संवेद्य बनाने के लिए तीसरी आवश्यकता है कवि की ईमानदारी अर्थात् निश्चलता की। पांडेय जी में यह निश्चलता है। 'हल्दीघाटी' में मान सिंह के अपमान के कारग क्रुद्ध अकबरके साथ उसका तादातम हो जाता है।[1] बीजापुर के दरबार में वह अफजल खाँ के साथ घोषणा करता है, यथा—

'चूहा है पहाड़ी वार कर छिप जाता है,
मैं ही सिर्फ जानता हूँ कैसे जीत जाता है।'[2]

कैसी प्रबल व्यंजना है? इस प्रबलता का मूल कारण क्या है? प्रस्तुत पात्र से तादात्म्य। अपने काव्य के चरितनायक के शत्रु के भावों से तादात्म्य कर उन भावों को समुचित अभिव्यक्ति देने में पांडेय जी की सहृदयता, कल्पनाशीलता और मानवीय स्वभाव की पकड़ प्रकट होती है। यही उनकी भावना की ईमानदारी है।

(ज) अभिव्यंजना की ऋजुता

पांडेयजी के काव्य की प्रभावक्षमता का एक और कारण है अभिव्यंजना की अद्भुत ऋजुता, जैसे—

'बोला, अरे यह क्या हुआ?
× × ×
लेकिन उड़ा कैसे उड़ा
× × ×
कैसे निकल भागा शिवा
मुमकिन न जादू के सिवा'[3]

पाठक के हृदय पर एक विस्मयकारी प्रभाव छोड़ जाने वाली औरंगजेब की यह उक्ति जितनी सरल है, उतनी ही सहज, स्वाभाविक और अत्यन्त प्रभावशाली भी।

(झ) युग, जीवन तथा राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता—

हिन्दी के छायावादी कवि जीवन की वास्तविकताओं से पलायन कर अपना स्वप्निल संसार बसा रहे थे, उस समय पांडेय जी ने अपनी कविताओं में समस्त भारत की यथार्थ स्थिति का चित्र खींच पराधीन भारत की युग-जीवन-सापेक्ष कुरूपता को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया।

१–'हल्दीघाटी' पृ० ८१–८२। २-'शिवाजी' पृ० १०७। ३–वही पृ० २१०

युग जीवन और राष्ट्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का यह उद्घोष है कि—

जहां गरीबों की आहों से राख हो रहा हो संसार।
मां की आंखों के आंसू से उमड़ रहा हो पारावार।।
बरस रहे हों आसमान से दीन किसानों पर अंगार।
जहां लोग भूखों मरते हों और मचा हो हाहाकार।।'[1]

ऐसी यथार्थ एवं सजीव पंक्तियाँ वही लिख सकता है जो युग द्रष्टा और राष्ट्रीय जीवन के प्रतिपूर्ण संवेदना के साथ सजग है।

(ञ) स्मृतियों के चित्र—

स्मृत्यानुभूतिके अंतर्गत पांडेयजीकी स्मृत्याधारित प्रेम-मूलक रचनाओं को ले सकते हैं। पत्नी के निधन के बाद लिखी हुई कविता में कवि अपनी पत्नी के विरह से तड़प उठता है। अपने कल्पना लोक में वह अपनी प्रेयसी के सामीप्य का अनुभव करता है।[2] घर के एकान्त वातावरण ने कवि को अनेक प्रकार से प्रेरणाएं दी हैं। नदी के पार का घटा, पहरेदारों की ध्वनि तारों की धूमिल किरणें, मुर्गे के बोल इन सब की याद कवि को घर की दीवारों में आती है।[3]

सब मिलाकर पांडेय जी का अधिकांश काव्य संवेदनापूर्ण है! अपरिमित प्रबलता, प्रौढ़ बिम्ब–विधायिना शक्ति तथा अपूर्व निश्चलता के कारण उसमें उत्कट संवेदनीयता आ गयी है।

मार्मिक प्रसंगों की पहचान—

जीवन एक अविश्रान्त हृदयसँग्राम है। वह निरन्तर संघर्षशील है, उसके प्रत्येक क्षण की अपनी कहानी है। फिर भी कतिपय विशिष्ट क्षण अपेक्षाकृत अधिक मर्मस्पर्शी होते हैं। ये मर्मस्पर्शी क्षण ही काव्य के वर्ण्य–विषय बनते हैं। वास्तव में कथा के मार्मिक प्रसंगो का चयन और सप्रभाव पुरस्करण ही सच्चे प्रबन्धकार का लक्षण है। यही उसकी कुशल प्रबन्ध कल्पना का परिचायक है। आलोच्य कवि मुख्यतः प्रबन्धकार है। उसने तीन महाकाव्यों और तीन खंडकाव्योंका प्रणयन किया है। इन सब की रचना में अनेक मार्मिक प्रसंग विद्यमान हैं—और हमारे कवि ने बड़ी तत्परता और कुशलता से उनका विश्लेषण, विवेचन और चित्रण किया है। कवि की इस काव्य–यात्रा में आने वाले प्रमुख भाव पूर्ण रमणीय स्थान निम्नलिखित हैं—

१-'आरती' पृ० ६०। २-'प्राण कितनी दूर हो तुम?(एक अप्रकाशित रचना)
३-'मुझे रातभर नींद न आती'। (एकअ प्रकाशित रचना से उदधृत)

'तुमुल' में राम द्वारा मकराक्षका वध[1], लक्ष्मण-मेघनाद संवाद[2], लक्ष्मण के मूर्छित होने पर राम का करुण विलाप[3], यज्ञभूमि में मेघनाद का वध[4], राम-लक्ष्मणकी भेंट[5], राम द्वारा लक्ष्मणकी प्रशंसा[6], 'हल्दीघाटी' में महाराणा प्रताप और शक्ति सिंह का संघर्ष[7] एवं मिलन[8], पुरोहित का बलिदान[9], राजपूत कन्या में सतीत्व की अप्रतिम निष्ठा[10], मान सिंह का क्षोभ[11], महराणा प्रतापकी शपथ[12], झालाकी कर्तव्यनिष्ठा[13], रानी द्वारा प्रताप को सचेत किया जाना[14], 'जौहर' में गोरा की भीषण प्रतिज्ञा[15], गोरा-बादल-अलाउद्दीन संवाद[16], पद्मिनी की चिन्ता[17], रानी का जौहर प्रसंग[18]; 'शिवाजी' में बीजापुर दरबार में शिवाजी का उपस्थित होना[19], अहमद की पुत्र-वधू के प्रति शिवाजी की मातृवत् सम्मान की भावना[20]' अफजलखांका वध[21] शिवाजी और कृष्णाजी का वार्तालाप[22], पिता-पुत्र की भेंट[23], शाइस्ताखाँ की पराजय[24], शिवाजी और किलेदार कासंवाद[25], शिवाजीकी आगरा दरबारमें उपस्थिति[26]तथा वहाँसे सकुशल वापस लौटना[27], ताना जी की स्वामि-भक्ति[28], शिवाजी और जेबुन्निसा का संवाद[29], सिंहगढ़ विजय[30]और तानाजीका बलिदान[31], 'जयहनुमान' में हनुमान सुरसा संवाद[32], हनुमान-सीता भेंट[33]; रावण-सीता संवाद[34], हनुमान-रावण संवाद[35], रावण-विभीषण संवाद,[36] हनुमान राम की भेंट[37] और राम द्वारा हनुमान की प्रशसा[38] आदि प्रसंग बड़े भावपूर्ण और मार्मिक हैं। इन मार्मिक प्रसंगों के चयन और चित्रण में पांडेयजी की कवित्व-शक्ति का निखार पाया जाता है।

१-तुमुल, पृ० १४। २-वही, पृ० ५३-५६ और सर्ग १२ पृ०५६-६४। ३-वही, पृ० ८५-६५। ४-वही, पृ० १२४-१२५। ५-वही, पृ० १२८-१२६। ६-वही, पृ० १२६। ७-'हल्दीघाटी', पृ० ३२-३५। ८-वही, पृ०१४६ १५०। ६-वही, पृ० ३६। १०-वही, पृ० ४६ ४७। ११-वही, पृ० ७१ ७४। १२-वही पृ० ८८ ८६। १३-वही, पृ० १४२ १४३। १४-वही, पृ० १६६ १७०। १५-'जौहर', पृ० ७७। १६-वही, पृ० ६८ १००। १७-वही, पृ०१२६ १२७।१८-वही, पृ० २११ २१३।

१६-'शिवाजी'-पृ० ३५-४५। २०-वही-पृ०६४-६७। २१-वही-पृ० १२६-१२८। २२-वही-पृ०११५-११८। २३-वही-पृ०१३५-१३६। २४-वही-पृ०१५०-१५३। २५-वही-पृ० १७८-१८२। २६-वही-पृ० १६३-१६७। २७-वही-पृ० २०६-२२३। २८-वही-पृ० २४८। २६—वही-पृ० २०५-२०६। ३०—वही-पृ० २६७-२६८। ३१—'शिवाजी'-पृ० २६७। ३२-'जय हनुमान'-पृ० १३-१५। ३३—वही-पृ० ४३-५३। ३४—वही-पृ० ३१-३५। ३५—वही-पृ० ७२-७६। ३६-वही-पृ० ७६-७७। ३७-वही-पृ०१०२-१०४। ३८-वही-पृ० १०४-१०५।

मार्मिक प्रसंगों पर विचार:—

१-राम का करुण विलाप—मेघनाद द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र से जब लक्ष्मण मूर्छित हो जाते हैं और राम-पक्ष में सर्वत्र शोक छा जाता है तब कवि कहता है कि--

'रघुवर देख बन्धु का हाल, गिरे धरातल पर तत्काल।
लगे विलपने हुए अधीर, बहे दृगों से झर–झर नीर॥'[1]

मूर्छित लक्ष्मण के समीप राम शोक करते हैं। कैसा हृदय-विदारक प्रसंग है—

'हा, क्या कहूँ कैसे जगाऊँ, प्रार्थना किसकी करूँ।
मुँह तक कलेजा आ रहा है, क्या करूँ, कैसे मरूँ॥
कैसे हृदय को शान्ति दूँ, किस भाँति दुख अपना हरूँ।
इस शोक सागर को बिना, सौमित्र के कैसे तरूँ॥'[2]

इस प्रकार राम बहुविध विलाप–प्रलाप करते हैं। ऐसे दुःख की अवस्था में विलाप-प्रलाप करना सहज अनुभव की बात है। राम भी वही करते हैं, जो उन्हें लोक-सामान्य भूमि पर लाकर उसके दुख को मानव मात्र के लिए अनुभवगम्य बना देता है। मानव-जीवन में शोक–प्रसंगों में ही वस्तुतः वह क्षमता है जिससे मानव-मात्र समान भाव-भूमि पर आ खड़ा होता है।

ऊपर हम रामके विलापकी बात कर रहे थे। उनका दुख सचमुच अत्यन्त गहन था। इससे अधिक करुग प्रसग और क्या हो सकता है? ऐसी दशा में, ऐसे शोक के अवसर पर प्रियकृत पूर्व सुखों और सम्पर्क से लब्ध आनंद का स्मरण हुआ करता है। स्वयं को कोशा जाता है, दुर्दैवो कहा जाता है और प्रियविहीन जीवन निरर्थक प्रतीत होने लगता है। इसका कारण किसी रूढ़ नियम का पालन नहीं वरन् मानव की सहज प्रवृत्ति है। राम के विलाप में भी इन्हीं तत्त्वों का सम्मिश्रण है—

'मैं न जी सकता तुम बिना, तुम बाल भक्त अनन्य हो।

× × ×

हा हन्त, बन्धु–बिहीन कैसे अवध जाऊँगा अहो।
माता सुमित्रा को वदन कैसे दिखाऊँगा कहो॥

× × ×

प्रिय जन न मिलेगा, सौम्य सौमित्र जैसा।
मुझ सदृश अभागा, भी न भू में मिलेगा॥

× × ×

१—'तुमुल'-पृ० ८३। २—वही,पृ०८५।

अब रह कर भू में, एक मैं क्या करूँगा।
इस जननि मही का, भार हूँगा, जलूँगा।।'[1]

यह है राम का अपार शोक-व्यंजक विलाप। यह विलाप पाठकों के हृदय में उद्वेलन पैदा करता है। राम का यह बन्धु-वियोगजन्य विलाप 'तुमुल का सर्वाधिक मर्मस्पर्शी प्रसंग है । वास्तविक 'तुमुल' का यही प्राणकेंद्र है।

२--महाराणााप्रताप्र की शपथः—जब हल्दीघाटी के युद्ध की तैयारी चल रही थी तब अपने मेवाड़ी वीरों के सामने राणा प्रताप ने जो प्रतिज्ञा की, उसका प्रसंग भी बड़ा मार्मिक है। उसे इतिहास ने दुहराया है, जिससे मेवाड़ की असाधारण वंशनिष्ठा मूर्त्त होती है। देश की स्वतंत्रता के लिए राणा प्रताप ने तीव्र आवेश को अन्यन्त ओजस्वी भाषा में प्रकट करते हुए कहता है कि—

'अब से मुझको भी हास शपथ, रमणी का वह मधुमास शपथ।

*   *   *

जब तक स्वतंत्र यह देश नहीं, है कट सकता नख केश नहीं।
मरने कटने का क्लेश नहीं, कम हो सकता आवेश नही ।।'[2]

महाराणा प्रताप मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए फकीरी बाना धारण करते हैं। उनके ही शब्दों में—

परवाह नहीं, परवाह नहीं मैं हूँ फकीर अब शाह नहीं।
मुझको दुनिया की चाह नहीं, सह सकता जन की आह नहीं ।।'[3]

यह वह स्थल है, जहाँ 'हल्दीघाटी' काव्य के नायक का चरित्र एक विशेष लक्ष्य के प्रति निर्दिष्ट होता है। वह लक्ष्य स्वतंत्रता की रक्षा का है जो अपने आप में एक मूल्य रखता है। पूरा का पूरा बलिपंथ इस शपथ से ज्योतित है। इस प्रसंगसे प्रताप का अप्रतिम त्याग एवं जाज्व-ल्यमान स्वातंत्र्य-प्रेम प्रकट होता है।

(३) जौहर का हृदयद्रावक प्रसंग

भविष्य में चित्तौड़ की हार निश्चित है—यह जानकर चित्तौड़ की रानी पत्मिनी ने जौहर की ज्वाला में कूद पड़ने का निश्चय किया। दूसरी ओर पद्मिनी और रावल रतन सिंह के व्योम-विदारक जय-निनाद से चित्तौड़ की तोपें हिल उठीं। इसके बाद जौहर का हृदय-द्रावक कार्य आरम्भ हुआ। देखते ही देखते पद्मिनी अपनी सहचारियों को लेकर

१-'तुमुल'-पृ० ८८, ८९, ९१, ९५। २- 'हल्दीघाटी'-पृ० ८८-८९।
३-वही-पृ० ८९।

चबूतरे पर खड़ी हो गयी। भाई ने बहन को, पुत्र ने माता को, पिता ने कन्या को और पति ने पत्नी को देखा, किन्तु वे सब जैसेके तैसे स्थिर रहे, न हिले, न डुले। स्वत्व और स्वाभिमान के प्रेम पर बलिदान ने जादू किया, जिससे जिन्दगी नगण्य और मृत्यु भाग्यवान हो गयी। पद्मिनी ने पहले अग्नि-पूजा की। रतन सिंह ने काँपते हाथों से चिता में घी डाला और चरु की आहुति दे दी। आग हाहाकार करती हुई, हरहराती हुई पद्मिनी के रूप को अपनी ज्वाला में पचाने के लिए आकाश की छाती जलाने लगी। इधर स्वाहा शब्द निकला और उधर रानी अग्नि में कूद पड़ी, उसका शरीर घास-फूस की तरह जलने लगा, जैसे—

'इधर स्वाहा शब्द निकला, उधर वह कूदी अनल में।
जल उठीं लपटें लटों में, बल उठी वह एक पल में॥
गात छन छन, रूप छन-छन, एक छन तक छन-छनाकर।
उड़ गयी मिलकर धुएँ में ज्योति जग में जगमगाकर॥'[1]

इसके बाद वीर ललनाएँ एक पर एक आग में कूद-कूदकर मौत का शृंगार करने लगीं, यथा—

'आग में कूदीं अभागिन, प्रथम विधवाएँ बिचारी।
प्राणपति के सामने कूदी चिता में प्राण-प्यारी॥
भाइयों को देखती कूदीं अनल में धीर बहनें।
अग्नि-पथ से स्वर्ग पहुँचीं, वीर गढ़ की वीर बहनें॥
दुधमुँही नव बालिकाएँ, जो न कूद सकी अनल में।
आग में फेंकी गयीं वे, मातृ-कर से एक पल में॥'[2]

इस प्रकार चित्तौड़ की वीर नारियाँ राख हो गयीं। सतीत्व की रक्षा का अमोघ अस्त्र मृत्यु है।

कल्पनाद्वारा भावोत्कर्ष

काव्य के चार तत्वों में से कल्पना भी एक तत्त्व है। बाबू गुलाबराय के अनुसार—'कल्पना वह शक्ति है, जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं।'[3] पाश्चात्य जगत में कल्पना को काव्य का प्रमुख तत्त्व माना गया है। कल्पना ही काव्य निर्माण की शक्ति पैदा करती है। वास्तव में कल्पना मूर्ति-विधायिनी शक्ति है। शुक्लजी[4] ने प्रतिभा और भावना को कल्पना का पर्यायवाची माना है। उनके अनुसार धर्म-क्षेत्र में जो स्थान उपासना का है साहित्य क्षेत्र में वही स्थान

१- 'जौहर'–पृ० २११। २- वही–पृ० २१२। ३- डां० राम खेलावन तिवारी : माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्ति और काव्य, पृ० ३२५ पर उद्धृत ४– वही।

कल्पना का है। वे कल्पना को भाव से ही सम्बन्धित मानते हैं। जो हो, काव्य में कल्पना का महत्व निर्विवाद है। ध्वनि, लक्षणा, व्यंजना तथा अधिकांश अलंकार कल्पना-आधृत ही हैं।

पांडेयजी के काव्य में प्राय: कल्पना के सभी प्रयोग मिलते हैं। कल्पना का सबसे पहला कार्य है—चित्र की सजीव उपस्थिति। काव्य में काल्पनिक चित्र की सजीव उपस्थिति के लिए यह आवश्यक है कि वर्ण्य विषय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथ्यों को उपस्थित न कर के कुछ प्रमुख तत्वों को ही सामने लाया जाये, जो संपूर्ण का बिम्ब-ग्रहण कराने में सक्षम हो। यहाँ केवल उदाहरण प्रस्तुत है। यथा—

'गम्भीर भाव से बोल उठा वह वीर उठा अपना भाला ॥

× × ×

तरु-तरु के मृदु संगीत रुके मारुत ने गति को मंद किया।
सो गये सभी सोने वाले खग-गण ने कलरव बन्द किया ॥
राणा की आज मदद करने चढ़ चला इन्दु नभ जीने पर।
झिलमिल तारक-सेना भी आ डट गयी गगन के सीने पर ॥
गिरि पर थी बिछी रजत-चादर, गह्वर के भीतर तम विलास।
कुछ-कुछ करता था तिमिर दूर जुग-जुग जुगनूका लघु प्रकाश।
गिरि अरावली के तरु के थे पत्ते-पत्ते निष्कम्प अचल।
वन शान्त, लता-लतिकाएँ भी सहसा कुछ सुनने को निश्चल ॥
था मौन गगन, नीरव रजनी, नीरव सरिता, नीरव तरंग।
केवल राणा का सदुपदेश, करता निशीथिनी नींद भंग ॥'[1]

अरावली की निस्तब्ध चांदनी रात्रि का चित्र है। असंख्य प्राकृतिक पदार्थों का मौन सौंदर्य द्रष्टव्य रहा होगा। किन्तु कवि सभी वन्तुओं का उल्लेख नहीं करता। वह केवल निष्कम्प पत्तों, मौन लताओं, मौन गगन, नीरव रजनी, नोरव सरिता, नीरव तरंग का ही उल्लेख करता है। जैसे ये स्तब्ध होकर राणा की वाणी सुनने को उत्सुक थे। इनके उल्लेख से रात्रि की घोर निस्तब्धता और एकांत नीरवता व्यंजित है। शेष रही राणा के सदुपदेश की ध्वनि। यह ध्वनि नीरवता-भंजक प्रतीत हो सकती है—किन्तु ऐसी बात नहीं है। उस समय राणा के सदुपदेशकी आवाज निस्तब्ध नीरवता को बढ़ाने वाली नहीं थी? केवल राणा की वाणी से गहरी रात में कंपन पैदा हो रहा था। वस्तुत: यह ध्वनि चित्रमें वास्तविकता और सजीवताका समावेश हो करती है। यह तो हुआ

१- हल्दीघाटी-पृ० ८६।

प्राकृतिक दृश्य । हल्दीघाटी, जौहर और शिवाजी में उत्कृष्ट मानवीय चित्र भी देखे जा सकते हैं, जिन्हें कवि ने अपनी कल्पना कुशलता से पाठको के लिए बोधग्राह्य ही नहीं, चक्षुग्राह्य बना दिया है।

काव्य में अप्रस्तुत विधान का मूलाधार भी कल्पना ही है। साम्य एवं वैषम्यमूलक अलंकारों तथा रूपकों की योजनामें इसका विशेष प्रयोग हुआ करता है। कविगण अपनी भावनाओंको प्रवणता सहित प्रेषित करने के लिए आलंकारिक भाषा का प्रयोग करते हैं। निश्चय ही अलंकरण का समुचित उपयोग-उपयुक्त अप्रस्तुत का प्रयोग-कवि की अनुभूति को स्पष्टतर एवं संवेद्य बनाता है। यही उसकी उपादेयता है। पांडेयजी के काव्य में ऐसे कुछ एक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) बालों में सिन्दूर चिह्न ही था दो प्राणों का बन्धन।
मानो घनतम तिमिर चीर कर, हँसी उषा की एक किरण।।'[1]

(२) 'अरि-कठिन-व्यूह में घुसे वीर, मृग-राजीमें मृगराज सदृश।'[2]

(३) 'पूना में जमाया खाँ ने गरवीले पाँव को।

* * *

देश में अपार भय छाया था लूटेरों का।

* * *

उठते बवण्डर वनों में भूत भागते।'[3]

(४) 'आँसूजल पोंछ रही चिर क्षीत पुराने पट से।
पानी पनिहारिन पलकें भरती अन्तर —पनघटसे।। '[4]

प्रथम उद्धरण में बालो में सिन्दूर-चिह्न को संवेद्य बनाने के लिए घनतम तिमिर चीरकर हँस उठने वाली किरण को अप्रस्तुत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय उद्धरण में वीरों के अरि-व्यूह में प्रवेश के विषय में अपने मन उत्थित भाव को कवि ने मृगराज की कल्पना करके प्रेष्य बनाया है। तृतीय में, खाँ के पूना में बस जाने को संवेद्य बनाने के लिए लुटेरों तथा भूत को अप्रस्तुत के रूप में प्रस्तुत किया है। भूत, डाकू, लुटेरा अथवा ऐसा ही कोई और क्रूर कराल नाम सुनते ही मन में जमी हुई वह भीषण मूर्ति उभर आती है। उस काल्पनिक भीषण मूर्ति को ही क्रूरकर्मा शाइस्ता खाँ के प्रभावका उपमान बनाया गया है। चौथे में, अन्तर के पनघट तथा पलकों के पनिहारिन बनने की प्रक्रिया द्वारा प्रताप की रानी के दुख की गरिमा और उस दुख का वर्णन करने वाली

१- जौहर- पृ० ७। २- वही-पृ० १६ । ३- 'शिवजी'- पृ० १४४,१४५-१४६। ४– 'हल्दीघाटी'-पृ० १७६।

कवि की शब्दावली की महिमा का बखान हुआ है। आप देखेंगे कि इन चारों उद्धरणों में कल्पनागृहीत अप्रस्तुत विधान पाठक में अभिलषित भावना के उद्बोधन में समर्थ है। अप्रस्तुत के विधानमें कल्पना का वास्तविक उपयोग भी यही है।

दूसरों की मानसिक अवस्था का साक्षात्कार-उसको अनुभव करने की शक्ति भी कल्पना के नाम से अभिहित की जाती है। यद्यपि रिचर्ड्स के अनुसार यह कल्पना का काफी संकुचित अर्थ है। फिर भी कवि विशेषतः प्रबन्धकार कवि–में इसका होना आवश्यक है। पं० श्यामनारायण जी पांडेय कुशल प्रबन्धकार हैं, उनमें यह शक्ति प्रभूत परिमाण में विद्यमान है। शतशः पात्रों से वे सहज ही तादात्म्य स्थापित कर सके हैं। उनकी काव्यगत संवेदनीयता के संदर्भ में हम इसका पहले ही विचार कर आये हैं। यहाँ केवल एक उदाहरण प्रस्तुत है:—

'यह तो जननी की ममता है; जननी भी सिर पर हाथ न दे।
मुझको इसकी परवाह नहीं, चाहै कोई भी साथ न दें।।
विष-बीज न मैं बोने दूँगा, अरि को न कभी सोने दूँगा।
पर दूध कलंकित माता का मैं कभी नही होने दूँगा।।'[1]

यह वीरवर महाराणा प्रताप की उक्ति है, अपने राजपूत वीरों के प्रति। मातृ–भूमि के प्रति कितना सबल अनुराग है। यद्यपि यहाँ जन्म-भूमि बहुत संकुचित अर्थ में गृहीत है। केवल मेवाड़ प्रदेश तक ही वह सीमित है। किन्तु मध्ययुग में उसका यही अभिप्राय था। प्रताप की इस सबल देश-भक्ति का कवि ने अनुभव किया और बड़ी कुशलता तथा हृदय स्पर्शिता से अपनी कल्पना–शक्ति के बल पर उसकी मनोदशा की अभिव्यक्ति की है।

अविष्कारके अर्थमें भी 'कल्पना' शब्दका प्रयोग हुआ करताहै। साधारगतः कल्पना के इस रूप का उपयोग अद्भुत एवं असंभाव्य के विधान में किया जाता है। किन्तु आद्भुत्य में पांडेयजी का विश्वास नहीं है। उन्होंने यथासंभव सभी पात्रों एवं घटनाओं को मानवीय रूप देने का ही प्रयास किया है। हाँ, उन्होंने आविष्कार किया है—नवीन पात्रों, परि–स्थितियों एवं घटनाओं का, किन्तु उन उद्भावनाओं में भी कवि ने सदैव भाव की सरसता और उत्कर्ष का ध्यान रखा है। शिवाजी और जेबुन्निसा का वर्तालाप देखिए—

१-'हल्दीघाटी'—पृ० ८८-८९।

बोली बहुत ही प्यार से
श्रद्धा भरे सत्कार से
भैया, शिवा तुम सो रहे ?
बेफिक्र इससे हो रहे ?
× × ×
है मौत सर पर नाचती
× × ×
कल तक तुम्हारी खैर है
परसों क़बर की सैर है
× × ×
इससे शिवा भइया जगो
तुम जेल से जल्दी भगो
० ० ०
शिवराज बोले प्रीति से
० ० ०
भोली बहन, बकता नहीं
मैं उऋण हो सकता नहीं
बिल्कुल अपरिचित के लिए
जो है किया हित के लिए
उसका न कोई दाम है
वह माँ–बहिन का काम है
जाओ तुम्हारा हो भला'[1]

कवि कल्पना-प्रसूत यह वार्तालाप कथा–प्रसंग में रोचकता का संपादन करने वाला तथा रस का उपकारक है।

इस प्रकार 'तुमुल' से लेकर 'शिवाजी' तक न जाने कितने ही पात्रों की मनोभूमिका से पांडेयजी ने अपनी सबल, सूक्ष्म और सचेतन कल्पना द्वारा तादात्म्य स्थापित किया है, न जाने कितनी परिस्थितियों में अपना मन रमाया है। लक्ष्मण और मेघनाद, शिवाजी और औरंगजेब, हनुमान और रावण, सीता और रावण, महाराणा प्रताप और मानसिंह जैसे विरोधी पात्रों की मनोदशा से भी उन्होंने एक-सी तन्मयता स्थापित की है।

१-'शिवाजी'-पृ० २०५, २०७, २०८, २०६।

पांडेयजी कृत कल्पना के विभिन्न रूपों के प्रयोग के उपर्युक्त दिग्दर्शन के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि उनकी प्रतिभा इस शक्ति के प्रायः सभी रूपों से पुष्ट है और उन्होंने इसका भरपूर उपयोग किया है। उनके काव्य में कल्पना का यह उपयोग भावोत्कर्षक बनकर आया है। इस तरह से पांडेयजी कल्पना शक्ति पर्याप्त सशक्त और सृजनात्मक है।

साहित्यिक अनुशीलन : कला-पक्षः—काव्यके दोनों पक्षोंमें से भाव-पक्ष उसका अंतरंग है और कला-पक्ष वहिरंग । काव्य के लिए दोनों महत्वपूर्ण हैं। काव्यगत बहिरंग पक्ष के तत्व काव्य को उत्कर्षमय बनाते हैं तो अंतरंग पक्ष उसकी कलात्मक सुष्ठुता को सार्थकता प्रदान करते हैं। भावों के वाह्य आवरण को सुन्दरतम बनाना ही कवि-कला है। इसके लिए कवि निम्नलिखित काव्य-सौन्दर्य-विधायक उपादानों की योजना करता है-छंद अलंकार' शब्द-शक्तियाँ, ध्वनि और व्यंजना, भाषा, रीति वृत्ति, गुण और औचित्य। संक्षेप में, कला पक्ष काव्य को प्रभावक्षम बनाने का अनिवार्य साधन है। अतः इसका अध्ययन भी आवश्यक है।

काव्य-शिल्पः—

क-छन्द-योजनाः—काव्य और छन्द का घनिष्ठ संबंध है। छन्द कविके भाव को प्रेषित करता है। छंदमें मानव मनको मुग्ध करनेकी शक्ति होती है, साथ ही वह हमारी स्मरण शक्तिमें सहायक होता है। नाद और लय में विलक्षण सामर्थ्य है और इसीलिए छन्द काव्य के प्रभाव को अधिक भावना-ग्राही और सवेदनमूलक बनाता है। अनुकूल छन्द पाकर कवि की भावना आकर्षक बन जाती है। वृत्त और विषय की अनुरूपता आधुनिक काव्य में भी स्वीकृत है।

हमारे कवि ने अधिकतर मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। वास्तव में मात्रिक छन्द उनके काव्य-विषयों के लिए अधिक अनुकूल रहे हैं। आलोच्य कवि के काव्य में छन्दों का विवेचन इस प्रकार है—

१-मधुमालती—हिन्दी का मधुमालती छन्द सप्तक पर्वों के आधार पर चलता है। इसमें सप्तक(SISS) की तीन आवृत्तियों और त्रिकल (SI) पर्वखंड का प्रयोग होता है—

गीत के अंतिम चरण से ।,(SISSSISS)
गरम रव लल। कार निकले,
जल उठी रा। नी अचानक,
अंग से अं। गार निकले।'—'जौहर'-पृ० २१०।

२–समानिका—यह छन्द समानिका वृत्त(राजगा समानिकार, ज, ग) का मात्रिक स्वरूप है, अतः तीसरी, छठीं और नवीं मात्रा लघु होती है। 'जौहर' में इस छन्द का विशद प्रयोग हुआ है—

'सात सौ सवारियाँ;
हैं सभी कुमारियाँ,
सुन नवीन नारियाँ,
हो गये मगन मियाँ।'—'जौहर'—पृ० ६०।

(३) ताटंक छंद

इसमें तीस मात्राएँ होती है। यति १६, १४ पर पड़ती है। अन्त में मगण होना आवश्यक है; पर अब ऽऽ, ।।ऽ ऽ।। समात्मक वर्णक्रम अन्तमें प्रयुक्त होते हैं। जैसे—

(१) 'कैसी इसकी रूप चाँदनी, भरी सभामें छायी हैं।' —शिवाजी पृ० ६४
(२) 'उसी कृपा की भीख माँगता, मत मुझको बहलाओ तुम।
एक बार वर्णित चरित्र को फिर मुझ से दुहराओ तुम॥'
—जय हनुमान-पृ० ६।

(४) समान सवाई

इस छंद में १६, १६ मात्राओं पर यति होती है और अन्त में गुरु, दो लघु होते है। इस छंद का प्रवाह सममूलक मात्रा मैत्री पर चलता है। यह छन्द बहुत रससिद्ध है; पर यह विशेषतः वीर और शृंगार रस के लिए अधिक अनुकूल है—

'लड़कर अरि-दल को दर दें हम, दे दे आज्ञा ऋण भर दें हम।
अब महायज्ञ में आहुति बन, अपने को स्वहा कर दें हम॥'
—हल्दीघाटी, पृ० ६१।

(५) दिगपाल

[कल भानु-भानु भावैं। दिगपाल छन्द गावैं]

दिगपाल के प्रत्येक पाद में २४ मात्राएं होती हैं और १२, १२ मात्राओं पर यति होती है—

'कि एक-एक मावली लिये कुटुम्ब साथ में।
मुखर समक्ष जम गया प्रखर कटार हाथ में॥
–शिवाजी-पृ० ६५।

(६) सरसी या हरिपद

सरसी मात्रिक नाक्षत्रिक जाति का छंद है। इसके प्रत्येक चरण

में २७ मात्राएं होती हैं, जिनमें यति १६, ११ पर होती है और अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) रहता है। यथा-

'अभी चाँद-सा बढ़ो बराबर अभी हँसो वन-फूल।
लाल पलँग पर खेलो उलझो प्राणों के अनुकूल॥'
-शिवाजी-पृ० १०।

(७) हरिगीतिका

२८ मात्राएं। १६ मात्रा और १२ मात्रा पर यति होती है। प्रत्येक चरण के अन्त में लघु और गुरु का होना आवश्यक है। इसमें भी यदि प्रत्येक चरण में ५ वीं, १२ वीं, १९ वीं और २६वीं मात्राएं लघु हों तो छन्द की गति सुन्दर लगती है। यथा-

'मन में विचारें आपका यह काम कितना हेय है।'-शिवाजी पृ० १८१।

(८) विधाता

विधाता के प्रत्येक पाद में २८ मात्राएं होती है। यति १४ १४ पर होती है। पहली, आठवीं और पन्द्रहवी मात्रा सदालघु होनी चाहिए। पुराने साहित्य में इस छंद का प्रयोग यथेष्ट मिलता है, परन्तु आजकल यह छंद आम ग़ज़ल की तर्ज पर चलता है।

'सुनते ही वह कांप गया,लग गयी आग चोटी में।'-हल्दीघाटी पृ० ७०।

(९) सार

सार के प्रत्येक पाद में २८ मात्राएं होती हैं। यति १६, १२ पर होती है और अन्त में दो गुरु होते हैं। जैसे-

'पथ प्रताप का देख रहा था, प्रेम न था रोटी में।'–हल्दीघाटी-पृ० ७०।

(१०) वीर आल्हा

३१ मात्रिक अश्वातारी जाति का छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में ३१ मात्राएं होती हैं। यति ८, ८, १५ या १६, १५ पर पड़ती हैं। अन्त में ऽ। एक गुरु और एक लघु होता है। प्रसिद्ध आल्हा इसी में गाया जाता है—

'जब प्रताप सुनता था ऐसी सदाचार की करुण–पुकार।
रण करने के लिए म्यान से सदा निकल पड़ती तलवार॥'
—हल्दीघाटी–पृ० ४७।

(११)हाकलि

(त्रै चाकल गुरु हाकलि है) यह १४ मात्रिक मानव जाति का छंद है। इसमें १४ मात्राओं का चरण होता है। इसके अन्त में गुरु होना आवश्यक है। 'जौहर'की तेरहवीं चिनगारीमें इसका प्रयोग हुआ है। यथा-

'बोल बोल जय सेनानी, राजपूत सैनिक मानी।
हूँ हुँ हुँकृति कर अरि के दल पर झपटे अभिमानी ।।'
—जौहर-पृ० १४६।

छन्द-दोष

उक्त छन्दों के अतिरिक्त पांडेय जी के काव्यमें मनोरमा, चौपाई, त्रिसम वर्ग, चौबोला, शक्ति और मुक्त छंदों का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु उनके काव्य में कहीं-कहीं यति-भंग भी दिखायी पड़ता है, यथा—

'खड़े हुए सरोष डग-
मगा उठी समग्र भू।' —शिवाजी-पृ० ६५।

छन्दों के चयन के बारे में पांडेय जी की विशेषता यही है कि उन्होंने भावानुरूप छन्दों का चयन किया है। छन्द-व्यवस्था की दृष्टि से उनके छन्दों की मात्रा-व्यवस्था, विराम का विधान, सुरोंका उतार-चढ़ाव प्रभावशाली है।

(ख) अभिव्यंजना कौशल

अभिव्यंजना साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है-उत्तम से उत्तम अनुभूति भी अभिव्यक्ति के बिना गूँगी रह जाती है। अतः सुन्दर अभिव्यक्ति के मूल में अनुभूति की रमणीयता के साथ-साथ कुछ न कुछ कौशल भी आवश्यक है। कुशल कलाकार अभिव्यक्ति की रमणीयता एवं प्रभावसिद्धि के लिए अनेक साधनों का उपयोग करता है। यहाँ हम पांडेय जी द्वारा प्रयुक्त उन साधनों का ही विवेचन प्रस्तुत करते हैं, जिनसे उनकी अभिव्यक्ति कुशलता में निखार आया है।

(१) चित्रण कला

कवि में अंशतः चित्रण शक्ति होती है। कविकी चित्र-विधायिनी प्रतिभा जितनी प्रखर होगी, उतनीही उसके काव्यमें अंकित चित्रण-कला में उल्लास और मधुरिमा मिलेगी। पांडेय जी के काव्य में अंकित चित्रण कला का विवेचन देखिए-

अशोक वाटिका में वृक्षारूढ़ हनुमान का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि-

'लंकेश तेज से डरकर कपि और चढ़ गये ऊँचे।
फिर भी समक्ष दृग के थे नीचे के दृश्य समुचे ।।'
—जय हनुमान- पृ० ३०

यद्यपि यहाँ पर कवि ने बहुत कम वस्तुओं का चित्रण किया है। फिर भी वृक्ष पर बैठकर नीचे का सारा दृश्य देखने वाले हनुमान जी का

सारा का सारा चित्र हमारी आँखों के सामने उभर आता है।

आवश्यक या अनाश्यक के प्रति आलोच्य कवि की सजगता दादाजी कोणदेव के चित्रांकन में स्पष्ट है।[1] यह चित्र अपनी सहज-सरलता की दिव्य आभा से उद्भासित है। यह चित्र उसकी पावन चौकी का दृश्य ही उपस्थित नहीं करता वरन इसमें दादाजी कोणदेव की पावन प्रतिमा अंकित है। निश्चय ही चित्रग पाठकके मन पर सौम्य, शान्त प्रभाव डालने में सक्षम है।

पांडेयजी के काव्य में प्राप्त स्थिर चित्रों का दिग्दर्शन तो हो चुका। अब गतिमय चित्रों का वैभव देखिए। वास्तव में गतिमय चित्र ही काव्य की प्रकृति के अनुकूल हैं। अतएव गतिमय चित्र का काव्य में अपेक्षाकृत अधिक सफलता से अंकन किया जा सकता है। 'जौहर' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'कस लिया वक्ष अंचल से, कटि में कटार खर बाँधी।
करवाल करों में चमकी दरबार चली बन आँधी।।
लज्जा से घूँघट काढ़े वह रंगमंच पर आयी।
मानों आश्विन के घन में बिजनी ने ली अँगड़ाई।।'
—'जौहर'-पृ० ७३।

आप देख रहे हैं कि मान–मर्यादा की रक्षिका वीर क्षत्राणी रानी पद्मिनी किस शान से राज-दरबार में प्रविष्ट होती है। उपर्युक्त पंक्तियाँ पढ़ते ही उसका वीरवेशधारी शरीर और आँधी जैसी चाल स्पष्टतः दृष्टिगत हो जाती है। यह तो हुआ एक 'सिंह क्षत्राणी' की निर्भय गति का चित्र। 'हल्दीघाटी' में युद्ध[2] के लिए उत्सुक वीरों का वेश और उनकी गति[3] का सौन्दर्य भी इसी तरह प्रभावशाली है। हनुमान द्वारा लंका में आग लगायी जाने पर वहाँ जो हड़बड़ी मची। उस हड़बड़ी की द्रुतगति का पांडेयजी ने काफी अच्छा चित्र 'जयहनुमान'[4] में अंकित किया हैं। इन वर्णनों में तुमुल कोलाहलके योगसे चित्र सवाक् हो उठा है।

कभी-कभी कविगण एक रेखा के द्वारा—एक ही अनुभाव के अंकन द्वारा—बड़े कौशल से चित्र उपस्थित करते हैं। पांडेयजी के काव्य में ऐसे अनेक रेखा–चित्र उपलब्ध हैं। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

१--'प्रेम भिखारी था, पर उसकी सबल पर भ्रू तनी रही।'--'जौहर' पृ०–२०।

२–'कपि को खींच पुलक आँखें भर गले लगाया राघव ने।'
'जयहनुमान'-पृ० १०४।

१-'शिवाजी' पृ० २१। २-'हल्दीघाटी-पृ० ८५। ३–'जयहनुमान'–पृ० ८५। ४–वही- पृ० १२२।

प्रथम उदाहरण में अलाउद्दीन का चित्र ही नहीं, वरुन् उसकी कामान्धता और रावल की उसके साथ अन्त तक लड़ते रहने की कथा भी मन में घूम जाती है। द्वितीय उदाहरण में सीता कुशल सामाचार सुनकर राम हनुमान को आनन्द से गले लगाते हैं। इस वर्णन शैली में एक ही पंक्ति में चित्र विशेष ही नहीं, संपूर्ण वृत्त चल-चित्रों की भाँति आँखों के सामने आ उपस्थित होता है।

२–वर्ण–योजनाः—वर्णों की व्यवस्थित योजना ही तो एक प्रकार का चित्र है। आलोच्य कवि के काव्य में वर्णों की व्यवस्थित योजना के अच्छे चित्र मिलते हैं। सबसे पहले एक ही रंग की उज्ज्वल आभा का अवलोकन कीजिएः—

थी चैत की वह चाँदनो चाँदी लुटाती देश में
आकाश से लक्ष्मी पधारीं अन्नदा के देश में ।।–शिवाजी, पृ० १७४

चाँदनी की धवलता के प्रभाव से आकाश तथा धरती दोनों श्वेत हैं। अत्यंत संक्षिप्त होने पर भी यह विवरग कैसा चंद्रिका धवल है। यदि रंग की और अधिक चमक देखनी हो तो उषा की लालिमा का निम्न–लिखित स्फुरण देखिएः—

मंगलमय अरुगाभ उषा ने तजकर अपनी सेज

* * *

चली सुनहलो किरणें क्षिति पर देने यह संदेश।

* * *

चमक उठा कुछ दूर क्षितिज पर रवि का गोला लाल।
दमक उठा कंचन कीरीट से सह्याचल का भाल ।।--शिवाजी, पृ०३

यह रक्ताभ उषाका वर्णन है। उसकी दो विशेषताएँ हैं–:लालिमा और चमक। कवि ने कितने कौशल से 'अरुणाभ उषा' सुनहली किरणें, लाल गोला, कंचन किरीट आदि शब्दावली का प्रयोग करके सूर्योदय की अरुग कांति का दृश्य उपस्थित किया है?

परन्तु कवि की उज्ज्वल आभा, लालिमा आदि रंगों को नहीं, वरन् कालिमामय कलुषित वर्णों की सुन्दर योजना करता है यथा—

'तिमिरालिगन से छाया थी एकाकार निशा भर।
सोयी थी नियति अचल पर ओढ़े घनतम की चादर ।।

—हल्दीघाटी पृ० १७६।

३–मानवीकरणः—यह अभिव्यक्ति को कलापूर्ण बनाने की एक युक्ति है। इसमें निर्जीव पदार्थों, अमूर्त भावनाओं अथवा अवयव विशेष

पर मानवीय गुणोंका आरोप किया जाता है' जिससे उनकी संवेदनशीलता में पर्याप्त वृद्धि होती है। आलोच्य कवि की रचनाओं में मानवीकरण का सौन्दर्य देखा जा सकता है—

'प्राण–रुदन जगा रहा है,
वीरते, लू आज जग री।'—जौहर, पृ० १३६।

में मानवी चेष्टा का आरोप स्पष्ट है प्राण रुदन वीरता को जगा रहा है।

'हल्दीघाटी' में छाया का मानवीकरण बड़ा सुन्दर है—

'सोती थी तृण-शय्या पर कोमल रसाल की छाया।'
हल्दीघाटी–पृ० १२२।

अथवा—

'तिमिरालिंगन से छायी थी एकाकार निशाभर।
सोयी थी नियति अचल पर ओढ़े घन-तम की चादर।।'
हल्दीघाटी- पृ० १७६।

मानवीय चेष्टाओं का आरोप इससे अधिक और क्या होगा ? यहाँ पर कवि ने अपनी मानवीय अनुभूति क्षमता और कल्पनाशीलता का अच्छा परिचय दिया है।

४-नारीत्व का आभास–

प्रकृति के जिन चित्रों में नारीत्व का आभास मिलता है, वे विशेष रमणीय होते हैं। आधुनिक कवियों में इस प्रवृत्ति का विशेष विकास हुआ है। हमारा कवि भी इससे अछूता नहीं रहा। एक स्थल पर प्रकृति पर नारी सुलभ चेष्टाएँ आरोपित करते हुए उन्होंने लिखा है कि–

'विहँस रही थी प्रकृति हटाकर मुख से अपना घूँघट पट।
बालक रवि को ले गोदी में धीरे से बदली करवट।।
हल्दीघाटी– पृ० २६।

'हल्दीघाटी' में नियति रमणी हरित वसन तथा तारों का गहना पहनकर किससे मिलने के लिए उत्सुक है ? उसकी साज सज्जा और चेष्टाएँ देखिए—

'कर स्नान नियति-रमणी ने नव हरित वसन है पहना।
किससे मिलने को तन में झिलमिल तारों का गहना।।'
हल्दीघाटी–पृ० १६४।

उक्त चित्रों में हमें नारी के मनोरम रूप और कार्य व्यापारों का आभास मिलता है।

५-अलंकरण—

भारतीय साहित्य शास्त्र में अलंकार अपना विशिष्ट स्थान और महत्व रखते हैं। साहित्य को सुसज्जित करनेवाले उपादान के रूप में तो अलंकारों का विवेचन, अत्यंत प्राचीन काल से होता आया है। आचार्य शुक्लजी के मतानुसार 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में सभी सहायक होनेवाली युक्तियाँ अलंकार हैं।'[1] अलंकार की सबसे बड़ी कसौटी है— काव्य में प्रभावोत्पादकता, रमणीयता, चमत्कार और बोधगम्यता सम्पन्न करने की शक्ति।

पं० श्यामनारायण पांडेय ने यद्यपि अलंकारों को अपने काव्य का ध्येय नहीं माना है, तथापि उनकी रचनाओं में विविध प्रकार के अलंकारों का स्वाभाविक विधान हुआ है। उनकी विविध रूपिणी अलंकार योजना का विवरण इस प्रकार है—

१—शब्दालंकार—

क-वृत्तानुप्रास-'कल-कल कोमल कुसुम-कुंज पर मधु बरसानेवाला कौन।
हल्दीघाटी—पृ० ४५।

ख- 'जयति-जय निनाद से; जयति-जयति नाद से।
गूँजने नगर लगा, एक-एक घर लगा॥' जौहर; पृ०८५।

ग-अंत्यनुप्रास-'यह कह कसम खायी बड़ी फिर आँख दोनों की लड़ी।
शिवाजी, पृ० २१२।

घ-यमक—'मान-मान के लिए मधुर बाजे मधु-रव से बाजे।
हल्दीघाटी, पृ० ६७।

च-श्लेष 'नाच रहे स्वागत में मोर उनके आते हैं घनश्याम।'
शिवाजी, पृ० ५१।

छ-वक्रोक्ति— 'तू धूल फेंक कर रवि पर
क्या रवि का कर सकता है? जय हनुमान, पृ० ३४।

ज-पुनरुक्ति— 'खन-खन-खन मणिमुद्रा की
मुक्ता की राशि लगा दो।' हल्दीघाटी; पृ १८३।

२-अर्थालंकार—

१-प्रतिवस्तूपमा-'जिस तरह सोख लेते हैं रवि के कर सरिता जल को।
वैसे ही पी जायेंगे प्रभु के शर तेरे बल को,।
जय हनुमान- पृ० ३५।

१—डॉ० रामखेलावन. माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य, पृ० ३५४ पर उद्धृत।

२-पूर्णोपमा–'सिंह-सदृश उछले महेन्द्र गिरि पर धमके बजरंगबली ।'

जय हनुमान- पृ० ६ ।

३-मालोपमा–'पन्नग-समूह में गरुण-सदृश; तृण में विकराल कृशानु-सदृश ।
राणा भी रण में कुद पड़ा घन-अन्धकार में भानु-सदृश ।।'

हल्दीघाटी- पृ० १८८ ।

४-रूपक- तू सिंह–सुता क्षत्राणी, तुझ में काली का बल है ।
तू प्रलयानल की ज्वाला, तू क्यों बनती निर्बल है ।।'

जौहर, पृ० ७१ ।

५–संदेह– तुम्हें देवी दुर्गा भवानी कहूँ
कि गिरिजा कि गौरी की वानी कहूँ
तुम्हें भद्रकाली कि काली कहूँ
कि खल भक्षि का खड्गवाली कहूँ' शिवाजी–पृ० २३० ।

६-उत्प्रेक्षा– 'चढ़ चेतक पर वह घूम-घूम करता सेना रखवाली था ।
ले महामृत्यु को साथ-साथ मानो प्रत्यक्ष कपाली था ।।'

हल्दीघाटी–पृ० १३४ ।

७–अयिशयोक्ति- 'जिधर-जिधर चपेटती उधर-उधर विनाश है ।
अनन्त सूर्य-रश्मि-पुंज का प्रखर प्रकाश है ।।'

जय हनुमान– पृ० ८७ ।

८–अपह्नुति १- 'न राम-दूत है कपीश अग्नि मूर्त्तिमान है ।'

जय हनुमान–पृ० ८८ ।

२–'डोली के भीतर देखा; तो दुलहिन नहीं; काल बैठा है ।'

जौहर– पृ० १०१ ।

९-दृष्टान्त- 'गरुड़ पंख में जो बल है वह बल है तुष्ट भुजाओं में ।

जय हनुमान– पृ० ७ ।

१०-अप्रस्तुत प्रशंसा– 'जिस दिन लेगी साँस मुक्ति की; भारत की संतान ।
लाल उसी दिन पूरे होंगे; मेरे सब अरमान ।।'

शिवाजी– पृ० ११ ।

११-उदाहरण– 'मुख-श्री किसी की यों प्रदीप्त केश घेरे में ।
दमक रही हो जैसे बिजली अँधेरे में ।।'

शिवाजी–पृ० १४८ ।

१२-विषम- 'कहाँ राजपूती कहाँ वह सलामी ।
कहाँ रात दिन दूसरों की गुलामी ।।, शिवाजी-पृ० १५८ ।

१३-विभावना– 'बिना मेघ के बिजली चमकी चकाचौंध सब ओर।'
शिवाजी–पृ० ५।

१४–निदर्शना– 'निज प्रताप-बल से प्रताप ने अपनी ज्योति जगा दी।
हमने तो जो बुझ न सके; कुछ ऐसी आग लगा दी।।'
हल्दीघाटी–पृ० ६५।

निष्कर्ष यह कि पांडेय जी के काव्य में प्रायः अनेक शब्दालंकारों, अर्थालंकारों और उभयालंकारों का प्रयोग हुआ है। उनके काव्य में अभिव्यंजना की कई श्रेष्ट प्रणालियों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। इन अभिव्यंजना प्रणालियों में कई प्रयोग तो अत्यंत उत्कृष्ट हैं। उपर्युक्त उदाहरण तो अलंकृत स्थलों के अंशमात्र हैं। पांडेय जी के काव्य से ऐसे और भी एक से एक श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

प्रतीक योजना

राष्ट्रीय और छायावादी कवियों ने अपने काव्य में प्रतीकों का विपुल प्रयोग किया है। राष्ट्रीय काव्य में माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' तथा छायावादी काव्य में प्रसाद ने इसके श्रेष्ठ दृष्टांत प्रस्तुत किये हैं। पांडेय जी के काव्य में भी प्रतीकों की योजना उपलब्ध है। परन्तु वह पर्याप्त समृद्ध नहीं है। जहाँ एक भारतीय आत्मा ने दुःशासन कंस आदि के रूप में अंग्रेज जाति का स्मरण किया है, वहाँ पांडेय जी ने भी प्रकारान्तर से इसे स्वीकार किया है। यथा—

'उठो द्रौपदी का अंचल सौ-सौ दुःशासन खींच रहे'
× × ×
जगो, सदल बल रावण आया, कहीं न चोंच डुबो पाये।।
—जौहर-पृ० २८८।

इसमें निहित राष्ट्रीय प्रतीकवाद का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—
द्रौपदी-भरत–भूमि। रावण और दुःशासन-अंग्रेज जाति।

हमारे कवि ने चित्तौड़ को 'अलका', 'कुबेरीपुरी' माना है। यद्यपि राष्ट्रीयता की दृष्टि से यह अर्थ संकुचित है, पर मध्ययुग में राष्ट्रीयता का यही अर्थ अभिप्रेत था। फिर भी तत्कालीन स्वतंत्रता के आन्दोलन में राष्ट्रीय भावों को वहन करने में वह पूर्णतः समर्थ था।

जहाँ 'एक भारतीय आत्मा' ने कृष्ण को मोहन के रूप में गृहीत किया है, वहाँ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी ने 'मोहन' 'मृदु गोपाल' को कैदियों के रूप में स्वीकार किया है।[1] आलोच्य कविने 'मोहन' का प्रयोग

१–'प्रलयंकर'–३१ वीं कविता।

अपने अव्यक्त प्रियतम के लिए किया है।[1] और भारत माता को एक कैदी के रूप में स्वीकार किया है।[2] इस तरह से पांडेयजी की प्रतीक-योजना हमें मौलिक तो नहीं, किन्तु राष्ट्रीय प्रतीक योजना की कड़ी को पुष्ट करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

भाषा—

भाषा अभिव्यक्ति का सहज और सर्वश्रेष्ठ साधन है। चाहे वह ईश्वर प्रदत्त हो या व्यक्तिकृत पर वह निश्चय ही सबल और निर्भ्रान्त अभिव्यंजना का साधन है। प्रत्येक काव्य रचना को काव्यत्व प्रदान करने वाली प्रमुख सहायिका उसकी भाषा है। काव्योपयुक्त भाषा कुछ विशिष्ट गुणों से समन्वित रहती है। उसकी उपयुक्तता शब्द-सौंदर्य के सामंजस्य विधान पर अवलम्बित है। इसी सामंजस्य विधान को भाव और भाषा का सम्बन्ध कह सकते हैं। काव्य के भाव-तत्त्व, कल्पना-तत्व और बुद्धितत्व का सम्बन्ध तो कवि की आंतरिक क्रियाओं से होता है। पर इन आन्तरिक क्रियाओं द्वारा निर्मित साध्य रूप को प्रत्यक्ष उपस्थित करने का कार्य भाषा करती है। अतः कवि की कल्पना, भावना और उसके विचारों को यथातथ्य रूप में प्रकट करने में ही भाषा की सफलता है।

पं० श्यामनारायण पांडेय जी ने अपने काव्य में उसी भाषा का प्रयोग किया है, जिसके माध्यम से वे अपनी अनुभूति दूसरों तक सहज, सरल और प्रभावशाली रूप में पहुँचा सकते थे। हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से उनकी भाषा की रचना हुई है। इस प्रकार पं० श्यामनारायण जी की भाषा विभिन्न प्रभावों और स्तरों को लेकर चली है।

प्रारम्भ में उन्होंने पूर्व परम्परानुसार ब्रजभाषा में कतिपय रचनाएँ लिखी थीं। उदाहरणार्थ, 'आरति' का निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

'देखती हौं पथ पीतम के कतहूँ सो न आवत मोर पिया रे।
'पी कहाँ' बोलि करे जो दरै जियरा बिदरै पपिहा पपिया रे।।
'श्याम' जरै हियरा हहरै, छतिया पै बरै दिन रात दिया रे।
जाऊँ कहाँ, सुख पाऊँ कहाँ, कतहूँ नहिं मानत मोर जिया रे।।'

—आरती-पृ० १६८।

पाठक देखें कि 'हियरा' और 'जियरा' शब्द कितने कर्णकटु हैं, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि छंद की मात्राओं की पूर्ति के लिए कवि

१-'आरती'-पृ० १३, २२। २-वही-पृ० ८८।

ने इन शब्दों का प्रयोग किया है।

उर्दू बहर की शैली की एक रचना देखिए—

'रगों में खूँ उबलता है, हमारा जोश कहता है।
जिगर में आग उठती है, हमारा रोष कहता है॥
जवानी का तकाजा है, रवानी का तकाजा है।
तिरंगे के शहीदों की, कहानी का तकाजा है॥' -आरती, पृ० ६१

उक्त पद में पर्याप्त ओज एवं दीप्ति विद्यमान है। विषयानुकूल शब्दों के चुनाव और प्रवाह में उनकी तुलना उर्दू के प्रख्यात शायर 'अनीस' से की जा सकती है।

संस्कृत तत्सम बहुल पदावली का एक उदाहरण देखिए—

'तू ही कह, क्या दे सकता हूँ, मैं तुझ को उपहार।
शुभदे, हो केवल यह मेरी श्रद्धांजलि स्वीकार॥
हे विद्यामयि, हे त्रिभूतिमयि शत-शत तुझे प्रणाम।
यजन-आरती का प्रकाश हो मंगलमय अभिराम॥'

—आरती-पृ० १७०।

निम्नांकित उदाहरण में संस्कृत भाषा का सौंदर्य देखा जा सकता है-

'रोम तरु, अस्थि नग
नाग है तुम्हारा पद,
मृदुल तुम्हारी नसें,
ये न नद नारे हैं। -आरती–पृ० ६।

इससे स्पष्ट है कि कवि की काव्य-भाषा का रूप अत्यन्त समृद्ध और व्यापक है।

पांडेयजी की शब्दावली—

भाषाधिकार पांडेयजी की सब से बड़ी विशेषता है। वे भाषाको भावाभिव्यक्ति तथा प्रभावान्विति का साधन मानते हैं। अतः भाषा के संबंध में वे परिमार्जित, सुसंस्कृत या विशुद्ध भाषा की अपेक्षा भावानुरूप ओजवत्ता और अर्थवत्ता-संपन्न सभी भाषाओं के शब्दों का समान रूप से समादर करते हैं। 'शिवाजी' काव्य से एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'शाह भोंसला का यह पुत्र बेकसूर है।' —शिवाजी–पृ० १९३।

उक्त पंक्ति में 'पुत्र' शब्द ठेठ संस्कृत का और 'बेकसूर' शब्द फारसी-अरबीका है। पांडेयजीकी भाषा विषयक दृष्टि उन्हे उदार चेता कवि सिद्ध करती है और उनकी यह उदारता उनकी विविध भाषाओं

से संबद्ध शब्दावली में दीख पड़ती है। इस तरह से पांडेयजी की शब्दावली की सीमाएँ काफी व्यापक हैं। उन्होंने अनेक भाषाओं के शब्दों से अपनी भाषा का संगठन किया है। उनके काव्यमें विभिन्न भाषाओं के जो शब्द प्राप्त हैं, उनका संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है। शब्दों के आगे जो संकेत दिये गये है, वे क्रमशः ग्रन्थ का नाम और पृष्ठ संख्या के हैं:—

१-अरबीः—पांडेयजी ने अपनी रचना में अरबी शब्दों का खूब प्रयोग किया है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

अदालत (शि. ३११), आदाब(शि. ३७), इकबाल(शि. १६०), इकराम (शि.११६), इन्साफ(शि. ४३), इन्सानियत (शि. २०६), इमदाद (शि. ११६), इम्तिहाँ(शि. ३०७, जौ. ८७), कब्र (शि. १२८), कसम(शि.-१६०), कजा (शि. २०५), क़हर (शि. ३०८, आ. ८०), कफ़न (आ. ११२), क़बूल(शि. १२२), करामात(आ. ८४), क़यामत (आ. ८२), क़ाजी(जौ. ६१), काबा(आ. ६२),काफ़िर(शि.११२), किताब(शि.१६७), कुरबान(ह. १४,५६], कौमी(आ.६१), ख़तम(शि. १४६), खबर (शि. २०७), खिताब (शि. १६७), खिलअत(शि .१६७), खैरात(शि .३१०], ग़रीब[आ. ६०,शि.६०८], गाजी (जौ. ६१), जमात(शि. २२०), जुल्म शि.४१', ताबेदार (शि.१७१), नवाब (शि. १०३), निकाह(जौ. ६१), फ़र्क(३१२), फ़िज़ूल(शि.१२३), फौज शि.-११२', मसनद(शि. १६२), मरीज़(शि.३०८), मदरसा (शि. ३०७), मज़हब (शि. ४३ ह. ५८), मदद(जौ. ३२), मजबूर (शि .२०२), मस्जिद(ह. ५८, माफ़(शि . ४१), मुजरिम (शि.२११), मुजरा (शि. ४१), मुल्क(शि. ४०), मुलाक़ात(शि. १२३), मुश्किल (शि.१२६) मुक़दमा(शि ३११) मुमकिन (शि. २१०) मुस्तैद(शि. ३०६) मुहब्बत (शि. ४२) मंज़िल(शि. ३१२) रिआया[शि. ४२ ३१२] वजू [शि. ३११] वसूली शि. ३१०] शक्ल[शि. २१०] सख्त[शि. २०७] शफाखाना[शि. १६५] शराफत [शि. २०७] शरीफ [शि. १२३] सदर[शि. २०६] सनम[शि. १४७] सल्तनत [शि. १६५] साफ[शि.१५१] हक़ीक़त [शि. ३१२] हाजी[जौ. ६१] हुक्काम[शि. ३०६] हुक्म[शि. २११] हुकूमत[शि.३०७] आदि।

इन शब्दों ने पांडेयजी के काव्य में एक प्रकार का ओज भर दिया है।

२-उर्दू-फारसी के शब्द—पांडेयजी के काव्य में उर्दू-फारसी के शब्दों का बाहुल्य है यहाँ तक की उनकी रचनाओंमें उर्दू-फारसी की शैली के भी हमें दर्शन होते हैं। ऐसा होते हुए भी आलोच्य कवि का विकास हिन्दी की पद्धति पर हुआ है। शब्द चाहे फारसी के हों या उर्दू के

पांडेयजी को उन्हें अपने रंग में रंगने का अच्छा अभ्यास है। इसीलिए उनके काव्य में विदेशी शब्द कहीं जबरन लादे से प्रतीत नहीं होते। यह कवि की भाषा शक्ति का प्रमाण है। पांडेयजी के काव्य में उर्दु-फारसी के शब्द अधिक हैं। यथा:—अरमान[शि.११६] अफ़जल[शि.१०७] अंजाम [शि. २०६] आज़ादी[ह. ४१] असमाँ [आ. ६१] इल्म[शि. ४०]उस्ताद [शि. ३०८] क़दरदानी[शि. २०६] कमीना[शि.१६१] खामी[शि. २१०] खातिरदार[शि. ३०८] खुद[शि. ३१२] ख़ुदा(शि. ६६] खुशामद[शि. १७७ खून[आ. ६१; शि. १६७] खूबसूरत[शि. १६७] खौफ़नाक[शि. १२८] ग़म[शि. १५१] गरद(शि. १०३) गुब्बार(शि. १०३] गुल शि. ३६] गुलशन[शि. ३६) गुलाब(ह. ६७ जौ. ८) चालबाज़]शि.१०७) ज़नाना(शि.-१६७) ज़मीन(शि. ३८) ज़बान(शि. १२६) जवानी(जौ. २६ आ. ६१) जादू शि० ४०, जिगर आ० ६१, ज़िन्दगी शि० ६७, जिस्म शि० ६७, ज़ोर शि० १०३, जोश आ० ६१, जंगी शि० १२५, जंजीर शि० ३०८, तहज़ीब शि० १६६, ताज़ा शि० २०२, तुर्क ह० ७२ दगाबाज़ शि० १२६, दीवानखाना शि० १२१, दुश्मन ह० १४, दोजख शि० १६१, धोखा शि० १६०, नज़रबन्द शि० १२२, पाक शि० १२६, पाजामा जौ० १०२, फीलवान शि० १४५, पुश्तैनी ह० १४, फ़रियाद शि० २६२, फ़रिश्ता शि० १५३, फ़रेबी शि० १२२, बदनामी शि० २१०, बदकार शि० २०६, बदहोश शि० १६७ बधना शि० १६७, बन्दी शि० १६७, बाजीगर शि० १२२, बुतखाना (शि० १०२) बेक़सूर (शि० १६३); बेशरम (शि० १६०), बेवकूफ़ (शि० २१४), बेखौफ (शि० २*६), मज़ा (शि० २१०), मशहूर (शि० १२६), मददगार (जौ० ८७), मेहमानदारी (शि० १६६), रवानी (आ० ६१), रूल (शि० १५१), राह (शि० १६७), रिश्वत (शि० २११), रिश्ता (शि० ३१३), शोर (शि० १२८), सरदार (शि० १६३),साज़ (शि० १२२) सुलह (शि० १३०), सौदगर (जौ० ६५), हलाल (शि० ४४) आदि।

उर्दू-फारसी के इन शब्दों के समावेश से पं. श्यामनारायण जी की भाषा में जहाँ एक ओर उर्दू शायरीकी आत्मा का वैभव और उसकी प्रभावोत्पादकता का समावेश हुआ है, वहीं दूसरी ओर, इनके कारण उनमें शैली का अर्थ-गांभीर्य नहीं आने पाया है।

(३) **संस्कृत के शब्द**

पांडेयजी के काव्य में संस्कृत शब्द प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। उनकी रचनाओं से उद्धृत कतिपय शब्द इस प्रकार हैं—

अस्ति ज० ह० १०५, अर्चनीय ज० ह० २, अद्रि ज० ह० ६,

अभीष्ट ज० ह० १७, अनल शि० २, अस्थि आ० ६, अम्बु शि० २११, अहि शि० ५५, अरि ज० ह० ५१, असि आ० ५८, आत्मत्याग ह० ८८, आहत ज० ह० ७४, उन्नत ज० ह० ७२, कनक ज० ह० ३१, कृष्ण आ० ११६, कीर्तिरस्तु शि० ४८, कुसुमाकर आ० १३, कुशलमस्तु शि०४८, कौशल ज० ह० १३, खग आ० १४६, गज शि० ४७, गृह आ० १२६, गिरि ज० ह० ६, चातक आ० १३, चारु ज० ह० २४; चिरंजीव आ० ८७, चंद्रमा आ० ६, जगदीश आ० १४६, जलधि ज० ह० १०, जगद्वन्द्य ज० ह० ३, जगन्माता ज० ह० ४६, जयति जौ० ८५, तरु आ० ६; तृण आ० ६४; दशानन ज० ह० ३१, दण्डनीय ज० ह० ७७, दारा शि० ६७, दिनकर आ० ७३, द्विज शि० १३६, दुर्ग जौ० ३४, धनमस्तु शि० ४८, नग आ० ६, ज० ह० २३, नत शि० ८८, नयन आ० ६, नभ आ० १०. निमग्न आ० २४, निशाकर आ० ७३, नभश्चण्डिकायै शि० ११४, पवन-तनय ज० ह० ६, पथ ज० ह० २८, पति जौ० ६, पत्नी जौ० ६, प्रातः ज० ह० २८, पिता ज० ह० ८, पुत्र शि० ११, प्रणाम आ० १७०, बलमस्तु शि० ४८, ब्रह्म आ० ७१. भानु आ० १०, भूप ज० ह० ७३, महीप शि० ६६, मधुप आ० ११३, मतिमान शि० १३६, मृगराज आ० १५५, जौ० १६, मुख आ० १३, रश्मि ज० ह० ११, रक्षित ज० ह० २२, रजनीचर ज० ह० ७८, रत शि० ६७, वधू ज०ह० ३० वसुधा आ. १०, वह्नि ज० ह० ८५, विपन्न ज० ह० ८५, विटप ज० ह० २८, शशि आ० २६, शिशु शि० १२, शृंग ज०ह० ६६, सदृश ज०ह० ७, सविता आ० ८, सन्तप्त आ० १२८, सत्यं आ० ११७, सुर आ० ६६, सुन्दरं शि० ६१, स्वत्व शि० १६१, सोऽहं ह० १६३, त्राहि-त्राहि ज०ह० ५८, त्रिलोचन शि० ३१४ आदि।

स्पष्ट है कि पांडेय जी का काव्य संस्कृत शब्दों से मण्डित है। इन संस्कृत शब्दों के कारण ही तो उनकी काव्य-भाषा में संपन्नता, सर-सता और प्रौढ़ता आयी है।

(४) अंग्रेजी शब्द

पं० श्यामनारायण जी पांडेय ने कैमरा आ० १४४, पब्लिक शि० ३०६ जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया है, परन्तु ऐसे शब्द प्रयोग नगण्य हैं। उल्लेखनीय है कि उर्दू शब्दों की तरह अंग्रेजी शब्दों से न तो कवि के काव्य की श्री-वृद्धि हुई है और न ये उनके रंग में घुल मिल ही पाये हैं। इसीलिए अवांछित—से अलग से दिखायी देते हैं।

(५) देशज—शब्द

पांडेय जी ने अपने काव्य में भावानुरूप देशज और स्थानीय

शब्दों से भी काम लिया है, जिनसे उनकी भाषा की कोमलता और मधुरिमा बढ़ी है। यथा—अगाड़ी शि० २२१, कन्हैयाआ० ११६, चमाचम शि० १७८, झाँझ शि० २१६, झाड़-झंखाड़ शि० २१७, झाड़ी ह० २६, पसीज आ० १४७ आदि।

बोलचाल की भाषा के शब्दों के प्रयोग से काव्य में सहजता और साधारणीकरण की स्थिति उत्पन्न होती है। पाश्चात्य विद्वान हैरिस इस मत के समर्थक हैं।

शब्द–रूप

अब हम पांडेयजी के शब्द-रूपों की चर्चा करेंगे। सभी साहित्य मर्मज्ञ जानते हैं कि प्रत्येक कवि और लेखक अपने दृष्टिकोण एवं संस्कार विशेष के अनुसार अपनी काव्य भाषा के शब्दों के प्रति अनुराग रखता है। कहीं–कहीं वह अपने अनुरूप बनाने के लिए शब्दों को ज्यों का त्यों स्वीकार न कर तोड़-मरोड़ भी देता है। पांडेय जी को भी कुछ विशिष्ट शब्दों से विशेष अनुराग रहा है, जिनसे उनकी रचनाएँ गूँजती रहती हैं।

(क) प्रिय शब्द

कवि के प्रिय शब्दों की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वे कवि के काव्य में बहु प्रयुक्त हैं। पं० श्यामनारायण जी के कतिपय प्रिय शब्द निम्नानुसार है—

आहुति गो० ब० ७, ६, १२, ह० ६१, १२७, चित्तौड़ ह० ११, जौ० ३२ ह० ७२, जौ० १४०, जन्म भूमि ह० १५, ३८, जौ० २२८, जवानी गो० ब० ७ आ० ६१ ह० २०१, जीवन मरण शि० १७८, जीवन-दान ह० २००, जौहर ह० ६, गो० ब० ७४, जौ० २०३ २२३ २४० २५० ह० २०० प्रताप ह० ११२ १८२ शि० ६३ ६८, भारत-भू शि० १५७, १६१ १६५ २० भारत माता ह. ६६, भारत जौ. २५० शि० १०१ १०२ ह० १६६ महाराष्ट्र शि० ११७ १३६ १५३ १५७ १६० १६५–२११ मातृ-भूमि ह० १२ मान मर्यादा गो० ब० ७ जौ० ६३ मेवाड़ ह० १४ गो० ब० १७ २६ ह० ३३ ३८ ४० ५२ ८१ १६५ आ० ८४ जौ० ६३ ७४ १३६ मारना–मरना जौ० ६२ बलिदान ह० १२ १४ गो० ब० ६ ह० १६ ५३ ८२ ११२ १३८ १४८ जौ० १३६ त्याग ह० ३६ ४० ८८ जौ० १६२ वीरता या वीरत्व ह० २६ ६६ जौ० १६२ स्वराज्य शि० ७१ स्वतंत्रता ह० ८ गो० ब० ५ ८० आ० ६४ ह० ६५ ७१ ७२ ७४ १४८ शि० ६६ जौ० २४५ स्वाधीन ह० १५३ जौ० १५। जवानी जीवन-मरण, त्याग, वीरता, मान-मर्यादा, प्रताप, स्वराज्य, स्वतंत्रता,

स्वाधीन ये शब्द कवि की उत्कट राष्ट्रभक्ति तथा स्वातंत्र्य-प्रियता के कारण उनके काव्य में बार-बार प्रयुक्त हुए हैं। मातृ-भूमि, भारत-भू भारत-माता, भारत, चित्तौड़, मेवाड़, महाराष्ट्र ये सब उनके भौगोलिक आधार हैं। बलिवेदी, बलिदान, मारना-मरना, जीवन-मरण, जीवनदान जौहर आहुति शब्द बलि पंथियों के प्रतीक है। संक्षेप में पांडेयजी का काव्य जिस राष्ट्रीयता से आपूर्ण है, ये शब्द उसी की ओर संकेत हैं।

ख-अप्रचलित शब्द—

पांडेयजी के काव्य में यत्र-तत्र कुछ ऐसे शब्द भो मिलते हैं, जो काव्य में सामान्यतः अप्रचलित हैं। यथा—उड्डीयमान ज०ह० २६, गाव-तकिये शि० १२१, ज्वलल्ललाट ज०ह० ८४, दर्शनेच्छुयों शि० १८८, प्रच-ण्डतानिकाय ज०ह० ३, परीक्षोतीर्ण शि० २४२, पुलकायमान शि० ३०, प्रकृतिस्थ शि० ८०, विपन्नमना शि० ७१, स्तूयमान ज०ह० ८, स्वीकार शि० ९३ आदि।

ग-शब्दों की तोड़-मरोड़—

पांडेयजी भावुक कवि हैं। भावावेश में आने पर ही वे लेखनी उठाते हैं। उस समय कविता के लिए उनके पास जैसी भाषा होती है, उसी में वे अपने भाव गूँथते चलते हैं। भावों के प्रलाह में उन्हें कभो-कभी भाषा का ध्यान नहीं रहता। ऐसे प्रसंगों में कहीं-कहीं उनके काव्य में भाषा-विषयक बड़ी अव्यवस्था प्रतीत होती है। आवश्यकतानुसार भावाभिव्यक्ति के लिए वे न केवल संस्कृत, अरबी, उर्दू, फारसी तथा देशज शब्दों का प्रयोग ही करते हैं, अपितु शब्दों में काफी तोड़-मरोड़ कर देते हैं। यथा—

'हनुमान गरजते जाते थे। जय हनुमान पृ० १३।

० * *

हनूमान का श्रम हरने। जय हनुमान पृ० १३।

ऊपर के उदाहरण में जिस प्रकार हनुमान को हनूमान लिखा गया है, उसी प्रकार कई स्थानों पर कवि ने अन्य शब्दों को भी तोड़ा-मरोड़ा है। यथा—अम्बुधि का अम्बोधि ज०ह० ७९, उत्तिष्ठ का उत्तीष्ठ शि० १८३. म्यान का मियान आ० ८२. मुसकान का मुसुकान शि ९, आ० ५५ मूसलधार का मूसलाधर शि० ५२, राजधानी का रजधानी आ०१६४ लाड़ला का लाड़िला आ० ११६, सत्यवान का सत्यावान जौ० १६६, सतत का सन्तत शि० २१७, साधु का साधू शि० २१९, सुषमा का सुखमा ह० ४४, स्वर्णिम का स्वार्णिम ह० २११, रूप स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

दूसरी तोड़ की प्रवृत्ति भी कवि में मिलती है। यथा—

औषधि का ओषधि शि० ५६, कर्तव्यशीलता का कर्तव्यशीलन ज०ह० ६, कान्त का कन्त ह० १६०, जननी का जननि शि० ७, २३०, जुही का जूही जौ० ३, ज्योतिर्मय का ज्योतिमय ज०ह० ९१, झींगुर का झीगुर जौ० १३५, झूलनी का झुलनी जौ० १७१ भींग का भिंग ह० १७७, दावाग्नि का दवाग्नि शि० ६२, ज०ह० ८७, महाराज का महराज ह० १६२, महारानी का महरानी जौ० १८३, रूप में स्थान-स्थान पर मिलते हैं।

यह तो हुई जोड़-तोड़ की प्रवृत्ति। अब मरोड़ की प्रवृति लीजिये। अनेक स्थल आते हैं। जहाँ कवि शब्दों को तोड़-मरोड़ कर उन्हें नया रूप हो दे देता है, यथा— जय-जयकार का जै-जैकार शि० ११४, सुमिरना सुमिरिनो जौ० २३६ आदि।

पांडेयजी की रचनाओं में अनेक शब्दों के दो-दो कहीं-कहीं तीन तीन रूप दिखायी पड़ते हैं। यथा—अरावली ह० ६६, अर्वली जौ० १९१, अंगार ह० ८०, अँगार जौ० ८६, अंगुल जौ० ११०, उँगली ज०ह० २, उँगली जौ० ५४, अंगूठी जौ० ३१, अँगूठी जौ० ५४, गरवीला शि. १४४. गर्वीला ज०ह० २७, गोहुवन गो०ब० ६३, गेहुवन ह० १४१, दिवाल जौ० २१, दीवाल जौ० २५ धोका आ० ११६ धोखा शि० १६० धुँआ शि० १२१ धुआँ ज०ह० ८७ पुश्तैनी ह० १४ पुस्तैनी जौ० १४७ पुच्छ ज० ह० ८४ पूँछ ज०ह० ११ मूछित ज०ह० ३७ मूर्च्छित जौ० ९७ बकरा शि० २५८ बखरा ह० ३२ संदेह जौ० ४९ सन्देह आ० १६२ संग गो०ब० ३७ सँग गो०ब० ३१ संमुख जौ० ९७-९८ सम्मुख ज०ह० २६ हुंकार गो०ब० ५९ हुँकार जौ० १७, ज०ह० २५ आदि।

शब्दों की इस तोड़-मरोड़ से पांडेयजी के काव्य के भाषा-वैभव को बड़ी क्षति पहुँची है और इससे उनके काव्य की सहजगति में तथा पाठकों के रसास्वादन में बाधा उपस्थित हुई है। पांडेयजी के काव्य के ये भाषा विषयक दोष सागर के झाग की तरह हैं; किंतु इनसे उनके काव्य की भाषा गरिमा और अर्थसम्पन्नता की सघनता में कोई अंतर नहीं पड़ता।

शैली—

पांडेयजी ने अपने काव्य में विविध शैलियों को चरितार्थ किया है। उनके काव्य में वर्तमान कुछ शैलियाँ इस प्रकार है—

१-प्रबन्ध शैली— इस शैली में एक युग और उसके चरित नायक

को समग्रता से बांधने की शक्ति होती है। इस शैली के दर्शन उनके महाकाव्य हल्दीघाटी जौहर और शिवाजी में होते हैं।

२-विवरण अथवा वर्णन प्रधान शैली— विवरण शैली में वर्णन प्रधान होता है। चित्तौड़–ध्वंस लंका–दहन आदि प्रसंगों में इसका प्रयोग देखा जा सकता है; यथा—

चीख रही थी मानवता; पर कोई सुनता न रहा।
रौंद रही थी दानवता; शिर कोई धुनता न रहा।।
ध्वंस हो गया वीर नगर गढ़ निर्जीव समान हुआ।
भीषण गोलाबारी से दुर्ग शिखर सुनसान हुआ।।

जौहर पृ० १५३।

३-विवेचनात्मक शैली– अपने काव्य-नायकों के गुणों और उनके प्रतिपक्षियों के दुर्गुणों का विवेचन करते समय पांडेयजी ने इस शैली का सहारा लिया है। उदाहरणार्थ—

शिवाजी के गुण—

सज्जन को सज्जन असज्जन को काल-सा।
लगते बूरों के लिए भुजग कराल सा।। शिवाजी पृ० १२४।

औरंगजेब के दुर्गुण—

उसका खुदा तख्त है
इस मामले में सख्त है
* * *
उस तख्त के ही वासते
वह रोककर सब रासते
सब भाइयों का खा गया
खाकर जनाब पचा गया शिपाजी पृ० २०७।

इसी प्रकार कवि ने पद्मिनी; हनुमान; महाराणा प्रताप; रावल रतन सिंह और गोरा के गुणों का वर्णन विवेचनात्मक शैली में किया है।

४–संश्लिष्ट शैली– इस शैली में कवि ने विवरण और विवेचन दोनों की संश्लिष्ट योजना की है—

कब भीत धराशायी हो गयी नवाब की
कब ज्योति बुझ गयी आन रोब-दाब की
मुक्त हुए शाहजी शिवा की नीति रीति से
काँप गया बादशाह अपनी अनीति से।।

शिवाजी पृ० १०३।

५-संवाद शैली–पांडेयजी ने अपनी रचनाओं के बीब-बीच में कहीं-कहीं सुन्दर संवादों की आयोजना की है। उदाहरणार्थ—

कहा एक वासर अकबर ने
मान; उठा लो भाला
सोलापुर जीत पिन्हा दो
मुझे विजय की माला ॥
मान सिंह ने कहा–आपका
हुकुम सदा सिर पर है। हल्दीघाटी पृ० ६३-६४।

६-प्रश्नोत्तर शैली– पांडेयजी ने अपने काव्य में प्रश्नोत्तर शैली की भी योजना की है। यथा—

सीता ने पूछा—

हनूमान मेरे प्रश्नों के उत्तर हों तो उत्तर दो।
मेरे शंकाकुल मन में सन्तोष-तृप्ति के स्वर भर दो ॥
* * *
नित्य अवध के समाचार क्या उनको मिलते रहते हैं ?
मेरा कब उद्धार करेंगे क्या रघुनन्दन कहते हैं ?
जय हनुमान पृ० ४७-४८।

हनुमान ने उत्तर दिया—

कपि ने उत्तर में राघव की दिनचर्या ही कह डाली।
नर-वानर की मेल-कथा कपि परिचर्या भी कह डाली ॥
जय हनुमान पृ० ४६।

७-नाटकीय शैली —कतिपय प्रसंगों में पांडेयजी ने पात्र परिस्थिति का बड़े नाटकीय ढंग से चित्रण किया है और ऐसे दृश्यांकन में पात्रों के हाव-भाव और कार्य-व्यापारों का सूक्ष्म अंकन हुआ है—

व्यग्र खाँ की आँखें जो खुली तो घबड़ा गया
सामने शिवा को देख खुल जबड़ा गया
क्रुद्ध साथियों के साथ शिवा को निहार के
एकदम पीला पड़ा 'या खुदा' पुकार के
शिवाजी पृ० १४६।

८ भाव प्रधान शैली– इस शैली ने कथा-प्रवाह एवं प्रबन्धात्मकता में सरलता एवं मर्मस्पर्शिता के तत्त्वों का नियोजन किया है। इसमें भावों के अनुकूल शब्द-योजना एवं परिवेश सृष्टि की जाती है। कवि ने करुणा के साथ उत्साह के गुणों का उद्घाटन किया है–

'प्रभो; पदों का ध्यान न होता
स्तुति का कहीं न बल होता
तो जननी का समाचार
आँखों में जल ही जल होता'—जय हनुमान पृ० १३० ।

(९) **चित्रण-प्रधान शैली**:-वर्णनकी अपेक्षा चित्रणमें कलात्मकता एवं सुष्ठुता अधिक प्राप्त होती है। चित्रण प्रधान शैली में कवि ने भावानुरूपता, सरलता और मर्मस्पर्शिता को अपनाने का प्रयास किया है। चित्रण में कवि ने प्रवाह तथा प्रभावोत्पादकता का विशेष ध्यान रखा है।
यथा—

'चारों ओर अँधेरी रात तम की खुली भयावह जटा।
रह रह बिजली की कँपकँपी नीचे जल, ऊपर घनघटा।
ऊबड़ खाबड़ गिरि के पन्थ बहती व्याकुल जल की धार।
उन धारों से लड़ते हुए पग-पग बढ़ता एक सवार।
कहाँ जा रहा जाने कौन कहो नहीं तो काली रात।
सकती रोक न उसे बलात् ॥

× × ×

छपक छपक छप छप छपक हय के चलने की आवाज।
सुन पड़ती थी मावली तरुण बोले आते है शिवराज ॥'
—शिवाजी-पृ. ५३।

पांडेयजी की प्रबन्ध शैली में भावना और चित्रांकन की विशेषताएँ हैं। गति तथा प्रवाह के दृष्टिकोण से यह शैली बहुत उत्कृष्ट है।

शैलीगत विशेषताएं:—पांडेयजी की शैली पांडेयजी के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें ओज, स्पष्टवादिता तथा मार्मिक प्रवावमयी भाषा का प्रयोग उल्लेखनीय है। उनकी शैली में सजीवता व साकार बिम्बविधान क्षमता पायो जाती है भावोंकी सूक्ष्म व्यंजना व्यक्तित्वकी सप्राण निर्मिति और वातावरण का स्वाभाविक चित्रण उनकी शैली के प्रशंसनीय गुण हैं। संक्षेप में, उन्होंने विविध शैलियों को अपनाकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

भाषा सौष्ठव:-भाषा सौष्ठव के अन्तर्गत हम पांडेय जी की शब्द-शक्ति उक्ति वैचित्र्य प्रोक्ति-चमत्कार द्विरुक्त-पद प्रयोग वाक्य-विन्यास गुण रीति और वृत्ति पर विचार करेंगे।

(१) **शब्द शक्ति**:—शब्द-शक्ति अभिव्यंजना का एक प्रमुख सौंदर्य विधायक उपादान है। कलाकार अपनी शक्ति को प्रभावोत्पादक अर्थ-व्यंजक एवं आकर्षक बनाने के लिए बात को प्रत्यक्ष रूप से न कहकर

प्रकारान्तर से भी कहता है। इस प्रकारान्तर कथनके लिए वह शब्दाश्रित शक्तियों का उपयोग करता है। शब्द अपने सामर्थ्य के बल पर विभिन्न प्रकार के अर्थ प्रदान करते है जिन्हें भारतीय साहित्याचार्यों ने त्रिधा में विभक्त किया है— अभिधा-शक्ति, लक्षणा-शक्ति और व्यंजना-शक्ति।

(२) **अभिधा शक्तिः**—शब्द अपनी शक्ति से जिस प्रकृति के अर्थ को प्रदान करता है, वह साक्षात् संकेतित अर्थ कहा जाता है। यथा—

'विरह पद्मिनी का कानों से, सुनकर हय पर रह न सका वह।
गिरा तुरत मूर्च्छित भूतल पर, विरह–वेदना सह न सका वह॥
कहीं म्यान, शमशीर कहीं पर, कहीं कुन्त तो तीर कहीं पर।
बिखर गये सामान रतन के, कहीं ताज, तूणीर कहीं पर॥

—जौहर, पृ० ४१।

उक्त भाषा शैली में बिम्ब या दृश्य बोधन का कार्य अभिधा शक्ति द्वारा सरलता से संपन्न हुआ है।

(२) **लक्षणा शक्तिः**—लक्षणा के प्रयोग में कवि शब्द के मुख्य अर्थ से होता हुआ एक नवीन अर्थ बोध कराता है जो असंगत अथवा अनुपयुक्त तो होता ही नहीं वर्ण्य–विषय या व्यापार का ऐसा चित्र उपस्थित करता है जो कभी कल्पना और कभी प्रकृत ज्ञान द्वारा सहज ही ग्राह्य होता है। कवि के काव्य में लक्षणा के उदाहरण इस प्रकार हैं—

(क) **लक्षण-लक्षणाः**—(१) 'अवरंग काला साँप है
राजा शिवा माँ-बाप है' —शिवाजी, पृ० ३१२

(२) 'खादी पहनेंगे मसलेंगे तुम्हें पैरों तले,
औरों से तुम्हारे लिए लाते महामारी हैं।

—आरती, पृ० १६०।

(ख) **सारोपा-लक्षणाः**—(१) रामचन्द्र की सीता है वह
रामायण है गीता है वह' —जौहर, पृ० ५०।

(२) 'कुत्ते है नवाब के सिखाना व्यर्थ जायगा।'

(क) **साध्या वसानालक्षणा** :— —शिवाजी, पृ० १०५।

'राणा सदृश तू शक्ति दे, जननी-चरण अनुरक्ति दे।
या देश–सेवा के लिए झाला-सदृश ही भक्ति दे॥

—हल्दीघाटी पृ० १६५।

(३) **व्यंजना शक्ति** :—कुछ प्रयोगों में कवि साधारण अर्थ के अतिरिक्त कुछ विशेषार्थ ध्वनित करता है। साधारण पाठक भले ही ऐसे स्थलों पर उनके वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ से संतुष्ट हो जाय परन्तु सहृदय

पाठक के लिए ऐसे प्रयोगों का आनन्द उस ध्वनितार्थ में ही रहता है जो अभिधा और लक्षणा के कार्य-विरत हो जाने के पश्चात व्यंजित होता हैं। पांडेय जी की रचनाओं में से व्यंजना के भेदोपभेदों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) **शाब्दी व्यंजना:—**

'श्याम' की पुकार बिना श्याम की सुनेगा कौन? -आरतीपृ० २२।

(२) **लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना:—**

'कामना लगी है उनसे ही मिलने की अहो
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये। —आरती पृ० १०३।

(३) **वाच्य संभवार्थी व्यंजना:—**

तुमने रामायण लिखवायी
तुलसी को सम्मान दिया
कवि के मन-मन्दिर में बसकर
राम-भक्ति का दान दिया।' जय हनुमान पृ० ६।

इस प्रकार आलोच्य कवि के काव्य में शब्द-शक्तियों का समुचित प्रयोग हुआ है।

(२) **उक्ति-वैचित्र्य अथवा उक्ति-सौंदर्य :**—कई विद्वान कविता वक्रोक्ति का पर्याय मानते हैं, जो बहुत अंशों में सही है। भामह ने वक्रोक्ति को अतिशयोक्ति का पर्यायवाची मानकर उसे वाग्वैदग्ध्य का एक रूप कहा है। उनके अनुसार सभी अलंकारों का मूल यही है। किन्तु शुक्लजी ने ऐसी रचना को, जिसमें हमारा मन किसी भाव से लीन न होकर एक बारगी कथन के अनूठे ढंग, वर्णविन्यास, दूर की सूझ, कवि की चातुरी आदि का विचार करने लगे, काव्य नहीं, सूक्ति माना है। लोक की साधारण कथन-प्रणाली से भिन्न उक्ति ही वक्रोक्ति है। वक्रोक्ति कविता का वह प्रमुख गुण है, जो उसे गद्य से पृथक् करता है।

पांडेयजी भावनाप्रधान कवि हैं, वक्रता-प्रिय कवि नहीं। अभिप्राय यह कि वे जान-बूझकर उक्ति को वक्र नहीं बनाते। किन्तु श्रेष्ठ कवियों के लेखन में अभ्यास एवं भाषा की समृद्धि के साथ-साथ कथन की प्रणाली में स्वयमेव जो विचित्रता उत्पन्न हो जाती है, पांडेयजी का लेखन भी इस साधारण नियम का अपवाद नहीं है।

वक्रता के समावेश से उक्ति विशेष रूप से आकर्षक, चमत्कृत और प्रभावपर्य बन जाती है। उक्ति के इस वैचित्र्य के मूल में विरोधाभास, साम्य अथवा वैषम्य-मूलक पद योजना या फिर क्रमिक वर्णन आदि

का सौंदर्य आता है। पं० श्यामनारायण पांडेयजी के काव्य से उक्ति-वैचित्र्य के कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं—

१– 'समय है समय का सदुपयोग हो
विजय हार से कण्ठ का योग हो' शिवाजी पृ० २३७।

२– 'समय पर न जो है अभागा जगा
उसी के रहा शोक पीछे लगा' शिवाजी पृ० २३७।

३– 'धरे हाथ पर हाथ जो सो गया
वही जिन्दगी का रतन खो गया' शिवाजी पृ० २३७।

४– जिसे जागने का अनभ्यास है
उसी के निकट त्रास ही त्रास है' शिवाजी पृ० २३७।

५– 'हृदय में अपरिमेय उत्साह हो
निरन्तर विजय की जिसे चाह हो
वही राज-राजा उसी की मही
अमर नीति होती उसी की कही' शिवाजी पृ० २३७।

६– 'कायर मरता है रोज, सूरमा
एक बार ही मरता है' शिवाजी पृ० २८८।

७– 'ध्यान रखें नव-रण-पद्धति का विगत सफलता में न बहें'
जय हनुमान पृ० ६४।

८– 'धर्मी को मिलती सुख शान्ति और अधर्मी रोता सदा'
जय हनुमान पृ० ७४।

९– जो हो परन्तु कुम्हार को घट फोड़ने दूँगा न मैं'
शिवाजी पृ० १८०।

१०– 'यह सन्धि की शर्त्त है आप मानें
न माने अगर तो दवा आप जाने' शिवाजी पृ० १९१।

११– रण विचार न व्यर्थ करना चाहिए,
हाथ में हथियार धरना चाहिए।
सिंह-सम रण में उतरना चाहिए,
मारना या स्वयं मरना चाहिए॥ जौहर पृ० ६२।

१२– 'चल दो, क्षण देर करो मत; अब समय न है रोने को।
मेवाड़ न दे सकता है तिल भर भी भू सोने को॥
हल्दीघाटी पृ० १८१।

१३– 'यद्यपि जनता के उर में मेरा ही अनुशासन है,
पर इन्च-इन्च भर भू पर अरि का चलता शासन है'
हल्दीघाटी पृ० १७८।

१४– 'जगा-जगा खग हार गये, पर जग न सके योधा गढ़ के।
× × ×
कैसे अमर शहीद जागते; गढ़ की थी किस्मत फूटी।।
जौहर पृ० २२६ ।

इस प्रकार के और भी कई उदाहरण उनके काव्य में मिल सकते हैं। कवि ने विशेष कर अपनी राष्ट्रीय रचनाओं में युग-धर्म का वाणी देने के लिए उक्ति-वैचित्र्य का सहारा लिया है।

३-प्रोक्ति-चमत्कार–मुहावरें और कहावतें प्रौढ़ भाषा के सहज गुण हैं। भाषा की कसावट, लाक्षणिकता और प्रभाव पूर्णता के लिए उनका यथेष्ट प्रयोग अपेक्षित है। पांडेयजी ने अपनी अभिव्यक्ति को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए मुहावरों के प्रयोग किये हैं। एक उदाहरग द्रष्टव्य है—

'सिंह की संतान का यह अर्थ है,
देश-गौरव-मान के हित प्राण दें।
मर मिटें, जब प्राण सबके उड़ चलें!
तब कहीं निर्जीव यह मेवाड़ दें।। जौहर पृ० ६३।

यहाँ मुहावरों का कैसा व्यंजक प्रयोग किया गया है। निम्न-लिखित पंक्तियों में मुहावरों की लड़ी लगी हुई है, शब्दों की सरलता और व्यंजकता से वे और भी सरल हो गये हैं—

न ठाकुर कभो जाति से छल करेगा
कहेगा उसी पर वहीं कट मरेगा
कसम खा रहा बाल बाँका न होगा
निरादर तुम्हारी प्रजा का न होगा' शिवाजी पृ० १६६।

कुछ अन्य मुहावरे निम्नानुसार हैं—

ईंट का जवाब पत्थर से देना शि. २७५, शि. १६६ कलेजा धड़-कना शि. १८९ तूफान बन जाना गो.ब. ६३ दाँत पीसकर बोलना ज.ह. ५६ धावा बोल देना जौ. १०६ नाक का बाल होना शि. २३६ नींव डालना शि. २६२ बलि का बकरा होना शि. २५८ भौहे कुटिल हो जाना गो.ब. ६२ भुजाएँ फड़कना। गो.ब. ६२ मात करना शि. १९६ रोड़े डालना शि. १०४ बाल बाँका न होना शि. १६० सलामी दागना शि. १८८ सीने पर गोली खाना शि. २७५ आदि।

इस प्रकार पांडेयजी के काव्य में मुहावरों का सुष्ठु एवं आकर्षक प्रयोग हुआ है। तात्पर्य यह है कि उनके काव्य में मुहावरें प्रचुर परिमाग में उपलब्ध हैं, अतः उनका काव्य मुहावरों से सम्पन्न है।

जिस प्रकार उन्होंने अपने काव्य में मुहावरों का प्रयोग किया

है उसी प्रकार उन्होंने कहावतों का भी प्रयोग किया है। निम्नांकित पंक्तियों में कहावतों का प्रयोग पर्याप्त पटुता के साथ हुआ है। देखिए—

१– 'बल से सहस्र गुनी बुद्धि बड़ी होती है।' शिवाजी पृ. १२९।

२– 'बड़ों की कही बात होती बड़ी।' शिवाजी पृ २३३।

पांडेयजी के काव्य में मुहावरों की अपेक्षा कहावतों का कम प्रयोग हुआ है।

अन्ततः निष्कर्ष यही है कि पांडेयजी की भाषा काफी पुष्ट और प्रांजल है। अपनी शुद्धि, व्यापकता और विविध वर्णन-क्षमता के कारण उनकी भाषा परिपक्व और पर्याप्त प्रभाव शालिनी है।

४–द्विरुक्तपद प्रयोग— प्रोक्ति की भाँति द्विरुक्त पदों से भी भाषा के सौंदर्य की अभिवृद्धि होती है। पांडेयजी ने स्थल स्थल पर ऐसे पदों का प्रयोग कर, अपने काव्य में सजीवता, स्निग्धता एवं माधुर्य लाने का प्रयास किया है। एक उदाहरण लें—

'वह उतर गगन से आया, सरिता-सरिता सर–सर में।
चाँदी–सी चमकी लहरें, वह झूला लहर–लहर में।।'

जौहर पृ. ६९।

पांडेयजी के काव्य में आये हुए कुछ द्विरुक्त पद ये हैं—

अवयव-अवयव ह. ८८, अंग–अंग ज. ह. ६७, कण–कण ह. १०७, कल–कल ह. १०६, काट-काट ह. १३६, किला–किला शि. ६९, गरम–गरम जौ. ११०, ग्राम-ग्राम जौ. १०, घर-घर जौ. १०, चम-चम ज.ह. ३५, छन-छन जौ. २११, छल-छल ह. १४४, जगमग–जगमग जौ. ७, जयति-जयति जौ. ८५, जय-जय शि. ७८, झन-झन जौ. ३३; झर–झर ह. ९७, तिल-तिल आ. ८९, थर-थर जौ. ५३, नगर-नगर जौ. १०; पैनी-पैनी ह. १२२, बोटी-बोटी गो.ब. ७०, मर–मर गो.ब. ६९, मुख-मुख जौ. २५०, रोम-रोम जौ. ३३, लाल-लाल जौ. ५२, शीश-शीश जौ. ७६, सन-सन जौ. १४८, सर-सर जौ. ६७, त्राहि-त्राहि ज.ह. ५८, क्षण-क्षण ह. १३८ आदि।

५-वाक्य विन्यास–शब्दों से वाक्य बनता है, अतः शब्दों के समान ही काव्य में वाक्य की महत्ता है। वाक्य में आकार, तुक, लय तथा विन्यास की अन्विति का यथोचित बना रहना काव्य-सौंदर्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। कुशल वाक्य योजना द्वारा पांडेयजी ने अपने काव्याभिव्यंजन में सौंदर्य की अभिवृद्धि करने का प्रयास किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है— निम्नांकित पंक्तियों में 'आ जा' की अन्त्यावृत्ति से भावों में तीव्रता आ गयी है—

'अट्टहासवाली की जय, आज कटारों पर आ जा।
लौंग धार वाली की जय, खर तलवारों पर-आ जा ।।
महा प्रलयकारी की जय, आज भुजाओं पर आ जा।
महा महामारी की जय, संगर-भावों पर छा जा ।।'

जौहर, पृ० १४५ ।

कभी-कभी पाठक की जिज्ञासा को बनाये रखने के लिए कवि मुख्य वाक्य को अन्त में इस प्रकार प्रयुक्त करता है कि अवांतर वाक्यों का अर्थ अन्तिम मुख्य वाक्य को जाने बिना पूर्ण नहीं होता। इस सौंदर्य -विधायक तत्व को पश्चिम में पीरियड कहा गया है। देखिए—

'परम धर्ममय रण है उठो
जन का आमन्त्रण है उठो
फहर उठे अम्बर पर ध्वजा
क्षत्रियत्व का प्रण है उठो ।।' शिवाजी, पृ. ५९ ।

६-गुण—जो रस के धर्म एवं उत्कर्ष के कारण हैं और जिनकी रस के साथ अचल स्थिति रहती है, वे गुण कहे जाते हैं।[1] रस के धर्म होने पर भी उसमें उनकी अचल स्थिति रहने पर भी उपचारतः गुणों का सम्बन्ध अथवा अस्तित्व भाषा में मान लिया जाता है। पंडितराज जगन्नाथ के अनुसार तो माधुर्य और गुण रस में ही नहीं, शब्द और अर्थ में भी रहते हैं।[2]

अतएव भाषा के प्रसंग में उनपर भी विचार कर लेना अनिवार्य है। भाषा में आचार्यों ने भाषा के तीन गुण माने हैं- ओज माधुर्य और प्रसाद। आलोच्य कवि के काव्य में तीनों गुण विद्यमान हैं।

१-ओज—मन में तेज उत्पन्न करनेवाला–उसे दीप्ति प्रदान करने वाला गुण ओज है। जिस रचना में ट, ठ, ड, ढ आदि कठोर, द्वित्त्व और संयुक्त वर्णों का आधिक्य होता है, वह ओजगुणमयी होती है। वीर, रौद्र और वीभत्स रस पूर्ण रचनाएँ ओज गुण प्रधान प्रचुर होती हैं। पांडेयजी मुख्यतया ओज के कवि हैं।-यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'तलवार गिरी वैरी-शिर पर, धड़ से शिर गिरा अलग जाकर।
गिर पड़ा वहीं धड़, असि का जब भिन गया गरल रग-रग जाकर ।।

१- सेठ कन्हैलाल पोद्दारः काव्य-कल्प द्रुम, पृ० ३३०।
२- पंडितराज जगन्नाथः रसगंगाधर, निर्णय सागर प्रेस, सं. १९३९ पृ.६८।

गज से घोड़े पर कूद पड़ा, कोई बरछे की नोंक तान।
कटि टूट गयी; काठी टूटी, पड़ गया वहीं घोड़ा उतान।।
गज दल के गिर हौदे टूटे, हय-दल के भी मस्तक फूटे।
बरछों ने गोभ दिये, छर-छर शोणित के फौवारे छूटे।।

जौहर-पृ० १६।

२-माधुर्य—चित्तको द्रवीभूति करनेवाला गुण माधुर्य कहलाता है। इस में 'ट' वर्ग को छोड़कर, स्पर्श वर्णों, अनुस्वार, ह्रस्व स्वर तथा असमस्त पदों का प्राधान्य रहता है। रसों में शृंगार एवं करुण माधुर्य के अधिक अनुकूल हैं। यथा—

'गायक के मधुमय गान शपथ, कवि की कविता की तान शपथ।
रस-रंग-शपथ, मधुपान शपथ, अब से मुख पर मुस्कान शपथ।।
मोती झालर से सजी हुई, वह सुकुमारी-सी सेज शपथ।
यह निरपराध जग थहर रहा, जिससे वह राजस-तेज शपथ।।

हल्दीघाटी- पृ० ८९।

३-प्रसाद—मन को विकसित अथवा व्यापक बनानेवाला गुण प्रसाद के नाम से अभिहित किया जाता है। श्रवण करते ही जिस रचना की अर्थ-प्रतीति हो जाये वह प्रसाद गुणमयी होती है। आचार्यों ने अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रसाद वह गुण है जिसके कारण कोई रचना चित्त में सूखे इन्धन में आग अथवा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान तुरन्त व्याप्त हो जाती है। हमारा कवि मुख्यतया ओज का कवि है। फिर भी उसके काव्य में अनेक स्थलों पर प्रसादका सौंदर्य भी उपलब्ध है। दो एक उदाहरण लीजिये—

१- 'क्यों रुक गये, कपोलों पर क्यों;
बिखर गयीं आँसू की लड़ियाँ।
चलो मन्त्र पढ़-पढ़ देंगे तिल-तिल,
आगे बढ़ने की जड़ियाँ आरतो- पृ० ८९।
'हृदय से चिन्ता निकालो; फेंक दो,
एक साहस और करना है तुम्हें।
हृदय में उत्साह भर लो, बढ़ चलो,
एक सागर और तरना है तुम्हें।।

७-रीति और वृत्ति–विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। डा० नगेन्द्र के अनुसार —सुन्दर पद रचना का नाम रीति है- यह सौंदर्य शब्द-

गत तथा अर्थगत होता है।'[1] वामन ने वैदर्भी; गौडी तथा पांचाली-रीति के तीन प्रकार माने हैं।[2] इन रीतियों को ही सम्मट ने क्रमशः उपनागरिका; परुषा और कोमला वृत्ति के नाम से अभिहित किया है; इस प्रकार रीति और वृत्ति तथा उनके प्रकारों में नाम का ही भेद है–और कोई अन्तर नहीं।

काव्य रचना करते समय कवि को प्रतिपाद्य के अनुकूल कोमल अथवा कठोर; मधुर अथवा कटु; अलंकृत अथवा अनलंकृत (सरल) पद-योजना करनी पड़ती है। पद-योजना की इस विभिन्नता पर ही किसी रीति अथवा वृत्ति-विशेष का अस्तित्व निर्भर है। पं० रामदहिन मिश्र के शब्दों में उनकी परिभाषा इस प्रकार है—

१–ओज: प्रकाशक वर्णों से आडम्बर पूर्ण बन्ध को-रचना को-गौडी रीति या परुषा वृत्ति कहते हैं।[3]

२–माधुर्य व्यंजक वर्णों की जो ललित रचना है; उसे वैदर्भी रीति या उपनागरिका वृति कहते हैं।[4]

३–दोनों रीतियों के अतिरिक्त वर्णों से युक्त पंचम वर्णवाली रचना को पांचाली रीति या कोमला वृत्ति कहते हैं।[5] पांडेय जी के काव्य में इन तीनों रीति अथवा वृत्ति के सभी प्रकारों के उदाहरण उपलब्ध हैं—

१-गौड़ी रीति या परुषा वृत्ति—

'लहराती थी सिर काट–काट,
बल खाती थी भू पाट-पाट।
बिखराती अवयव बाट–बाट,
तनती थी लोहू चाट–चाट।।'

हल्दीघाटी–पृ० १३७-१३८।

२-वैदर्भी रीति या उपनागरिका वृत्ति—

'रोम–रोम लावण्य भरा है,
रोम–रोम माधुर्य भरा।
बोल-बोल में सुधा लहरती,
शब्द–शब्द चातुर्य भरा।।'

जौहर– पृ० ३२-३३।

१– डा० नगेन्द्र: हिन्दी काव्यलंकार सूत्र की भूमिका; संस्करण संवत् २०११–पृ ३८। २–काव्यालंकार सूत्र–१।२।६। ३– काव्य-दर्पण- द्वितीय संस्करण–पृ० ३१८। ४– वही वही। ५– वही पृ० ३१६।

३-पांचाली रीति या कोमला वृत्ति—

'धन्य माँ जीवन तुम्हारा धन्य है
मधुर जीवन के सभी क्षण धन्य हैं
जागरूक स्वधर्म-हित माँ हो तुम्हीं
देश-रक्षण के सुलक्षण धन्य हैं।'

शिवाजी: पृ० २३७।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि पं० श्यामनारायणजी पांडेय के काव्य में भाव और कला दोनों पक्ष समृद्ध हैं। उनकी अनुभूति, कल्पना, भावना, भाषा और अभिव्यक्ति की शक्तियाँ काव्यगुणों से परिपूर्ण हैं।

अध्याय (६)

पाण्डेयजी के काव्य में पौराणिकता और ऐतिहासिकता

पौराणिक संदर्भ

पांडेय जी के प्रबन्ध काव्यों के कथानक और प्रेरणास्रोत पौराणिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों से जुड़े हैं, अतः उनके काव्यानुशीलन के लिए हमें उनकी रचनाओं के पौराणिक और ऐतिहासिक तथ्यों का परिशीलन आवश्यक है।

तुमुल काव्य में पौराणिकता :—

पांडेय जी के 'तुमुल' काव्य में विद्यमान व्यक्तियों का विवेचन निम्नानुसार है—

(१) लक्ष्मण :—

लक्ष्मण शेष के अवतार, कान्ति के आगार तथा भूमि के आधार थे।[1]

राम-रावण युद्ध के अवसर पर मेघनाद की युद्ध-गर्जना लक्ष्मण को असह्य होती जाती है। अत: रघुवीर से आदेश लेकर वे युद्ध के लिए प्रस्थान करते हैं।[2]

उस समय वे तेज में सूर्य के समान तथा शक्ति में मृगराज जैसे प्रतीत हुए।[3]

युद्ध-भूमि में लक्ष्मण और मेघनाद दोनों का वार्तालाप का होता है। कवि ने इस वार्तालाप का सविस्तार वर्णन किया है।[4] युद्धके अवसर पर लक्ष्मण ने अपने असीम बल और पराक्रम को प्रदर्शित किया। क्षणभर में उन्होंने असंख्य बाणों को वर्षा की। उनके बाणों के आघातों से अनेक शत्रु सैनिक कालकवलित हो गये अनेक घायल होकर भूमि पर गिर पड़े तथा अनेक भयातुर होकर भाग खड़े हुए।[5]

१—वे शेष के अवतार सचमुच, भूमि के आधार थे
थे कान्ति के आगार ॥ पृ. ६-७

२—सौमित्रि को घननाद का रव, अल्प भी न सहा गया।
× × ×
रघुवीर से आदेश ले,
× × ×
सौमित्रि सेना के सहित, आसन्न अरि के आ गये ॥ पृ. ४६-५०

३- निज तेज से भास्वान सम, प्रत्यक्ष ही देखे गये।
उस काल वे मृगराज जैसे, शक्ति में लेखे गये ॥ —पृ० ५० ।

४- 'तुमुल' पृ० ५०-५६ ।

५- 'बाण बरसाने लगे । -निर्जीव वीरों से समर की, मेदनी पटने लगी। वे विद्ध हो थकने लगे।- कैसे बचेंगे प्राण यह कह, युद्ध से भगने लगे ॥ —पृ० ६५-६६ ।

अपनी सेना की दुर्दशा देखकर मेघनाद युद्ध करने के लिए आया मेघनाद द्वारा शक्ति प्रयोग करने पर लक्ष्मण मूर्छित हो धरती पर गिर पड़े।[1]

तत्पश्चात् सुषेण वैद्य के परामर्शानुसार हनुमान संजीवनी बूटी लाये और उपयोग से लक्ष्मण स्वस्थ हो गये।[2] लक्ष्मण के स्वस्थ होने के उपरान्त राम ने विभीषण के परामर्शानुसार लक्ष्मण को मेघनाद वध का आदेश दिया।[3] निकुम्भिला में विभीषण के परमर्शानुसार लक्ष्मण ने शर सन्धान कर याज्ञिक मेघनाद का वध किया।[4]

तत्पश्चात् वे राम से मिले। राम ने लक्ष्मण की अत्यन्त सराहना की तथा उन्हें विजय का अधिकारी ठहराया। प्रभु-चरण छूकर लक्ष्मण ने कहा कि यह तो सब आपकी ही कृपा का फल है।[5]

पौराणिक विवेचन—

रामायण से नागपाशाबद्ध राम-लक्ष्मण की करुण स्थिति का चित्रण आदि कवि ने प्रथम मेघनाद युद्ध में ही किया है। इसी स्थिति में ही राम ने जब मूर्च्छारहित हो लक्ष्मण को भी मरणासन्न शरबद्ध दशा में देखा तो वे विलाप करने लगे। मानस में राम ने यह विलाप लक्ष्मण के वीरघातिनी शक्ति लगने पर किया है। मानसकार ने द्वितीय मेघनाद युद्ध में केवल राम को ही व्याल-पाशाबद्ध दिखाया है।[6] तुमुल में इस प्रसंग का अभाव है।

राम द्वारा प्रेषित लक्ष्मण एवं रावण का यह प्रथम युद्ध[7] मानस के प्रथम लक्ष्मण मेघनाद युद्ध[8] से पूर्ण साम्य रखता है। साम्य के विशिष्ट

१- यह कह चलायी शक्ति लक्ष्मण का हृदय अवलोक के।

* * *

सौमित्रि आँखें मूँदकर, रण की धरा पर सो गये।

* * *

मूर्छित हुए तत्काल सहसा, -पृ० ७२-७३।

२- सजीवनो बूटी बिना इनकी चिकित्सा व्यर्थ है॥

* * *

सौमित्रि सिंह समान सोकर मुस्कराते जग गये। -पृ० ९८, ९९, १०१।

३- इससे सदल बल जा दशानन के तनय का वध करो। पृ० ११६-११७।

४- 'सौमित्रि के नाराच से, घननाद संहारा गया॥ —पृ. १२५।

५- 'यह तो कृपा का फल कहीं से आपदा आयी नहीं॥ -पृ० १२६।

६- रामचरितमानस ६।७२।१०; ११। ७- बाल्मीकि रामायण- ६।५६।९२ १२३। ८-मानस; ६।५२ से ६।५४ तक।

स्थलों में रामायण में लक्ष्मण पर रावण द्वारा ब्रह्म-शक्ति प्रहार तथा रावण द्वारा लक्ष्मण को मूर्च्छित दशा में उठाना; हनुमान द्वारा संज्ञारहित लक्ष्मण का राम के समीप आनयन[1] मानस के मेघनाद द्वारा लक्ष्मण पर वीरघातिनी शक्ति-प्रक्षेप; मेघनाद सम कोटि योद्धाओं द्वारा शेषावतार लक्ष्मण को उठाना तथा फिर हनुमान द्वारा उनको राम के समीप ले जाना आदि प्रसंगों में पूर्ण साम्य है।[2] इसमें भेद का स्थल यह है कि रामायण में रावण द्वारा शक्ति लगने से लक्ष्मण अचेत हुए थे; परन्तु शक्ति लगने के बाद आत्मचिन्तन करने से वे व्यथा-मुक्त हो गये जब कि राम-चरित मानस में हनुमान द्वारा संजीवनी के आनयन से लक्ष्मण का स्वस्थ होना वर्णित है। तुमुल में मूर्च्छित लक्ष्मण को रावण या मेघनाद द्वारा उठाने का उल्लेख नहीं है। उसमें हनुमान द्वारा संजीवनी के लाने से लक्ष्मण के स्वस्थ होने का जो उल्लेख हैं, वह रामचरित मानस के अनुसार है।

मेघनादवधार्थ दृढ़-संकल्प कर लक्ष्मण के ससैन्य प्रयाण का उल्लेख रामायण; रामचरितमानस[3] और तुमुल में समान रूप से वर्णित है। इस अभियान का तथां लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध का प्रसंग रामायण में, मानसकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है। रामायणमें विभीषण के आदेशानुसार लक्ष्मणने शर-संधान कर याज्ञिक मेघनाद को विचलित किया।[4] तुमुलका उपरोक्त प्रसंग रामायण के अनुसार है। दोनों ओर से ललकारके साथ ही तुमुल युद्ध शुरू हुआ।[5] लक्ष्मण और मेघनाद के मध्य घनघोर युद्ध का सजीव एवं चित्रात्मक वर्णन रामायण में किया गया है।[6] तुमुल में भी घमासान युद्ध का सजीव वर्णन है, पर यह युद्ध मेघनाद द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति चलायी जाने से पहले वर्णित है।

मेघनाद वध के बाद देवादि के आनंदोत्सव के पश्चात् ही लक्ष्मण का राम के समीप आने का वर्णन रामायण और तुमुल में किया गया है। रामायण में राम की प्रसंन्नता, लक्ष्मण के प्रति स्नेहार्पण आदि का उल्लेख है।[7] मानस[8] में केवल 'कृपा-सिन्धु' शब्द में उपर्युक्त भावों की सांकेतिक व्यंजना मात्र है। 'तुमुल' में 'तुमने तुम्हारी बड़ी की' शब्दों में राम ने लक्ष्मण की प्रशंसा की है।

१-बाल्मीकी रामायण ६।५६।१०८;११०;११३;११६। २-मानस: ६।५३।७; ६।५४। ६।५४।६। ३-वही ६।७४।१३;१४। वा०रा०-६ ८५।२६;२७
४- वाल्मीकि रामायण-६ ८६ ३ से १७ तक। ५- वही, ६-८८-३४।
६- वही, ६-८८-३१ से ७७, ६-८८-१८ से ७४। ७- वही, ६-९१-८, २०। ८- मानस-६-७६-५।

लक्ष्मण के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन दोनों काव्य-ग्रन्थों में है। परन्तु अन्तर केवल उसकी अभिव्यक्ति में है। रामायण में यह वीरता यथार्थ-रूपेण चित्रित हुई है,जिसमें स्वाभाविकता एवं सजीवता परिलक्षित है। परन्तु मानस में लक्ष्मण के शौर्य की पृष्ठ भूमि में दो विशेष कारणोंका योग किया गया है। प्रथमतः भक्त तुलसी ने दास्य-भाव के उपासक लक्ष्मण के बल का कारण भी प्रभु-प्रताप ही माना है।[1] इसके अतिरिक्त लक्ष्मण स्वयं शेषावतार हैं, इसलिए अंशी का स्वरूप अंश में लक्षित होना अनिवार्य है।[2] पांडेयजी ने लक्ष्मण विजय को राम की ही 'कृपा का फल' माना है।

रामायण[3] तथा मानस[4] में लक्ष्मण के शौर्य की सराहना उनके परिजन ही नहीं, अपितु शत्रु भी करते हैं।[5] यही शौर्य की पराकाष्ठा है। तुमुल में भी राम और उनके साथी लक्ष्मण के शौर्य की प्रशंसा करते हैं। लक्ष्मण के शौर्य के संबंध में मेघनाद की यह उक्ति द्रष्टव्य है—

'कलश हैं, विषपूर्ण सुवर्ण के, ज्वलित पावक पुंज समान है।
इसलिए इनसे बचके मुझे, तुरत ही करना रण चाहिए॥

तुमुल-पृ० ५८।

लक्ष्मण के रण कौशल के भी रामायण[6] और मानस[7] में रोचक वर्णन किये गये हैं। तुमुल में उनके युद्धकौशल का वर्णन अपेक्षाकृत संक्षिप्त है।

यथासमय वाल्मीकि एवं तुलसी ने लक्ष्मण के सौंदर्य की भी चर्चा की है। लक्ष्मण का सौंदर्य राम के ही समान था। इसके प्रमाण रामायग[8] तथा मानस[9] में स्थान स्थान पर मिलते हैं। तुमुल में 'कान्ति के आगार' कहकर पांडेय जी ने उनकी छवि का संकेत मात्र किया है।

२-मेघनाद-मेघनाद रावण का पुत्र था। वह अनेक आदर्श गुणोंसे युक्त था। पांडेयजी ने इसकी विस्तार से चर्चा की है।[10]

मेघनाद बड़ा वीर था। उसने सर्पराज को परास्त कर महाबली सुरेश तथा उसके पुत्र ज़यन्त को समीक (युद्ध) में हराकर त्रिलोक को

१-मानस-६-७४-१२। २-मा० ६-५४ से ६-५४-१ तक। वही ६-८२।
३-वा० रा०-५-२६-२१। ४-मानस-५-४३,७। ५-वा० रा० ६-६७-१०८, १०९, १११। ६-वाल्मीकि रामायण, ६।५९।९९, १०६, ६।९९।१७,१८। ६।१००।१३,१५।७-मानस ६।५२।२१, ६।५३।२ ६।८२ से ६,८२,७ तक।
८-वा० रा० ४-३१-११-१५-५-३५-२२। ९-मानस १।२१६।२।
१०-तुमृल पृ० ९;१०।

कँपा दिया था ।[1] अपने पराक्रम के कारण वह प्रसिद्ध हुआ । उसके शौर्य से बड़े-बड़े स्वतंत्र नृप भयभीत थे ।

मकराक्ष के वध से दुखःदग्ध पिता को मेघनाद ने आश्वस्त किया था [2] । लक्ष्मण से युद्ध करने के पहले उसने यज्ञ किया था और फिर वह अपनी सेना के साथ युद्ध-भूमि में आया था[3] ।

युद्ध-भूमि में मेघनाद ने अपने अपार शौर्य का प्रदर्शन किया । उसने आकाशमार्ग से युद्ध किया और अंत में लक्ष्मण पर शक्ति चलायी, जिससे लक्ष्मण अचेत होकर गिर गये[4] ।

तदनंतर उसने 'अजय मख प्रारम्भ किया, पर निकुम्भिला में लक्ष्मण ने मेघनाद का वध कर डाला[5] । लक्ष्मण मख-भूमि में मेघनाद का शव छोड़कर चले गये[6] । यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि अपने वध से पूर्व मेघनाद ने इस घटना को भगवान की लीला समझा ।[7]

पौराणिक विवेचन—

रामायण में कुंभकर्ण वध के अनन्तर दोनों दलों में घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें त्रिशिरा, नरान्तक, देवान्तक महोदय महापार्श्व आदि

१—'समस्त सर्पराज को, तथा फणी समाज को ।
परास्त शीघ्र ही किया, महादुखी बना दिया ।।
महाबली सुरेश को, जयन्त वरिवेश को ।
समीक में हरा दिया, त्रिलोक को कंपा दिया ।।
तुमुल—पृ. १० ।

२—हे तात ! यों आप कभी न रोवें, शोकाग्नि से दग्ध कभी न होवें ।
× × ×
मैं राम के सम्मुख हो लड़ूँगा, जाके सभी का शिर काट दूँगा ।
सौमित्र का भी बल देख लूँगा, लंका पुरी का दुख मैं हरूँगा ।।

३—दक्षिण गयी ज्वाला, किया क्रतु साथियों के साथ में
० ० ०
युद्धार्थ उस पर बैठकर दशशीश का नन्दन चला ।।
० ० ०
घननाद के साथी सभी थे, अस्त्र से सज्जित हुए ।— पृ०४२-४३ ।

४—लंकेश-सुत आकाश पर, जाकर लगा ललकारने ।
कपिवृन्द को शर से वहाँ ही से लगा संहारने ।।—पृ० ०९६ ।

५—सौमित्र के नाराच से घननाद संहारा गया ।—पृ० १२४-१२५ ।

६—घननाद का शव छोड़कर मखभूमि में ही कपि चले ।—पृ० १२७ ।

७—भगवान की लीला समझकर, मौन रहना चाहता ।।—१२५ ।

अतिकाय निशिचरों का वध हुआ[1]। इन प्रमुख योद्धाओं की मृत्युसे शोक-संतप्त महाबलाधिकृत रावण को वीरवर मेघनाद ने अपनी सहानुभूति से आश्वस्त किया [2]।

मेघनाद के द्वितीय युद्ध-प्रसंग में रामायण और मानस में अन्तर है। रामायण में युद्ध के पूर्व मेघनाद का यज्ञ-कर्म वर्णित है।[3] मानस में राम को व्यालपाश-बद्ध करने के पश्चात् 'अजय मख' प्रारंभ किया है। तुमुल में लक्ष्मण को मूर्छित कर देने के बाद उसके 'अजय मख' का उल्लेख है।

मानसकार ने रामायण में वर्णित[4] कई प्रसंगों का एकीकरण कर समास शैली अपनायी है। रामायण में दो बार मेघनाद के यज्ञ करने का उल्लेख है [5], मानस में एक बार और तुमुल में दो बार। रामायण, मानस और तुमुल में उसके यज्ञ-विध्वंस का उल्लेख है। रामायण में मेघनाद के द्वितीय यज्ञ का विध्वंस वर्णित है, मानस में उस यज्ञ का युद्ध के मध्य में ही विध्वंस बतलाया गया है। तुमुल में लक्ष्मण द्वारा मेघनाद के 'अजय मख' का विध्वंस वर्णित है।

मेघनाद-लक्ष्मण युद्ध का रामायण एवं मानस में साम्य है। दोनों में मेघनाद का अदृश्य होकर मायावी युद्ध करने का [6] तथाउसका वाण-वृष्टि से वानर सैन्य के आहत होने का उल्लेख है। [7] तुमुल में मेघनाद का अदृश्य होकर मायावी युद्ध करने का उल्लेख नहीं है।

मेघनाद-वध के पुर्व वानर द्वारा लंका-दाह[8], राम द्वारा युद्ध के लिए प्रयाण[9], वानरों-राक्षसों में घनघोर युद्ध[10], सुग्रीव द्वारा कुंभ की मृत्यु,[11] हनुमान द्वारा निकुम्भ की मृत्यु,[12] राम द्वारा मकराक्षका वध[13] इत्यादि के विस्तारपूर्वक विवरण दिये गये हैं, जबकि तुमुल में केवल मकराक्ष के वध का ही उल्लेख हुआ है।

अपने पक्ष के अनेक वीरों को कालकवलित होते हुए देखकर रावण चिन्तित हो उठा उसने मेघनाद को मायायुद्ध करने का आदेश दिया[14]। यज्ञ में आहुति दे मेघनाद पुनः रणांगण में आकर, अदृश्य होकर

१--वाल्मीकि रामायण-६। ६७।१८ से ६।७१।१०८ तक २-वही-६.७४.४ से ७। ३-वही-६.७३.१८.२६। ४--मानस-६.७४.२, ६.७५.१। ५-वा० रा०-६.७३.१८.२६ तथा ६.८४। ६--वा० रा० ६.७३.५३ ५४. मानस-६ ७२ ३.४। ७--वा० रा० ६.७३ ५१ से ६२। मानस-६.७२.२ से १०।
८-वा० रा० ६.७५.६.३०। ९-वही-६.७५.३४.३९ १०-वही ६.७५.४०.४१. ५९.७० ११-वही ६.७६.६४.९२ वही-१२-६.७७.१०.२२। १३-वल्मीकि रामायण ६.७७.२३.६.७९.२१.३९। १४-वा० रा०-६.८०.२,४।

वाण-वृष्टि करने लगा और उसने राम-लक्ष्मण सहित सम्पूर्ण वानर सैन्य को धराशायी कर दिया परन्तु इतने से ही उसके आकुल मन[1] को शान्ति न मिली । उसके मन में यह विश्वास घर कर गया था कि उसे प्रत्यक्ष युद्ध में राम,लक्ष्मण पर विजय पाना अहंभव है अतएव उसने मायामयी सीताको रथासीन कर युद्ध-भूमि मेंवध कानाट्य किया ।[2] इसे सत्य समझ वानर युद्धसे पराङ्मुख हो गये ।[3] इतना ही नहीं, उक्त सूचना पा राम भी स्वयं विषादमग्न हो गये। सीता-वध के समाचार से उद्भ्रान्त चित्त एवं व्यथित राम को लक्ष्मण[4] ने आश्वस्त करने की चेष्टा की ही कि[5] विभीषण ने आकर सबके समक्ष यथार्थ तथ्य का उद्घाटन कर सबको चिन्तामुक्त कर दिया[6] 'तुमुल' में उपर्युक्त प्रसंग का अभाव है ।

माया-सीता के वध षड्यन्त्र द्वारा अपने विपक्षियों को संकट-ग्रस्त कर मेघनाद निकुम्भिला में यज्ञ करने लगा । उसके इस यज्ञ का महत्व विभीषण ने राम को समझाया[7] और उसके नाश के लिए लक्ष्मण को भिजवाया [8] । आगे चलकर रामायण में विभीषण के आदेशानुसार लक्ष्मण ने शर-संधान कर याज्ञिक मेघनाद को विचलित कर दिया, जिससे वह हवन की समाप्ति के पूर्व संग्रामरत होने के लिए विवश हुआ तुमुल में मेघनाद द्वारा युद्ध करने का उल्लेख नहीं है ।

रामायण में सर्वप्रथम हनुमान के साथ मेघनाद का द्वन्द्व युद्ध[9] और फिर विभीषण के साथ वाग्युद्ध वर्णित है [10] । विभीषण से वाग्युद्ध में परास्त हो मेघनाथ लक्ष्मण से लड़ने लगा और उनसे तुमुल युद्ध करने लगा[11],जिसका सजीव एवं चित्रात्मक वर्णन रायायण में किया गया है ।[12] तुमुल में इस प्रसंग का अभाव है ?

मेघनाथ बध का आधार रामायण एवं मानस में राम का प्रताप ही है । रामायग में वह व्यारव्यात्मक रूप में है [13] और मानस में सांकेतिक रूप में ।[14] परन्तु रामायण की अपेक्षा मानस में गोस्वामी जी ने मेघनाद को परम गति का अधिकारो घोषित कर दिया है, क्यों कि उसने राम-लक्ष्मण का नामोच्चारण करते हुए प्राणत्याग किया[15]तुलसी की भक्ति-साधना इस भेद का मूल है, क्यों कि तुलसीदास ने मेघनाद को 'मरती बार

१–वही-६.८०.२१ से ३६ तक । २–वही ६.८१.१५ से ३१ तक । ३–वही ६.८१.३५, ६.८१.२०.२१ ४-वही ६.८३.१० ५-वा० रा० ६.८३.१४,४४ ६-वही ६.८४.९, १३ ७–वा० रा० ६.८४ १४,१५ मानस ६.७४.४,५८-वा०रा०६.८४ १८,२२ ९-वही ६.८६ १९, ३१ १०-वही ६. ८७. ११, ३१ । ११-बाल्मीकि रामायण ६।८८।३४ । १२–वही-६।८८।३१ से ७७,६।९०।१८ से ७४। १३-
धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणम् ॥
१४-मानस-६।७५।१५ । १५–मानस-६।७६।

कपट सब त्यागा' कहकर परम-पावन बनाकर 'निज कर्म से गति' प्राप्त करायी है, पर तुमुल में मेघनाद ने भगवान की लीला समझकर प्राण विसर्जन किया है ।

मेघनाद का शव रामायण में रण-भूमि में दिखलाया गया है. परन्तु मानस में उसे वीर हनुमान द्वारा लंका-द्वार पर रखवाया गया है। इस सम्बन्ध में मानस पीयूषकार का कथन है हनुमान मेघनाद का शव लंका द्वार पर रख आये, जिससे रावण को शीघ्र ही उसके बध की की खबर मिल जाय और उसे शोक प्राप्त हो। भाव यह कि – ले देख; जिसके बल का तुझे गर्व था, उसकी क्या गति हुई ? अब भी समझ जा·······················या 'लंका-द्वार रख आने' का भाव यह हैं कि इसकी दहादि क्रिया रावण कर ले। ·························इस कर्म से राम-दल के अभयत्व और वीरत्व का दिग्दर्शन कराया गया है और रावण दल की हीनता दिखाई गयी है ।[1] रामायण[2] मानस[3] और तुमुल[4] तीनो ग्रंथों में मेघनाद की मृत्यु पर देवादि की प्रसन्नता दर्शायी गयी है। यहाँ तक की रामायण में तो मेघनाद-बध देवों की सुख प्राप्ति का वर्णन है ।[5]

रामायण में मेघनाद लक्ष्मण युद्ध का समय तीन दिन दिया गया है[6] मानस में केवल एक दिन का संकेत है।[7] तुमुल में इस युद्ध के समय की कोई सूचना नहीं है ।

मेघनाद का चरित्र - चित्रण रामायण और मानस में लगभग सामान पीठिका पर ही प्रस्तुत किया गया है। दोनो ग्रंथों में उसका दिग्विजयी इन्द्रजीत रूप वर्णित है तथा उसका अपरिमित शौर्य और अतुल पराक्रम वर्णित है केवल इसी प्रमुख पात्र में तुलसी ने राम – भक्ति को स्थापना नहीं की। पर तुमुल में उपर्युक्त भावों की संक्षिप्त व्यंजना है ।

रामायण तथा मानस में वह याज्ञिक बताया गया है और साथ हो ऐन्द्रजालिक भी। तुमुल में भी उसे याज्ञिक बताया गया है, पर युद्धवीर के नाते सभी ग्रंथों में उसका युद्ध कौशल चरम-सीमा पर अंकित किया गया है। संक्षेप में, वह तुमुल में भी पूर्वपरंपरा के अनुसार एक वीर, जयी, पराक्रमी योद्धा के रूप में चित्रित है।

१--मानस पीयष-लंका कांड । पृ० ४०१ ।
२—वाल्मीकि रामायण-६।९०।८७,८९ । ३—मानस-६।७६।२,३।
४—तुमुल-पृ० १२६। ५—वा० रा०-६।९३।१०। ६—वही-६।६१।२४।
७—मानस-६।७४।१३।

३ राम—

पं॰ श्यामनारायण पांडेय ने 'तुमुल' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का तीन स्थानों पर वर्णन किया है। यथा—

युद्ध-भूमि में राम ने राक्षसी सेना का दूर तक पीछा किया और अनेक राक्षसों का संहार कर, मकराक्ष का वध किया।[1]

लक्ष्मण-मेघनाद युद्ध में मूर्छित लक्ष्मण को देखकर वे बड़े दुखी हुए और बन्धु- स्नेह वश सहज करुण विलाप करने लगे। कवि ने इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन किया है।[2]

विभीषण के परामर्शानुसार राम ने लक्ष्मण को मेघनाद वध तथा लंका नाश का आदेश दिया।[3]

लक्ष्मण की विजय सुनकर राम ने लक्ष्मण की पीठ ठोंकी और उनकी भूरि-भूरि सराहना की।[4]

पौराणिक विवेचन—

रामायण में मेघनाद वध के लिए लक्ष्मण को जाने का आज्ञा

१– 'भागते हुए रजनीचरों का, दूर तक पीछा किया।

o * *

उनके करों द्वारा करोड़ों, वीर संहारे गये।

* o *

संग्राम में मारा गया, लड़ता हुआ मकराक्ष भी।

* * *

रघुनाथ के नाराच के, भय से भगे निशिचर सभी।'

पृ० १३-१४।

२– 'तुमुल' पृ० ८५-९५।

३– 'इससे सदल बल जा दशानन, के तनय का वध करो।
हे बन्धु; धनु सायक संभालो, नाश लंका–मद करो॥'

पृ० ११६।

४– 'जब यह सुना कि विजय मिली, घननाद पर, बलधाम ने।
तब पीठ ठोंको बन्धु-शिर पर; हाथ फेरा, राम ने।

* * *

तुमने विजय पायी तुम्हारी, मैं बड़ाई क्या करूँ।
तुमने लड़ाई की कठिन, अब मैं लड़ाई क्या करूँ॥'

पृ० १२८-११९।

विभीषण ने राम से माँगी ।[1] मानस में अन्तर्यामी राम ने स्वयं लक्ष्मण को इस कार्य के लिए आज्ञा प्रदान की ।[2] इस भेद का विवेचन 'विभीषण' के अनुशीलन के अन्तर्गत किया गया है ।

पौराणिक ग्रंथों में राम की वीरता का पर्याप्त चित्रण मिलता है। वे धर्मवीर, दयावीर, विद्यावीर, महावीर आदि सर्व वीरोपलक्षणों से युक्त अंकित किये गये हैं। सीता स्वयंवर के समय स्वयंवर भूमि में उपस्थित राजाओं ने राम को वीरता का साक्षात् प्रतीक माना और उनके वीर रूप में प्रचंडतम शक्ति का दर्शन कुटिल नृपों ने तथा उनके दुष्ट बिमर्दन रूप का दर्शन असुरों ने किया ।[3] गोस्वामी जी ने उस अलौकिक शक्ति का दिग्दर्शन उनकी आजानु भुजाओं में कराया है[4] जिसकी सीमा अनुल्लंघनीय है। राजा जनक ने भी राम के पराक्रमी रूप को विलक्षण कहकर उनकी सराहना की ।[5] जमदग्नि भी राम के अद्भुत पराक्रम की सराहना कर उनके दर्शन की लालसा को पूर्ण किये बिना नहीं रहे[6] और स्वयं भी उनके अद्भुत तेज से पराजित होकर स्वयं जड़वत् हो गये ।[7] मानस में राम के वीर रूप की सतत् झाँकी हमें समस्त लंका कांड में प्राप्त होती है ।[8] तुमुल में मकराक्ष-वध के प्रसंग में उनकी वीरता अंकित की गयी है।

लक्ष्मण के प्रति राम के प्रेम का प्रबलतम करुण प्रवाह अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा हृदय-द्रावक है। 'रामायण तथा मानस में युद्ध-प्रसंग में करुण रस तथा भ्रातृ-स्नेह की गंगा-जमुनी प्रबल धाराओं का संगम है; जब कि लक्ष्मण इन्द्रजीत के नाग बाण से मूर्छित हो जाते हैं ।[9] रामायण के युद्धकांड का समस्त ४९ वाँ सर्ग राम के उत्कट भ्रातृ-प्रेम का निर्झर है जो लक्ष्मण की शक्ति का प्रबल वज्राघात पाकर अचलवत् गंभीर राम के गंभीर मानस से फूट निकलता है। इसी प्रकार रावण के शक्ति-प्रहार से आहत लक्ष्मण को देखकर जहां राम ने अपने अलौकिक आह्वान व अंतस्थित स्वरूप उद्बोधन द्वारा लक्ष्मणको स्वस्थ कर लिया[10], वहीं रामायण में पूर्ववत् प्रलाप कर उठे, व्याकुल हो उठे, आतुर हो उठे, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये ।[11] तुमुल में मेघनाद के बाण से मूर्छित लक्ष्मण को देखकर राम प्रलाप कर उठे ।[12]

१–वाल्मीकि रामायण: ६।८४।१८।२२ । २-मानस: ६।७४।७ । ३–मानस: १।२४०।४७ । ४–वही २।२५९।८ । ५–वा०रा० १।६७।२१ । ६–वाल्मीकि रामायण: १।७५।१ । ७–वही १।७।१२ । ८–मानस: ६।१०।१-८ । ९–वा० रा० ६।४९।५,७,१७ । १०–मानस- लंका कांड-८३।६-६ । ११-वाल्मीकि रामायण- ६।१०२।९ से १३ तक । १२–तुमुल-पृ० ८५ से ९५ तक ।

लक्ष्मण की विजय सुनकर राम की प्रसन्नता एवं लक्ष्मण के प्रति स्नेहार्पण आदि का उल्लेख रामायण में किया गया है और मानस में 'कृपासिंधु' कहकर राम की प्रसन्नता दर्शायी गयी है। तुमुल में भी उपर्युक्त भावों की संक्षिप्त व्यंजना है।

४-भरत—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने भरत का उल्लेख एक स्थान पर ही किया है। जिस समय हनुमानजी द्रोणाचल पर्वत को उठाकर व्योम से ला रहे थे, उस समय रात्रि के अंधकार के कारण भरत ने उन्हें नही पहचाना। उन्होंने हनुमान को तृण-बाण से घायल कर धरती पर गिरा दिया। हनुमानजी 'राम राम' कहकर धरती पर गिरे। उनकी आवाजको सुनकर भरत व्याकुल हो गये। उन्हें दुख हुआ कि मैं राम के काम न आ सका और न उन्हें सुख ही पहुँचा सका।[1]

बाद में भरत ने हनुमान से परिचय पूछकर उन्हें प्रणाम किया तथा राम-भक्त जानकर उन्हें 'धन्य' कहा। भरत ने अपने अपराध के लिए हनुमान से क्षमा माँगी और कहा कि हे कपिवर ! तुम धरती पर से उठो और मेरे आकुल हृदय की इच्छा पूरी करो।[2]

पौराणिक विवेचना—

पौराणिक ग्रंथों में भरत के चरित्र के दो पहलू उल्लेखनीय हैं- १) युद्ध-कांड में संजीवनी बूटी ले जाते समय हनुमान द्वारा भरत का सजग एवं जागरूक रूप देखना। (२) अवधि समाप्त प्राय होने के अवसर पर प्रतीक्षक भरत की आकुल और आतुर दीन दशा।

१- पर्वत उठाये हरहराते, आ रहे थे व्योम से।
पहचान पाया भरत ने, उनको न तम के तोम से॥
तृण-बाण से मारा, गिरे, हा, 'राम-राम' पुकार के।
सुन रव भरत व्याकुल उठे, निज-देह-गेह विसार के॥
डगमग चले हा, दैव काम न, राम के मैं आ सका।
जो कुछ किया दुख ही दिया, उनको न सुख पहुँचा सका॥ पृ.९९।

२- हे बन्धु, तुम हो कौन तुमको, बार-बार प्रणाम है।
*　　　*　　　०
तुम ज्ञात होते देखने से, राम-भक्त अनन्य हो।
अनुमान मेरा ठीक हो, तुम, राम-धन हो, धन्य हो॥
०　　　०　　　०
हे कपि वरेण्य क्षमा करो, अनजान के अपराध को।
भू से उठो, पूरी करो, आकुल हृदय की साध को॥ पृ. १००।

प्रथम चित्रण का वाल्मीकि रामायण में अभाव है। किन्तु मानस में दो भक्तों के पूर्व-परिचय कराने के हेतु,[1] भरत का सचेष्ट जागरूक रूप प्रदर्शनार्थ[2] तथा भरत शक्ति दिग्दर्शनार्थ इस अंश का संयोग तुलसीदास ने किया है।

महर्षि वाल्मीकि का उद्देश्य भक्ति का चित्रण नहीं है। वे हनुमान की संजोवनी आनयन की त्वरा में इस प्रसंग के संयोग से बाधा डालना उचित नहीं समझते थे। परन्तु 'तुमुल' में अंकित यह प्रसंग मानस के अनुसार है।

भरत के चरित्र के इस पक्ष के बारे में रजनीकांत शास्त्री लिखते हैं-'''' ''''''' जो भरत राम-बन गमन की वार्ता सुनकर पिता का भी मरण भूल गये और शीघ्रातिशीघ्र उनकी दाहादि क्रियाएँ कर रामचन्द्र को मनाकर वापस लाने के लिए अपने दल-बल के साथ चित्रकूट चल पड़े, वे ही भरत रामचन्द्र को उक्त दारुण परिस्थितिके चंगुल में फँसे हुए सुनकर भी टस से मस न हुए..........हनुमान से लक्ष्मण मूर्च्छाविषयक उक्त दुखद वृत्तान्त सुनकर भी वे केवल इतना ही कहकर चुप लगा जाते हैं, – 'अहह देव मैं कत जग जायेउं। प्रभु के एकहु काज न आयेउँ।'[3] ....इतना ही नहीं, वे रामचन्द्र के तत्कालीन संकट की सूचना बशिष्ठ, शत्रुघ्न, अमात्यगण व किसी अवधवासी को देते तक नहीं, उनकी सहायता का कुछ प्रवन्ध करना या करवाना तो दूर रहा। ....चाहे जिस दृष्टि से भरत के सम्पूर्ण आचरणों पर विचार किया जाये, उनके अन्यथा देदीप्यमान चरित्र में उक्त त्रुटि रह ही जाती है और उसके परिमार्जन का कोई भी उपाय दृष्टिगोचर नहीं होता।[4]

(५) विभीषण—

'तुमुल' में पं० श्यामनारायण जी पान्डेय ने विभीषण का दो बार उल्लेख किया है। यथा—

मेघनाद जब निकुम्भिला में अजय मख प्रारम्भ करता है तब विभीषण राम को मेघनाद के यज्ञ का महत्व बतलाता है और वे राम को यज्ञ-भूमि में ही मेघनाद का बध करने का परामर्श देता है।[5]

निकुम्भिला में मेघनाद की बात सुनकर जब लक्ष्मण का बाण धनुष पर रुक जाता है तब विभीषण लक्ष्मण को शर-सन्धान करने का आदेश

---

(१) मानस ६।५८।१ से ६।५९ तक। (२) वही–६।५७।८ तथा ६।५८।
(३) वही—६।५९।६। (४) मानस मीमांसा—पृ० १७५–१७७।
(५) अतएव उस पर यज्ञ में ही, टूट पड़ना चाहिए। पृ० ११४—११५।

देते हैं।[1] इस प्रकार 'तुमुल' में विभीषण का राम के प्रति प्रगाढ़ प्रेम व्यक्त हुआ है।

पौराणिक विवेचनः—

माया सीता बध के षडयन्त्र द्वारा अपने विपक्षियों को संकट ग्रस्त अवस्था में छोड़ मेघनाद निकुम्भिला में यज्ञ करने लगा। उसके यज्ञ का महत्व विभीषण ने राम को बताया[2] और लक्ष्मण के लिए उसके विनाशार्थ जाने की राम से आज्ञा माँगी।[3] मानस में अन्तर्यामी राम मे स्वयं उसे लक्ष्मण सहित जाने की आज्ञा दी।[4] इस भेद का कारण भी स्पष्ट है कि रामायण में राम माया सीता-बध से किंकर्तव्य विमूढ़ एवं विक्षुब्ध थे, अतएव विभीषण द्वारा उन्हें सचेत किये जाने की आवश्यकता थी, मानस में इस परिस्थिति का अभाव है। 'तुमुल' में यह प्रसंग रामायण के अनुसार है।

रामायण में विभीषण के आदेशानुसार लक्ष्मण ने शर संधान कर याज्ञिक मेघनाद को विचलित कर दिया, जिससे हवन की परिसमाप्ति के पूर्व ही उसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा।[5] उसने सर्वप्रथम हनुमान[6] के साथ द्वन्द्व युद्ध और बाद में विभीषण के साथ वाग्युद्ध किया।[7] 'तुमुल' में विभीषण के साथ मेघनाद के बाग्युद्ध का उल्लेख नहीं है। विभीषण के सम्बन्ध में लक्ष्मण के प्रति मेघनाद को-"ऐसे अधम रण के लिए क्या मत विभीषण ने दिया।"-[6] यह उक्ति ही अंकित है।

पैराणिक ग्रंथों के अनुसार विभीषण सुमंत्रणा देने में अत्यन्त प्रवीण है, अतएव राम ने भी सभी योग्य व्यक्तियों की अपेक्षा विभीषण को सचिवोत्तम का स्थान दिया हैं और आवश्यक अवसरों पर विभीषण ने ही उन्हें उपयुक्त मंत्रणा दी है। तुमुल में विभीषण के इस रुप की झांकी अंकित है।

मेघनाद यज्ञ की सूचना राम को देने के कारण तथा बाद में लक्ष्मण द्वारा उसका बध करवाने के कारण विभीषण पर चारित्रिक निन्दा का लांछन लगाया जाता हैं। परन्तु उसकी चारित्रिक निन्दा के निरा-

---

(१) घननाद की सुन बात धनुपर वीर का शर रुक गया।

° ° °

यह देख चिल्लाकर विभीषण ने कहा मत चूकिये। अवसर न जाने
दें इसे शर के अनल से फूकिये॥ पृ० १२४।

(२) वा.रा. ६।८४।१४,१५। मानस ६।७४।४,५ (३) वा०रा०६।८४।१८,२२। (४) मानस-६।७४।७ (५) वा० रा० ६।८६।३ से १७ तक। (६) वही-६। ८६।१६।३१। (७) वही - ६।८७।११,३१।

करण का एक प्रबल पक्ष यह है कि उसने असत्य एवं अन्यायी पक्ष का अवलम्ब त्याग कर सत्य, न्याय और सदाचार के पक्ष का आश्रय लिया था, इसलिए लंका निवासिनी राक्षसियों ने विभीषण की इस नीति की प्रशंसा की है।[1]

इस तरह से हम देखते हैं कि पाण्डेय जी ने तुमुल में प्रसंगों का चयन बाल्मीकि रामायण और राम चरितमानस के आधार पर किया है।

जय हनुमानः—

पं० श्यामनारायण पाण्डेय के 'जय हनुमान' काव्य में विद्यमान व्यक्तियों का पौराणिक अनुशीलन इस प्रकार है :—

१ हनुमानः—

जाम्बन्त द्वारा हनुमान को प्रोत्साहित करने के प्रसंग से 'जय हनुमान' की कथा आरंम्भ हुई हे। तत्पश्चात् हनुमान ने महेन्द्र पर्वत पर आरोहण किया।[2]

मैनाक के पूर्व हनुमान एवं बानरों का संवाद वर्णित है।[3] बाद में उन्होंने आकाश मार्ग से गमन किया है। तत्पश्चात् उनका श्रम हरने के लिए मैनाक समुद्रके ऊपर आया पर हनुमान उसका स्पर्श कर उड़ गये।[4] इसका कारण यह है कि राम-कार्य लगे हुए भक्त को क्षण भर भी रूकना असह्य था।[5]

आगे बढ़ने पर सुरसा ने उनका मार्ग रोका।[6] 'राम कार्य मैं कर आऊं' की वे प्रतिज्ञा करते हैं। सुरसा के न मानने पर वे उसके मुख में घुसकर कर्णरन्ध्र से बाहर निकल आते हैं और आगे चले जाते हैं।[7]

छायाग्राहिणी सिंहिका हनुमान को निगल डालनेके लिए आती है पर हनुमान जी उसके मुह में घुसकर अपने नखों से उसका पेट चीरकर उसके शरीर को सागर में फेंक देते हैं।[8]

---

(१) 'तुमुल' — १२३। (२) वा० रा०–६।९४।४१।
(३) उठो गरजते सिन्धु लांघकर हम सब का उद्धार करो।

* * *

सिंह सदृश उछले महेन्द्र गिरि पर धमके बजरंगबली।'' पृ०८।९।
(४) 'जय हनुमान' १०,११,१२। (५) "हनुमानका श्रम हरने मैनाक जलधि ऊपर आया। छूकर उसे और ऊपर उड़ने में कौशल दिखलाया। पृ० १३।
(६) राम-कार्य में लगे भक्त को था असह्य रूकना क्षणभर। पृ० १३।
(७) चली देव प्रेरित सुरसा फिर राह रोककर खड़ी हुई।

* * *

मुँह में घुसकर कर्णरन्ध्र से बाहर तुरन्त निकल आये।–पृ१४–१५।
(८) मुँह मे घुसकर तीक्ष्ण नखों से पेट कररकर चीर दिया। और अगम सागर के जल में उसका फेंक शरोर दिया। पृ० १६।

तत्पश्चात् लंका रक्षक पर्वत के एक शिखर पर आकर हनुमान लंका में प्रवेश करने की विधि सोचकर सावधानी से चले जाते हैं।[1]

लंका में प्रवेश करते समय लंकिनी उन्हें रोकती है। वह उन्हें एक थप्पड़ भी मारती है। पर हनुमान जी उसे एक ही चाँटे में मारकर जमीन पर गिरा देते हैं। लंकिनी ही बाद में हनुमान को अशोक-वन में विद्यमान सीता का पता बताती है।[2]

तत्पश्चात् सीता के दर्शन के लिए उत्सुक हनुमान जी लंका में प्रवेश करते हैं। कवि ने लंकानगरी, रावण-राज्य एवं उनकी विविध रंगरेलियों का सूक्ष्म वर्णन विस्तार से किया है।[3]

सीतान्वेषण में तत्पर हनुमान जी रावण-महल के आँगन में कूदे। पर वहाँ सीता के दर्शन न होने पर पुर पथ से होते हुए वे अशोक वन में पहुँचे।[4]

अशोक वन में हनुमान ने कुछ राक्षसियों से घिरी कृशकाय दीन-हीन नारी को देखा और बाद में उसे रूप-रंग के माध्यम से सीता के रूप में पहचाना।[5]

१—लंका के रक्षक पर्वत के एक शिखर के वृक्षतले।
भले सोचकर विधि प्रदेश की सावधान हनुमान चले।। पृ० १७।

२—ओ निडर चपल बन्दर तू निर्भीक कहाँ जाता है?
० ० ०
कानों के पास भयंकर खिजलाकर थप्पड़ मारा।
० ० ०
........कह कपि ने थप्पड़ मारा वह गिरी धरा पर....
सीता अशोक वन में है।—पृ०२२-२३।

३—जय हनुमान पृ० २४, २५, २६।

४—हनुमान डरे पर कूदे आंगन में कुछ आशा से।
रघुकुल की श्री सीता के दर्शन को अभिलाषा से।
० ० ०
उछले पुर पथ पर आये पहुँचे अशोक तरु वन में।-पृ०२६-२८।

५—निःशंक किसी को घेरे कुछ क्रूर नारियाँ बैठीं
० ० ०
कुछ रूप-रंग के माध्यम से किसी तरह पहचाना।
-पृ०२८-२९।

इसी समय रावण वहाँ आया, जिसके तेज से डरकर हनुमान वृक्ष के ऊपर चढ़ गये । फिर भी नीचे के सारे दृश्य उनके समक्ष थे ।[1]

रावण के चले जाने के बाद हनुमान जी वृक्ष के नीचे की डाली पर उतरे और उन्होंने राम-यश, राम-सुग्रीव मित्रता, राम द्वारा खर-दूषण वध का उल्लेख किया तथा बाद में स्वयंको रामदूत कहकर सीताको अपना सही परिचय दिया । [2] सहसा विश्वास होने पर हनुमान ने सीता को राम द्वारा दी गयी अंगूठी प्रमाण रूप में प्रदान की ।[3]

सीता ने हनुमान जी से रामके संबंध में विविध प्रश्न पूछे, जिनके उत्तर में हनुमान जी ने सीता को राम की दिनचर्या सुनायी ।[4] सीता ने हनुमान को चूड़ामणि देकर विदा दी । [5]

फल खाने के बहाने हनुमान ने सीता की आज्ञा लेकर अशोक वन का विध्वंस कर दिया ।[6]

अशोक-वन-विध्वंस का समाचार सुनकर क्रुद्ध रावण ने हनुमान को पकड़ लाने के लिए राक्षसों को भेजा पर हनुमान ने क्षण भर में उस राक्षसी समूह का नाश कर डाला ।[7]

तत्पश्चात् अक्ष का आगमन हुआ, पर हनुमान जी ने उसे भी मार डाला ।[8] अन्त में मेघनाद आया । उसके ब्रह्मास्त्र प्रयोग से हनुमान अचेत हो गये और राक्षसों ने उन्हें बाँधकर रावण के समक्ष उपस्थित किया । रावण-मिलन-मोहवश हनुमान ने एक बार भी आह न की ।[9]

१—,लंकाधिप रावण आया

o o o

लंकेश-तेज से डरकर कपि और चढ़ गये ऊँचे ।
फिर भी समक्ष दृग के थे नीचे के दृश्य समूचे ।–पृ० ३० ।

२—जय हनुमान–पृ० ४३, ४४ ,४५, ४६ ।

३—प्रभु ने दी यह लो अँगूठी–पृ० ४६ ।

४—कपि ने उत्तर में राघव की दिनचर्या ही कह डाली । पृ–४९ ।

५—'चूड़ामणि लो, जाओ तुम' । –पृ० ५१ ।

६--,फल खा खा तरु लगे तोड़ने
वृक्ष भंग-रव खग कोलाहल से भयभीत हुई लंका । पृ० ५२ ।

७—'तनिक देर में निशाचरी सेना का सत्यानाश हुआ । पृ० ४८ .

८—'गला अक्ष का पकड़ प्राण पी गये तुरत बजरंगबली । –पृ० ६२ ।

९—'ब्रह्मास्त्र पवनसुत पर छोड़ा गिरे अचेत धरा पर कपिवर............

× × ×

अंग-अंग कस बाँध दिया...............

× × ×

रावण मिलन मोह वश कपिने एक बार भी आह न की । –पृ०६६-६७

रावण के प्रहस्त द्वारा परिचय पूछा जाने पर हनुमान ने 'राम-दूत' कहकर अपना परिचय दिया। साथ ही उन्होंने ऐसा भी कहा कि-'मैं सुग्रीव द्वारा भेजा गया हूँ।'[1] बाद में हनुमान ने रावण को धर्म; नीति और कर्म का महत्व बतला कर सीता को छोड़ देने के लिए कहा।[2]

हनुमान की बातें सुनकर रावण ने उन्हें प्राण-दण्ड देनेकी घोषणा की, पर विभीषण के परामर्शानुसार उसने उनकी पूँछ में वस्त्र बाँधकर आग लगा देने का आदेश दिया शीघ्र ही उनकी पूँछ में वस्त्र बाँधकर आग लगा दी गयी।[3]

क्षणभर में हनुमानजो ने सारी लंका में आग लगा दी। कवि ने इस लंका-दहन का सूक्ष्म एवं व्यापक चित्राँकन किया है।[4]

सागर में स्व-पुच्छ-वह्नि शांत कर नगर दहन से शंकाकुल कपि पुन: सीता के पद का दर्शन करने के लिए आये और वहाँ से वे सत्वर राम से मिलने के लिए लौटे।[5]

लंका से लौटते समय गगनगामी हनुनान ने महेन्द्र गिरि को देखते ही निनाद किया और हनुमान ने जाम्बवन्त अंगदादि वरिष्ठों के पदों का वंदन कर उन्हें सीता तथा लंका का वृत्तांत सुनाया। वानरों ने हनुमान से सब समाचार सुन बड़ी प्रसन्नता प्रकट की।[6]

१- 'जय हनुमान'-पृ० ७३-७४। २- वही, पृ० ७४-७५।

३- प्राण दण्ड दो मारो चलो .... घटने लगे वस्त्र घी तेल.......
रावण का पाकर आदेश .... झट से आग लगा दी गयी।
पृ० ७६-७८-७९।

४- 'जय- हनुमान'-पृ० ८३-९०।

५- कपीश पुच्छ वह्नि शांति
के लिए.... ... समुद्र
में गिरे ....।
× × ×
नगर-दहन से शंकाकुल कपि
पुन: रमा-पद दर्शन कर
× × +
चले राम सन्निधि सत्वर-पृ० ७०-७१।

६- .... गिरि महेन्द्र को
देखा तो किलकार किया।
× × ×
जाम्बवान अंगद वसिष्ठ
कपियों के पद छू..................
० ० ०
मैंने सीता के चरणों का
दर्शन किया.................. ।
नगर जला डाला क्षण में
धन्य धन्य हो बलशाली-पृ० ९६ से ९९।

बाद में हनुमान जी सभी वानरों के साथ राम के पास आये और उन्होंने सीता-प्रदत्त चूड़ामणि राम को अर्पित कर सीताकी कुशलता व उनकी दयनीय दशा का वर्णन कर राम से यह प्रार्थना की कि वे शीघ्र ही उन्हे मुक्त करायें।[1] हनुमान के शौर्य, साहस और सेवा-भाव से पुलकित राम ने उन्हें अपने गले लगा लिया। राम के स्पर्श से हनुमान का अंतर्ज्ञान जागृत हुआ और उन्हें भीतर बाहर सर्वत्र राम ही राम दिखायी देने लगे। इस भाव-दशा में हनुमान ने राम का जयगान किया।[2]

पौराणिक विवेचन

'जय हनुमान' का मुख्य विषय सीतान्वेषण ही है। परन्तु उसके प्रतिपादन में साम्य होते हुए भी 'जय हनुमान' एवं अन्य पौराणिक ग्रंथों में भेद है।

रामायण में हनुमान के समुद्रोल्लंघन के विस्तृत वर्णन द्वारा कथा आरम्भ होती है; जब कि मानसकार ने वाल्मीकि रामायण की भाँति महेन्द्राचल का वर्णन न कर केवल एक पंक्ति में ही पर्वतारोहण की सूचना दी है।[3]

१- हनुमान का मुख निहारते सफल मनोरथ कीश चले।

o o o

हरी समीप चूड़ामणि रख किंचित् हट कर बोले।

o o o

नाथ अभी सीता जीवित है

o o o

और बहुत दिन जी न सकेंगी

o o o

मुक्ति दान देने में जन को
क्यों होती अब देरी है। —पृ० १०२-१०४।

२- कपि को खींच पुलक आँखें भर
गले लगाया राघव ने।
तन-स्पर्श से हनूमान का ज्ञान जगाया राघव ने।

o o o

बाहर भीतर राम राम ही
राम लीन कपि पुलक-पुलक

o o o

जय रघुनायक; जन सुखदायक —पृ० १०४-१०५।

३- मानस- ५।१।५।

रामायण में मैनाक के पूर्व वृतान्त का विस्तृत वर्णन है।[1] 'जय हनुमान' में संक्षिप्त। मानस में इस प्रसंग का अभाव है। मानस, आनन्द रामायण[2] एवं जय हनुमान में हनुमान का स्पर्शमात्र वर्णित है। मानस में हनुमान का विश्राम न करने का कारण भी भक्ति रसाप्लावित है।[3] इस प्रसंग में पांडेयजी मानसकार के साथ हैं।

हनुमान–सुरसा संवाद वाल्मीकि रामायण में विस्तृत मानस में अपेक्षाकृत संक्षिप्त है। 'जय हनुमान' में भी इसका वर्णन सीमित है। मानस में सुरसा संवाद के पश्चात् मैनाक प्रसंग वर्णित है। मानस-पीयूष-कार के अनुसार यह कथा-क्रम अधिक उपयुक्त है किन्तु जय हनुमान में मैनाक प्रसंग के पश्चात् हनुमान-सुरसा प्रसंग वर्णित है।

सुरसा-प्रसंग का तीनों में साम्य है। हनुमान ने वाल्मीकि रामायण में सुरसा से मिलने के लिए लंका से लौटकर आने की शपथ ली है।[4] मानस में 'राम काज करि फिरि मैं आवौं' कहकर उन्होंने आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया है। इस प्रसंग में पांडेयजी मानसकार के साथ हैं।

छायाग्राहिणी सिंहिका के प्रसंग का उल्लेख रामायण में विस्तारपूर्वक दिया गया है[5], परन्तु वह मानस[6] एवं जय हनुमान में संक्षिप्त है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान ने सिंहिका का मर्मस्थान विदीर्ण किया है; जबकि जय हनुमान के अनुसार उन्होंने उसका पेट चीर डाला है। मानसकार ने सबका समन्वय 'ताहि माहि' में कर दिया है।

हनुमानने त्रिकूट पर्वत पर स्थित होकर लंका देखी, उसका वर्णन वाल्मीकि रामायण में विस्तृत है[7], जब कि मानस में एक छंद में उसका वर्णन है।[8] जय हनुमान में यह प्रसंग अत्यंत संक्षेप में है।

वाल्मीकि रामायण में हनुमान के मानसिक संघर्ष की व्याख्या की गयी है कि वे किस प्रकार लंका में प्रवेश करें।[9] मानस में उसका संकेतमात्र है।[10] जय हनुमान में 'प्रवेश की विधि सोच ली' कहकर संकेत किया है। अध्यात्म रामायण में लंकिनी सीता का निवास स्थानादि का

१–वाल्मीकि रामायण ५।११५-११६। २–आ० रा० ६।११।१२। ३–मानस ५।१। ४–वा०रा०-५।१।१४६। ५–वा० रा० ५।१।१८०–१६०। ६–मानस ५।२।३। ७-वाल्मीकि रामायण-५।२।१२४। ८-मानस-५।३। ९-वा० रा० ५।२।३१ ३५। १०-मा. ५।३।

भी निर्देश करती है।[1] जय हनुमान में यह प्रसंग अ० रामायणके अनुसार है। मानस में केवल ब्रह्माजी के वाक्यों का उल्लेखमात्र है।[2] वाल्मीकि रामायण[3] एवं मानस[4] में लंकिनी पर मुष्टि प्रहार का उल्लेख है, जय हनुमान में झापड़ मारने का। उक्त तीनों ग्रन्थों में केवल इतना ही व्यक्त है कि किसी वानर के पराक्रम से लंकिनी के पराजित होने पर राक्षसों पर आपत्ति का आगमन निश्चित है।[5]

वाल्मीकि रामायण[6] एवं जय हनुमान में लंका का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसका मानस में नितान्त अभाव है। सीतान्वेषण में तत्पर हनुमान ने वाल्मीकि रामायण में राजपथ, जनपथ खोजकर अशोक वन में स्वतः ही प्रवेश किया, परन्तु आनन्द रामायण; पुलस्त्य रामायण, एवं मानस के अनुसार उन्होंने विभीषण के परामर्श से सीता के दर्शन किये। जय हनुमान में यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण कें अनुसार है।

वाल्मीकि रामायण में हनुमान ने वाटिका के समीप एक प्रासाद में मलिनवदना, वेंणीधारिणी सीता के दर्शन किये।[7] परन्तु मानस में उन्होंनें उन्हें अशोक वृक्ष कें नीचें देखा। 'जय हनुमान' में यह प्रसंग मानस के अनुसार है।

अध्यात्म रामायण में हनुमान ने सीता के सौन्दर्य, तेज एवं लक्षणादि के सहारे उन्हे पहचाना[8]। इन विचारों एवं परीक्षणों का मानस एवं जय हनुमान में अभाव है। सीता को देख हनुमान सीता के गुण' रूप, वैभव, चरित्रादि का सम्यक् निरीक्षण करते हुए सीता के प्रति करुण हो उठे।[9] 'जय हनुमान में वे उसके रूप, रंग के माध्यम से ही उन्हें पहचानकर उनकी दयनीय दशा पर दुखित हो उठे। मानस में परम दुखी भा कहकर संकेत किया है। वाल्मीकि रामायण में[10] एवं जय हनुमान में सीता को राक्षसियों द्वारा घिरा हुआ दिखाया गया है' मानस में नहीं।

रावण को आता हुआ देख हनुमान ने अपने को तरु पल्लवों से आवृत्त कर लिया।[11] जय हनुमान में वे वृक्ष के ऊपर ऊँचे भाग पर

१–अ. रा. ५।१ ५४–५६। २-मा. ५-३–६८। ३–वा. रा. ५-३-३८। ४–मा. ५-३-४। ५-वा. रा. ५ ३ ४७। मा. ५-३-७। ६–वा. रा. ५ ४ सर्ग से १२ तक। ७–वा. रा. २-१५-५५-२६। ८–अ० रा०-२. २. ६। ९–वा० रा०-५. १५. २०, २७, ५. १५. २८,४४.। १०-वा० रा०-५. १६. ३८. ५४.। ११-अ० रा०–५.२,१४.।

चढ़ गये। मानस में रावण के आगमन के पूर्व ही वे तरु पल्लवों के मध्य विराजमान थे।[1]

निशाचरियों के चले जाने के पश्चात् शाखा पर स्थित हनुमान ने रामचरित वर्णन किया जिसे सुनकर सीता आशंका से अभिभूत हो उठीं।[2] हनुमान को निकट आता देखकर उसे लगा कि यह कहीं वानर रूपधारी रावण न हो। हनुमान ने तत्काल उनकी शंका का निवारण कर राम–लक्ष्मण यश और राम–सुग्रीव मैत्री का वृतान्त कहकर अपना परिचय दिया। तत्पश्चात् उन्होंने सीता को रामनामांकित मुद्रिका देकर सीता का विश्वास दृढ़तर किया।[3] 'जय हनुमान' में हनुमान ने उक्त वर्णन करने पर राम द्वारा दी हुई अंगूठी देकर सीता का विश्वास अर्जित किया।

वाल्मीकि रामायण[4] एवं आध्यात्म रामायण[5] दोनों में हनुमान ने सीता से चूड़ामणि पाकर उनसे विदा ली। 'जय हनुमान' में यह प्रसंग उक्त दोनों ग्रन्थों के अनुसार है। तत्पश्चात् वाटिका विध्वंस का उद्देश्य वाल्मीकि रामायण में शत्रु-बल ज्ञान की परीक्षा एवं रावण क्रोध उत्पादन है।[6] मानस में अत्यन्त स्वाभाविक वानरस्वभावोचित फल की बुभुक्षा अंकित है। 'जय हनुमान' में यह प्रसंग उक्त दोनों ग्रंथानुसार है।

अशोक-वन के विध्वंस की सूचना पाकर क्रुद्ध रावण ने हनुमान को पकड़ लाने के लिए अस्सी सशस्त्र किंकरों को भेजा, पर हनुमान ने उन सबका संहार कर दिया।[7]

तत्पश्चात् जम्बूमाली, आमात्य-पुत्र, पंच वीरादिका वध कर हनुमान ने रावण के पुत्र अक्ष का भी काम तमाम कर दिया।[8]

इस भीषण प्रसंग के उपरान्त रावण ने मेघनाद को भेजा। रामायण में हनुमान ने स्वयं को ब्रह्मास्त्र बन्धन से मुक्त असमर्थ जान[10] तथा रावण से साथ वार्तालाप करने के अभिप्राय से[11] स्वयं को ब्रह्मास्त्र में बँधवा लिया, जबकि मानस में ब्रह्मास्त्र की महिमा का रक्षण ही हनुमान के बँध जाने का कारण बतलाया गया है।[12] 'जय हनुमान' में यह प्रसंग दोनों ग्रंथों के अनुसार है।

१—वा० रा०-५.२८.१७. अ० रा०-५.३.१२.। २—वा०रा० ५.३०। ३—वा० रा० ५.३८.६८.। ४—अ० रा० ५.३.४६.५२। ५—वा०रा० ५.४१.७.१३.२१। ६-वा०रा० ५.४३.१.१२। ७-वा०रा० ५.४४.४५.४६.४७। ८—वा०रा० ५.४८.४२। ९—वा० रा० ५.४८.५५। १०—मानस ६.१९। ११-वा० रा० ५.४८.६२। १२—मानस ५. २१।

रामायण में रावण के मंत्रियों को अपना परिचय देते समय हनुमान ने अपने आप को सुग्रीव का दूत बताया है'[1] बाद में श्री राम का। मानस में भक्त रूप होने के कारण उन्होंने अपने आपको केवल राम का दूत कहा है।[2] 'जय हनुमान' में यह प्रसंग दोनों ग्रंथों के अनुसार है।

रावण प्रताप देख रामायणमें हनुमान सशंकित हो गये;[3] मानस में नहीं।[4] 'मानस' एवं 'जय हनुमान में हनुमान का भीषण भक्ति, विवेक एवं नय से युक्त है। विभीषण के परामर्शानुसार तीनों ग्रन्थों में कुपित रावण हनुमान के अंग भंग की आज्ञा दी। रामायण [5] एवं जय हनुमान में लंका दहन का सूक्ष्म एवं व्यापक वर्णन है।

रामायण में लंका दहन के समय सीता के भस्म हो जाने की आशंका से हनुमान पुनः प्रत्यक्ष सीता को देखने की इच्छा से सीता के पास आये, [6] 'जय हनुमान' में यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण के अनुसार है।
अध्यात्म रामायण में सारे नगर में हनुमान को चोर कहा गया,[7] मानस में हनुमान की कौतुकमयी लीला, वर्णित है,[8] जिससे 'जय, हनुमान' के वर्णन मिलते-जुलते हैं।

गगनगामी हनुमान ने महेन्द्र पर्वत को देखते ही निनाद किया। उनकी गर्जना को सुन जाम्बवन्त आदि सब भालु-कपि प्रसन्न हो गये और बड़े प्रेम से हनुमान से मिले। इस प्रसंग में तीनों ग्रन्थों में लगभग साम्य है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान के साथ सीता की खोज के लिए वानरों ने लंका का समस्त वृतान्त समुद्र तट पर ही हनुमान से जान लिया,[9] जब कि ,जय हनुमान, में उन्हें उसकी सूचना महेन्द्र गिरि पर मिली। मानस में रघुनायक के समीप जाते समय मार्ग में यह चर्चा हुई है। हनुमान ने रामायण में सीता की कुशलता तथा उनकी दयनीय दशा का वर्णन कर राम को सीता द्वारा प्रदत्त चूड़ामणि अर्पित की, जबकि 'जय हनुमान में चूड़ामणि अर्पित करने के बाद सीता का वर्णन किया किया गया है।

इस प्रकार 'जय हनुमान' में हनुमान जी एक साहसी, त्यागी, भक्त, विवेकी, नीतिमान, व्यवहारकुशल तथा अद्भुत शक्ति संपन्न शूर वीर सेवक के रूप में अंकित किये गये हैं।

१—वा० रा० ५.४८.६२, २—मानस ५. २१,
३—वा०रा० ५.४२.२० । ४—मानस ५.१६.८ । ५—वा० रा० ५.५३.५३. ५४.५५ । ६—वाल्मीकि रामायण ५.५६.१ । ७—अध्यात्म रामायण ५.४. ३८ । ८—मानस ५.२४.७ । ९—वा० रा०-५,५८,७ से५,५९ सर्ग तक ।

(२) सीताः—

अशोक वन में रावण-सीता संवाद वर्णित है। कवि ने इस प्रसंग का विस्तार से वर्णन किया है।

सीता के समीप आकर रावण ने सीता के प्रति अपनी क्रूर कामातुरता का परिचय [1]—और अनेक प्रलोभन दिये। साथ ही उसने सीता के प्रति अनेक कटु-उक्तियां भी कहीं।[2]

रावण की कटूक्तियों के प्रत्युतर में सीता ने तृणपात बीच में रखकर रावण का तिरस्कार किया और उसे नैतिक उपदेश दिया। इसी अवसर पर सीता ने अपने पतिव्रत धर्म का परिचय देकर अपने पति राम के पराक्रम का तेज भी वर्णित किया,[3] और उन्होंने रावण की अत्यन्त भर्त्सना की।

मास द्वव में आने के के लिए कहकर रावण सीताको डरा घमका कर चला गया।[4]

---

(१) ले मान प्रार्थना मेरी पूरी अभिलाषा कर दे
तू हृदय-अधिष्ठात्री बन मस्ती ही मस्ती भर दे
o o o
मेरी श्री बनकर रह जा" - पृ० ३२-३३।

(२) 'जय हनुमान' – पृ० ३१-३२

(३) तृण-पात बीच में रखकर सीता बोली ....
o o o
ज्यों सूनी मखशाला से कुत्ता हवि ले भगता है
त्यों मुझे चुराया, अध से क्या तुझे न डर लगता है ?
o o o
है जन्म हुआ सत्कुल में सत्कुल में ब्याह हुआ है
o o o
जैसे तू रक्षा करता निशि दिन अपनी नारी की
वैसे तू ही रक्षा करता रे मुझ सी–परनारी की
o o o
वह हरि मैं उनकी माया ....पी जायेंगे।
प्रभु के सर तेरे बल को
o o o
दुम दबा श्वान भागता है पा गन्ध सिंह की जैसे
रघुकुल नायक के डर से तू भग जायेगा वैसे। पृ० – ३३-३५।

(४) यदि मास द्वय में आकर यह स्वयं मुझ से न बोली
o o o
तो इसे काट प्रातः का जलपान बना डालूंगा।
o o o
दशशीश डरा धमका कर जब चला गया....................—पृ० ३६–३७।

रावण द्वारा नियुक्त राक्षसियों ने सीता को धमकाया और उन्होंने सीता को रावण के प्रति आकृष्ट करने का प्रयास किया ।[1]

तत्पश्चात् त्रिजटा ने राक्षसियों को स्वप्न सुनाया उसने राक्षक्षियों को अपने स्वप्न का वृतान्त सुनाते हुए कहा कि उसने सपने में लंका में आग लगी हुई देखी है ।, रावण के सिर कट गये है और विभीषण लंका का राजा हो गया है ।[2]

त्रिजटा का सपना सुनकर राक्षसियाँ सीता के चरण छूकर अपने-अपने घर भाग गई ।[3] हनुमान से राम की अँगूठी पाकर सीता ने उन्हें वार्तालाप करने का अधिकारी माना[4] और उससे राम के विषय में[5] विविध प्रश्न पूछे।

हनुमान से राम की दिनचर्या सुनने पर सीता की तृप्ति नहीं हुई अतः उन्होंने और भी वृतान्त सुनने की इच्छा हनुमान के समक्ष प्रकट की ।[6] बाद में सीता ने हनुमान को चूड़ामणि देकर बिदा किया । उन्होंने हनुमान के पास अपनी यह इच्छा प्रकट की कि उनकी विपत्ति के दिन शीघ्र ही कटें औरउन्हें शीघ्र ही प्रभु की शरण प्राप्त हो ।[7]

---

(१) राक्षसियाँ धमकाती हैं

❀ ❀ ❀

उनको न पूछता रावण पर तुझ पर रीझ गया है ।
हलभागिन मना उसे ले आतुर वह खीझ गया है ।—पृ० ३७-३८

(२) त्रिजटा बोली राक्षसियो

० ० ०

लंका में आग लगी है कोई कपि जला रहा है

० ० ०

कट गये शीश दशमुख के

० ० ०

घर का भेदिया विभीषण राजा वनकर आया है । — पृ० ३८-३९ ।

(३) घर-घर भागीं छू-छू कर जगदम्बा के पद रुखे । पृ० ३९ ।

(४) राम दूत हो इससे भाषण करने के अधिकारी हो । — पृ० ४७-४८ ।

(५) जय हनुमान' पृ० ४७,४८,४९ ।

(६) राम कथा से तृप्ति न होती अभी लगी सुनने की लौ ।—पृ० ४९ ।

(७) चूड़ामणी लो जाओ तुम

० ० ०

विपत्ति कटे प्रभु शरण मिले । — पृ० ५१ ।

पौराणिक विवेचन—

वाल्मीकि रामायण के अनुसार सीता के समीप जाकर रावण ने सीता के प्रति अपनी क्रूर कामान्धता का परिचय दिया[1] तथा सीता को अनेक प्रलोभन दिये। मानस में 'बहु विधि खल सीतहिं समुझावा' में उसकी दुष्ट उक्तियों एवं प्रस्तावों का संकेत किया गया है। मर्यादावादी तुलसी माता सीता के प्रति ऐसे वाक्य शत्रु भावना के उपासक रावण से कैसे कहलाते ? 'जय हनुमान' में भी यह प्रसंग रामायण के ही अनुरुप है।

रामायण में रावण की कटूक्तियों के प्रत्युत्तर में सीता ने तिनके की ओट से रावण का तिरस्कार किया और उसे नैतिक उपदेश दे अपने पतिव्रत-धर्म का परिचय दिया। 'मुझे राम को लौटा दे, कहकर सीता ने रावण की अत्यधिक भर्त्सना को। मानस का सीता रावण संवाद प्रसन्न राघव के समान है।[2] इस प्रसंग में पांडेयजी का कथन वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। मानस, प्र० राघव एवं 'जय हनुमान' में उक्त प्रसंग समान होने पर भी उक्तियों में मर्यादा का पिष्ट-पेषण तुलसी में अधिक है।

वाल्मीकि रामायण तथा मानस में रावण द्वारा निश्चित की गई अवधि में भी अन्तर है। प्रथम में दो मास की[3]; द्वितीय में एक मास की[4] अवधि का उल्लेख मिलता है। 'जय हनुमान' में यह कालावधि वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। अध्यात्म रामायण[5] एवं मानस के अनुसार 'कृश तनु सीस जटा इक वेणी' वाली कृतकाय सीता के प्रति रावण अत्यधिक कटु है। 'जय हनुमान' में भी यही भावना व्यंजित है।

वाल्मीकि रामायण में रावण द्वारा नियुक्त राक्षसियों ने सीता को न केवल रावण के प्रति आकृष्ट करने का प्रयत्न ही किया[6], अपितु सीता को अनेक रूपों से भयभीत भो किया।[7] मानस में केवल 'सीतहि त्रास देखावहि' कहकर तुलसी ने त्रिजटा का स्वप्न-वर्णन शुरु कर दिया है। 'जय हनुमान' में यह प्रसंग रामायण के अनुसार है। मानस की अपेक्षा रामायण में त्रिज़टा का स्वप्न अधिक विस्तृत हैं।[8] परन्तु दोनों में स्वप्न का फल, राम के अभ्युदय एवं रावग के नाश का सूचक है। 'जय हनुमान' में यह प्रसंग दोनों ग्रंथों के अनुसार है। पर 'जय हनुमान'

१–अ०रा० सार-९।६९,७१। २-प्रसन्न राघव- ६।३०। ३- वाल्मीकि रामायण-२।२०। ४-मानस-५।२१।६। ५-अ०रा०-५।२।३१। ६-वा०रा० ५।२२।८। अ०रा०-५।२।४१। ७-मानस–५।६।६।
८–वा०रा०-५।२३। सर्ग।

की विशेषता यह है कि उसमें विभीषण का अभ्युदय भी सूचित किया गया है। तीनों ग्रंथों में सीता के चरणों में राक्षसियों द्वारा प्रणिपात वर्णित है। रामायण में राक्षसियों की सुरक्षा का वचन देकर[1] सीता ने अपनी शरणागत वत्सलता का परिचय भी दिया है।

सीता द्वारा अग्नि-कण याचना के समय हनुमान द्वारा मुद्रिका-क्षेपण नितांत उपयुक्त है[2] जिससे मुद्रिका के प्रति सीता का औत्सुक्य बढ़ जाता है। इस अवसर पर सीता मुद्रिका संवाद के द्वारा गीतावली[3], हनुमन्नाटक[4] तथा प्रसन्न राघव[5] आदि में उक्ति चमत्कार पूर्ण वर्णन लिखे गये हैं। इस सन्दर्भ में तुलसी ने कथावस्तु में अपनी संकेत-कला का सुन्दर निदर्शन किया है।[6] तत्पश्चात् उत्सुकता की निवृत्ति हनुमान द्वारा राम गुण-वर्णन द्वारा हुई है। इस वृत्तान्त को सुनकर सीता हनुमान के प्रकट होने की इच्छा प्रकट करती है, जब कि रामायण में वे स्वतः बिना किसी आज्ञा के सीता के सामने आ खड़े हुए हैं। इस भेद का कारण तुलसी की मर्यादा है।

संशय निवृत्ति के पश्चात् तीनों ग्रन्थों में पूर्ण रूपेण आश्वस्त हो सीता आनन्द-निमग्न अंकित की गई हैं। रामायण में प्रश्नावली का विस्तार अधिक है।[7] 'जय हनुमान' में यह प्रसंग रामायण के समान है।

इस तरह सीता के चरित्र द्वारा कवि ने आदर्श भारतीय नारी के गुणों का यशगान किया है जो आज भी सभी भारतीय नारियों के लिए अनुकरणीय है।

'तुमुल' और 'जय हनुमान' के पौराणिक विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रबन्ध काव्य के समर्थ शिल्पी महाकवि पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने रामाख्यान से सम्बन्ध पौराणिक पात्रों और प्रसंगों का चयन कर उनके आधार पर उत्कृष्ट से उत्कृष्ट खंडकाव्यों की सृष्टि की है। उनके ये काव्य भारतीय साहित्य की पौराणिक परंपरा से जुड़े हैं, फिर भी इनमें मार्मिक पात्र, परिस्थिति, प्रसंग और वर्णन-सौष्ठव पांडेयजी की अपनी देन हैं।

श्यामनारायण पांडेयजी के काव्य में ऐतिहासिकता

काव्यान्तर्गत इतिहास—

श्री श्यामनारायण पांडेयजी प्रधानतः वीर रसात्मक उल्लास

१–वही ५।२४।४७। २–मानस- ५।१२। ३–गीतावली-५।३;४। ४–हनुमन्ना-टक- ६।१६। ५–प्रसन्न राघव-६।३८ पृ. ३४३।
६-मानस-५।१२।४। ७–वा०रा०-५।३६।

और उमंग के कवि हैं, पर कल्पना-लोक में स्वैर विहार करते समय जब कभी भी वे अपने चरित नायकों के जीवनगत प्रसंगों पर तथ्याश्रित छन्द रचने के लिए प्रेरित हुए तभी उन्होंने उनसे सम्बन्धित इतिहास की शुष्क इतिवृतात्मकता को काव्य सौंदर्य से समलंकृत कर उसे मार्मिक व्यंजना देने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। इस दृष्टि से इतिहास उनके काव्य का अन्तर्वर्ती स्वर बन गया है।

सामान्यतः इतिहास में व्यक्ति, स्थल, घटना और तिथि का समन्वित उल्लेख होता है, परन्तु पांडेयजी के काव्य में तिथियों को छोड़ कर व्यक्ति; स्थल और घटना-प्रसंगों का जो विवरण विद्यमान है उनका इतिहास-सापेक्ष अध्ययन, विवेचन; विश्लेषण और परीक्षण निम्नानुसार है।

हल्दीघाटी काव्य में ऐतिहासिकता—

इतिहास की समग्र पृष्ठभूमि के आधार पर 'हल्दीघाटी' में वर्णित महाराणा प्रताप का जीवन चरित्र तथा उनसे सम्बन्धित घटनाओं का विवेचन निम्नानुसार है—

पांडेयजी के मतानुसार 'हल्दीघाटी' के युद्ध के तीन कारण थे— १–महाराणा प्रताप सिंह और शक्ति सिंह का वाद-विवाद। २–अकबर का दीनइलाही धर्म। ३–राजा मान सिंह का अपमान।

शिकार-प्रसंग में प्रताप सिंह और शक्ति सिंह का वाद-विवाद इस प्रकार चित्रित है—

'शक्ति सिंह पहुँचा अकबर भी धाकर मिला कलेजे से।
लगा छेदने राणा का उर कूटनीति के नेजे से॥
× × ×
गया बन्धु, पर गया न गौरव; अपनी कुल परिपाटी का।
यह विरोध भी कारण है भीषण रण हल्दीघाटी का॥'[1]

महाराणा प्रताप और शक्ति सिंह का शिकार खेलना[2], शिकार की घटना को लेकर दोनों में झगड़ा हो जाना[3], दोनों के वाद-विवाद को मिटाने के लिए किसी ब्राह्मण के द्वारा अपने प्राणों को विसर्जित करना[4] और दोनों भाइयों का यह वाद विवाद हल्दीघाटी के युद्ध का कारण बनना-ऐतिहासिक तथ्य के विरुद्ध है।

१-हल्दीघाटी- सर्ग १ पृ० ४०। २-वही, वही पृ० ३२। ३-वही, वही पृ० ३३। ४-वही, वही पृ० ३६।

उपर्युक्त घटना पुरोहितजी की रचना 'आपणा खण्डकाव्यों' संग्रह में छपी है।[1] श्री देव कोठारी ने उपर्युक्त घटना को एक जनश्रुति[2] कहा है।

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार महाराणा उदय सिंह के काल में ही शक्ति सिंह अकबरी दरबार में पहुँच गये थे। उस वक्त भी जब कि उदयपुर पर हमला होनेवाला था, शक्ति सिंह ने अपने पिता को हमले की पूर्व सूचना दी थी।

युद्ध की नींव राणा उदय सिंह के काल में पड़ चुकी थी। उनके हाथों से छूटकर चित्तौड़ एवं रणथम्भोर मुगलों के हाथों में जा चुके थे। अतः महाराणा प्रताप के काल में हल्दीघाटी का युद्ध उस प्राचीन स्वतंत्रता के युद्ध का सिलसिला था, जो राणा उदय सिंह के काल में प्रारम्भ हो चुका था।

महाराणा उदय सिंह स्वयं अपने पुत्र प्रताप के लिए फूट के काँटे बो गये थे। कोई ३५ वर्ष के गौरवहीन असफल शासन के बाद उदय सिंह का देहान्त २८ फरवरी १५७२ ई० को गोगूँदा में हुआ। मरने से पहले अपनी प्रिय रानी भटयाणी के पुत्र जगमल को उन्होंने अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

लेकिन सरदारों ने जगमल को हटाकर प्रताप सिंह को राणा बनाया। डा० रघुवीर सिंह का कहना है कि 'राज्यारूढ़ होते ही राणा प्रताप ने स्पष्टतया मुगलविरोधी नीति अंगीकार की और यों मेवाड़ के ही नहीं राजस्थान के इतिहास में भी एक महत्त्वपूर्ण परम स्फूर्तिदायक अध्याय का प्रारम्भ हुआ, जो कठोर पराधीनता के गहरे निराशा पूर्ण दुखमय दिनों में राजस्थान के साथ ही समूचे भारत को स्वाधीनता के लिए सर्वस्व बलिदान कर उसकी निरंतर अडिग साधना का पाठ पढ़ाता रहा।'[3]

'जगमल नाराज होकर अजमेर गया। वहाँ के मुसलमान सूबेदार ने उसे शरण दी और बादशाह अकबर के दरबार में पेश किया। अकबर ने मेवाड़ के राजकुमार को जहाजपुर की जागीर दी और कुछ समय बाद सिरोही का आधा राज्य भी दे दिया जिससे सिरोही के राजा सुल्तान देवडा से उसकी शत्रुता हो गयी और १६४० में सुल्तान के हाथों एक युद्ध में जगमल मारा गया। जगमल आजीवन मेवाड़ का शत्रु और मुगल दरबार का एक मनसबदार बना रहा।'[4]

'प्रताप ने राव सुरताण से अपने मैत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उन्हें अधिक दृढ़ करने हेतु उसने अपने पुत्र अमर सिंह की कन्या का

१-महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रंथ' साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ; उदयपुर, पृ० १६५। २-वही वही।

३-डा० रघुवीर सिंह- पूर्व आधुनिक राजस्थान, पृ० ४६।

४-श्री बी०एम० दिवाकर- राजस्थान का इतिहास, पृ० १६७-१६८।

विवाह उससे करने की बात चलाई। इस प्रकार प्रताप का भाई सगर नाराज होकर मेवाड़ छोड़कर चला गया, किन्तु प्रताप ने उसके कारण सिरोही से सम्बन्ध नहीं बिगाड़े।'[1]

इस प्रकार भाइयों में जगमल, शक्ति सिंह और सगर इत्यादि का दल प्रारम्भ से ही प्रताप के विरुद्ध अकबर से मिल गया था। इतिहास साक्षी है यदि राजपूताने में भाई-भाई का वैमनस्य न हुआ होता तो राजपूताने का इतिहास ही कुछ दूसरा हुआ होता। शूर-वीरता, अदम्य उत्साह एवं अपार साहस के साथ-साथ क्रोध, द्वेष, अहंमन्यता एवं अत्यन्त संकीर्ण विचार भी राजपूतों की पैतृक सम्पत्ति रहे हैं। अतएव शिकार के समय प्रताप और शक्ति सिंह का मनमुटाव और शक्ति सिंह का अकबर से मिलकर हल्दीघाटी के युद्ध का कारण बनना जिस ढंग से कवि ने प्रस्तुत किया है, वह निराधार एवं ऐतिहासिक तथ्य के विरुद्ध है।

'दीनइलाही' का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

'हिन्दू-जनता ने अभिमान छोड़ा रामायण का गान।
दीनइलाही पर कुर्बान, मुसलमान से अलग कुरान ॥
तनिक न ब्राह्मण कुल उत्थान, रही न क्षत्रियपन की आन।
गया वैश्य कुल का सम्मान, शूद्र जाति का नाम-निशान ॥
राणा प्रताप से अकबर से इस कारण वैर-विरोध बढ़ा।
करते छल-छद्म परस्पर थे, दिन दिन दोनों का क्रोध बढ़ा ॥
कूटनीति सुनकर अकबर की राणा जो गिनगिना उठा।
रण करने के लिए शत्रु से चेतक भी हिनहिना उठा ॥'[2]

डा० गोपीनाथ शर्मा के मत से हल्दीघाटी के युद्ध का मूल कारण साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वतंत्रता का संग्राम है।[3] अकबर अपने अधीन एक संयुक्त राष्ट्र देखना चाहता था, वह तभी हो सकता था जब कि प्रताप की स्वतंत्रता खतम कर दी जाय। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत लड़ाई अपने-अपने सिद्धान्तों की थी. जिसमें एक तरफ स्वतंत्रता प्रताप को बलिदान के लिए प्रेरित कर रही थी और दूसरी तरफ अकबर का साम्राज्यवादी पौरुष उसे ललकार रहा था कि सारे भारत का स्वामी एक छोटे से महत्त्वपूर्ण पहाड़ी प्रदेश को नहीं जीत सका। राणा प्रताप ने अपनी वंश

१-महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रंथ' साहित्य-संस्थान. राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर पृ० २१४। २-हल्दीघाटी, सर्ग ४, पृ० ५९-६०। ३-बी. एम. दिवाकर: राजस्थान का इतिहास-पृ० २०४।

परम्पराओं को बनाये रखने के लिए मुगल बादशाह से सुलह करना उप-युक्त नहीं समझा। डा० गोपीनाथ शर्मा ने प्रताप के विषय में कहा है कि—'वह स्वतंत्रता का सैनिक था तथा आत्म-समर्पण करने को तैयार नहीं था। ……… वह इस इन्कार के परिणामों से परिचित था, इसलिए विपदा का सामना करने की उसने यथासम्भव तैंयारियाँ कर ली।'[1] इसी समय अकबर भी बंगाल की विजय से निपट चुका था, अतः मेवाड़ पर आक्रमण करना उसके लिए अनिवार्य था।

अबुलफजल के मतसे राणा प्रताप के अभिमान को नीचा दिखाना आवश्यक था, क्योंकि उसे अपने पूर्वजों के वंश की कीर्ति, स्थितिकी दृढ़ता अपने राज्य के विस्तार और सम्मान के लिए जीवन बलिदान करने को तत्पर राजपूतों की विशाल संख्या का अभिमान हो गया था। उसका दमन इसलिए आवश्यक हो गया था कि—'उसकी अवमानना, गर्व; कपट और छल सभी सीमाओंको पार कर गये थे।'[2] ई० स०१५७६का युद्ध राणा को समूल नष्ट करने के लिए तथा साम्राज्य के बाहर रहने की उसकी भावनाओं को सर्वथा कुचल देने के लिए था। शहंशाह, राणा की मृत्यु, उसके राज्य का अपने राज्य में विलीनीकरण चाहता था।'[3] कवि हरीश के मतानुसार 'हल्दीघाटी के युद्ध की एक ओर शहंशाह अकबरका साम्रा-ज्यवाद कुटिल कूटनीति, ऐश्वर्य लिप्सा और भोग-विलास है, तो दूसरी ओर महाराणा प्रताप सिंह का स्वातंत्र्य प्रेम, तपस्या, बलिदान और अतुलित विक्रम है। हल्दीघाटी का युद्ध इन्ही आसुरी और दैवी सिद्धांतोंके संघर्ष का परिणाम है।'[4] इससे स्पष्ट है कि इस युद्ध का सम्बन्ध दीन-इलाही से न था।

महाराणा प्रताप का युवराज अमर सिंह जब मान सिंह का स्वा-गत कर रहा था, तब—

'मैं सेवा के लिये आपकी तन मन धन से आकुल।
प्रभो, करें भोजन, वह हैं सिर की पीड़ा से व्याकुल॥
पथ प्रताप का देख रहा था, प्रेम न था रोटी में।

१- डा॰ गोपीनाथ शर्मा—'मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स' —पृ० ९१। २— अबुलफजल—'अकबरनामा'—जिल्द ३; पृ० १७३। ३—विसेंट स्मिथ द्वारा लिखित-'अकबर की जीवनी'-पृ० १५१। ४- कवि हरीश-'राणा प्रताप'–आमुख, पृ० १०।

सुनते ही वह काँप गया, लग गई आग चोटी में ।।
घोर अवज्ञा से ज्वाला सी, लगी दहकने त्रिकुटी ।
अधिक क्रोध से वक्र हो गई, मानसिंह की भृकुटी ।।'[1]
और—

'राणा द्वारा मानसिंह का यह जो मान हरण था ।
हल्दीघाटी के होने का यही मुख्य कारण था ।।'[2]

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार 'डूँगरपुर विजय करके, राणा प्रताप को समझाकर; बादशाह की सेवा स्वीकार कराने के विचार से वि० सं० १६३० आषाढ़(जून १५७३ ई०) में मान सिंह उदयपुर पहुँचे थे।'[3] उनका प्रयत्न निष्फल हुआ और वहीं उनका अपमान भी हुआ। वहाँ से मान सिंह आगरा गये। इसके तीन साल बाद ज्येष्ठ सुदी द्वितीया संवत् १६३३ (जून १५७६ ई०) में हल्दीघाटी युद्ध हुआ।

अकबर ने महाराणा प्रताप से मित्रता करनेके लिए चार प्रयत्न[4] किये इनमें से दूसरा प्रयत्न मानसिंह का था। परन्तु मानसिंह इस कार्य में कृतकार्य नहीं हुआ, अतः जब अकबर ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का फैंसला किया, तब मानसिंह ने स्वयं अकबर से उस आक्रमण का नेतृत्व माँग लिया, ताकि वह युद्ध के बाद राणा को बन्दी बनाकर अकबर के सामने पेश कर सके। इस भावना का दूसरा अर्थ लेकर टॉड महोदय ने लिखा है कि—'शोलापुर विजय के बाद राजा मानसिंह आगरा लौटते समय राणा से मिलने रुक गये। प्रताप ने उदयसागर पहुँचकर मानसिंह का स्वागत किया किन्तु भोजन के समय खुद न आकर राजकुमार अमर सिंह को भेज दिया। भोजन के स्थल पर प्रताप को न देखकर मान सिंह ने प्रताप के विषय में पूछा तो अमर सिंह ने कह दिया कि—'सिर में पीड़ा के कारण पिताजी नहीं आ सकते' यह सुनकर उसने रोषपूर्ण स्वर में कहा—'मैं उस पीड़ा को समझता हूँ। उस शूल की अब कोई औषधि नहीं हो सकती।' राणा प्रताप भीतर से मानसिंह की यह बात सुन रहे थे, बाहर आकर आवेश में बोले—'मैं उस राजपूत के साथ कभी भोजन नहीं कर सकता, जो अपनी बहन-बेटियों का विवाह एक तुर्क के साथ कर सकता है।' मानसिंह ने इसे अपमान समझा और बिना खाना खाये उठ

१- हल्दीघाटी-सर्ग ५, पृ० ७०। २- वही पृ० ७४। ३—देवनाथ पुरोहित 'मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास'-पृ० ७३। ४— बी. एम्. दिवाकर— राज—स्थान का इतिहास' पृ० २०१-२०२।

गया। प्रताप की तरफ देखकर उसने कहा कि—'आपके सम्मान की रक्षा के लिए ही मुझे अपनी बहन-बेटियाँ तुर्कों को देनी पड़ी है। अगर आप इसका लाभ नहीं उठाना चाहते, तो इसका अर्थ यह है कि आप स्वयं खतरों को अपने ऊपर ला रहे हैं। यह मेवाड़ राज्य अब आपका होकर नहीं रहेगा।' घोड़े पर बैठते-बैठते उसने प्रताप से फिर कहा—अगर मैंने आपके इस अपमान का बदला रण-क्षेत्र में न दिया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं हैं।' उत्तर देते हुए प्रताप ने कहा—'मैं हर्ष के साथ उसके लिए तैयार हूँ।' पास खड़े एक सरदार ने मानसिंह से कहा 'उस समय फूफा अकबर को भी साथ लेते आना। उसे लाना भूल मत जाना।' 'जहाँ मानसिंह ठहरा था, उसे खोदकर उस पर गंगाजल छिड़का गया।[1]

इस कथा की तुष्टि 'वीर विनोद'[2], 'राजपूताने का इतिहास'[3], 'मेवाड़ के इतिहास'[4] में की गयी है। किन्तु डा० रघुवीर सिंह इस कथा को काल्पनिक बताकर लिखते हैं कि—'अनेक युगों बाद प्रचलित होने वाली राणा प्रताप संबंधी अनेकानेक कल्पनापूर्ण कथाओं में ही इसकी गणना होनी चाहिए।[5] 'न जाने किन विश्वस्त सूत्रों के आधार पर इसे काल्पनिक माना जाय' यह डा० रघुवीर सिंहने नहीं बताया। डा० गोपीनाथ शर्मा भी इस कथा को काल्पनिक बताते हुए लिखते है कि—'इस कहानी में सत्य का कोई स्पर्श नहीं हैं। राणा से भेंट और दरबार में जाने से मना करनेपर यह रंगीन कथा गढ़ ली गयी है।'[6] किन्तु 'राजप्रशस्ति' में भोजन के समय मानसिंह और प्रताप के बीच मनमुटाव का संक्षिप्त वर्णन मिलता है।[7] वह मनमुटाव फिर क्या था? कवि हरीश भी मानसिंह के इस अपमान को लड़ाई का कारण मानते हैं।[8] नैणसी भी इस कथा को दुहराते हैं।[9] जो भी हो टाड, गहलौत, ओझा, वीर विनोद, राज-प्रशस्ति आदि सभी इस रोटी बेटो वाली घटना को लड़ाई का एक कारण

१- टाड—'राजस्थान का इतिहास' —पृ० १६६। २-कविराज श्यामल दास : 'वीर विनोद' जिल्द २, पृ. १४७। ३— सुखवीर सिंह गहलौत-राजपूताने का इतिहास' भाग १, पृ० २३४। ४—स्व० गौ. ही. ओझा : मेवाड़ का इतिहास। ५- डा० रघुवीर सिंह - 'पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ० ५१। ६- डा० गोपीनाथ शर्मा- मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स, पृ० ८९। ७— राजप्रस्ति, काव्य सर्ग ४ श्लोक-२१-५०। ८-कवि हरीश—'राणा प्रताप' सर्ग २, पृ० ५। ९—मुहलौत नैणसी—'नैणसी की ख्यात'।

मानते हैं, पर आधुनिक इतिहासकार इसे नहीं मानते। बिना किसी अनुसंधान के इस महत्वपूर्ण कथा को रद्दी की टोकरी में डालना भी ऐतिहासिक परम्पराओं के साथ अन्याय होगा। अतः जब तक कोई हल्दीघाटी के युद्ध के कारणों पर पूरा अनुसन्धान कर सत्य पर प्रकाश न डालें तब तक इसे मान लेना तात्कालिक परिस्थिति और भावनाओं के विपरीत नहीं होगा।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि—'मान का मूल उद्देश्य भी साध्य नहीं हुआ और प्रताप ने पंक्ति में बैठकर खाना भी नहीं खाया, केवल बहाना बनाकर इन्कार किया। इससे यह सिद्ध होता है कि लड़ाई मान के लिए न थी, साम्राज्यवाद के लिए थी। मानसिंह तो इस लड़ाई के लिए एक निमित्त कारण मात्र था।

अपमानित मानसिंह दरबार में अकबर के सम्मुख रोने लगा। इस सम्बन्ध में हमारे कवि ने लिखा है, यथा—

'घोर अवज्ञा का कर ध्यान बोला सिसक-सिसक कर बोले।
तेरे जीते-जी सुल्तान, ऐसा हो मेरा अपमान॥
कहकर रोने लगा अपार; विकल हो रहा था दरबार।
रोते ही बोला—'सरकार, असहनीय मेरा अपकार॥'[2]

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार—'राजा मानसिंह के शासन-काल में आमेर राज्य की बड़ी उन्नति हुई। मुगल दरबार में सम्मिलित होकर मानसिंह ने अपने राज्य का विस्तार किया और अनेक अवसरों पर अपने आपको संकटों में डालकर मुगल शासन का हित किया। मानसिंह ने उड़ीसा और आसाम को जीतकर उनको अकबर बादशाह के अधीन बना दिया था। उससे भयभीत होकर काबुल ने भी अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अपनी इन्हीं सफलताओं के फलस्वरूप मानसिंह बंगाल, बिहार; दक्षिण व काबुल का शासक नियुक्त हुआ था।'[0] इसीलिए तो 'मान सिंह अकबर के विश्वास—पात्र—स्तम्भों में से एक था।'[3] श्री गहलौत के अनुसार— "आमेर के

१- हल्दीघाटी—सर्ग ६; पृ० ७६।
२- टाड-राजस्थान का इतिहास'। ३- वी० एम्० दिवाकर-राजस्थान का इतिहास -पृ० २५६।

मान सिंह जो ७ हजार जात व ६ हजार सवार का मन्सब प्राप्त था। जो अकबर के शासन काल में किसी भी हिन्दू या मुसलमान सरदार को प्रदान किया जानेवाला ऊँचे से ऊँचा मन्सब था।[1] उसकी वीरता का वर्णन करते हुए डा० ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है कि—'अन्त में मान सिंह ने सफलतापूर्वक असंतुष्ट अफगानों का विद्रोह दबा दिया और उड़ीसा तथा तेलंगाना की सीमा पर विद्रोहियों का दमन कर सम्पूर्ण उड़ीसा पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[2] डा॰ गोपीनाथ शर्मा ने उसकी योग्यता के बारे में लिखा है कि—'उसमें सैनिक क्षमता और राजनीतिज्ञता का अच्छा सामंजस्य था .... अपने पद को सँभाले रखने की इतनी लगन थी कि वह बहुत कम समय अपने पैतृक राज्य के लिए दे पाया था।'[3] टॉड के मत से 'भारतवर्ष के इतिहास में राजा भगवन्तदास व मान सिंह के समय कच्छवाहा लोगों ने अपने बल, पराक्रम व वैभव की प्रतिष्ठा की थी। मान सिंह बादशाह की अधीनता में था, लेकिन उसके साथ काम करने वाली सेना बादशाह की सेना से अधिक शक्तिशाली समझी जाती थी।'[4] तात्पर्य यह कि मान सिंह कछवाहा एक शूर राजपूत था। इसलिए वह अकबर का विश्वास पात्र था। लगभग सारे इतिहासकारों ने उसकी वीरता की मुक्त-कंठ से सराहना की है। कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण वह राणा प्रताप के साथ नहीं हो सका। उसके रण-कौशल और उच्च-सेना-नायकत्व में संदेह नहीं किया जा सकता। ऐसी अवस्था में हल्दीघाटी में उसे अकबर के सम्मुख बच्चों की तरह रुलाया गया है, यह अस्वाभाविक और अनैतिहासिक तथ्य है। राजा मान के गुणों की सम्यक् प्रशंसा के बाद भी महाराणा प्रताप को ऊँचा दिखाया जा सकता था। प्रसिद्ध मुगल सेनानायक और राजपूतों के अग्रगण्य वीर मान सिंह का अकबर के सम्मुख सिसक-सिसक कर रोना शुद्ध कवि कल्पनाका चमत्कार और इतिहास के विपरीत तथ्य है।

'हल्दीघाटी' काव्य की भाषा इतनी ओजस्वी, सजीव और प्रवाह पूर्ण है कि रह-रहकर उसे पढ़ने को जी चाहता है। घनघोर घटा क्या हैं? और कहाँ से आ गई है? यह बिजली भी कहाँ से चमक उठी?

१-बी.एम. दिवाकर- राजस्थान का इतिहास, पृ० २५६।

२-डा० ए.एल. श्रीवास्तव: अकबर महान (राजस्थान का इतिहास, पृ० २६४ पर उद्धृत।

३-डा॰ गोपीनाथ शर्मा: मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स।

४-बी.एम. दिवाकर: राजस्थान का इतिहास, पृ० २६५ पर उद्धृत।

क्या कविवर ने युद्ध में बरसात दिखलायी है या बरसात में ही 'हल्दीघाटी का युद्ध दिखलाया है ? जब एकादश सर्ग को प्रारम्भ से पढ़ लिया जाय तो समझ में आ जाता है कि कवि ने हल्दीघाटी का युद्ध सावन में दिखलाया है, यथा—

'सावन का हरित-प्रभात रहा, अम्बर पर थी घनघोर घटा।
फहरा कर पंख थिरकते थे, मन हरती थी वन-मोर छटा ।।
× × ×
वारिद के उर में चमक-दमक, तड़-तड़ बिजली थी तड़क रही।
रह-रह कर जल था बरस रहा, रणधीर-भुजा थी फड़क रही ।।
था मेघ बरसता झिमिर-झिमिर, तटिनी की भरी जवानी थी।
बढ़ चली तरंगों की असि ले, चण्डी-सी वह मस्तानी थी ।।
× × ×
नभ पर चम-चम चपला चमकी, चम-चम चमकी तलवार इधर।
भैरव अमन्द घन-नाद उधर; दोनों दल की ललकार इधर ।।
वह कड़-कड़-कड़-कड़-कड़क उठी यह भीम-नाद से तड़क उठी।
भीषण-संगर की आग प्रबल, वैरी सेना में भड़क उठी ।।'[1]

कविता तो रोचक है परन्तु आखिर सावन मास में यह युद्ध कैसे हुआ ? मुगल सेनानायक क्या इतना बुद्धिहीन था कि वह अरावली पर्वत की घाटियों में बरसात में लड़ने पहुँचा। हल्दीघाटी के युद्ध का समर्थन इतिहास बरसात में नहीं करता।

प्रसिद्ध इतिहासकार बदायूँनी ने.........'अजमेर से कुँवर मान सिंह की रवानगी ५००० सवारोंके साथ हिजरी सन् ९८४, ता० २ मुहर्रम (वि०सं० १६३३, वैसाख सुदी ३, ई० स० १५७६, ता० २ अप्रैल) बयान की है।'[2]

हल्दीघाटी से कुछ ही दूर खामनोर के निकट सेनाओं का भीषण युद्ध हिजरी सन् ९८४, (वि०सं० १६३३, ज्येष्ठ सुदी द्वितीया; जून १५७६ ई०स०) होना बताया है। अन्य ग्रंथ भी यही समय बतलाते हैं।[3] स्व० गौरी शंकर, हीराचन्द ओझा ने भी हल्दीघाटी के युद्ध का उपर्युक्त समय ही सूचित किया है।[4]

डा० श्रीवास्तव का कहना है कि–'राणा ने १८ जून १५७६ ई०

१–हल्दीघाटी–सर्ग ११ पृ० १२०-१२१। २– श्री व्रजकिशोर चतुर्वेदी: आधुनिक कविता की भाषा, प्र०खं०-भाग १।२; पृ० १८३। ३–दे०-अकबरनामा, इकबालनामा, राजप्रशस्ति महाकाव्य, वीरविनोद। ४-स्व०गौ० ही० ओझा: राजपूताने का इतिहास।

को प्रातःकाल दर्रे से निकलकर मुगल सेना पर आक्रमण किया।'[1] डा० गोपीनाथ शर्मा के अनुसार 'युद्ध शुरू होने की तारीख २१ जून है।'[2] जगन्नाथ राय अभिलेख में उपर्युक्त तारीख का उल्लेख है।[3] तीन दिन के फरक से घटना-समय नहीं बदलता।

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार आश्विन सुदी ७ को बादशाह स्वयं अजमेर आए और कार्तिक वदी ६ को गोगूँदा पहुँचे।

युद्ध के बाद शाही सेना गोगूँदे में पड़ी रही और वह राणा प्रताप की लूट के कारण अन्न तक न पा सकी। बरसात के कारण ४ मास तक शाही सेना की बुरी हालत रही। इससे 'निराश होकर मान सिंह सितम्बर १५७६ ई. में वापस लौट आया। वह पूरे मेवाड़ को अधीन नहीं कर सका। उसने सिर्फ गोगुन्डा जीता था, जिस पर प्रताप ने मान सिंह के लौटते ही वापस अधिकार कर लिया।'[4] तात्पर्य यह कि मेवाड़ के भाग्य निर्णय का युद्ध एक दिन का था और वह युद्ध तो जून में हुआ। जून तो बरसात का प्रारम्भ काल माना जाता है। इसलिए तो हमारा कहना है कि यह युद्ध बरसात में नहीं हुआ। अधिक से अधिक यही संभव है कि बरसात के दिनों में महाराणा प्रताप और अकबर की सेनाओं में यत्र-तत्र मुठभेड़ होती रही होगी।

युद्ध की तैयारी के सम्बन्ध में पांडेयजी ने लिखा है कि—

'कुम्भलगढ़ से चलकर राणा हल्दीघाटी पर ठहर गया।
गिरि अरावली की चोटी पर केसरिया-झंडा फहर गया॥'[5]

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार—'प्रताप कुम्भलगढ़ से निकलकर हल्दीघाटी से आठ मील दूर लोह सिंह नामक गाँव तक जा पहुँचा। इस स्थान तक जाने के लिए एक बहुत सँकरे रास्ते में जाना पड़ता था, जिसमें से एक समय में एक ही आदमी जा सकता था। मुगल-सेना भी मोलेला नामक गाँव में आकर रुकी। अब दोनों सेनाओं के बीच १२ मील

१–डा. ए.एल. श्रीवास्तव: अकबर महान–पृ० २०३। २–डा. गोपीनाथ शर्मा: मेवाड़ एण्ड दी मुगल एम्परर्स–पृ० ९७। ३–वही. वही, पृ. ९७ पर उद्धृत। ४–बी.एम. दिवाकर. राजस्थान का इतिहास–पृ० २०९। ५–हल्दीघाटी: सर्ग ८, पृ० ९६।

का अंतर था ।[1]

ख्यातों के अनुसार मेवाड़ की सेना २००,०० घुड़सवार थे । मुहलोत नैणसी के अनुसार प्रताप के पास ९-१० हजार सैनिक थे ![2] टॉड का मत है कि राणा के २२,००० सैनिकों ने युद्ध में भाग लिया, जिनमें से ८ हजार मारे गये १४,००० वापस लौटे ।[3] युद्ध के मैदान में उपस्थिति मुगल इतिहासकार बदायूंनी के अनुसार प्रताप के पास सिर्फ ३,००० सवार थे ।[4]

मानसिंह के युद्ध की तैयारी के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है, "यथा:-
अजमेर नगर से चला तुरन्त खमनौर-निकट बस गया मान ।
बज उठा दमामा दम-दम-दम गड़ गया अचल पर रण-निशान ।।"[5]

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार "ता० १८ मार्च, १५७६ को अकबर स्वयं अजमेर आया और बहुत सोच कर आखिरकार मानसिंह को अभियान का सेनापति नियुक्त किया । .... मानसिंह की सहायता के लिए चुने हुए सैनिक दिये गये उसके साथ आसफखाँ, सैयद अहमद, गाजी खाँ, सैयद राजू, खंगार मिहतर खाँ, मजहिदवेग, हाशिम बरहा, जगन्नाथ कछवाहा, माधोसिह राय लूनकरन आदि थे । एक अप्रैल १५७६ को मानसिंह को पंचहजारी मनसबदारी दी गई, उसे ५००० छँटे हुए घुड़सवारों का सेनापति बनाया गया और दो दिन बाद वह अजमेर चल पड़ा । इतिहासकार बदायूँनी भी मानसिंह के साथ आया था । अजमेर से चलकर वह मांडलगढ़ पहुँचा और इस स्थान पर वह दो महीने तक ठहरा ।........ किन्तु जब दो महीने तक प्रताप ने मांडलगढ़ पर आक्रमण नहीं किया, तो

१–Consequently descending from the rock fortress of Kumbhalgarh hemoved down the hill and encamped of the village of Lobsingh Smiles west of Haldighat. where the Kumbhilgarh range narrows itself into a pass. Here he ipent the night Precending the batrle The mugal trmy had already arrv'red at molela. and now the distance. between the two hostile forces was hardly 12 miles.' Dr. A L Srivastava–'The batt le of Haldighat'–सम्पादक डा० देवीलाल पालीवाल, महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर-पृ० १७५ ।

(२) मुहलोत नैणसी – नैणसी ख्यात । (३) दे० टाडकृत- "राजस्थान का इतिहास । (४) वदायूंनी: मुन्तरखाब । (५) हल्दीघाटी–सर्ग ९, पृ० १०६ ।

मानसिंह आगे बढ़ा। गोगुंडा होता हुआ बनास नदी के किनारे मोलेला नामक गांव में जाकर रूका। राणा की सेना पहाड़ियों के अन्दर थी और मानसिंह उसका बाहर हल्दीघाटी के मैदान में इन्तजार कर रहा था। .... मानसिंह ने अन्दर न जाकर समझदारी की।"[1] ख्यातों के अनुसार मुगल सेना में ८०,००० घुड़सवार थे। मुहलोत नैणसी के अनुसार मानसिंह की सेना ४०,००० थी। बदायूँनी तथा अन्य मुगल इतिहासकारों के अनुसार मानसिंह के पास सिर्फ पाँच हजार सवार थे।"[2]

पांडेय जी के उक्त-घटनाओं के उल्लेख इतिहास से समर्थित हैं, परन्तु उन्होंने सैन्य संख्या के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं दिया है।

हल्दीघाटी के युद्ध में झाला ने अपने सिर पर राणा का क्षत्र रखकर युद्ध करते हुए वीरगति पायी। पांडेय जी ने लिखा है कि—

"रख लिया छत्र अपने सिर पर राणा प्रताप मस्तक से ले।
ले स्वर्ण पताका जूझ पड़ा, रण-भीम-कला अन्तक से ले॥
झाला को राणा जान मुगल, फिर टूट पड़ें वह झाला पर।
मिट गया वीर जैसे मिटता परवाना दीपक ज्वाला पर॥[3]

डाँ०श्रीवास्तव[4] के साथ ही अन्य ग्रंथ[5] भी उपर्युक्त प्रसंग का समर्थन करते हैं। डाँ० दिवाकर ने लिखा है कि- राणा भी शत्रुओं से घिर गया था। उसी समय वड़ी सादड़ी के झाला बीड़ा ने स्वामी-भक्ति से प्रेरित होकर राणा का राजकीय छत्र खीच लिया और अपने आप को राणा घोषित कर मानसिंह के सैनिकों पर झपटा। प्रताप पर दबाव कम हो गया। वह हकीम सूर के साथ हल्दीघाटी के दर्रे में होकर गोगुन्दा जा पहूँचा। झाला बीड़ा युद्ध में मारा गया"।[6]

कवि का उक्त उल्लेख प्रामाणित है।

हल्दीघाटी के युद्ध में राणा प्रताप और शक्ति सिंह का मिलन हुआ, यथा-

"शक्ति सिंह भी ले तलवार करने आया था संहार।
पर उमड़ा राणा को देख, भाई - भाई का मधु प्यार॥
चेतक के पीछे दो काल, पड़े हुए थे ले असि ढाल।
उसने पथ में उनको मार की अपनी पावन करवाल॥
आगे बढ़कर भुजा पसार बोला आँखों से जल ढार।
रुक जा रुक जा ऐ तलवार, 'नीला घोड़ारा असवार"

(१) बी. एम. दीवाकर: "राजस्थान का इतिहास"-पृ० २०५, २०६, २०७। (२) डा०ए०एल० श्रीवास्तव: "अकबर महान"-पृ०२०१ पर उद्धृत। (३) हल्दीघाटी, सर्ग १२, पृ०१४३ (४) महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ पृ.१८०पर उ. (५) Taba-I-Akbari, vo 1 II-P.323 वीर विनोद, भा०२, पृ. १५० १५३। (६) डाँ० बी० एम० दीवाकर: राजस्थान का इतिहास-पृ०२०८

उतर वहीं घोड़े को छोड़, चला भक्त कम्पित कर जोड़ ।
पैरो पर गिर पड़ा विनीत, बोला धीरज बन्धन तोड़ ॥
'करुणा कर तू करुणागार, दे मेरे अपराध विसार ।
या मेरे दे गला उतार, तेरे कर में है तलवार ॥
उसे उठाकर लेकर गोद, गले लगया सजल समोद ।
मिलता था जो रज में प्रेम, किया उसे सुरभित सामोद ॥[1]

'राज प्रशस्ति',[2] 'अमर काव्यं',[3] 'वंश–भास्कर'[4] 'ग्रन्थोंमें इस प्रसंग की पुष्टि की गयी है । किन्तु देव कोठारी इसे एक जनश्रुति मानते हैं ।[5] प्रताप को हल्दीघाटी के मैदान से भागता देखकर दो मुगल सैनिकों ने उनका पीछा किया । उनमें से एक शक्तिसिंह था, जिसने चेतक के मरने पर अपना घोड़ा राणाको दे दिया, क्षमा माँगी और साथ हो लिया । इतिहास इस कथा को एक नाटकीय तत्त्वों से भरपूर कविकी अनोखी कल्पना मानते हैं । क्योंकि शाही सेना के सरदारों के नामों में अबुलफजल ने शक्तिसिंह का नाम कहीं नहीं दिया । डॉ० गोपीनाथ शर्मा, डॉ० रघुवीर सिंह और ओझा जी भी इस कथाको सच नहीं मानते । ऐसी अवस्थामें, इस सम्बन्धमें अधिक अनुसन्धानकी आवश्यकता है ।

कवि ने प्रताप की लड़की के करुणापूर्ण दृश्य का वर्णन करते हुए लिखा है, यथा:—

"माँ ने घाछों की लोती, मुझको दी थी खाने को ।
छोते का पानी देकल वह बोली भग जाने को ॥
× × ×
छच कहती केवल मैंने एकाध कवल खाया था ।
तब तक बिलाव ले भागा, जो इछी लिए आया था ॥[6]

टॉड ने उपर्युक्त दृश्य का वर्णन किया है ।[7] पांडेयजी भी टॉड द्वारा कथित प्रसंग से प्रभावित है । प्रायः टॉड के बाद सभी इतिहासकारों एवं लेखकों ने प्रताप की लड़की के करुणापूर्ण दृश्य को वर्णित किया है । परन्तु वस्तुतः यह ऐतिहासिक सत्य नहीं है । उदयपुर की प्राकृतिक वैभव की दृष्टि से यह एक ऐसी किंवदन्ती है जो स्वातन्त्र्य प्रेमी प्रताप की कठिनाइयों की अतिरंजना के लिए गढ़ी गयी है । भूभाग को देखते हुए प्रतापसिंह के परिवार के सम्बन्ध में इस कथा का कहना—उदयपुर राज्य की भौगोलिक अवस्था से अनभिज्ञता प्रकट करना है । प्रमाणार्थ उदयपुर

---

(१) हल्दीघाटी सर्ग १३, पृ० १४८–१४९–१५० । (२) राजप्रशिस्त–सर्ग ४ पद्य क्र० २४–३० ।(३) अमरकाव्यं-पद्य क्र० ८१–८६ । (४) वंश भास्कर-षष्ट राशि–छ० १–५० । ५--'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रन्थ'–पृ० १९६ पर उद्धृत । ६–'हल्दीघाटी' सर्ग १५, पृ० १६८ । ७— दे० टाडकृत राजस्थान का इतिहास ।

राज्य के अन्तर्गत मेवाड़ की स्थिति देखिए । 'मेवाड़ का यह पर्वतीय प्रदेश इतना विशाल और दुर्गम है कि मुगल सेना वहाँ तक पहुँच नहीं सकी । उत्तर में कुम्भलगढ से लगाकर दक्षिण में ऋषभदेव से परे तक अनुमानत: ९० मील लम्बा और पूर्व में देबारी से पश्चिम में सिरोही की सीमा तक करीब ७० मील चौड़ा पहाड़ी प्रदेश है, जो एक के पीछे एक पर्वतश्रेणियों से भरा हुआ है । इतना विशाल प्रदेश महाराणा के अधिकार में था । इसी प्रदेश में महाराणा, सरदारों तथा राजपूत सेना के स्त्री-बाल-बच्चे आदि हजारों की संख्या में रहते थे और किसी को अन्न कष्ट न था । यह पहाड़ी प्रदेश बहुत उपजाऊ है । इसमें मक्का, चने; चावल आदि अन्न अधिकता से पैदा होते हैं और गौ भैंस आदि पशुओं की बहुतायत से घी, दूध की कमी नहीं है । इस पर्वत श्रेणी के अन्दर कई जगह समान भूमि भी आ गयी है, जहाँ खेती अच्छी तरह हो सकती है । वहाँ सैकड़ों गाँव आबाद हैं और हजारों भील तथा अन्य जातियाँ बसती हैं । यदि इतने पर भी अन्न की कमी हो तो गोड़वाड़ सिरोही, ईडर और मालवे की तरफ से खुले हुए मार्गों से अन्न बहुत आसानी से लाया जा सकता था । इतने बड़े पहाड़ी प्रदेश को घेरने के लिए लाखों की संख्या में सेना चाहिए थी । मेवाड़में लगभग छ: मास तक स्वयं रहकर भी अकबर उसके पहाड़ी प्रदेश को न जीत सका ।'[1] महाराणा प्रताप अपनी सेना के साथ निठुर होकर पहाड़ी में रहते थे । यदि महाराणा प्रताप के परिवार को भोजन मिलने में इतने कष्ट होते थे, तो उनकी सम्पूर्ण सेना तथा उनके परिवार को कई दिनो तक लगातार भूखे रहना पड़ता । फिर उनकी सेना लड़ती कैसे ? कहने का प्रयोजन यह है कि कवि द्वारा वर्णित प्रताप के परिवार की आपत्तियों में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है । यदि कवि कथन में कुछ सचाई होती, तो तात्कालिक लेखक अबुलफजल; जो राजपूतों की दुर्दशा को बहुत बढाकर लिखने में सिद्धहस्त था, इसका विस्तृत वर्णन अवश्य करता । परन्तु उसने ,अकबरनामा' में आपत्तिग्रस्त महाराणा के अधी-नता स्वीकार करने के लिए अकबर को पत्र लिखने तक का उल्लेख नहीं किया ।

हल्दीघाटी युद्ध के बाद राणाप्रताप निराश हुए । उन्हें कुछ भी उपाय दिखायी नही दिया । पांडेयजी के अनुसार वे अपना शेष जीवन किसी विजन कोने में बिता देना चाहते थे, यथा—

१--देखिए-'त्यागभूमि, (मासिक पत्रिका , अजमेर,वर्ष २, अंक ९, ज्येष्ठ १९८६ वि० ।

'चल किसी विजन कोने में, अब शेष बिता दो जीवन।
इस दुखद भयावह ज्वर की यह ही है दवा संजीवन ।।''[1]

ऐसी परिस्थिति में भामाशाह ने राणा प्रताप की सहायता की। अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति राणा को समर्पित कर उसने कहा कि—

'एकत्र करी इस धन से, तुम सेना वेतन भोगी।
तुम एक बार फिर जूझो, अब विजय तुम्हारी होगी ।।
कारागृह में बन्दी माँ नित करती याद तुम्हें है।
तुम मुक्त करो जननी को यह आशीर्वाद तुम्हें है ।।[2]

निस्सन्देह यह प्रेरणा का स्वर बड़ा सशक्त है। परन्तु इसमे प्रतीत होता है कि महाराणा प्रताप के पास युद्ध का खर्च चलाने के लिए आर्थिक व्यवस्था भी नहीं थी और भामाशाह ने अपनी संपत्ति देकर प्रताप को प्रेरणा दी। कवि द्वारा इस कथा का उल्लेख ऐतिहासिक सत्य के विपरीत है।

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार 'भामाशाह का जन्म वि० सं० १६०४ आषाढ़ शुक्ला १० सोमवार, तदनुसार २८ जून, १५४७ को माना जाता है। इसके अनुसार भामाशाह राणा प्रताप से सात वर्ष छोटा था। भामाशाह की मृत्यु महाराणा प्रताप से तीन वर्ष बाद माघ शुक्ला ११, १६५६ वि० कोहुई, जब वह ५१ वर्ष का था।[3] हल्दीघाटी युद्ध के पश्चात् महाराणा प्रताप ने मुगल बादशाह के खिलाफ एक दीर्घकालीन कठिन पर्वतीय युद्ध का प्रारम्भ किया, जो लगभग १२ वर्षों तक अनवरत रूप से चला। इस संघर्ष में प्रताप के अविचल एवं वफादार सहयोगी के रूप में भामाशाह इतिहास में प्रसिद्ध है। इस संघर्ष केबीच वह हमें एक अच्छे योद्धा, रणनीतिज्ञ, कुशल प्रशासक एवं संगठक के रूप में दिखाई देता है। यही कारण है कि कुछ वर्षों बाद महाराणा प्रताप ने राम महासानी के स्थान पर भामाशाह को अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। इस घटना के सम्बंध में निम्न कहावत प्रसिद्ध हुई:—

भामो परधानो करे; रामो कीदो रद्द।
घरचो बाहर करण नूं, मिलियो आय मरद्द ।।[4]

१–'हल्दीघाटी'-सर्ग १६, पृ०१८१। २–'वही'-पृ० १८३। ३–दे०-'वीर विनोद', भाग २, पृ० २५१। ४--स्व० डा० गौ० ही० ओझा-'उदयपुर राज्य का इतिहास', भाग १, पृ० ४३१। और 'महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ'-पृ० ११५ पर उद्धृत।

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार कुँवर अमरसिंह केसाथ भामाशाह मालपुरे की लूट में लगा हुआ था। वि० सं० १६३५ का भामाशाह का मालवे का धावा सुप्रसिद्ध है चूलियामें महा राणा प्रताप को भामाशाह ने जो पच्चीस लाख रुपये तथा बीस हजार अशर्फियाँ भेंट की, वह इसी का परिणाम था। दिवेर की घाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप की सेना ने मुगल फौजों को बुरी तरह परास्त किया। डा० कानूनगो ने लिखा है कि–'इस महत्वपूर्ण युद्ध में चूड़ावतों और शक्तावतों के साथ भामाशाह ने प्रमुख भाग अदा किया था।'[1] खुमानरासो के अनुसार 'महाराणा अमरसिंह के काल में भामाशाह अहमदाबाद से दो करोड़ का धन लेकर आया था।'[2]

जनश्रुतियों के आधार पर भामाशाह के संबंध में परम्परा से यह मान्यता है कि जब महाराणा प्रताप अत्यन्त संकट में पड़े और राज्य के सभी आर्थिक साधन समाप्त होने से स्वदेश छोड़कर अन्यत्र जाने लगे तो भामाशाह ने बहुत बड़ी सम्पत्ति लाकर प्रताप को भेंट की, जिससे पच्चीस हजार सेना का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था।'[3] स्व० गौ० ही० ओझा इस बात को कल्पित कथा मानकर लिखते हैं कि—'भामाशाह और उसका पिता भारमल उदयपुर राज्य के सच्चे स्वामिभक्त' सेवक थे। भामाशाह ने राज्य के खजाने की सुव्यवस्था रखी। किन्तु महाराणा प्रताप के पास धन की कमी होने की बात सही प्रतीत नहीं होती। भामाशाह राज्य की सम्पत्ति को सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखवाता था, जिसका ब्यौरा वह एक बही में रखता था। वही बही उसने अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी स्त्री को दी।[4] और कहा कि—'इसमें राज्य के खजाने का ब्यौरेवार विवरण है, इसलिए इसको महाराणा के पास पहुँचा देना।[5] ऐतिहासिक सूचनाओं होने के अनुसार महाराणा प्रताप के समय में मुसलमानों से लगातार लड़ाइयाँ के कारण चतुर मंत्री भामाशाह ने राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखवाया था, जिसका ब्यौरा वह अपनी उपर्युक्त बही में रखता था। उन्हीं स्थानोंसे आवश्यकतानुसार द्रव्य निकालकर वह लड़ाई का खर्च चलाता था। अमरसिंह के समय में वि० सं० १६५६, माघ सुदी ११ को भामाशाह का देहांत हुआ।

१–Dr. K N. Kanungo: 'studies in Rajput History,' P. 52. २-कप्पड़ पीया कापड़ा, लीधोधन दो कोड़। साथ समान कियो सहू, समा कीयो अजोड़।। अहमदाबाद सु भामोसाह। अमर पास आयो उछाह, ३-टाड कृत-राजस्थान का इतिहास, जिल्द १, पृ० ४०२-३, आक्सफोर्ड संस्करण। ४-स्व०गौ० ही० ओझा-'उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ४६३। 'वीर विनोद' भाग ३, पृ० २५१।

प्रताप के पूर्वज 'प्रतापी राणा कुंभा और सांगा राणा ने दूर-दूर तक विजय कर बड़ी सम्पत्ति संचित की थी। महाराणा उदयसिंह के समय में बादशाह अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, उसके पूर्व ही महाराणा अपने कुटुम्ब सहित चित्तौड़ छोड़कर मेवाड के सुरक्षित पहाड़ों में जा रहा। उस समय राज्य की सारी सम्पत्ति चित्तौड़ से हटा ली गयी; जिसे अकबरको विजय करने पर भी कुछ न मिला। यदि कुछ भी सम्पत्ति उसके हाथ लगती, तो अबुलफजल जैसा खुशामदी लेखक राई का पहाड़ बनाकर और बहुत कुछ वर्णन अवश्य करता, परन्तु उसका इस विषय में मौन धारण करना इस बात का समर्थक हैं कि मेवाड़ की सम्पत्ति का कुछ भी अंश अकबर के हाथ न लगा और वह ज्यों की त्यों सुरक्षित रही।'[1]

चित्तौड़ छूटने के बाद महाराणा उदयसिंह के लिए सम्पत्ति एकत्र करने का तो कोई साधन ही न रहा उसके पीछे महाराणा प्रताप सिंह मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठा, जो बहुधा उम्र भर मेवाड़ के विस्तृत पहाड़ी प्रदेश में रहकर अकबर से लड़ता रहा। प्रतापसिंह के पीछे उनका ज्येष्ठ कुँवर अमर सिंह मेवाड़का स्वामी हुआ, वह लगातार अपने राज्य की स्वतंत्रता के लिए अपने पिता प्रताप का अनुकरण कर अकबर और जहाँगीर से संघर्ष करता रहा।

वि० सं० १६७१ में महाराणा अमरसिंह और बादशाह जहाँगीर की संधि हुई। उस समय महाराणा ने शहजादा खुर्रम से मुलाकात करते समय एक लाल नजर किया, जिसके विषय में जहाँगीर अपनी दिनचर्या में लिखता है—'उसका मूल्य ६०;०००) रुपया और तोल आठ टांक था। यह पहले राठोड़ों के राजा मालदेव के पास था। उसके पुत्र चन्द्रसेन ने अपनी आपत्ति के समय उसे उदयसिंह को बेंच दिया था।'[2] वि० सं० १६७३ में शहजादा खुर्रम दक्षिण में जाता हुआ मार्ग में उदयपुर में ठहरा उस समय 'महाराणा ने शहजादे को ५ हाथी, २७ घोड़े और रत्नों तथा रत्नजटित जेवरों से भरा एक थाल नजर किया, परन्तु शहजादे ने केवल तीन घोड़े लेकर बाकी सब वापिस कर दी'[3] जहाँगीर के इन कथनों से महाराणा अमरसिह के समय में मेवाड़ की सम्पत्ति का अनुमान आसानीसे किया जा सकता है। यदि महाराणा प्रताप सिहके पास सम्पत्ति ही न होती तो उनका पुत्र अमरसिंह संधिके समय ही इतने रत्नादि कहाँ से प्राप्त कर सकता था?

१- दे०-'त्यागभूमि' (मासिक पत्रिका), अजमेर, वर्ष १ सं० १९८५।
२- 'तुजुके जहाँगीरी' का अंग्रेजी, राजर्स और बेबरिज-कृत, अनुवाद जि० १, पृ० २८५-२८६। ३- वही वही।

अमरसिंह के पीछे उनका ज्येष्ठ पुत्र कर्णसिंह राजगद्दी पर बैठा जिसका सारा समय अपने उजड़े हुए इलाकों को आबाद करने में लगा। तदनंतर महाराणा जगतसिंह मेवाड़ का शासक हुआ, जो बड़ा ही उदार शासक था। उसने लाखों रुपया लगाकर उदयपुरमें जगन्नाथ राय(जगदीश) का मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठामें लाखों रुपये खर्च किये। उसने बड़े-बड़े दान दिये, जिनमें से कल्पवृक्ष दान विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि 'कल्पवृक्ष की वेदी स्फटिक की बनी थी, मूल में नीलमणी (नीलम), मस्तक में वैडूर्यमणी (लहसनिया), तने में हीरे शाखाओं में मस्तक (माणिक), पत्तों में विद्रुम (मूँगे) फूलों के स्थान में मोतियों के गुच्छे और फलों के स्थान में भिन्न-भिन्न रत्न लगे हुए थे। उसके नीचे ब्रह्मा, शिव, विष्णु और कामदेव की मूर्तियाँ बनी थी।'[1] 'उसने सैकड़ों हाथी, हजारों घोड़े और गाँव दान किये।'[2] प्रारम्भ में वह प्रतिवर्ष अपनी जन्म गाँठ के दिन चाँदी की तुला करता था।'[3] परन्तु 'वि० सं० १७०५ से प्रतिवर्ष उस अवसर पर सोने की तुला करता रहा।'[4] उसकी दानशीलता बहुत प्रसिद्ध है। उसके पीछे उसका ज्येष्ठ कुँवर राजसिंह मेवाड़ के सिंहासन पर वि० सं० १७०९ कार्तिक वदी ९ को बैठा। उसने उसी वर्ष मार्गशीर्ष मास में एकलिंग जी जाकर वहाँ रत्नों का तुलादान किया।'[5] भारत-वर्ष भर में रत्नों का तुलादान का यही एक प्राचीन लिखित प्रमाण है। उसने राजसमुद्र नामका प्रसिद्ध तालाब बनवाया[6], जिसमें १;०५ ०७;५८४ रुपये व्यय हुए।'[7]

१- 'स्फाटिक्यां वेदिकायां कलयति भुवियो मूलदेशेपुनीलम्
वैडूर्य मस्तके द्राक तदनु गुरु गुणान् हीरकान स्तन्धकेषु।
मौलिस्ते शाखिकाग्रे मरकत मतुलं वैद्रमान पल्लवौघान
मुक्त गुच्छान······हयमाणी गोमत्फलः पंचशाखः ॥ ११०॥
व्रह्मो रुद्रोपि विष्णु स्तदनु रतिपति स्थापिता यस्य नीचैः।
सोऽयं सत्कल्पवृक्षो पर तरु सहितः श्री जगत्सिंह हस्तत् ॥ १११।
जगन्नाथराय के मंदिर की प्रशस्ति।

२- 'सिन्दुर दीधा सात सौ हयवर पाँच हजार।
एकावन सासण दिया, जगपत जगदाधार ॥ — प्राचीन पद्य।
—ओझा निबन्ध संग्रह, भाग ३, पृ० ५८ पर उद्धृत। ३-'राजप्रशस्ति' महाकाव्य, सर्ग ५, श्लोक ३४। ४- वही; वही श्लोक ३५-३६।
५- दे०-उक्त तुलादान सम्बन्धी प्रशस्ति-'उदयपुर के विक्टोरिया हाल में सुरक्षित है। ६- दे०-स्व० गौ० ही० ओझा-'राजपूताने का इतिहास' जि० १ पृ० ३१०-३११।
७- 'एक कोटि; पंचलक्षाणि रूप्य मुद्राणां वा सत्सहस्त्राणि सप्त।
लग्नान्या स्निम षट्शतान्यष्टकं वै कार्ये प्रोक्चं पक्ष एव द्वितीये।२२।
—राजप्रशस्ति महाकाव्य, सर्ग २१।

'हल्दीघाटी' के प्रख्यात युद्ध में ग्वालियर के रामशाह तँवर अपने पुत्रों सहित महाराणा प्रताप के पक्ष में मुगल-सेना से लड़ते-लड़ते काम आये थे। रामशाह तँवर के सम्बन्ध में इतिहास ग्रंथों से विदित होता है। कि—'रामशाह महाराणा प्रताप से रु० ८००-०० (आठ सौ रुपये) रोकड़ प्रतिदिन प्राप्त करते थे। अवश्य ही रामशाह के पास निश्चित संख्या में सैनिक थे, जिनके खर्चके लिए उक्त द्रव्य उन्हें प्रतिदिन प्राप्त होता था।'[१] यह उल्लेख महाराणा प्रताप की तात्कालीक सम्पन्नता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

अतएव यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि राणा प्रताप से पूर्व मेवाड़ की सारी शासकीय संपत्ति महाराणा कुंभा और महाराणा साँगा की संग्रह की हुई थी और महाराणा प्रताप के समय में वह ज्यों की त्यों विद्यमान थी। ऐसी दशा में यह मानना कि प्रतापसिंह के पास अकबर से लड़ने के लिए या हल्दीघाटी के लड़ाई के समय सेना का खर्च चलाने के लिए द्रव्यभाव था, जिससे वे मेवाड़ छोड़कर किसी विजन कोने में अपना शेष जीवन बितानेका विचार कर रहे थे, अथवा अपने मंत्री भामाशाह द्वारा सारी सम्पत्ति भेंट करने पर वे अपना उपर्युक्त विचार छोड़ने के लिए बाध्य हुए ऐतिहासिक प्रमाणों के प्रतिकूल है।

कवि का उपर्युक्त कथन किवदन्तियों के आधार पर लिखा जाने के कारण विश्वास-योग्य नहीं है। वस्तुतः महाराणा प्रताप बहुत सम्पत्ति शाली थे। उनके पास धन की कमी नहीं थी। यही कारण है कि महाराणा प्रताप तथा उनके पुत्र दोनों बरसों तक मुगल सम्राटोंसे लड़ते रहें।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह परिणाम निकलता है कि 'हल्दीघाटी' ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ नही है। कवि ने घटनाओं की ऐतिहासिकता, वास्तविकता, सत्यता और प्रामाणिकता का बहुत कम ध्यान रक्खा है। उसने परम्परागत प्रचलित तथा सुनी-सुनाई बातों का स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग किया है, जिसके फलस्वरूप काव्य गुणों की दृष्टि से अत्यंत सम्पन्न होने पर 'हल्दोघाटी' इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त साधारण कोटि का ग्रंथ है। इस संबंध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पांडेय जी ने अपनी कृति के लिए रोचक, शौर्य-प्रधान और इतिहास-प्रसिद्ध कथानक को चुनकर अपनी कवि प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। अतः ठोस ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से पूर्णरूपेण खरा न उतरने पर हल्दीघाटी अपने ढंग का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रबन्ध काव्य है।

४- दे० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, 'जोधपुर में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथ, क्रमांक-३५४६४।

'जौहर' काव्य में ऐतिहासिकता—

'जौहर' काव्य में कवि श्यामनारायण पांडेय ने पद्मिनी की कथा का वर्णन किया है। उसका ऐतिहासिक अनुशीलन इस तरह है—

कवि श्यामनारायण पांडेय ने रावल रतन सिंह और पद्मिनी के सम्बन्ध में लिखा है कि—

'रूपवान था रतन, पद्मिनी रूपवती उसकी रानी
दम्पति के तन की शोभा से जगमग-जगमग रजधानी ।।
रानी की कोमलता पर कोमलता ही बलिहारी।
छुईमुई-सी कुँभला जाती, वह इतनी सुकुमारी थी ।।'[1]

कवि कथन से प्रतीत होता है कि चित्तौड़ का राजा रावल रतन सिंह था और उसकी रानी पद्मिनी थी; वह अत्यन्त सुन्दर थी, पर ऐतिहासिक दृष्टि से कवि ने रावल रतन सिंह तथा पद्मिनी के वंश आदि का विशेष विवरण नहीं दिया।

कवि जटमल ने राणा रतन सिंह को चहुँबाण (चौहान) राजपूत माना है।[2] जायसी ने भी इन्हें चौहान[3] ही लिखा है।

स्व० डा० ओझाजी के अनुसार 'उस वंश में (कुश के वंश में) वि०सं० ६२५ (ई०स० ५६८) के आसपास मेवाड़ में गुहिल नामक प्रतापी राजा हुआ······ ···जिसके नाम से उसका वंश गुहिल वंश कहलाया ········ पीछे से इस वंश की एक शाखा सोसोदा गाँव में रही; जिससे उस शाखा-वाले उस गाँव के नाम पर सीसोदिया कहलाए। इस समय इसी सीसो-दिया शाखा के वंशधर उदयपुर के महाराणा हैं।

उदयपुर का राजवंश वि०सं० ६२५ (ई०स० ५६८) के आसपास से लगाकर आज तक समय के अनेक हेर-फेर सहते हुए उसी प्रदेश पर राज्य करता चला आ रहा है।'[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चित्तौड़ के महाराणा 'गुहिल' अथवा 'सीसोदिया' कुल के सूर्यवंशी राजा है, न कि चौहान कुल के।

श्री ओझाजो ने मेवाड़ के शासक राव जैत्र सिंह (शासनकाल १२१३ – १२५२ ई०) के नाडौल के चौहानों के साथ हुए युद्ध का विव-रण देते हुए लिखा है कि—'नाडौल के चौहोंने के वंशज कीतू (कीर्ति–

१–जौहर–चिनगारी १, पृ० ७। २–जटमल कृत-'गोरा बादल की कथा–छं० २५, पृ० ७। ३–'जायसी-ग्रंथावली–पृ० १३०।

४–स्व. गौ.ही. ओझा: राजपूताने का इतिहास- भाग १, पृ. ३६६-७१।

पाल) ने मेवाड़ को थोड़े समय के लिए ले लिया था, जिसका बदला लेने के लिए जैत्र सिंह ने नाडौल पर चढ़ाई की हो।'[1]

सम्भव है कि चौहानों के चित्तौड़ पर इस अल्पकालीन अधिकार हो जाने के कारण ही यह प्रवाद चल पड़ा हो कि वहाँ के शासक चौहान वंश के हैं। पर उक्त जैत्र सिंह से पहले से ही वहाँ पर गुहिल-राजपूतों का राज्य था। अतएव राव रतन सिंह (१३०३ ई०) गुहिल अथवा सीसोदिया था, न कि चौहान।

चारणों आदि में प्रचलित उक्त प्रवाह से ही प्रभावित होकर जायसी तथा जटमल ने उक्त भूल कर डाली है। जटमल की यह ऐति-हासिक भूल है। उन्होंने सुनी-सुनाई घटना का ही आधार लिया है जिसमें नाम-मात्र को भी तथ्यांश नहीं है।

ये रावल (रतन सिंह) समर सिंह के पुत्र थे, जो ई०स० १३०३ में सिंहा सनारूढ़ हुए। इन्हें शासन करते हुए थोड़े ही महीने हुए थे, कि इतने ही में अलाउद्दीन ने आक्रमण करके इन्हें मारकर चित्तौड़ पर अधि-कार कर लिया।[2] अन्य ग्रन्थों में रतन सिंह का नाम तक नही दिया गया है।[3] पर कुम्भलगढ़ के शिलालेख[4] और एकलिंग महात्म्य से सिद्ध है कि राव रतन सिंह समर सिंह के पुत्र थे, और उस युद्ध में मारे गये थे।[5]

डा० कानूनगो के अनुसार रतन सिंह मेवाड़ का राजा नहीं था। बल्कि इलाहाबाद के आसपास एक चित्तौड़ का राजा था।[6] परन्तु इति-हास इस बात का समर्थन नहीं करता है

दरीबा के शिलालेख के अनुसार अलाउद्दीन के आक्रमण के समय राणा रतन सिंह मेवाड़ का राजा था। इस लेख की तिथि वि.सं. १३५९ माघ वदी ५ बुधवार है। यह तिथि अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण के लिए प्रस्थान होने के चार दिन पूर्व की है अतएव आक्रमण के समय इसे ही शासक माना जाना चाहिए[7] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्तौड़

१–स्व० गौ. ही. ओझा-'राजपूताने का इतिहास' भाग २, पृ. ४६१-२।
२–वही वही पृ. ४८४। ३-टाडकृत राजस्थान का इतिहास-राजप्रशस्ति महाकाव्य। ४- दे. ई.स. १४६० का कुम्भलगढ़ का शिलालेख। ५–स्व.गौ. ही. ओझा-राजपूताने का इतिहास-भाग २, पृ. ४८४।
६–Dr. K.R. Kanungo. Studies in Rajput History' क्रिटिकल एनलेसिस ऑफ पद्मिनी लोजैड़। ७–रामवल्लभ सोमानी 'बीर भूमि चित्तौड़-पृ. ३२।

पर अलाउद्दीन के आक्रमण के समय रतन सिंह वहाँ का शासक था।

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत हम कह सकते हैं कि कवि का उक्त उल्लेख इतिहास के अनुकूल है।

एक स्थान पर कवि ने लिखा है; यथा—

'रावल-रतन-वियोग-व्यथा से
आग लगी रानी के तन में।'[1]

रावल खिताब के सम्बन्ध में ओझा निबन्ध संग्रह, प्रथम भाग में लिखा है कि— ई०स० की बारहवीं शताब्दी के मध्य के आस-पास तक तो मेवाड़ के राजाओं का खिताब (विरुद) था ऐसा उनके शिला लेख से पाया जाता है। उसके पीछे उन्होंने 'रावल' (राजकुल) खिताब धारण किया। पिछले इतिहास लेखकों को उनके पुराने खिताब का ज्ञान न होने के कारण उन्होंने प्रारम्भ से ही उनका खिताब 'रावल' होना मान लिया और प्राचीन काल के वास्तविक इतिहास के अभाव में उसी की लोगों में प्रसिद्धि हो गई। इस समय बापा आदि पहले के राजा मेवाड़ में बापा रावल, खुमाण रावल, आलु (अल्लट) रावल, आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।[2] इस परिप्रेक्ष्य में कवि द्वारा प्रयुक्त 'रावल' शब्द इतिहास के अनुकूल है।

अब तक के अनुसन्धानों के आधार पर इस कथा का प्रथम रूप हिंदी में पद्मावत् (रचना-काल १५४० ई.) में मिलता है।[3] इसके पश्चात् दूसरा साहित्यिक रूप जटमल की गोरा-बादल की कथा है।[4]

फरिश्ता ने अपनी पुस्तक 'तारिख-इ-फरिश्ता' में चित्तौड़ का विवरण दो स्थानों पर दिया है। प्रथम स्थल पर चित्तौड़ के शासक का नाम नहीं दिया है और दूसरे स्थान पर हि.स. ७०४ (१३०४ ई.) के प्रसंग में लिखता है कि 'इस समय चित्तौड़ का राजा राय रतनसेन, जब से सुलतान ने उसका किला छीना तब से कैद था, अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी एक लड़की के अलौकिक सौंदर्य और गुणों

१–जौहर चि. ५; पृ. ४८। २–ओझा निबन्ध संग्रह प्रथम भाग; साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ; उदयपुर; ई.स. १९५४; सम्पादक टि.; पृ. ६०-६२।
३–दे०–रामचन्द्र शुक्ल: जायसी ग्रन्थावली– भूमिका; पृ० १६-२८।
४–दे० गोरा बादल की कथा, भूमिका– पृ० ४-५।

का हाल सुनकर उससे कहा कि भाई तू अपनी लड़की मुझे सौंप दें तो तू बंधन से मुक्त हो सकता है।'[1] फरिश्ता ने पद्मिनी को रानी न कहकर बेटी बतलाया है।

हाजीउद्दबीर ने गुजरात में रहकर अपनी पुस्तक जफरुलवली की रचना की थी। उसमें उसने लिखा है कि—'चित्तौड़-विजय के पश्चात् वहाँ के हिन्दू-राजा को चित्तौड़ के सुरक्षित स्थान पर बन्दी बनाकर अलाउद्दीन ने दिल्ली से उसके पास यह संदेश भेजा कि यदि वह सुलतान के पास अपनी रानी (जिसमें कुछ गुण थे) को भेज दे तो उसे मुक्ति मिल सकती है। ऐसी स्त्री को पद्मिनी कहते हैं।'[2]

कर्नल टॉड ने लिखा है कि—'सं. १३३१ (ई. सन् १२७४) में लखमसी (लक्ष्मण सिंह) चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। उसका चाचा भीमसी (भीम सिंह) उसका रक्षक बना। भीमसी ने सिंहल द्वीप (सीलोन लंका) के राजा हमीर सिंह चौहान की पुत्री पद्मिनी से विवाह किया जो बड़ी रूपवती और गुणवती थी।'[3]

कर्नलटांड ने यह कथा विशेषकर भाटों के आधार पर लिखी है और भाटों ने इसे 'पदमावत' से लिया है। "भाटों की पुस्तकों में समर सिंह के पीछे रत्न सिंह का नाम न होने से टाँड ने पद्मिनी का सम्बन्ध भीमसिंह से मिलाया और इसे लखमसी (लक्ष्मणसिंह) के समय की घटना माना। ऐसे ही लखमसी का बालक और मेवाड़ का राजा होना भी लिख दिया, परन्तु लखमसी न तो मेवाड़ का कभी राजा हुआ और न बालक था, किन्तु सीमोदे का सामन्त (सरदार) था और उस समय वृद्धावस्था को पहुँच चुका था।"[4] इसी प्रकार भीमसी (भीमसिंह) लखमसो (लक्ष्मणसिंह) का चाचा नहीं. किन्तु दादा था, जैसा कि राणा कुम्भकर्ण के समय के 'एकलिंग माहात्म्य' से पाया जाता है। ऐसी दशा में कर्नल टाड का कथन विश्वास योग्य नहीं है।[5]

१–गौ.ही. ओझा: राजपूताने का इतिहास–भाग २, पृ. ४९२-४९३।
२–हाजीउद्दबीर ने यहाँ पद्मिनी का व्यक्ति-वाचक के रूप में नहीं वरन् अलौकिक गुण संपन्न स्त्री के विशेष्य के रूप में प्रयोग किया है। (कब्बाज़ा) डा. टीकम सिंह तोमर: हिन्दी वीर काव्य– पृ० १९८।
३–टाड– राजस्थान, जि० १; पृ० ३०७-११।
(४) गौ. ही. औझा: 'राजपूताने का इतिहास' भाग २, पृ. ४८४।
(५) वही, वही, भाग २, पृ. ४९४-४९५।

श्री गहलोत के अनुसार "यह कथा चारण भाटों ने मलिक मुहम्मद जायसी के बनाये 'पद्मावत' काव्य से ही ली है, जो कल्पित है"।[1]

तत्कालीन इतिहास लेखकों, कवियों यात्रियों-बरनी, इसामी अमीर खुसरों, इब्नबतूता. तथा 'तारीख-इ-मुहम्मदी' 'तारीख-इ-मुबारक शाही' ने पद्मावती के विषय में कुछ नहीं कहा।[2] कविराज श्यामलदास की पुस्तक में पद्मिनी की कथा थोड़े परिवर्तन के साथ मिलती है।[3] डा० दशरथ शर्मा के अनुसार "जायसी के महाकाव्य से पहले 'सीता चरित्र' में भी पद्मिनी की कहानी को लिपिबद्ध किया गया है। जायसी ने अलाउद्दीन की मृत्यु के २२४ वर्ष बाद और चित्तौड़ के घेरे के २३७ वर्ष बाद 'पद्मावत' लिखा था, अत: उस पर समय या किसी शासक का कोई प्रभाव नहीं है। उन्होंने डा० कानूनगो के सभी तर्कों का खन्डन करते हुए कहा है कि यह कथा सत्य है।[4]

रामवल्लभ सोमानी भी पद्मिनी की कथा को सत्य मानते हैं। उनका विश्वास है कि—"हमें मानना पड़ेगा कि पद्मिनी अवश्य चित्तौड़ में हुई थी। उसके महल आज भी यथावत् विद्यमान हैं। उसका उल्लेख समसामयिक ग्रंथों में नहीं होने से इसे कल्पना नहीं मान सकते।[5]

"फरिश्ता ने चित्तौड़ के शासक का नाम नहीं लिखा है, क्यों कि उसका आधार अमीर खुसरो था, जिसने स्वयं उसका नाम नहीं दिया है। फरिश्ता को यह निश्चय नहीं था कि पद्मिनी रत्नसिंह की पुत्री थी अथवा पत्नी।[6] हाजीउद्दबीर का विवरण भी भ्रमात्मक है। उसने रत्नसिंह के नाम का उल्लेख नही किया है। पद्मिनी से उसका अभिप्राय विशेष–गुण सम्पन्न स्त्री से है, न किसी पद्मिनी नाम की विशिष्ट नारी से।[7]

'पद्मिनी' का जो कुछ भी विवरण 'पद्मावत' 'गोरा बादल की कथा' तथा अन्य ग्रन्थों में मिलता है उसमे से अधिकांश काल्पनिक है। केवल इतना ही निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि वह चित्तौड़ के राव रत्नसिंह की एक रानी थी।"[8]

---

(१) श्री जगदीशसिंह गहलोत–'राजपुताने का इतिहास' भाग १ पृ. २०१। (२) डा० किशोरीशरण लाल: 'अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी' यह थीसिस अब प्रकाशित हुई है। (३) श्यामलदास 'वीर विनोद'। (४) दे० डा० दशरथ शर्मा का राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस में दिया भाषण, बी. एम. दिवाकर: 'राजस्थान का इतिहास' पृ. ११८–११९।
(५) रामवल्लभ सोमानी: "वीरभूमि चित्तौड़" –पृ०४१। (६) डा० टीकमसिंह तोमर: "हिन्दी वीर काव्य"–पृ.२०० पर उद्धृत।
(७) वही, वही। (८) गौ०ही. ओझा: "उदय पुर राज्य का इतिहास,-भाग २, पृ. ४९१।

'पद्मावत' लिखते समय जायसी का यह उद्देश्य नही था कि वह रत्नसेन अथवा पद्मावती की जीवनी लिखें। उसने कथा की समाप्ति पर सारी कथा को एक अन्योक्ति बतलाकर लिखा है :—

"चौदह भुवन जो उपराहीं ते सब मानुष के घर माही।
तन चितउर, मनराजा कीन्हा. हिय सिंघल, बुधि पद्मिन चीहना।
गुरु सुआ जेह पंथ दिखावा, बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।
नागमती यह दुनिया धंधा, बांचा सोइ न एहि चित बंधा ?
राघव दूत सोई सैतानू, माया अलाउद्दीन सुलतानू।
प्रेम कथा एहि भाति विचारहु, बूझी लेहु जौ बुझै पारहु।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि जायसी कृत 'पदमावत' एक अन्योक्ति है, न कि एतिहासिक ग्रन्थ। इस विषयमें डा० किशोरीशरण लाल लिखते हैं कि–'यह हो सकता है कि जायसी के समय में सन् १५३४ ई० में गुजरात के शासक बहादुर शाह के चित्तौड़ पर किए गये आक्रमण के अवसर की हृदय-विदारक जौहर का उन पर कुछ प्रभाव पड़ा हो। भारतीय मुसलमान इतिहास लेखकों ने जायसी कृत इस कहानी को बिना संकोच के अपनी पुस्तकों में लिख दिया जैसा कि उन्होंने अन्य फारसी इतिहासों की प्रतिलिपि ज्यों की त्यों अपनी रचनाओं में कर ली। चित्तौड़ के आक्रमण के २३७ वर्ष और अलाउद्दीन की मृत्यु के २२४ वर्ष पश्चात् जायसी के ग्रन्थ 'पद्मावत की रचना हुई। इससे पूर्व किसी भी इतिहास लेखक फारसी अथवा राजस्थानी ने पद्मिनी के विषय में नहीं लिखा।'[2]

'पद्मावत् में वर्णित कथा की अनैतिहासिकता का विवेचन करते हुए ओझाजी लिखते हैं कि–'उसके (रत्नसिंह के) समयमें सिंहल द्वीपका राजा गंधर्वसेन नहीं, किन्तु राजा कीर्त्ति-निश्शंकुदेव पराक्रमबाहु चौथा (या भुवेकवाहु तीसरा) होना चाहिए। सिंहलद्वीप में गंधर्वसेन नाम का कोई राजा नहीं हुआ। उस समय तक कुंभलनेर (कुम्भल गढ़) आबाद ही नहीं हुआ था, तो देवपाल वहाँ का राजा कैसे माना जाय ?'[3] इस संबंध में उनका यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि 'पद्मावत की कथा का कलेवर इन ऐतिहासिक तथ्यों पर खड़ा किया गया है कि अलाउद्दीनने चित्तौड़पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनंतर उसे विजय किया, वहाँ का राजा रत्नसिंह इस लड़ाई में लक्ष्मणसिंह आदि कई सामन्तों सहित मारा गया,

१–रामचन्द्र शुक्ल : 'जायसी ग्रन्थावली' पृ. ३४१।
२-डा० किशोरीशरण लाल:-'अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी,' पृ०२६२-२६३।
३–गौ० ही० ओझा: 'राजपूताने का इतिहस,-भाग २; पृ० ४९१।

उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी, इस प्रकार चित्तौड़ पर थोड़े से समय के लिए मुसलमानों का अधिकार हो गया। बाकी की बहुधा सब बातें कल्पना से खड़ी की गई हैं।'[1]

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि—कवि श्यामनारायण पांडेय द्वारा पद्मिनी विषयक उल्लेख इतिहास की दृष्टि से लगभग प्रामाणिक हैं।

कवि पांडेय जी ने रानी पद्मिनी के रूप–सौन्दर्य के सम्बन्ध में लिखा है, यथाः—

'और रानियाँ हो सकतीं
उसके पैरों की धूल नहीं।
सच कहता उसके समान
हँसते उपवन के फूल नहीं॥
रोम–रोम लावण्य भरा है,
रोम-रोम माधुर्य भरा है।
बोल–बोल में सुधा लहरती,
शब्द–शब्द चातुर्य भरा॥'[2]

उसके रूप–सौन्दर्य से अलाउद्दीन खिलजी उन्मत्त हो उठा; यथाः—

प्राणों की सहचरी पद्मिनी
वह देखो हँसती आयी।
ज्योति महल में फैल गयी;
लो बिखरी तन की सुघराई॥
आज छिपाकर तुम्हें रखूँगा,
अपने मणि के हारों में।
अपनी आँखों की पुतली में,
पुतली के लघु तारों में॥
हाय पद्मिनी कहाँ गयी? फिर
क्यों मुझसे इतनी रूठी?
अभी न मैंने उसे पिन्हा
पायी हीरे की अंगूठी॥
किस परदे में कहाँ छिपी
मेरे प्राणों की पहचानी।

१–गौ. ही. ओझा : 'राजपूताने का इतिहास' भाग २, पृ० ४९५।
२–'जौहर' चि० ३, पृ० ३२, ३३।

हाय पद्मिनी, हाय पद्मिनी,
हाय पद्मिनी महरानी ॥''[1]

ऐसी पद्मिनी की प्राप्ति के लिए उसने चित्तौड़पर धावा बोला। यथा:--

'बोला कहो सजे सेना अब,
भैरव सी जमुराई ली ॥
क्षण भर में ही बजे नगाड़े,
गरज उठे रण के बाजे।
निकल पड़ी झनझन तलवारें;
सजे वीर हय—गज गाजे ॥
उधर दुर्ग—सन्निधि अरि आया
रूप--ज्वाल को रख प्राणों में।'[2]

फरिश्ता[3] तथा टाड[4] के अनुसार रानी पद्‌मिनी अलौकि सौंदर्य संपन्न और गुणवती थी तथा दोनों के मत से, पद्‌मिनी की प्राप्ति के लिए अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था।

जायसी के मत से 'पद्‌मिनी के सौंदर्य से प्रभावित होकर अलाउद्दीन ने रतनसिंह को एक संदेश भेजा कि पद्‌मिनी को शाही हरम में भेज दिया जाय। रतनसिंह को इस बात पर बहुत क्रोध आया और इस बात को लेकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया।'[5] जटमल के अनुसार भी चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण का उक्त कारण है।[6]

मध्यकालीन वातावरण को देखते हुए अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण का उक्त कारण सही प्रतीत होता है।

बी० एम्० दिवाकर ने अलाउद्दीन के चित्तौड़-आक्रमण के निम्नांकित मूल कारण बताये हैं—' १- अलाउद्दीन खिलजी सारे संसार को जीतना चाहता था। इसी उद्देश्य से उसने एक विशाल सेना तैंयार की थी। ………… ……भारत पर पूर्ण अधिकार होने के बाद ही वह अन्य देशों को जीत सकेगा, अन्यथा उसके बाहर जाने पर पीछे से आन्तरिक विद्रोह व अराजकता की पूरी संभावना थी। अतः अपने विश्व विजय के स्वप्न को पूरा करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह दिल्ली के निकटतम स्वतंत्र शासक रतनसिंह को पराजित कर चित्तौड़ पर अपना

१-'जौहर' चि०, पृ. ३०,-३१। २-'जौहर'-चि० ३, पृ० ३३, ३४। ३-गौ० हीं० ओझा–'राजपूताने का इतिहास' भाग २, पृ० ४९२-४९३। ४- टाड–'राजस्थान' जि०१, पृ०३०७-११। ५-डा०रामनिवास शर्मा द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' (सटीक) छं० ४८९–५१५। ६– कवि जटमल : 'गोरा बादल की कथा' छं० ६९-७०, पृ० १७।

अधिकार जमा ले । २—अलाउद्दीन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मेवाड़ की राज्य-विस्तार की भावनाको पूर्णतया दबाये बिना मुसलमान साम्राज्य का विस्तार सम्भव नहीं है। अतः दोनों की राज्य-विस्तार नीति युद्ध का एक कारण वन गयी। ३—बिना चित्तौड़ जीते मालवा या गुजरात को जीतना सरल काम नही था। सारे भारत पर अधिकार पानेसे पहले मध्य भारत को जीतना आवश्यक था और यह तभी हो सकता जबकि चित्तौड़ व राजस्थान पर पूर्ण अधिकार हो।.......... सामरिक और राजनीतिक दृष्टि से चित्तौड़ विजय आवश्यक थी।'[1] कहने का तात्पर्य यह है कि—'अलाउद्दीन एक महत्वाकांक्षी और दूरदर्शी सुलतान था। दिल्ली में शांतिपूर्वक शासन करने के लिए यह आवश्यक था कि वह राजपूताने पर विजय प्राप्त करके अपने राज्य को विस्तृत एवं निष्कंटक बनाये। यही कारण था कि उसने राजस्थान के विविध राज्यों पर आक्रमण किये। शनैः शनैः उसे अपने उद्देश्यों में सफलता भी मिली। सफलता से प्रोत्साहित होना मानव स्वभाव है। रणथंभौर जैसे अजेय दुर्ग को अधिकृत करने से उसका उत्साह अधिक बढ़ गया। अतः राजस्थान में नवीन विजय-प्राप्ति की कामना से प्रेरित होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अपनी सेनाएँ भेजीं।'[2]

डा० ए० एल० श्रीवास्तव के अनुसार भी अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण का कारण यही है। वे लिखते हैं कि—'मेवाड़ के स्वतंत्र रहते हुए अलाउद्दीन की समस्त भारत को एक राष्ट्र बनाने की महत्वाकांक्षा का स्वप्न पूरा होना असम्भव था। अतः उसन चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया।'[3]

कवि पाण्डेय के अनुसार रावल रतन सिंह आखेट खेलते समय शत्रु-सैनिकों द्वारा बन्दी बनाया गया, यथा—

'रतन चला आखेट खेलने, इधर भयद वन के झाड़ों में।'[4]

× × ×

अरि के गुप्तचरों ने उसको लोहे की कड़ियों से बाँधा॥'[5]

१- वी० एम० दिवाकर—'राजस्थान का इतिहास' पृ० ११०-१११।
२- डा० किशोरीशरण लाल-'अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी' पृ० ८१।
३- डा० ए० एल० श्रीवास्तव : दिल्ली सल्तनत-पृ० १७६। ४- जौहर—चि० ३, पृ० ३४। ५-वही, चि० ४, पृ० ४३।

जायसी के मत से शाह को पहुँचाने के लिए रत्नसेन किले के बाहर आया। तभी शाह ने छल से राजा को बंधन में डाल दिया।[1] कवि जटमल के मत से 'सुलतान वहाँ से लौटकर रत्नसेन के साथ पहले दरवाजे पर पहुँचा, उस समय उस(सुलतान) ने उसको लाख रुपये दिये। दूसरे दरवाजे पर पहुँचने पर उसने उसको दस किले देकर लालच में डाला। फिर इस प्रकार वह राजा को लुभाकर उसे किले से बाहर ले गया और उसे कपटपूर्वक पकड़ लिया जिससे गढ़ में आतंक छा गया।'[2] इस सम्बन्ध में टॉड ने लिखा है कि—'लौटते समय दुर्ग के नीचे मुसलमानों ने छल कर राणा को पकड़ लिया और पद्मिनी के सौंपने पर उनको छोड़ना चाहा।'[3] सुखवीर सिंह गहलोत के अनुसार भी 'रावल रतन सिंह को धोखे से कैद कर लिया गया।'[4] लगभग सभी इतिहासकार तथा कवि-लेखकों ने अलाउद्दीन के द्वारा रतन सिंह को धोखे से बन्दी बनाने की बात का समर्थन किया है।

पाण्डेय जी द्वारा रतनसिंह के बन्दी होने की बात तो उचित है, परन्तु आखेट के समय उसका बंदी बनाया जाना इतिहास के प्रतिकूल है।

पाण्डेय जी के अनुसार चित्तौड़ नगर से आये गुप्त दूत द्वारा पद्मिनी का रूप वर्णन सुनकर अलाउद्दीन उसकी ओर आकृष्ट हुआ। यथा—

'इतने में चित्तौड़ नगर से, गुप्तदूत आ गया वहाँ।
उन्मादी ने आँखें खोलीं; भगी युवतियाँ जहाँ-तहाँ।।
बड़े प्रेम से खिलजी बोला, कहो यहाँ कब आये हो ?
दूर देश चित्तौड़ नगर से समाचार क्या लाये हो?

० ० ०

सुनो, पद्मिनी के बारे में चुप न रहो, कुछ कहा करो।
जब तक पास रहो उसकी ही मधु-मधु बातें कहा करो।।'[5]

१- डा० श्री निवास शर्मा—'जायसी ग्रंथावली' (सटीक), छं०५७४,५७५।
२- दे० 'गोरा बादल की कथा–ओझा निबन्ध संग्रह' भाग २; १५८ पर उद्धृत। ३- टॉड—राजस्थान का इतिहास, पृ० १४९। ४- सुखवीर सिंह गहलोत-राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३८।
५-जौहर;चि. ३, पृ. ३१।

पाण्डेय जी के मतानुसार अलाउद्दीन ने गुप्तदूत को बहुत सा पुरस्कार दिया। यथा—

'गुप्तदूत की बातें सुनकर बोला उठो गले लग जाओ।

× * *

यह लो, उँगली से निकालकर फेंकी उसकी ओर अँगूठी।

दियें कनक-हीरक रेशम-पट, टोपी दी नव परम अनूठी॥'[1]

जायसी ने राघवचेतन के दिल्ली जाने का और पद्मिनी के रूप की बादशाह से प्रशंसा करने पर बादशाह उस पर आसक्त होने का तथा राघवचेतन को बहुत-सा पुरस्कार देने का उल्लेख किया है।'[2] जटमल ने राघवचेतन का साधु बनकर दिल्ली जाना; उसकी गान-विद्या से अलाउद्दीन का उससे प्रसन्न होना एवं पदमिनी आदि चारों जाति की स्त्रियोंका वर्णन करने पर बादशाह का पदमिनी जातिकी स्त्री पर आसक्त होना बतलाया है।'[3] इतिहासज्ञ भी उपयुक्त बात का समर्थन करते हैं।

पांडेयजी के उक्त विवरण प्रामाणिक है परन्तु उन्होंने 'जौहर' में राघवचेतन के स्थान पर गुप्तदूत का उल्लेख किया है।

जायसी राघवको एक भिखारी बताते है।'[4] डा० शर्मा भी राधव भिखारी को सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि—'इस भिखारी का वर्णन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कृतियों में भी मिलता है।'[5] किन्तु फारसी के ग्रंथों से प्रमाणित हो चुका है कि राघव भिखारी नहीं, एक ऐतिहासिक महत्व का राजपूत था जो पहले चित्तौड़ की सेवा में था, फिर अलाउद्दीन के पास चला गया था। जायसी का 'भिखारी राघव' एक महत्त्वपूर्ण सामन्त था, भिखारी नहीं ' जो लेखक एक महत्त्वपूर्ण सामन्त को भिखारी बना दें, उनकी बातों पर विश्वास करना तो अच्छा लगता है; किन्तु ऐतिहासिक कसौटी पर ये बातें सही नहीं हो सकतीं।

१- वही चि. ५ पृ. ५४।

२- राघो चेतन कीन्ह पयाना। ढीली नगर जाई नियराना।
जाइ साहिके बार पहूँचा। देखा राज जगत पर ऊँचा॥

श्रीनिवास शर्मा 'जायसी ग्रन्थावली' सटीक छं. ४५७, ४६८–४८६: ४८८ पृ. ४४१, ४५१, ४६६, ४७०। ३- गोरा बादल की कथा - ओझा निवन्ध संग्रह, भाग २, पृ. १८२ पर उदघुत।

४- 'मया साहि-मन सुनत भिखारी। परदेशी जहँ पूँछु हंकारी।
डा. श्रीनिवास शर्मा—जायसी ग्रन्थावली, सटीक छं. ४५६, पृ. ४४३।

५- बी. एम. दिवाकर—'राजस्थान का इतिहास' पृ. ११६।

कवि पांडेयजी के अनुसार रानी पद्मिनी ने अपने पति की मुक्ति के लिए निम्नांकित योजना बनायी। वह उसकी कुशल बुद्धि का प्रमाण है यथा—

'कह दो कि सात सौ सखियाँ
उसके सँग—सँग रहती हैं।
उसकी तन-पीड़ा को ले
अपने तन पर सहती हैं॥
उसके पति को छोड़ें, तो
अपनी सहचरियों को ले,
वह शोभित महल करेगी,
ले साथ सात सौ डोले॥
× × ×
डोलों में योद्धा बैठें,
योधा ही करें कहारी।
योद्धा ही परिचारक हों,
रणधीर वीर असिधारी॥'[1]

डोलियाँ पहुँचने पर अलाउद्दीन संतुष्ट हुआ, यथा—

'सात सौ सवारियाँ,
हैं सभी कुमारियाँ।
सुन नवीन नारियाँ,
हो गये मगन मियाँ॥'[2]

जायसी के अनुसार सोलह सौ पालकियाँ सजाई गईं। उनमें राजपूतों को हथियारों से सुसज्जित करके बैठाया।[3] जटमल[4] तथा हाजीउद्दबीर[5] के अनुसार चित्तौड़ से ५०० डोलियाँ चलीं, पर फरिश्ता ने सात सौ डोलियों का उल्लेख किया है।[6]

कर्नल टॉड ने इस सम्बन्ध में विशेष विवरण देते हुए लिखा है कि —'पद्मिनी एवं गोरा बादल की सम्मति से ७०० डोलियाँ तैयार की

१–जौहर- चि० ७, पृ० ७५, ७६। २–वही- चि० ८, पृ० ९०।
३–सोरह सौ चंडोल सँवारे। कुँवर सँजोइल कै बैसारें।
डा० श्री निवास शर्मा: जायसी ग्रंथावली (सटीक) छं० ६२२ पृ. ५८९।
४–कवि जटमल कृत–गोरा बादल की कथा–छं० ९८, पृ. २५।
५–डा० किशोरीशरण लाल: अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, पृ. २६०-६२।
६– वही, वही वही।

गई, जिनमें से प्रत्येक में एक-एक सशस्त्र राजपूत वीर बैठ गया और कहारों का वेष धारण किये शस्त्रयुक्त छः छः राजपूतों ने प्रत्येक डोली को उठाया।[1] डोलियों की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित होने के कारण पांडेयजी को उक्त उल्लेख के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

कवि पांडेयजी के अनुसार राणा रतन सिंह चित्तौड़ दुर्ग के समीप अरिशिविर में बन्दी था। रानी पद्मिनी सुसज्जित डोलों के साथ वहाँ गई तथा वह वहाँ से अपने पति को छुड़ा लायी, यथा—

'दुर्ग से उतर गये, एक सिन्धु तर गये।
अरि-शिविर समीप है, सामने महीप है॥
× × ×
मौन वीर हो गये, मौन धीर हो गये।
× × ×
बोलियाँ सकुच गयीं, डोलियाँ पहुँच गयीं॥'[2]
× × ×
रानी को घोड़े पर देखा; रिक्त एक घोड़ा भी देखा।
इंगित पा चढ़ गया अश्व पर, जग ने वह जोड़ा भी देखा॥
एक एड़ मारी रावल ने, अश्व कूदकर तीर बन गया।
एक एड़ रानी ने मारी, घोड़ा उड़ा समीर बन गया॥[3]

जायसी[4] और फरिश्ता[5] के अनुसार राजा देहली में बन्दी था। परन्तु हाजीउद्दबीर[6] एवं जटमल[7] के मतानुसार वह चित्तौड़ में, उसके डेरों में ही कैद था, जिससे वह पद्मिनी को अलाउद्दीन के पास जाने के लिए फुसला सकता। जायसी[8] और जटमल[9] के अनुसार पद्मिनी की

१–टाड: 'राजस्थान का इतिहास' जि० १, पृ. ३०७-११।
२ जौहर–चि० ८, पृ. ९०। ३–जौहर– चि. ९, पृ.१००।
४–डा. श्री निवास शर्मा: जायसी ग्रंथावली (सटीक) छं. ५७७, पृ. ५४७।
५–गौ.ही. ओझा-राजपूताने का इतिहास, भाग २, पृ.४९२-४९३ पर उद्धृत
६–डा. टीकम सिंह तोमर: हिन्दी वीर काव्य, पृ. २०० पर उद्धृत।
७–डा. किशोरीशरण लाल: अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, पृ. २६०-२६२ पर उद्धृत।
८–साजा पदुमावति क बेवानू। बैठ लौहार न जानै भानू।
× × ×
भै सँग गोरा बादल बादिल बली। कहत चले पदुमावति चली।
× × ×
रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ॥
डा. श्रीनिवास शर्मा: जायसी ग्रन्थावली-सटीक, छं. ६२२, पृ. ५८९। छं. ६३३; पृ. ६०१।
९–डा. किशोरीशरण लाल: अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी; पृ. २६०-२६२।

बुद्धिमत्ता से राजा का छुटकारा हुआ। फरिश्ता के अनुसार वह रतन सिंह की पुत्री थी, वह दिल्ली गई तथा वह उसको (रतन सिंह को) छुड़ा लायी।[1] हाजीउद्दबीर के मत से राणा ने स्वयं ही उपाय निकाला था।[2] अतः केवल थोड़ी से सूक्ष्म अन्तरों के अतिरिक्त सभी भाटों, चारणों एवं फारसी लेखकों की दी हुई कथा जायसी द्वारा लिखित कथा से मिलती है।[3] ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार पद्मिनी के दिल्ली जाने की बात भी निर्मूल है।[4]

पांडेयजी के अनुसार राजा रतन सिंह और उनके सरदार लक्ष्मण सिंह अपने सात पुत्रों सहित मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गये, यथा–

'वैरी-दल के गोलों के, आघातों से गात भरे।
संगर में घायल हो-हो, राणा के सुत सात मरे॥'[5]

राजकुमारों के बलिदान से राणा लक्ष्मण सिंह की भुजाओं में असीम शक्ति बढ़ गयी, जर्जर शरीर में एक बार यौवन फिर लौट आया। ....किन्तु वे खिलजी-दल की बाढ़ में अधिक देर तक टिक न सके। शत्रुओं के कंठों से तलवार निकालते हुए समर के यज्ञ में अपनी एक आहुति और बढ़ा दी।[6]

'रावल के तन पर एक साथ, छप-छप-छप तलवारें छपकीं।
हा, एक हृदय की ओर शताधिक, बरछीं की नोकें लपकीं॥
क्षण भर में रावल के तन की, थी अलग-अलग बोटी-बोटी।
चल एक रक्त-धारा निकली, गढ़ के ढालू पथ से छोटी॥'[7]

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार वह (लक्ष्मण सिंह) सात पुत्रों सहित अपना नमक अदा करने के लिए रतन सिंह की सेना का मुखिया बनकर अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा गया[8], जैसा कि वि० स० १५१७ (ई०स० १४६०) के कुंभलगढ़ के शिलालेख में बताया गया है।[9] इससे स्पष्ट है कि चित्तौड़ का युद्ध बहुत भयंकर हुआ। सभी मुसलमान इतिहास लेखकों ने इसे स्वीकार किया है।

१–गौ.ही. ओझाः राजपूताने का इतिहास, भाग २, पृ. ४९२-४९३ पर उद्धृत।
२–डा. किशोरशरण लालः अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, पृ. २६०-२६२।
३– वही वही वही।
४–गौ.ही. ओझाः राजपूताने का इतिहास; भाग २, पृ. ४९३।
५–जौहर–चि. १३, पृ. १४९। ६–वहीं–शीर्षक विहीन भूमिका– पृ. १५।
७–वही– चि. १६, पृ. २२२। ८–गौ.ही. ओझा– राजपूताने का इतिहास, भाग २, पृ. ४८४। ९–प्रस्तुत शिलालेख उदयपुर म्युजियम में सुरक्षित है।

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार यह सच है कि–'ई०स० १३०३ में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की और छः महीने तक लड़ने के बाद उसने वह किला फतह कर अपने बेटे खिज्रखाँ को दे दिया। इस लड़ाई में रावल रतन सिंह व उसके कई सरदार मारे गये।'[1] टॉड[2] तथा 'वीर विनोद'[3] से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ में पांडेयजी के उल्लेख प्रामाणिक हैं।

पांडेयजी के अनुसार रानी पद्मिनी ने राजपूत रमणियों के साथ जौंहर व्रत द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा की। यथा—

'इधर स्वाहा शब्द निकला, उधर वह कूदी अनल में।
जल उठीं लपटें लटों में, बल उठी वह एक पल में।।

× × ×

जल गई रानी रुई-सी, स्मृति सुई-सी गड़ रही है।

❀ ❀ ❀

हा, सती के बाद ज्वाला में धधकती नारियाँ थीं।
खेलती चिनगारियों से, सुमन-सी सुकुमारियाँ थीं।।'[4]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि–'गढ़ के ऊपर मुसलमानों का अधिकार होने से पूर्व राजपूत रमणियों ने जौहर व्रत द्वारा अपने सतीत्व की रक्षा की।'[5] टॉड[6] गहलोत[7] श्यामलदास[8] ने भी उपर्युक्त बात की पुष्टि की है। अतः पांडेयजी का जौहर विषयक कथन इतिहास के अनुकूल है।

१-गौ.ही. ओझाः राजपूताने का इतिहास, भाग २, पृ. ४८४।
वही : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ. ४८४-६।
२-टाडः राजस्थान का इतिहास, जि. १, पृ. १४६।
३-श्यामलदासः वीर विनोद, पृ. २८८।
४-श्यामनारायण पांडेयः जौहर, चि. १८, पृ. २११।
५-गौ.ही. ओझाः उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग २, पृ. ४८६-६। इलियट, हिष्ट्री ऑव इन्डिया; भाग ३; पृ. ७६-७; १८६। आक्यांलॉजीकल सर्वे रिपोर्ट; १६२५-२६ ई०; पृ. १४६। अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी; पृ. ८१-६।
६-टाडः राजस्थान का इतिहास; पृ. १४६।
७-सुखवीर सिंह गहलोतः राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास; पृ. ३८।
८-श्यामलदासः वीर विनोद; पृ २८८।

'गोरा-वध' काव्य में ऐतिहासिकता:—

'गोरा-वध में मुसलमानों के साथ गोरा-बादल की लड़ाई के सम्बन्ध में पांडेय जी ने लिखा है कि अलाउद्दीन द्वारा छल से रतनसिंह को बन्दी बनाने के बाद महारानी पद्मिनी ने जब चित्तौड़ के वीरों का आह्वान किया तब गोरा बादल आगे आये और उन्होंने राजा रतनसिंह को छुड़ाने के के भीष्म प्रतिज्ञा की, जो युग-युग तक स्मरणीय है, यथ—

'रानी की बातें सुनकर, दो बालक आगे आये।
बोले-माँ, तेरी जय हो, संगर के बादल छाये॥
यदि गोरा बादल, तो, बैरी दल दलन करेंगे।
बन्दी को मुक्त करेंगे, क्षण भर भी कल न करेंगे।

× × ×

पथिक, रुधिर से लथफथ बादल, गोरा की विधवा से बोला।
चाची चाचा के संगर के भय से खिलजी का दल डोला॥[1]

कवि के मतानुसार गोरा और बादल दो भिन्न व्यक्ति थे। इनमें बादल भतीजा और गोरा उसका चाचा था।

कवि जटमल ने गोरा बादल को दो विभिन्न सामन्त माना है। उनके मतानुसार बादल गाजण सुत था और गोरा उसका चाचा था।[2]

जायसी ने बादल को गोराका पुत्र मानकर दोनों को रत्नसिंह का विश्वासपात्र सरदार बतलाया है।[3]

टाड के मत में गोरा पद्मिनी का चाचा था और बादल गोरा का भतीजा था।[4]

डॉ० गौ० ही० ओझा जो ने इन वीरों के इतिहास के सम्बन्ध में नवीन प्रकाश डालने का जो प्रयत्न किया है, उसका सारांश निम्नानुसार है:—

'उदयपुर राज्य के छोटी सादड़ी गाँव से दो मील दूर

१--'गोरा वध'—सर्ग ३, पृ० ३३ और सर्ग ६, पृ० ७०-७१।
२--'गोरा बादल की कथा'--छंद ७, पृ० २ और छंद ९६, पृ० २४।
३--आचार्य रामन्चद्र शुक्ल: 'जायसी ग्रंथावलो' भूमिका, पृ० २७; वही गोरा बादल खंड, पृ० ३२७। ४-टाडकृत--राजस्थान का इतिहास- भाग १ पृ० २०३।

एक पहाड़ी पर के 'भमरमाता' के मन्दिर से प्राप्त एक शिलालेख से विदित होता है कि 'गौर' वंशीय शासक यशगुप्त ने जनवरी के ४९१ ई० को पहाड़ पर अपने माता पिता के पुण्य के निमित्त देवी का मन्दिर बनवाया। इस लेख से विदित होता है कि 'गौर' नामक क्षत्रिय वंश वि०सं० छठी शताब्दी के मध्य में मेवाड़ में विद्यमान था और छोटी सादडी के आसपास के प्रदेश पर उसके वंशवालों का राज्य था। महाराणा रायमल के समय में (१४८८ ई० में) वर्तमान गौरवंशीय क्षत्रिय उक्त महाराणा की सेवा में थे और वे मुगलों से बड़ी वीरता से लड़े थे। चित्तौड़ के किले पर पद्मिनी के महलों से दूर दक्षिण पूरब में दो गुंबजदार मकान हैं, जिन्हें लोग गोरा-बादल के महल कहते हैं।

........................जायसी के पद्मावत (रचनाकाल १५४० ई०) और जटमल कृत (गोरा बादल की कथा (रचनाकाल १६२३ ई०) में गोरा और बादल को दो भिन्न व्यक्ति माना है परन्तु ये दोनों पुस्तकें गोरा बादल की स्मृति से क्रमश; २३७ और ३२० वर्ष पीछे लिखी गई हैं। इतने दीर्घकाल में नामों में भ्रम होना संभव है। गोरा-और बादल दो पुरुष नहीं; किन्तु एक ही पुरुष का नाम होना संभव है, जैसा कि राठौर दुर्गादास, सीसादिया पत्ता आदि, जिसका अंश (गोरा) वंश सूचक और दूसरा अंश (बादल) व्यक्तिगत नाम है। गोरा बादल का वास्तविक अभिप्राय गौरा (गोर) वंश के बादल नामक पुरुष से हो सकता है। वंश सूचक गौर नाम अज्ञात होने के कारण पिछले लेखकों ने भ्रम से इन्हें दो अलग-अलग नाम मान लिया है।[1]

उपरोक्त विवेचन पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से विदित होता है कि आदरणीय ओझाजी ने गोरा-बादल के सम्बन्ध में हमारे सामने नवीन सुझाव रखा है। उनके उक्त निर्णय का आधार 'गौर-वंश' सबंधी उक्त शिलालेख है। पर उस शिलालेख में गोरा बादल संबंधी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में कोई उल्लेख नहीं है। आदरणीय ओझाजी का उक्त निश्चय गौर वंश के परिचय तथा अन्य व्यक्तियों के साम्य पर ही अवलम्बित है। अतएव उनका उक्त निर्णाय नवीन और संभावित होते हुए भी, ठोस प्रमाणों के अभावों में सत्य तथा अन्तिम निर्णय नहीं माना जा सकता।

१-गौ०ही० ओझा : ओझा निबंध संग्रह, भाग १, पृ० ८८-९१। नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (नवीन संस्करण) भाग १३, पृ० ७-११, १८८९ वि।

फारसी इतिहास लेखकों और उनके द्वारा लिखित इतिहासों यथा–बरनी, इसामी, अमीर खुसरो, इब्न बतूता, तारीख-इ-मुहम्मदी, एवं 'तारीख-इ-मुबारकशाही', फरिश्ता, हाजीउद्दबीर आदि में गोरा-बादल संबंधी विशेष विवरण नहीं मिलता और न अभीतक कोई ऐसा शिलालेख ही मिला है जो गोरा बादल के जीवन पर विशेष प्रकाश डाल सके। ऐसी परिस्थितियों में केवल इतना ही स्वीकार किया जा सकता है कि गोरा बादल चित्तौड़ राज्य के विश्वास पात्र तथा स्वामी–भक्त सामन्त थे।

उपरोक्त विवेचन के अन्तर्गत 'ओझा निबन्ध संग्रह के संपादक की टिप्पणी देखिए— 'एकलिंगजी के मन्दिर की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि मांडू (मालवा) के सुलतान गयासुद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई के समय मेवाड़ के महाराणाओं की सेवा में गौरवंशी क्षत्रिय विद्यमान थे। एक–लिंगजी के शिवालय को प्रशस्ति, छोटी सादड़ी के प्रशस्ति से लगभग एक सहस्र वर्ष पीछे की है। अर्थात् छोटी सादडी की प्रशस्ति से एक हजार वर्ष पीछे तक गौर वंश का अस्तित्व था और अब तो गौरवंश का पता ही नहीं चलता। संभव है कि गौरवंशियों को जन-साधारण में गौड़ कहने लग गये हों, अथवा वंशोत्पत्ति नहीं जानने से वे गौड़ों में शामिल होकर अपने को गौड़ कहने लग गये हों। उदयपुर में पहले 'गौरवा' नामक एक क्षत्रिय वंश था, जो कोतवाल आदि उच्च पदों पर काम करता था, परन्तु अब उसका वहाँ अस्तित्व ही नहीं है। नाथ द्वारा-काँकरोली में अब भी 'गौरवा' नामक एक जाति है, जो अपने को क्षत्रिय मानती हैं और वहाँ के वैष्णव- मन्दिरों की सेवा करती है। अनुमान होता है कि संभ–वत: उक्त प्राचीन गौरवंश के अवशेष चिन्ह-स्वरूप यह 'गौरवा' जाति हो।'[1]

पांडेयजी के मतानुसार गोरा-रण निपुण था। अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में वह चतुर था। युद्ध में वीरता-पूर्वक लडते हुए अपने स्वामी कार्य-संपा-दन में उसने अपने प्राण विसर्जित किये।[2]

जायसी के मतानुसार युद्ध में गोरा ने अपूर्व शौर्य दिखाया और अन्त में; वह शत्रुओं द्वारा मारा गया।[3] कवि जटमल के अनुसार गोरा बलि, रण-रसिया और रण-ढाल था। अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग में वह जितना

१–ओझा निबन्ध संग्रह, भाग १, सम्पादक टिप्पणी, पृ० ९०।
२–'गोरा वध' सर्ग ६ पृ० ६३ ६४, ६७; ७०।
३–डॉ० श्रीनिवास शर्मा : 'जायसी ग्रंथावली सटीक छन्द ६३३, ६३७।

चतुर था उतना ही दानी था। युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ते-लड़ते उसने वीरगति पाई। उसकी वीरता पर मुग्ध होकर उसके शिर को क्रमशः गिरिजा, देवांगना, गंगा और शंभु ने लेकर सत्कार प्रदान किया।[1] लगभग सभी इतिहासकार इस बात का समर्थन करते हैं।

कवि का उक्त उल्लेख जनश्रुतियों और इतिहास के अनुकूल है।

पांडेयजी के मतानुसार गोरा की पत्नी ने पति के मरणोपरांत राजपूतों की गौरवमयी परम्परा के अनुसार जौहर किया, यथा–

'दक्ष-यज्ञ के हवन-कुंड में कूद पड़ी यह कौन उमासी।'[2]

जठमल के मतानुसार 'गोरा की स्त्री बादल के मुँह से युद्ध के समय के गोरा के वीरोचित कार्यों की कथा सुनकर सती हो गई।[3]

गोरा की मृत्यु पर उसकी पत्नी द्वारा व्यक्त किए गए ओजस्वी भाव निश्चय ही विश्व–साहित्य में अपना उदाहरण आप होंगे—

'भला हुआ जो भिड़ मुआ, कलंक न आयो काइ।
जस जंपै सब जगत में, हिब रण ढूंढो जाइ॥'[4]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि गोरा के मरणोपरांत उसकी पत्नी ने अपने प्राण अग्नि में विर्सजित किये।

'शिवाजी' के काव्य में ऐतिहासिकताः—

पं० श्यामनारायण पांडेय के 'शिवाजी' काव्य में विद्यमान व्यक्ति स्थल और घटना-प्रसंग भी अधिकांशतः इतिहास के अनुरूप ही हैं:

शिवाजी सम्बन्धी ऐतिहासिक वृत्त का विवेचन करते समय सब से पहले पांडेयजी के काव्य प्राप्त ऐतिहासिक इतिवृत्त दिया गया है और बाद में उसकी विवेचना की गयी है।

१—शिवाजी का जन्म, उनका अवतार तथा विवाह—

पांडेयजी के 'शिवा जी' काव्य में शिवा जी की कथा इस रूप से मिलती है। माता जीजाबाई ने पुत्र-प्राप्ति के लिए शिव का पूजन किया। पुत्र-प्राप्ति के रूप में उसे शिव पूजन का फल मिला, अतः उसने उस बालक का नाम शिवाजी रखा। कवि के शब्दों में शिव-जन्म की कथा इस प्रकार है:--

---

१–गोरा बादल की कथा, छन्द ६,६३;१३०, १३४ १४२,१४६।

२–गोरा वध, पृ० ७१, ७२।

३–ओझा निबन्ध संग्रह—भाग २, पृ० १६५।

४–गोरा बादल की कथा; (सम्पादक–अयोध्या प्रसाद शर्मा) छंद १४४।

'शिवनेरी का अगम दुर्ग भी जाग उठा तत्काल।'[1]

× × ×

शिवपूजन फल गया, शिवा देवी का वर अभिराम,
इसीलिए माँ ने बालक का रखा शिवाजी नाम ॥[2]

शिवा जी के जन्म सम्बन्ध में यह प्रवाद प्रचलित है कि धर्म की की सुरक्षा तथा साधु-सन्तों के सुख के लिए शिवाजी का अवतार हुआ था। कवि के शब्दों में:-

धर्म-कर्म होंगे निश्चिन्त साधु सन्त सब होंगे सुखी।
शिव का इसीलिए अवतार मनुज विरोधी होंगे दुखी ॥[3]

आगे चलकर शिवाजी ने ऐसे कार्य किये कि अल्पावधि में सारा देश उन्हें शिव का अवतार मानने लगा:—

'शिव हैं शिवा के वेश में
यह मान्यता थी देश में'[4]

एक दिन सईबाई के साथ शिवाजी का मंगल विवाह सम्पन्न हुआ:—

'विधिवत् शिव का मंगल ब्याह
हुआ सुईबाई के साथ।'[5]

ऐतिहासिक विवेचनः—

सरदेसाई के मतानुसार भोसले कुलोत्पन्न शाहजी चित्तौड़ के सूर्यवंशी राजपूत राजघराने से सम्बन्धित थे।[5] इस विचार को स्वीकार कर श्री आपटे ने भोसलों को क्षत्रिय माना है।[6]

शिवाजी शाहजी के पुत्र थे और ग्रेण्ड उफ के अनुसार उनका जन्म शिवनेरी दुर्ग में हुआ था।[7] उनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं।[8] फिर भी 'शिवभारत'[9] 'जेधे शकावली'[10] और

१—'शिवाजी'-पृ० ४। २—वही-पृ० ६। ३—वही-पृ०५४। ४—वही-पृ० ५६। ५—शिवाजी, पृ० ४७।

(६) गो० स० सरदेसाईः-मराठी रियासत, भाग १, पन्ना १६०। (७) द० वि० आपटेः—'शिव चरित्र निबन्धावली'—पृ० १। (८) ग्रेण्ड डफः-मराठपाची बखर'- (मराठी अनुवाद) पन्ना २४। (६) Dennis Kinkaid-The Grand Rebe l - P.-33 G. S. Sardesai New History of The Marathas, vo l I. P 87. Dr. Bal Krishna Shivaji The Great, vo 1-1 I-Part II P. 5. शिवाजी निबन्धावलीः- भाग १, पृ० १३८। (९) शिवभारतः अध्याय ६, पद्य क्रमांक २६-२७।
(१०) Jedhe chrono 1094 – Page – 5.

पंडित शिवराम ज्योतिषी की कुण्डली के[1] अनुसार शिवाजी की जन्मतिथि शक १५५१ फाल्गुन वदी तृतीया है, अर्थात् १९ फरवरी १६३० ई० है। म० म० द० वा पोतदार ने तर्क प्रमाण पुष्ट जन्म-तिथि, फाल्गुन बदी ३ शके १५५१ सिद्ध की है।[2] डा० तिवारी ने भी अपने शोध ग्रन्थ में इस तिथि को ही प्रमाणित माना है।[3]

भूषण ने शिवाजी को विष्णु का अवतार माना है।[4] पर 'समासद की बखर' में शिवाजी शिव के अवतार कहे गये हैं।[5] कदाचित इसी आधार पर 'सिंह शिवाजी' काव्य में शिवाजी शिव के अवतार लिखे गये हैं।[6]

शिवाजी का परिवार काफी बड़ा था। पत्नियों और सन्तानों के बारे में अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अगल सूचनाएँ दी है। ग्रॅण्ड डफ के अनुसार शिवाजी की चार पत्नियाँ और दो पुत्र थे,[7] सरकार ने शिवाजी की पाँच पत्नियां और दो पुत्र तीन पुत्रियाँ लिखी हैं।[8] सर देसाई ने इस विषय में सबसे अधिक जानकारी दी है। उनके अनुसार शिवाजी की आठ पत्नियाँ और आठ सन्तानें थीं तथा शिवाजी के साथ सईबाई का विवाह १७ अप्रैल १६४१ ई० में हुआ।[9] इस एतिहासिक परिवेश में पाण्डेय जी के तथ्य इतिहास के अनुकूल प्रतीत होते हैं।

(२) शिवाजी की शिक्षा दीक्षा:—

कवि के शब्दों में शिवा जी की शिक्षा दीक्षा का वर्णन इस प्रकार है। शास्त्र ज्ञान के साथ-साथ शिवाजी ने अपने गुरू से शस्त्र-ज्ञान भी अर्जित किया। उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि—

---

(१) "संबत् १६८६ (शके १५५१) फाल्गुन वदी ३, शुक्रे उ० घटी ३०-९, राजा शिवाजी जन्म: र. १०।२३, ल. ४।२९।

(२) छात्रपति शिवाजी महाराज जन्मतिथि निर्णय समिति, अहवाल व निवेदनें, पन्ना २१ - रुद्रवाणी, में १९७० पन्ना ७ - ८

(३) डाँ० भगवानदास तिवारी: भूषण साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन पृ० २८७। (४) पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र: भूषण ग्रंथावली, छन्द ३६१।

(५) समासदाची बरवर-पन्ना ३। (६) जगदीश प्रसाद तिवारी: 'सिंह शिवाजी, पन्ना ३,

(७) गेण्ड डफ:- 'मराठयांची बरवर' पन्ना ७३। (८) J. N Sarkar: Shivaji and his times, P. 318। (९) G. S. Sardesai: New History of the Morathas. vo 1 - I, P. 257।

"इस लिए पढ़ा जो, बहुत पढ़ा अब शास्त्र न दें दे शस्त्र ज्ञान
× × ×
अब शस्त्र सीखने की मुझको है लगी भूख, है लगी प्यास
× × ×
जिसमें स्वदेश का मंगल हो जिसमें उद्धार धरा का हो" [1]
• ० ०

दादाजी कोंडदेवने कहा है कि—

"लो वत्स तुम्हें मैं देता हूँ निज गुप्त प्रगट सब विद्याएँ" [2]

ऐतिहासिक विवेचनः—

दादाजी कोंडदेव के निर्देशन में शिवाजी ने शासन-प्रबन्ध और सैन्य नियन्त्रण करने की शिक्षा प्राप्त की। घोड़े पर सवारी करना, शस्त्रास्त्र चलाना तथा योद्धाओं के लिए आवश्यक अन्यान्य बाते भी शिवाजी नेउन हीं से सीखीं दिन-रात पहाड़ी मावलियों के साथ पर्वतीय घाटियों में विचरने से शिवाजीका स्वभाव और शरीर स्फूर्तिमय तथा अथक परिश्रम करने का अभ्यासी हो गया।

शिवाजी के अक्षर-ज्ञान की शिक्षा विषय में कोई स्पष्ट प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। ,तारीख-ए-शिवाजी' एवं 'चिटणीस' के वर्णनों से यह पता लगता है कि दादाजी कोंडदेव ने शिवाजीको पढ़ाने के लिए एक शिक्षक नियत किया, परन्तु ऐतिहासिक विवरणों में ऐसा कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता. जिससे शिवाजी के पुस्तक-ज्ञान अथवा अक्षर-ज्ञान सिद्ध किया जा सके, किन्तु एक बात निश्चित है कि शिवाजी का हृदय भावहीन और जड़ नहीं था। शिवाजी के हृदय को रामायण और महा-भारत कथाओंने आलोकित किया था। उन्हें साधु-संत, फकीरों के सत्संग का बहुत शौका था।……… माता जीजाबाई की धार्मिक और वैराग्य प्रधान सात्त्विक प्रवृत्तियों उनके हृदय को आदर्शवाद का पुजारी बना दिया था। बाल्यकाल की इस शिक्षा ने उन्हें युवावस्था तथा बड़ी उमर में अपने स्वीकृत पथ से विचालत न होने दिया। [3]

(३) शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन और मराठा राज्य की स्थापना के उनके प्रयास—

वैजापूर, शिवापूर और शिवपट्टन आदि स्थानों पर शिवाजी के प्रारम्भिक जीवन के ६ वर्ष बीते। [4] सन १६३६ ई० में दादाजी कोंडदेव

(१) 'शिवाजी' पृ० २४। (२) वही – पृ. २५।
(३) भीमसेन विद्यालंकार : 'शिवाजी' पृ० १७-१८।
(४) G. S. Sardasai New History of Maratha: vol: 1 P:87

के संरक्षण में पूना में जीजाबाई के शांतिपूर्ण जीवन का प्रारम्भ हुआ। यहाँ कसवा पेठ में दादाजी कोंडदेव ने उनके लिए लालमहल बनवाया। ७ मार्च १६४७ को दादाजी कोंणदेव का स्वर्गवास हुआ, अतः शिवाजी पूना से राजगढ़ चले गये। सन् १६६४ से शिवाजी ने रायगढ़ में महलों का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और आगरे से सकुशल लौट आने पर सन १६६७ ई० के लगभग वे अपनी राजधानी रायगढ़ में निवास करने लगे।[1]

सरदेसाई के अनुसार अपने पिता शाहजी से भेंट होने के बाद सन १६४४ ई० में शिवाजीने मावल प्रदेश की बारह घाटियों को जीता।[2] गोविन्द अनन्त मोडक ने इन घाटियों का विस्तार से वर्णन किया है।[3]

शिवाजी ने अपने मावल साथियों को मुसलमानों द्वारा स्वदेश और स्वधर्म पर ढ़ाई गयी विपत्तियों और उनके अत्याचारोंकी कहानियाँ सुनायीं और उन्हें अन्याय तथा अधर्म के प्रतिकार के लिए प्रोत्साहित किया। कवि के शब्दों में—

'जमीन अन्न वस्त्र हो स्वतंत्र यज्ञ दान हो।
प्रसन्न देश में प्रसन्न साँझ हो बिहान हो॥
गुलाम की न जिन्दगी प्रकाश–छोर छू सकी।
दरिद्र की विपत्ति को कहाँ सँभाल भू सकी॥

× × ×

प्रजा हितार्थ जो कभी सहे न ताप क्लेश को।
क्षमा करो न उस मदान्ध मन्द धी नरेश को॥

० * ०

किला किला स्वतंत्र हो; स्वतंत्र वर्ण वेश हो।
स्वतंत्र जाति जाति हो, स्वतंत्र यह स्वदेश हो॥'[4]

ऐतिहासिक विवेचन—

सरदेसाई के मत से 'विदेशियों द्वारा प्रदत्त भेंट और अपने पैतृक अधिकार के बल पर प्राप्त संपत्ति से ही हम संतुष्ट क्यों रहे? हम हिन्दू है। यह पूरा देश हमारा देश है, फिर भी इस पर मुगलों का अधिकार और शासन हैं। वे हमारे मंदिरों को ढहाते, हमारी मूर्तियों को तोड़ते, हमारी संपत्ति को लूटते, हमारे देशवासियों को जबरदस्ती मुसलमान बनाते और खुलेआम गोहत्या करते हैं हम इस दुर्व्यवहार कोऔर अब नहीं

१– वही, वही, वही पृ० ८८ २- Ibid—P.98 ३- गोविन्द अन्नत मोडक मुलांचा महाराष्ट्र तकटीप, पान–२०। शिवाजी—पृ० ६७; ६९।

सकेंगे। हमारी भुजाओं में बल है। चलो हम अपने पवित्र धर्म की रक्षा के लिए, राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए नये भूभाग और धन को अर्जित करने के लिए तलवार निकालें और प्रयत्न करें। हम अपने बाप-दादों की भाँति योग्य और साहसी हैं। यदि हम इस पवित्र कार्य को करेंगे तो ईश्वर हमारी मदद अवश्य करेगा। सौभाग्य या दुर्भाग्य नामक कोई वस्तु नहीं है। हम अपनी धरती के मुखिया हैं और अपनी स्वतंत्रता के निर्माता हैं।[1]

इस सन्दर्भ में 'शिवाजी' में पाण्डेय जी की भावनाएँ इतिहास के अनुकूल हैं।

शिवाजी के उक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि भारत के इतिहास में देश के स्वातंत्र्य-संग्राम के वीर सेनानी एवं राष्ट्रीय नेता के रूप में शिवाजी को लोकनायकत्व निर्विवाद है। उनके विचारों में स्वदेश, स्वा-जाति स्वधर्म और स्वातंत्र्य के प्रति प्रेम-भाव है। इतिहास साक्षी है कि शिवाजी स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए अपरिमेय उत्साह एवं अदम्य साहस से आजीवन क्रियाशील रहे।

४– तोरणा विजय–

स्वराज स्थापना तथा पराधीनता की कड़ी तोड़ने के लिए शिवाजी ने अपने असंख्य बाल-मित्रों के साथ तोरणा के किले की ओर प्रस्थान किया। धात-प्रतिधात और रक्तपात के बिना तोरणा के किले पर शिवाजी का भगवी ध्वजा फहरा उठी। यह शिवाजी के राष्ट्र की स्वातंत्रता का पहला चरण था। इसके लिए शिवाजी ने बाजी कंक और मालुसरे आदि श्रेष्ठ वीरों की खूब प्रशंसा की। कवि के शब्दों में—

'पराधीनता की कड़ी कड़ी तोड़ने के लिए

*　　　.　　　*　　　*

पीछे चले शिवा के असंख्य गण बाल मित्र'[1]

×　　　०　　　०

बिना रक्तपात के

*　　　*　　　०

धात प्रतिधात के
तोरण किले के उच्च शृंग पर शिवा की ध्वजा
गर्व से फहर उठी

१- G.S. Sardesai New History of the Maratha volI.P97.
२–'शिवाजी' पृ० ७८।

राष्ट्र की स्वतंत्रता का पहला चरण था
बाजी कंक मालुसरे . . .
आदि नवयुवकों से . . . .
कृत कृत्य बोले शिवा
विजय तुम्हारे बल विक्रम की प्रतीक है'[1]

ऐतिहासिक विवेचनः—

तोरणा उर्फ प्रचंडगढ़ नामक किला पूना के नैॠत्य में २० मील दूरी पर है; जिसे शिवाजी ने जीता था।[2] गोबिन्द अनन्त मोडक के मत से–शक १६५८ में येसाजी कंक, ताना जी मालुसरे और बाजी पासलकर के प्रयास के फलस्वरूप शिवाजी का तोरण किले पर अधिकार हो गया यहीं से शिवाजी की स्वराज्य स्थापना का प्रारम्भिक प्रयत्न शुरू हुआ"[3]

(५) कल्याण विजय और अहमद की पुत्र–बधू के प्रति मातृवत् सम्मान की भावनः—

शिवाजी के प्रसिद्ध सरदार आबाजी सोनदेव ने कल्याण दुर्ग पर अधिकार कर अहमद की पुत्र–बधू को बन्दी बना शिवाजी के समक्ष उपस्थिति किया। शिवाजी ने उसे मातृवत् पूज्य दृष्टि से देखा और अपनी बेटी की तरह उसके घर पहुँचा दिया पाण्डेय जी ने लिखा है कि—

"अजय अभय कल्याण दुर्ग पर सोनदेव ने जय पाई"[4]
o o o
"मौलाना की रुप मालती पुत्र-बधू भी हाथ लगी"[5]
o o o
लेकिन दिव्य रूप के भीतर झाँक रही है मां मेरी
छवि रक्षा के लिए भवानी सदा दे रही है फेरी"[6]
दिव्य पालकी पर बेटो की तरह अभी घर पहुँचाओं"[7]
o o o
बड़ी वेग से चली पालकी श्वसुरालय की ओर मुड़ी"[8]

ऐतिहासिक विवेचनः—

२४ अक्टूबर १६५७ ई. को शिवाजी से अपने आक्रमण से कल्याण से भिवंडी तक का प्रदेश मुगलों से छीना।[9]

१–'शिवाजी' पृ० ८१। २–ग्रेण्ड डफ 'मराठयांची बरवर' पन्ना ७ पासून ५० पर्यंत। ३–गोविन्द अनन्त मोडकः मुलांचा महाराष्ट्र–पन्ना २४–२५। (४) शिवाजी, पृ. ८४। (५) वही, पृ० ८४। (६) शिवाजी, पृ. ९४। (७) शिवाजी, पृ० ९५। (८) शिवाजी, पृ० ९७। (९) जेधे शकावली–पन्ना ८।

शं. ना. जोशी ने लिखा है कि–दि. १ मई १६५६ को कल्याण और भिवंडी से लेकर चेऊल और रायरी तक का भूभाग शिवाजी के अधिकार में था।[1]

महाराष्ट्र स्टेट गजेटियर,[2] शिवकालीन शकावली[3] और डा० बालकृष्ण[4] शिवाजी द्वारा कल्याण और भिवंडी जीते जाने की तिथि २४ अक्टूबर १६५७ ई० मानते हैं।

सन् १६५७ में शिबाजी के सेनानायक आबाजी सोनदेव ने बीजापुरी शासक मुल्ला अहमद की अनिंद्य सुन्दरी पुत्रवधू को बन्दी बनाया और वे उसे शिवाजी के शाही हरम के लिए पकड़ कर शिवाज़ो के दरबार में लाये। शिवाजी ने उस बंदिनी के प्रति भरे दरबार में मातृवत् सम्मान की भावना प्रकट की और उसे सम्मान के साथ अपने घर ही नहीं भेजा बल्कि आबाजी के समक्ष उसके इस कृत्य के लिए अपनी तीव्र नापसन्दगी व्यक्त की। उन्होंने नारी को इस प्रकार अनाहत करने वाली विश्वव्यापिनी पद्धति के विरुद्ध अपने सेनाधिकारियों को कठोर आदेश दिये।[5] उनकी सेना के साथ नारी, दासी या नर्तकी का संचार पूर्णतः वर्जित था।[6] इस विषय में डॉ० तिवारी लिखते हैं कि–शिवाजी के चरित्र की उज्ज्वलता और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण मराठों की बिजय के कारणों में से एक है। इसके विपरीत मुगल सेना की विलासिता उसके पतन और पराजय का आधार थी।[7]

६–शाहजी की कैद और मुक्तिः—

शाहजो की कैद और मुक्ति के सम्बन्ध में पं० श्यामनारायण पांडेय ने लिखा है कि—

'शत्रु के भुलावे में विमूढ़ घोर परे आ
शिवा के स्वराज्य में
अडंगा डालने लगा
बड़ी धृष्टता थी

(१) शं० ना० जोशी–शिवकालीन शकावली– पन्ना १६ ।
(२) Maharashtra state Gazetteer, Part III, Page – 8।
(३) शिवकालीन शकावली—पन्ना १८। (४) Dr Bal Krishna--Shivaji the Great vo 1 Part II-Page 40
(५) G.S. Sardesai: New History of the Marrthas, vol. P. 116 (६) J. N. Sarkar: shivaji anb his time P.349.
(७) डॉ० भगवान दास तिवारी: भूषण साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन, पृ० ३०२।

उस धूर्त्त स्यार नीच की
सिंह शिवराज के ईमानदार बाप को
बाँध
हँसी खेल में
छल से ढकेल दिया बीजापुर जेल में
दम्भ से शिवा के, शाह जी को बादशाह ने
कण्ठ तक चुन दिया ईंटों से दिवाल में
शाह से शिवा का प्राण दान माँगने लगा।'[1]

* * *

ज्ञात हुआ शिवाजी को जब हाल शाह का
दिल्ली से उठायी ऐसी आँधी अन्धकार में
किसी को पता न चला गरद-गुब्बार में

* * *

मुक्त हुए शाह जी शिवा को नीति रीति से'[2]

आगे चलकर शिवाजी ने देशद्रोही बाजी घोरपडे को जान से मार डाला—

'किन्तु घोरपरे के कलेजे में कटार थी
कण्ठ रक्त पी रही शिवा की असिधार थी।'[3]

ऐतिहासिक विवेचन—

गोविन्द अनंत मोडक ने इस सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। उनके मतानुसार–'शिवाजी द्वारा बीजापुरी किले लिये जाने के संदेह में बीजापुर के आदिलशाह ने शाह जी को पत्र लिखा। पत्र का उत्तर देते हुए शाह जी ने लिखा कि–'मेरा पुत्र मेरी बात नहीं सुनता, वह आपका तथा मेरा भी अपराधी है। फौज़ भेजकर आप उसका नाश करें।' इस पत्र से आदिलशाह का समाधान नहीं हुआ। अत. उसने शाह जी कैद करने का विचार किया, पर शाह जी को कैद करना आसान काम नहीं था।

मुस्तफा खान के साथ शाहजी ने उस समय जिजी पर घेरा डाला था। इस सुयोग को पाकर आदिलशाह ने शाहजी को कैद करने की जिम्मेदारी घोरपड़े पर सौंपी। वह मुधोल का देशमुख था तथा स्वभावतः बड़ा दुष्ट था। उसने शाहजी को अपने घर पर भोजन के लिए बुलाया। उसके बाद उसने शाह जी को आदिलशाह के सामने उपस्थित

१–शिवाजी, पृ० १०२, १०३। २–शिवाजी-पृ० १०३। ३–वही पृ० १०४।

किया और बादशाह ने शाहजी को दीवाल के कोने में बंद कर दिया तथा उनसे शिवाजी का प्राणदान माँगने लगा। जब शिवाजी को पिता जी को हाल मालूम हुआ तब उन्होंने दिल्ली के बादशाह की सहायता से शाह जी को मुक्त करवाया।[1]

शाहजी शिवाजी के पिता ही नहीं, प्रेरक भी थे। महाराष्ट्र स्टेट गजेटियर[2] में सरदेसाई की ही भाँति शाहजी को शिवाजी की भावी महानता का प्रेरक लिखा गयाा है।

बीजापुर के अली आदिलशाह ने मुधोल के सरदार बाजीराव धोरपडे को खवासखान के साथ कुडाल पर आक्रमण करने के लिए आदेश दिया। शिवाजी को आदिलशाह की इस योजना का पता लगा। अतः उन्होंने बाजीराव घोरपडे को खवासखान से मिलने के पूर्व ही नवम्बर १६६४ ई० में मुधोल में जा घेरा। बाजीराव मैदान में आया और उसकी तथा शिवाजी की सेनाओं का घोर युद्ध हुआ इस युद्ध मे बाजीराव घोरपडे ने अनेक सैनिको के साथ वीरगति पाई।[3]

(७) चन्द्रराव मोरे का वध तथा जावली पर अधिकार:—

जावली का चन्द्रराव मोरे राष्ट्र के विकास में रोड़े अटकाता था। शिवाजी ने उसे समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु उसने शिवाजी की एक न सुनी। अतः शिवाजी ने मोरे को मारकर जावलीपर अधिकार कर लिया। इस घटना के सम्बन्ध में पाण्डेय जी ने लिखा है कि—

"देश के विकास में न रोड़े डालने चलो"[4]

ं ं ं
किन्तु उस नीच ने न मानी एक बात भी
ं ं ं
जावली की गलियों में घोर घमासान था"[5]
ं ं ं
यकायक मोरे की कठोर असि चमकी
राघोजी बलाल की भी तलवार दमकी
कटकर गिर गया मोरे एक क्षण में
भगदड़ मच गयी चारों ओर रण में
वैरी सब भागे, शव छोड़ बूरी हार से

१–गोविन्द अनन्त मोडकः- 'मुलांचा महाराष्ट्र'–पृ० २८-२९-३०।
२–Mharastra state Gazetteer, Part 1, P.77.
३–G. S. Sardesai: New History of the Marathas. vo l. I. P. 151–152। ४–शिवाजी पृ० १०४। ५–वही — पृ० १०५।

गूँज गयी जावली शिवा के जयकार से
जावली .... गढ़ आये शिवा हाथ में" [1]

ऐतिहासिक विवेचन:-

'शिव चरित्र साहित्य' में जावली के जप्त करने का उल्लेख मिलता है [2] 'शिवकालीन शकावली'[3] और 'शिवाजी'[4] आदि ग्रंथों में शिवाजी द्वारा जावली पर आक्रमण की तिथि १५ जनवरी सन् १६५६ दी गई है।

सरदेसाई के अनुसार "मोरे जिनका उपनाम चन्द्रराव था, महाबलेश्वर की पहाड़ी के पश्चिमी तल के पास जावली की देशमुखी करते थे वे स्वयं को क्षत्रिय और चंद्रगुप्त मौर्य का वंशज मानते थे, पर भौसले परिवार को यह मान प्राप्त न था। सन् १६४८ ई० में जावली के देशमुख दौलतराव मोरे की मृत्यु हुई। उसकी विधवा ने यशवंतराव मोरे को गोंद लिया और जावली की व्यवस्था जारी रखी।

शिवाजी ने जावली जीतने के लिए संभाजी कावजी को भेजा, पर वह सफल नहीं हुआ, अतः अंत में शिवाजी ने रघुनाथ बललाल कोरडे को जावली पर हमला करने का आदेश दिया। उसने युद्ध में हनुमंतराव मोंरे को मारा। यशवंतराव मोरे भागकर रायरी के किले में छिप गया। और इस तरह से २६ जनवरी १६५६ ई० को जावली पर शिवाजी का अधिकार हो गया।[5]

(८) अफजलखान का बध:

पं० श्यामनारायन पाण्डेय ने अफजलखान-बध की कथा विस्तार से लिखी है। पांडेयजी के मत से अफजलखान ने बीजापुर के दरबार में शिवाजी को जीवित अथवा मृत अवस्था में हस्तगत करने की प्रतीज्ञा की थी। यथा:—

चूहा है पहाड़ी वार कर छिप जाता है।
मैं ही सिर्फ जानता हुँ कैसे जीत जाता है।।
कहें तो हुजूर मैं शिवा को पकड़ लूँ।
हाथ पांव बेड़ी हथकड़ी में जकड़ दूं।।[6]

---

(१) वही —पृ० १०६। (२) शिवचरित्र साहित्य, खण्ड ४, पन्ना ६६।
(३) शिवकालीन शकावली - पन्ना १६। (४) जदुनाथ सरकार-शिवाजी (हिन्दी संस्करण)-पृ० २५।
(५) G. S. Sardesai New History of the Marathas, vol. I P. 111-112 (६) शिवाजी, पृ० १०७।

आदिलशाही सेना के साथ वह अनेक मूर्तियाँ तथा गांवों को उजाड़ते हुए वाई पहुँचा यथाः—

"चला मन्दिरों को मूर्तियों को तोड़ते हुए ।
मूर्ति-मूर्ति पर गो का रक्त छोड़ते हुए ॥
वाई पहुँचा .... ।"[1]

अफजलखान ने कृष्णा जी को मध्यस्थ बनाकर शिवाजी से बातचीत कीः—

बाप से तुम्हारे मेरा बड़ा मेल जोल था ।
आपस का बरताव घना अनमोल था ॥
आओ मिलो मुझसे न कोई और बात है ।
फौज नहीं लाया हूं तुम्हारी ही जमात है ॥[2]

शिवाजी को कृष्णाजी भास्कर के द्वारा अफजलखान के बुरे इरादों का पता चल गया । उसने शिवाजी को सचेत करते हुए कहा किः—

'सचमुच खाँ से मिलने में बड़ा धोखा है ।

*　　*　　*

वाई मत जाना उसे जावली बुलाओ तुम ।'[3]

वाई के जंगल में दोनों की भेंट हुई । शिवाजी भी अपने साथ अपने पाँच साथियों को लेकर आये । यथाः—

'जावली में शिवा ने वितान तनवा दिया ।'[4]

*　　*　　*

वीर शिवाजी भी पाँच साथियों को साथ ले....[5]

*　　*　　*

साथियो के साथ शिवाजी ने बड़े भाव से ।
अफजल खाँ को माला पहनायी चाव से ॥[6]

अफजलखान ने शिवाजी के शरीर को बड़े ज़ोर से दबाया । उसने उनका गला अपने मजबूत हाथों में पकड़ा । आगत संकट से सतर्क शिवा जी ने बड़ी फूर्ती से अफजलखान के पेट में अपने बाघ-नख धुसेड़ दिये तथा उसकी पीठ में दूसरा प्रहार किया । कात्रजी ने दौड़कर अफजलखान का सिर काट लिया और तत्पश्चात् शिवाजी की सेना ने अफजलखान की सेना को लूटा । इस लूट में शिवाजी को प्रचुर सम्पत्ति मिली यथाः—

१-शिवाजी, पृ० ११३ । २-'शिवाजी'-पृ० ११५ । ३-वही-पृ० ११८ । ४-वही-पृ० १२३ । ५-पृ० १२४ । ६-वही-पृ० १२५ ।

'खाँ ने शिवा तन को दबाया बड़े जोर से
मजबूत हाथों में गला था शिवराज का

o o o

बाघ-नख पेट में घुसेड़ दिया झट से
पीठ में भी दूसरा प्रहार किया चट से'[1]
दौड़ काव जी ने सिर काट लिया छप से

o o o

फेंकें हथियार भगे वैरी कोर कोर से
मावली मराठों ने भगाया चारों ओर से

o o o

सोने चाँदी हीरे मोती हाथी घोड़े पालकी
शिवाजी के हाथ लगी थाती माल टाल की'[2]

अफजलखान वध और उसकी सेना की दुर्दशा से आदिलशाह पर शिवाजी का जो आतंक था, उसी की व्यंजना पांडेय ने अपने काव्य में प्रकट की है। इसके फलस्वरूप आदिलशाह ने शाहजी को शिवाजी के साथ संधि करने का आदेश दिया। उसके बाद शाह जी पूना आये। पिता-पुत्र दोनों में चचाएँ हुईं, पर शिवाजी ने संधि की बात नहीं मानी। पांडेय जी के शब्दों में:—

'विजय के कुछ दिन बाद नवाब, शाह से कहने लगे कथा,
कोष की सेना का दुर्दशा, प्रजा जन की गंभीर व्यथा

o o o

शाह को दूत बना भेजा, शिवा से कहो कि कर ले सुलह,
सुलह में जीते गढ़ ले जा'[3]

* * *

'शिवा के पिता शाह जी तभी, चले कुलदेव-समर्चन को
सदल बल महाराष्ट्र की ओर'[4]

* * *

'तुम्हारो गतिमति सब कुछ ठीक, एक ही बात खटकती है
तुम्हारी बीजापुर से संधि, न क्या अब भो हो सकतो है ?

* * *

शिवा बोले छू-छू कर चरण

* * *

आपका आज्ञाकारी किन्तु, वैरियों से मजबूर न हूँ'[5]

१-'शिवाजी' पृ० १२७। २--शिवाजी-पृ. १२८-१२९। ३--वही पृ. १३०। ४-वही-पृ. १३४। ५-वही-पृ. १३६।

ऐतिहासिक विवेचन—

अबदुल्ला भटियारा उर्फ अफजलखाँ बीजापुर राज्य का अव्वल दर्जे का उमराव था। सुलतान के सामने बीड़ा बठाया कि "में घोड़े पर बैठे-बैठे ही शिवाजी को हराकर बाँध लाऊँगा।" अफजलखान उचित-अनुचित सभी उपायों से शिवाजी को पकड़ने के लिए चला। पहले वह महाराष्ट्र के सबसे बड़े तोर्थक्षेत्र पंढरपुर आया। इस तीर्थक्षेत्र को नष्ट कर वह तुलजापुर पहुँचा। उसने वहाँ भवानो मूर्ति को तोड़ दिया। तत्पश्चात् अप्रैल १६५६ ई. को 'बाई' पहुँचा, जहाँ वह शिवाजी को पकड़ने के उपाय सोचता रहा। अक्टूबर में शिवाजी प्रतापगढ़ पहुँचे। यह किला वाई से बीस मील पश्चिम में है। अफजलखान ने कृष्णाजी भास्कर को मध्यस्थ बनाकर शिवाजी से बातचीत की। शिवाजी भी इस समय चिंतिन थे। उन्होंने अपने सलाहकारों से सलाह ली। अन्त में भेंट का समय और स्थान निश्चित हो गया। खाँ के इरादे को शिवाजी ताड़ गये। कृष्णाजी भास्कर द्वारा भी शिवाजी को इस बात का ज्ञान हो गया कि खाँ का इरादा अच्छा नहीं है। इसलिए उन्होंने पूरी तैयारी की।……उन्होंने कुर्ते के नीचे लोहे का जालीदार कवच और सिर पर पगड़ी के नीचे छोटी कढ़ाई के सदृश इस्पात की टोपी छिपाकर पहन ली। अफजलखान से मिलने के लिए आते समय उनके बाँयें हाथ में बघनखा और दाएँ हाथ में बिछुआ नामक पतला छुरा था। शिवाजो अफजलखान से मिलने के लिए शामियाने में गये।……खाँ ने दोनों हाथों से शिवाजी का गला घेर लिया।……शिवाजी ने भो इसी समय अपना बायाँ हाथ घुमाकर खाँ के पेट में बघनखा घुसेड़ दिया। साथ ही दाहिने हाथ का बिछुआ खाँ की बगल में भोंक दिया और अपने को छुड़ाकर अलग हो गये।"[1]

सरदेसाई ने अफजलखान प्रकरण विस्तारपूर्वक लिखा है।[2] सरदेसाई के मत से 'अफजलख़ान वास्तव में शिवाजी को जीवित अथवा मृत अवस्था में हस्तगत करना चाहता था, अतः उसने न केवल शिवाजी के अंत का षड़यंत्र रचा अपितु उनकी सेना को तहस-नहस कर यथा समय शिवाजी के संपूर्ण प्रदेश को हड़पने की चाल चली। उसने गुप्त रूप से चुने हुए बाहर सैंनिक जावली के जंगल में छुपा रखे थे, जहाँ शिवाजी उससे मिलने के लिए आने वाले थे।[3]

१–सर जदुनाथ सरकार: 'शिवाजी'-पृ.३० से ३७ तक।
२--G S Sardesai: New History of the Maharastras, vol I; P. 123,139 ३–G.S. Sardesai- New History of the Marathas, Vol. I. p. 160।

श्री वि.ल. भावे के अनुसार भेंट के समय, पहले अफजलखान ने शिवाजी पर जमधर से वार किया, अतः शिवाजी ने खान के हृदय के निचले भाग में प्रहार किया, जिससे उसके पेट की अँतड़ियाँ निकलकर बाहर आ गई।[1]

सर जदुनाथ सरकार ने इस प्रसंग में शिवाजी के अंगरक्षकों के नाम जीवमहाले और शंभूजी कावजी लिखे हैं।[2] श्री हरदयालु सिंह के मत से अफजलखान की रक्षा के लिए—

आगेवाले का नाम बांदा था, जो अफजलखान की रक्षा करते समय जान से मार डाला गया।[3]

अफजलखान का शिरच्छेद करने के बाद शिवाजी के सैनिकों ने खान की सेना पर भयंकर आक्रमण किया। खान का बेटा फजलखान भाग गया तथा उसकी सेना के अनेक सैनिक खेत रहे।[4] मल्हारराव चिटणीस की बखर में यह कथा बड़े विस्तार के साथ दी गई है।[5] अफ-जलखान की भागती हुई सेना को शिवाजी के वीरों ने तहस-नहस कर उसका सारा सामान लूट लिया। सरकार के मत से इस लूट में शिवाजी को ६५ हाथी, ४००० घोड़े, १२ ऊँट, २००० कपड़े की गाँठें, नगद रुपये और गहने मिलाकर लगभग दस लाख रुपये प्राप्त हुए।[6]

सरदेसाई के अनुसार 'शाहजी ने निजामशाही सरदार मलिक अंबर को सन् १६२५ ई० में भातवडी के युद्ध में मदद की; पर मलिक अंबर इनकी योग्यता और वीरता के कारण इनसे मन ही मन जलने लगा, अतः मनमुटाव हो जाने के कारण शाहजी निजामशाही सेवा छोड़ आदि-लशाह के यहाँ आ गये।'[7]

सन् १६६२ ई० के लगभग आदिलशाह ने शाहजी को शिवाजी से संधि कराने के लिए आदेश दिये। तदनुसार शाहजी और शिवाजी की भेंट हुई। इसी अवसर पर पिता-पुत्र दोनों में भविष्य के बारे में सुदीर्घ चर्चाएँ हुईं।'[8]

१–वि०ल० भावे : अफजलखा नाचा वध, पान ३३।
२–Sir Jadunath Sarkar- History of Aurngzib, Vol. IV, P. 38 ३ हरदयालु सिंह: भूषण भारती- पृ० १०५।
३–English Records on Shivaji- Page. 5
५–चिटणीस (मल्हारराव) की बखर, प्रकरण ३, पान १२१-१३७।
६–सर जदुनाथ सरकार: शिवाजी (हिन्दी संस्करण) पृ० ३८।
७–G.S. Sardesai. New History of the Marathas, Vol. I. P.53-80। ८–डा० भगवानदास तिवारी: भूषण: साहित्यिक एवं ऐति-सिक अनुशीलन, पृ० २४१।

६-शिवाजी का आतंक—

अफजलखान वध के बाद शिवाजी का आतंक सर्वत्र फैल गया। इस सम्बन्ध में पं० श्यामनारायणजी पांडेय लिखते हैं कि--

'शिवा के बल विक्रम कीं कीर्ति, बढ़ी तो डरे विदेशी भी
पुर्तगीजों की नानी मरी, हिला अँगरेजों का आसन
सभी कर देने लगे सभीत, भेंट में जीवन के साधन
पूर्व से पश्चिम तक के देश, हिमालय से रामेश्वर तक
शिवा के प्रखर तेज से झुके, हुए राजे महाराजे फक ॥'[1]

आगे चलकर जब शिवाजी ने मुगल-सेना के डेरे में घुसकर शाइस्ताखाँ की दुगति की, तब तो उनके दबदबे से दिल्ली का सिंहासन भी हिल उठा, यथा—

'शिवा की विजय से हिली देहली है।
बड़ा शोर था, साहसीं शिवबली है ॥'[2]

ऐतिहासिक विवेचन—

शिवाजी के भय से अनेक राजा आतंकित रहते थे। शिवाजी ने कर्नाटक में अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की थी। भूषग के काव्य में भी इसका उल्लेख मिलता है।[3]

बीजापुर के कई किलों पर शिवाजी ने आक्रमण किया था और उन्हें अपने अधिकार में कर लिया था। बीजापुर के कई सरदार शिवा जी द्वारा मारे गये, लूटे गये और रग क्षेत्र से पराङ्गमुख कर दिये गये थे। अतः उनका शिवाजी से आतंकित रहना स्वाभाविक था। 'शिवाजी ने बेदनूर राज्य के पश्चिमी तट के बन्दरगाह बसनूर को लूटा।.......... जिजी पर शिवाजी ने १३ मई १६७७ ई० को अधिकार किया। वहाँ के शासक नासिर मुहम्मदखान ने वार्षिक ५० हजार आमदनी की जागीर और कुछ अधिक द्रव्य पाने की आशा से शिवाजी को किला सौंप दिया। ....दक्षिण कोकग की ओर अपने राज्य की सीमा बढ़ाते-बढ़ाते शिवाजी ने अनेक छोटे-छोटे राज्यों को अपने अधिकार में लिया। उसी समय उन्होंने दाभोल, संगमेश्वर, राजापुर इत्यादि बड़े-बड़े शहर एवं बन्दरस्थान स्थायी रूप से अपने अधिकार में कर लिए और उक्त प्रदेश में चौथ वसूल की।.......... ४ मार्च १६७७ ई० में शिवाजी और कुतुब-शाह के बीच संधि हुई। इस संधि के अनुसार धन और सेना की सहायता लेकर शिवाजी ने वहाँ से कर्नाटक की ओर प्रस्थान किया।'[4]

१- शिवाजी; पृ० १२९। २-शिवाजी, पृ. १५३।
३-पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्रः भूषण, छन्द ९०। ४-जदुनाथ सरकार: शिवाजी, पृ० ४५, ११७; ११८, १२०, १२१, १४३, १४६।

उक्त ऐतिहासिक सन्दर्भ में पांडेयजी ने शिवाजी के आतंक का जो वर्णन किमा है वह इतिहासानुकूल है। मुगल शासन ही नहीं, देशी राज्यों में भी शिवाजी की बड़ी धाक थी। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि इस आतंक पर विचार किया जाय तो यह वर्णन यथार्थ लगता है। दूसरे, औरंगजेब को दक्षिण में बार-बार सूबेदार बदलने पड़ते थे। इसका एक प्रधान कारण यह था कि जो भी सूबेदार दक्षिण में नियुक्त होकर आता था, वह शिवाजी पर नियंत्रण करने में असमर्थ रहता था। अतः जब वह अपनी असफलता का कलंक लेकर लौटकर जाता तो शिवाजी से आतंकित होकर जाता था। स्वयं शाइस्ताखाँ का किस्सा इसका प्रबल प्रमाण है।

शिवाजी का पुर्तगीजों पर बड़ा आतंक था। इसकी सूचना पुर्तगाल तक गई थी और दिनांक ११ दिसम्बर १६६७ ई० को पुर्तगीजों ने अपना प्रतिनिधि भेज शिवाजी से संधि कर ली थी।[1] 'पुर्तगीज सरकार ने भी दिनांक ५ दिसम्वर १६६७ ई० को शिवाजी को ३२२ असरफियों की कीमत का एक नजराना भेजा था।'[2]

इस प्रकार देशी और विदेशी शक्तियाँ शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति से आतंकित थी।

१०–शाइस्ताखाँ की दुर्दशा—

पं० श्यामनारायण पांडेय ने शाइस्ताखाँ दुर्दशा के संबन्ध में विस्तार से लिखा है। उनके मत से 'शाइस्ताखाँ अनेक गाँवों को लूटते–खसोटते पूना में आया। वहाँ वह एक सुरक्षित महल में रहने लगा। एक रात शिवाजी ने बरातियों के रूप में किले में प्रवेश किया। कुछ रात बीत जाने पर, जब सब सो गये, तब शिवाजी ने खाँ पर आक्रमण किया, जिसमें खाँ की एक बाँह कट गयी और उसका एक लड़का मारा गया। इसके बाद खाँ पूना छोड़कर चला गया। कवि के शब्दों में—

'लूटते खसोटते जलाते गाँव गाँव को।
पूना में जमाया खाँ ने गरवीले पाँव को॥'[3]

० ० •

'उसी रात पूना के किले के सिंह द्वार से।
दुर्ग में घुसी बरात एक बड़े प्यार से॥

१–G S. Sardesai. New History of the Marathas Vol. I. P. 184.। २–सम्पादक- द०वि० आपटे एवं स०म० दिवेकरः शिवचरित्र प्रदीप, पृ० १७८-१७९। ३–शिवाजी, पृ० १४४।

रात कुछ बीती तो किले को नींद आ गयी।'[1]

o o o

'एक बाँह कट के अलग नाचने लगी।'[2]

o o o

'एक लड़के के मरने का बड़ा गम है।

o o o

जैसा हो हुकुम खाँ को हाथों हाथ ले चली।'[3]

पांडेयजी के मतानुसार शाइस्ता खाँ की दुर्दशा करने पर शिवाजी ने जो योजना बनायी, वह उनको चतुराई का प्रमाण है, यथा—

'गिरि जंगलों के झाड़ झाड़ तरु जाल में।
पशुओं की सींगों पादपों की डाल-डाल में॥

o o o

रात में ही पहले से बँधे जो पलीते थे।
और जो बरूद भरे लटके खलीते थे॥
जान के समय ठीक देश के जवानों ने।
इनमें लगायी आग वीर मरदानों ने॥

o o o

सींग जलने से सब ढोर भागने लगे।

o o o

खाँ के सैनिकों ने जाना भागते मराठे हैं।

o o o

सारी फौज उसी ओर दौड़ी ललकारती।'[4]

ऐतिहासिक विवेचन—

शाइस्ता खाँ औरंगजेब का मामा था।[5] औरंगजेब ने उसे दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया[6] ताकि वह शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को रोके। शाइस्ताखाँ पूना आया और उसने शिवाजी से संघर्ष करना प्रारम्भ किया।[7] सरदेसाई के मतानुसार 'दक्षिण का शासक नियुक्त होने पर शाइस्ता खाँ ६ मई १६६० ई० को पूना आ शिवाजी के लाल महल

१–शिवाजी पृ० १४६। २–वही, पृ० १५०। ३–वही, पृ० १५१।
४- शिवाजी—पृ० १५२। ५- जदुनाथ सरकार—शिवाजी पृ० ४२।
६- सर जदुनाथ सरकार— शिवाजी पृ० ४२। ७– शिव चरित्र साहित्य खंड २, पन्ना १३७-१३६।

में ठहरा।[1] सरकार[2] एवं सरदेसाई[3] ने शाइस्ताखाँ का ब्यौरा विस्तार से लिखा है। सरदेसाई के मत से—'वह तीन साल पूना में रहा और उसने शिवाजी को दबाने के लिए भरसक प्रयत्न किया। शिवाजी ने उसे सबक सिखाने के लिए व्यवस्थित योजना बनायी। वे आकर सिंहगढ़ में रहने लगे। एक दिन उन्होंने स्वयं ४०० चतुर मावला वीरों को चुना। उन्हें मुगल सैनिकों की वर्दी दी और ५ अप्रैल १६६३ की शाम को वे सिंहगढ़ के किले से नीचे उतर रात्रि के प्रथम प्रहर में बिना रोक-टोक बिना सन्देह मुगल शिविर में प्रविष्ट हो गये। रमजान का महीना था, अतः शाइस्ता खाँ रोजा खोल अर्द्धरात्रि के पूर्व सपरिवार आराम करने लगा।

शिवाजी ने उचित समय जानकर लाल महल के रसोई घर में धीरे से एक छेद किया और ५० साथियों के साथ भीतर घुस गये रसोइयों को मार उन्होंने शाइस्ताखां के हरम पर हमला किया। भागते समय खाँ साहेब की अँगुलियाँ कट गयी और उन्हें बचाने के प्रयत्न में उनका लड़का मार डाला गया। इस प्रकरण का सहसा किसी को कुछ भी अनुमान नहीं हुआ। लौटते समय शिवाजी के कुछ सैनिक मारे गये, पर शिवाजी अपने अन्य सैनिकों के साथ सुरक्षित सिंहगढ़ लौट आये।[4]

डेनिस किनकेड ने इस प्रकरण को विस्तार से लिखा है। उनके मत में उल्लेखनीय बात यह है कि शिवाजी मुगल सैनिकों की वर्दी में नहीं, बरातियों के रूप में पूना आये थे।[5] 'शिवकालीन पत्र-सार संग्रह' के अनुसार शिवाजी ४०० सैनिकों के साथ आये थे और उन्होंने रात्रि को आक्रमण कर शाइस्ताखां के ५० सेवक, १२ पत्नियां, बड़ा लड़का और जँवाई जान से मार डाले तथा शाइस्ता खां को उसकी ६ अन्य पत्नियों सहित घायल कर दिया। इस अवसर पर जसवंतसिंह के १० हजार घोड़े सवार चुपचाप खड़े रहे।[6] सरकार शाइस्ताखां के मृत पुत्र का नाम अबुल फतह दिया है।[7] 'शिवकालीन शकावली के अनुसार इस घटना की तिथि ५ अप्रैल १६६३ ई० दी गयी है।[8]

१—G. S. sardesai: New History of the Marathas vol. I, p. 132. २— सर जदुनाथ सरकार : शिवाजी—पृ. ४५-४६।
३- G. S. sardesai — New History of the Marathas vol.I,p. 142-144. ४- G. S. sardesai ; New History of the Marathas vol.I p. 142-144. ५–Denis Kincaid The Grand Rebel p. 149-155. ६-शिवकालीन पत्रसार संग्रह-खंड १; पन्ना २२८-२२६। ७–J.n. sarkar shivaji and his times—p. 88,
८-शं. ना. जाशी-शिवकालीन शकावली-पन्ना-२४।

शाइस्ता खां पर आक्रमण करने के पूर्व शिवाजीने उसके सैनिकों को भुलावा देने के लिए पहलेसे ही एक योजना बनायी थी। उन्होंने पूना के पास कात्रज घाट में बैलों के सींगों पर मशालें बांध दीं थी और रात्रि में उन पर आग लगाने की व्यवस्था कर दी थी, जिसे देख शाइस्ता खां के सैनिक यह समझें कि शिवाजी और उनके सैनिक कात्रज घाट में हैं; अत: वे उस ओर लपके और इधर शिवाजी उसके ठीक विपरीत दिशा में सिंहगढ़ के रास्ते सुरक्षित लौट गये।[1]

शाइस्ता खाँ पूना में स्वयं को असुरक्षित समझ औरंगाबाद चला गया।[2]

उपरोक्त शाइस्ताखाँ के प्रसंग में पांडेयजी के उल्लेख प्रामाणिक है, परन्तु शाइस्ताखाँ की एक बाँह कट जाने का उल्लेख इतिहास के विरुद्ध है। इतिहास में ऐसी बात आज तक प्रकाश में नहीं आयी।

११- राजा जयसिंह के नाम शिवाजी का पत्र—

पाण्डेय जी के मतानुसार शाइस्ताखाँ की पराजय के बाद राजा जयसिंह का महाराष्ट्र में आगमन हुआ, यथा—

शइस्ता गये घोर जयसिंह आये।
महाराष्ट्र पर मोह के मेघ छाये।।'[3]

पांडेयजी ने दिलेरखाँ के सम्बन्ध में लिखा है कि—

'कुछ दिन बाद महाराष्ट्र पर धावा था।
सिंह को पकड़ लेंगे मुगलों का दावा था।।
अवरंगजेब के दिलेर एक मामा थे।
× × ×
मगर मरहठों की जान लेने आये थे।
चोरी से हमारा भगवान लेने आये थे।।'[4]

इसके बाद शिवाजी ने राजा जयसिंह के नाम जो पत्र भेजा, श्यामनारायण पांडेय ने अपने काव्य में उसके भावों को व्यंजित किया है।[5] प्रस्तुत पत्र का सारांश इस प्रकार है—'औरंगजेब के आदेश से राजा जयसिंह का महाराष्ट्र में आगमन हुआ। यह देखकर शिवाजी ने उसे पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने औरंगजेब की नीति अन्याय और अत्याचारों का उल्लेख कर राजा जयसिंह को भारत-भूमि की एकता के सूत्र

१-रा. वि. ओतुरकर-मराठयांचे साम्राज्य-पन्ना ३४।

१- G. S. Sardesai : new History of the Marathas vol. I p. 146. २- शिवाजी-पृ० १५३। ३- वही-पृ० १३९-१४०। ४-वही पृ० १५७-१६२।

में बांधने के लिए आह्वान किया । साथ ही उन्होंने जयसिंह से यह आग्रह किया कि वे हिन्दू-धर्म की रक्षा करें । इस पत्र के प्रत्येक शब्दमें शिवाजी की स्वजाति, स्वधर्म एवं स्वदेश के प्रति प्रेम-भावना एवं स्वातंत्र्य प्रियता परिलक्षित होती है । औरंगजेब के अत्याचारों के विरुद्ध अनवरत संघर्ष करने की शिवाजी की कामना भी इसी पत्र में प्रकट हुई है । प्रस्तुत पत्र शिवाजी, औरंगजेब और राजा जयसिंह के चरित्रों पर बड़ा अच्छा सूक्ष्म प्रकाश डालता है ।

ऐतिहासिक विवेचन—

३० सितम्बर १६६४ ई॰ को औरंगजेब ने अपनी सालगिरह पर जयसिंह, उनके पुत्र कीरतसिंह, दिलेर खाँ, दाऊदखाँ, और जसवंत सिंह को शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति के दमन और बीजापुर की फतह के लिए आदेश दिये[1] शिवकालीन शकावलीके अनुसार सितम्बर १६६४ ई० में औरंगजेब ने जयसिंह को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया[2] और वे ३ मार्च १६६५ ई० को पूना आये ।[3]

बाबू ब्रजरत्नदास के मतानुसार दिलेरखाँ अफगान-सरदार था और उसका असली नाम जलालखाँ था ।[4] सर देसाई की सूचना के अनुसार जयसिंह और दिलेर खाँ औरंगजेब के सर्वश्रेष्ठ योग्य और स्वामिभक्त सरदार थे ।[5] दिनांक ३० सितम्बर १६६४ ई० मिर्जाराजा जयसिंह के साथ दिलेर खाँ शाही हुक्म के अनुसार दक्षिण में आया ।[6]

इससे स्पष्ट है कि दिलेर खाँ औरंगजेब का मामा नहीं था बल्कि एक अफगान सरदार था ।

पांडेय जी का दिलेर खाँ और औरंगजेब के सम्बन्ध विषयक उल्लेख इतिहास के विरुद्ध है ।

प्रस्तुत पत्र शिवकालीन इतिहास की मूल्यवान धरोहर है । प्रस्तुत पत्र फारसी है । उसका मराठी रूप शिवकालीन पत्रसार संग्रह में दिया गया है ।[7] डा॰ भगवानदास तिवारी ने उसका हिन्दी अनुवाद किया है ।[8]

१- C, S. sardasai new History of the Marathas vol.I p. 155.
२- श. ना. जोशी-शिवकालीन शकावली पन्ना२६ । ३-वही वही पन्ना२६
४-भूषण ग्रन्थावली संपा॰ बाब ब्रजरत्नदास परिशिष्ट च पृ० ११२ ।
५-new History of the Marathas vol I p. 154.
६- वही page 157. ७- शिवकालीन पत्रसार संग्रह खंड १, पृ० २७८-२८२ । ८- डा॰ भगवानदास तिवारी भूषण-साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन-पृ० १९३-१९६ ।

जयसिंह और शिवाजी के पत्राचार के बाद दोनों पक्षों से संदेशों का आदन-प्रदान हुआ। इसके बाद शिवाजी सासवड से दो मील दूर नारायण मंदिर के पास जयसिंह से उनके शिविर में मिले। संधिवार्ता के अनुसार शिवाजी ने ३५ किलों में से २३ किलों की चाबियाँ मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र कीरतसिंह को सौंप दी। बाद में ये चाबियाँ औरंगजेब के पास भेज दी गई। जयसिंह और शिवाजी की यह ऐतिहासिक भेंट १२ जून १६६५ ई. को हुई।[1]

इसके बाद जयसिंह के आश्वासन पर शिवाजी आगरा दरबार में पहुँचे, जहाँ वे औरंगजेब द्वारा छल से कैद कर लिए गये। पर, शिवाजी आगरे से छूटकर बड़ी सावधानी से सकुशल रायगढ़ पहुँच गये। औरंगजेब ने जयसिंह और उसके पुत्र रामसिंह को शिवाजी के पलायन के लिए जिम्मेदार ठहराया और उसने रामसिंह से उसका मनसब छीन लिया तथा जयसिंह को दक्षिण की सूबेदार के पद से च्युत कर दरबार में हाजिर होने का हुक्म दिया। मई १६६७ ई. में जयसिंह दक्षिण से आगरा रवाना हुए, पर लौटते समय वे २८ अगस्त १६६७ को बुरहानपुर के पास स्वर्गवासी हुए।[2]

१२ शिवाजी की औरंगजेब से भेंटः—

पुरंदर की संधि के बाद मिर्जा राजा जयसिंह के आश्वासन पर शिवाजी आगरा चले गये। मिर्जा राजा जयसिंह चाहते थे कि शिवाजी औरंगजेब से संधि कर ले और उसकी अधीनता स्वीकार कर दक्षिण के अन्य मुस्लिम राज्यों को जीतने में उसको सहायता करे। औरंगजेब भी चाहता था कि शिवाजी एक बार भी यदि उसके पंजे में आ जाये तो उसे अपने रास्ते से सदा के लिए हटा दे।

पुरंदर की संधि के पूर्व शिवाजी दक्षिण भारत के अधिकांश भाग से परिचित थे, परन्तु उत्तर भारत से वे अनभिज्ञ ही थे। जयसिंह द्वारा प्रेरित शिवाजी ने आगरा जाने का निर्णय किया, यथा—

'जयसिंह प्रेरित हूँ

× × ×

अब जा सकूंगा, आगरा दरबार में।'[3]

१-G.S. Sardesai: New Hisaory of the Marathas, vol. P. 157-159

२-वही, Page-183. ३-'शिवाजी'-पृ.१८३।

शिवाजी इस प्रसंग में सशंकित किन्तु सजग थे:—

'चाहे सचाई हो न हो, अवरंग के व्यवहार में ॥'[1]

इस यात्रा के द्वारा वे 'उत्तिष्ठ जाग्रत' मन्त्र का भावार्थ समझ लेता चाहते थे ।:--

'उत्तिष्ठ जाग्रत मंत्र के, भावार्थ समझाऊँ अभो ।'[2]

आगरा की यात्रा कर शिवाजो उत्तर भारत की परिस्थिति का निरीक्षण कर औरंगजेब से संघर्ष करने के लिए निजी साधनों एवं सुविधाओं पर विचार करना चाहते थे। संक्षेप में, उनकी आगरा यात्रा एक महत्वपूर्ण तथा नाजुक राजनैतिक समस्या थी, जिसके अन्तर्गत शिवाजो औरंगजेब और राजा जयसिंह अपनी अपनी चाल चल रहे थे।

शिवाजी और आगरा दरबार—

पं. श्यामनारायण पांडेय ने शिवाजी की दक्षिण से आगरा तक की यात्रा का तो वर्णन नहीं किया है, परन्तु आगरा दरबार में उनके और औरंगजेब के साक्षात्कार का जो वर्णन किया है, वह सजोव है ।

शिवाजी के आगमन से आगरे में जो आतंक फैला, उसका वर्णन कवि ने विस्तारपूर्वक किया है।[3] आगरा दरबार में शिवाजी के आते ही रामसिह ने आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया, यथा:--

'आगे बढ़, रामसिह ने कहा, प्रणाम है ।'[4]

छोटे चंद्रलोक के समान औरंगजेब का दरबार सजा था। दरबार में उसका स्वर्ण-आसन, मणियों से मंडित था। वह मसनद के सहारे बैठा था:--

'छोटे चन्द्रलोक के समान दरबार सजा
× × ×
आसन सुवर्ण मणि मण्डित विशाल था
× × ×
बैठा अवरंग मसनद के सहारे था[7]

रामसिह ने जब शिवाजी को लाकर दरबार में उपस्थित किया तब सारा दरबार स्तब्ध, आवाक् तथा भयभीत हो गया;

१-'शिवाजी'-पृ. १८३। २-वही- वही। ३-वही-पृ. १८८-१८६। ४-वही-पृ.१६१। ५--वही-पृ.१६२-१६३।

'जैसे हाँक लाये राम सिंह मस्त गजराज को
सारा दरबार स्तब्ध, चकित, आवाक् भीत·······'[1]

दरबार में औरंगजेब ने शिवाजी के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित नहीं किया बल्कि उन्हें पिछली कतार में खड़ा कर दिया, यथाः—

'······ खड़ा कराओ इसे
पिछली कतार में[2]

आगरा दरबार में शिवाजी अपना अपमान असह्य हुआ। उनका रंग-ढंग देखकर रामसिंह ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, पर वे नहीं मानेः—

'आगे बढ़ा रामसिंह
× × ×
और घिघियाने लगा
शिवाजी के सामने
चलो भाई ! चलो भाई ![3]

भरे दरबार में अपने अपमान से शिवाजी अत्यधिक क्रुद्ध हुए और कहने लगे कि—

क्रुद्ध शिवराज ने कड़कते हुए कहा
× × ×
यही इसाफ यही शाही तहजीब है ?
मेहमानदारी का तरीका भी अजीब है ?'[4]
× × ×
आये कोई सामने जगह से हटाये तो
खून चूस लूँगा तिल भर उझकाये तो
इसीलिये मुझमो बुलाया गया पूने से ?
मौत घोंट जायेगी अही के फन छूने से
० ० ०
बेशऊर पागल गँवार बदहोश हूँ
होश में जबान खींच लूँगा, वह जोश हूँ'[5]

इसके बाद शिवाजी को आगरा में बन्दी[6] बना लिया गया।

मुक्तिः—

शिवाजी जिस जेल में बन्दी थे, वह भयंकर था और उस पर कड़ा पहरा था, यथा—

१–शिवाजी, पृ. १९३। २–वही-पृ. १९५। ३–वही-पृ. १९६ ४–वही-पृ. १९६। ५–वही-पृ. १९७। ६–'बन्दी शिवा····'–'शिवाजी'–पृ.१९७।

कितना भयंकर जेल है

० ० ०

पर जेल पर पहरा कड़ा '[1]

फौलादखाँ औरंगजेब द्वारा शिवाजी की निगरानी के लिए विशेष रूप से नियुक्त कोतवाल था। शिवाजी के भाग जाने के संदेह में औरंग-जेब ने फौलादखाँ से कहा कि रिश्वत लेकर तू राम सिंह से मिल गया है, यथा—

'हाँ, कोतवाल कहाँ गया

० ० ०

फौलाद खाँ फौलाद है

० ० ०

मुजरिम.......................

सौंपा तुझे था...............

० ० ०

रिश्वत लिया आराम से

तू मिल गया है राम से।'[2]

इसके बाद जेवुन्निसा ने शिवाजी से कहा कि तुम्हारे सिर पर मौत नाच रही है। अतः तुम भाग जाओ। उसने यह भी कहा कि गुरुजी मुझे आज ही मिले थे। उन्होंने मुझे दवा दी है। यह ले लो और इससे जेल की हवा बदल डालो। इससे सभी पहरेदार सो जायेंगे और जेल के ताले अपने आप खुल जायेंगे। दूसरे दिन शिवाजो सब को धोखा देकर भाग गये। जेल के बाहर आने के बाद उन्होंने अपने बाल साफ किये और वैरागियों के वेष में वे और उनके गुरु ब्रजभूमि, इलाहाबाद, वारा-णसी होते हुए रायगढ़ पहुँचे। मुगल सैनिकों ने उन्हें खोजने के लिए जमीन आसमान एक कर डाला, पर शिवाजी उनके हाथ न लगे।

पांडेयजी के अनुसार जेवुन्निसा ने शिवाजी से कहा कि—

'है मौत सर पर नाचती'[3]

० ० ०

तुम जेल से जल्दी भागो

गुरु जी मिले थे आज ही

है राय उनकी भी यही

० ० ०

दी है उन्होंने, लो दवा अब जेल की बदलो हवा

इससे सभी सो जायेंगे ताले तले हो जायेंगे'[4]

१-शिवाजी, पृ० २०२;२०३। २-वही, पृ० २१०;२११। ३-वही, पृ०२०५। ४-वही, पृ० २०७।

इसके बाद—

'धोखा शिवा दे ही गये
० ० ०
गुरुवर शिवा के साथ हैं
० ० ०
सब बाल हैं मूँड़े हुए
० ० ०
वैरागियों के वेश में
बढ़ते बड़े आवेश में
ब्रजभूमि में..................
० ० ०
संगम इलाहाबाद है
० ० ०
वाराणसी भी आ गयी
० ० ०
लो रायगढ़ भी आ गया'[1]

शिवाजी के सकुशल रायगढ़ पहुँचने पर माता जीजाबाई ने शिवाजी को पहचाना और—

'झट से उठाया साधु को बोली यती मत यों झुको
देखा शिवा की मूर्ति थी, संकल्प की हो पूर्ति थी
निज लाल को ले गोद में, डूबी मिलन की मोद में'[2]

इधर मुगल सैनिक शिवाजी की खोज में—

'घन झाड़ वन झंखाड़ में, वस्ती उजाड़ पहाड़ में
सब खोजते अरि-चार थे, सैनिक्ष मुगल सरदार थे
० ० ०
शिव का न चलता था पता, ऐसे हुए थे लापता
० ० ०
पथ पर खड़े सरदार हैं, देखो शिवा जी पार हैं'[3]

शिवाजी के पलायन की प्रतिक्रिया— आगरे से शिवाजी के पलायन के संबंध में पांडेयजी ने लिखा है कि शिवाजी के पलायन से सबसे बड़ा दुख औरंगजेब को हुआ। शिवाजी के भाग जाने की खबर

१–शिवाजी- पृ. २०६,२१५;२१६,२१७,२२१,२२३। २–वही, पृ. २२५।
३–वही, पृ. २१७।

पाते ही वह एकदम काला पड़ गया। यह प्रसंग आजीवन उसके हृदय का काँटा बनकर कसकता रहा। वह कहने लगा कि :मैंने उसे देखा था; उसे अक्ल भी थी, पर उसे कहीं पंख नहीं जुड़े थे, लेकिन वह उड़ा तो कैसे उड़ा ? यह शिवाजी इक्कीस तालों में बन्द था, पर वह कैसे निकल भागा, यह तो जादू के सिवा मुमकिन नहीं है। कवि के शब्दों में—

यह खबर पाते हो जला
अवरंग काला हो चला
* * *
उनकी अचानक मुक्ति की
* * *
अवरंग की अन्तर्व्यथा
* * *
तो जिन्दगी का दर्द है
* * *
देखा उसे था, अक्ल थी
० ० ०
था पंख से न कहीं जुड़ा
लेकिन उड़ा कैसे उड़ा ?
० ० ०
इक्कीस ताले बन्द थे
० ० ०
मुमकिन न जादू के सिवा'[1]

ऐतिहासिक विवेचन—महाराष्ट्र स्टेट गजेटियर[2], राजस्थानी रिकार्ड[3] तथा अन्य इतिहास ग्रंथों में शिवाजी की आगरा यात्रा का वर्णन मिलता है।

जय सिंह ने औरंगजेब को यह सूचित किया है कि आदिलशाह और कुतुबशाह की संयुक्त सेना का सामना करने के लिए शिवाजी को मुगलों की ओर मिला लेना आवश्यक है।[4] इस पत्र का उत्तर देते हुए औरंगजेब ने शिवाजी को यह सूचित किया कि वह आगरा आए। आगरा में उसका समुचित सत्कार किया जाजेगा।[5]

सरदेसाई ने शिवाजी की आगरा यात्रा का वर्णन विस्तार से किया है। ! जय सिंह ने शिवाजी को वचन दिया कि जब तक शिवाजी

१–'शिवाजी, पृ० १९७, २१०। २–Maharashtra State Gazetteet Part III Page 14। ३–Rajasthani Records (Sir jadunath sarkar and Dr Raghubir Sinh. P. 1 to 115। ४-शिवकालीन पत्र सार सग्रह, खंड १, पन्ना-३०७। ५–वही, पन्ना ३०७।

आगरे में रहेंगे, जय सिंह और उनका ज्येष्ठ पुत्र राम सिंह शिवाजी की पूर्ण सुरक्षा के लिए वचनबद्ध और उत्तरदायी रहेंगे। इसके बाद शिवाजी दिनांक ५ मार्च १६६६ ई. को आगरा रवाना हुए।[1]

'१२ मई १६६६ ई. को औरंगजेब की चांद वर्ष के अनुसार पचासवीं वर्षगाँठ मनाई गई। उस दिन बड़ी साज-सज्जा के साथ औरंगजेब मयूर सिंहासन पर दिवान-ए-आम में आसीन हुआ। इसके बाद दीवान-ए-खास में शिवाजी और औरंगजेब की भेंट हुई। शिवाजी और संभाजी ने बादशाह को भेंट और न्यौछावर अर्पित की, परन्तु औरंगजेब न तो शिवाजी से कुछ बोला ही और न उसने उनसे बातचीत ही की। बादमें शिवाजी ताहिरखान के स्थान पर राजा राम सिंह के सामने खड़े कर दिये गये।[2]

सर जदुनाथ सरकार ने इस भेंट का उल्लेख १३ मई १६६६ ई. को किया है।[3] इस भेंट के अवसर पर औरंगजेब के दरबार का चित्र जदुनाथ सरकार ने भी अंकित किया है।[4] सरकार के अनुसार 'शिवाजी सिंहासन से दूर तीसरी पंक्ति में पाँच हजारी मनसबदारों के साथ ताहिरखान की जगह पर राजा जय सिंह के सामने खड़े किये गये। दरबार का काम शुरू हो गया और शिवाजी भुला दिये गये।[5] अपनी यह उपेक्षा शिवाजी के लिए असह्य हो गई।[6] दरबार में राजकुमारों, वजीरों को सिरोपाव देने के बाद जब जफरखाँ और जसवंत सिंह को भी सिरोपाव दिये गये और उस क्षण तक शिवाजी ही उपेक्षित ही रहे तो अपने इस अपमान से वे इतने कुपित हुए कि उनकी आँखें मारे गुस्से के लाल हो गई। औरंगजेब ने इसे देखा और राम सिंह से कहा कि—शिवाजी से पूछो कि उसे क्या तकलीफ है?

जब राम सिंह शिवाजी की ओर आए तब शिवाजी ने उससे कहा—तुमने देखा, तुम्हारे बाप ने देखा, तुम्हारे पातसाह ने देखा, कि मैं क्या हूँ और फिर भी तुमने जान-बूझकर मुझे इतनी देर तक खड़ा रखा है। मुझे तुम्हारा मनसब नहीं चाहिए। यदि तुम मुझे खड़ा ही रखना चाहते थे तो मुझे सही क्रम से उचित स्थान पर खड़ा करते।

१–G S. Sardesai: New History of the Marathas. vol I P. 165-167। २– वही, पृ. १६८-१७०। ३–डा. राजमल बोरा: भूषण और उनका साहित्य, पृ. ६६ पर उदधृत। ४–सर जदुनाथ सरकार: शिवाजीपृ. ७३। ५–J.N Sarkar: Shivaji and histimes page 140। ६-new History of the Marathas vol. I page 47।

इतना कहकर शिवाजी ने ओरंगजेब की ओर पीठ फेरी और भीड़ से बाहर आ गये। राम सिंह ने उनका हाथ पकड़ा, पर शिवाजी ने उसे झटक दिया। एक ओर आकर वे बैठ गये।

राम सिंह ने उन्हें समझाना चाहा पर शिवाजो ने एक न सुनी और कहा--मेरी मौत का दिन आ गया है। या तो तुम मुझे कत्ल करोगे या मैं खुद आत्महत्या कर लूँगा। तुम चाहो तो मेरा सिर धड़ से उड़ा दो पर मैं फिर से बादशाह के सामने नहीं जाऊँगा।

बादशाह ने उमरावों से शिवाजी को सिरोपाव दे प्रसन्न करने के लिए कहा, पर शिवाजी ने उसे अस्वीकार करते हए कहा मुझे सिरो-पाव नहीं चाहिए। बादशाह ने जान बूझकर मुझे जसवंत सिंह के पीछे खड़ा कर दिया। यह मेरा अपमान है। मैं औरंगजेब का मनसब अस्वी-कार करता हूँ। मैं उसका गुलाम नहीं बनूँगा। तुम चाहे मुझे मार डालो, चाहे कैद कर लो, पर मैं सिरोपाव नहीं लूँगा।

राम सिंह शिवाजी को अपने डेरे पर ले गया। उसने शिवाजी को एकांत में समझाने का प्रयत्न किया, पर शिवाजी ने उसकी एक न सुनी।'[1]

सभासद की बरवर में लिखा है कि- औरंगजेब ने शिवाजी से मिलने से पूर्व अपने पास पाँच हथियार रखे, जरी का कुर्त्ता पहना, साथ ही अपने तख्त के पास दो हजार विश्वसनीय व्यक्ति खड़े किये। मन में यह भाव था कि—शिवाजी शैतान है. साधारण व्यक्ति नहीं, अफजल-खान को भेंट में ही मार दिया। इसी तरह तख्त पर भी दौड़ सकता है। जसवंत सिंह को उँचे आसन पर देखकर शिवाजी ने रामसिंह से कटार माँगी किन्तु रामसिंह ने नहीं दी।'[2]

उपरोक्त विवरणों के सन्दर्भ में पांडेय जी ने शिवाजी और औरंगजेब की भेंट का जो वर्णन किया है, वह इतिहास से समर्थित है।

कैद और मुक्ति—

आगरे में शिवाजी कैद कर लिए गये और उनके डेरे के चारों ओर तोपें रखवायी गयीं और सरकारी फौज भी बिठा दो गयी। ऐतिहा-सिक सूचनाओं के अनुसार 'औरंगजेब ने फौलादखान को एक महल बन-

---

१-G.S. Sardesai: new History of the Marathas. vol. I page 171।

२- सभासद बरवर- सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ४४।

वाने का आदेश दिया और उसे हुक्म दिया कि वहाँ शिवाजी का खात्मा कर उसे दफना दिया जाये।'[1]

'शिवाजी ने बीमार होने का बहाना कर और बाद अच्छे होने पर दीन दुखियों, धार्मिक स्थानों; ब्राह्मणों और फकीरों को दान देने में अपना समय बिताया। सरदेसाई के मत से 'शिवाजी १७ अगस्त १६६६ई० को आगरा के किले से अकस्मात् अदृश्य हो गये। औरगजेब ने उन्हें पकड़ने के लिए धरती-आसमान एक कर डाला, पर उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए।'[2]

जेधे शकावली में शिवाजी के आगरा से निकल भागने की तिथि १७ अगस्त १६६६ ई० ही दी गयी है।'[3]

शिवचरित्रवृत संग्रह के अनुसार 'दिनांक ११ अगस्त १६६६ ई० को दोपहर में शिवाजी आगरा से मथुरा पहुँचे। वहाँ अपनी दाढ़ी मूँछ साफ कर दी, पुत्र-सहित अपने शरीर पर राख मली और बनारस की ओर चलते बने।'[4]

सरदेसाई के अनुसार 'आगरा से भागने पर शिवाजी ने अपने पुत्र संभाजी को मथुरा में छोड़ा और वे अकस्मात् घुमक्कड़ साधू के वेश में रायगढ़ में अपनी माता जीजाबाई के सामने १२ सितम्बर १६६६ ई० को उपस्थित हुए।'[5]

डा० ग० ह० खरे ने शिवाजी के आगरा से भाग जाने के बाद औरंगजेब द्वारा उनकी खोज के लिए जारी किये गये फर्मान का जो प्रामाणिक विवरण संकलित किया है, वह पठनीय है।[6]

उक्त आगरा प्रसंग से पांडेयजी के उल्लेख प्रामाणिक है, परन्तु श्री समर्थ रामदास की जेबुन्निसा से भेंट हो जाना, उनके द्वारा उसे दवा दिया जाना, जिससे पहरेदारों का बेहोश होना, जेल के तालों का अपने आप खुल जाना और आगरे से बाहर आने के बाद शिवाजी का अपने

१-The Deliverence or the Escape of shivaji the great from Agra Baba saheb Despande page 98:

२—New History of the Marathas G: S. sardesai- vol I p 180. ३- Jedhe chronolgy page 16.

४- शिवचरित्रवृत संग्रह खंड ३, सं० डा० ग० ह० खरे पन्ना ८०-८१।

५- New History of the Marathas G s: sardesai vol I page 180. ६-ऐतिहासिक फारसी साहित्य खंड ६, संपादक डा० ग.ह. खरे पत्र क्रमांक ५, ६, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, २०, २१, २२, २६, २८, ३०, ३२।

गुरु के साथ चले जाना आदि बातें इतिहास के विरुद्ध है। इतिहास में ऐसी बातें आज तक प्रकाश में नहीं आयीं। यहीं नहीं पांडेयजी ने शिवाजी के साथ उनके पुत्र संभाजी के नाम का उल्लेख तक नहीं किया है, यह कवि की ऐतिहासिक भूल है।

शिवाजी के पलायन की प्रतिक्रिया—

आगरा में दिन-रात कठोर पहरे में रहने पर भी शिवाजी का एकाएक अदृश्य हो जाना, मुगल सेना द्वारा चप्पा-चप्पा खोजने पर भी उनका पता न लगना और उनका आगरा से रायगढ़ सकुशल पहुँचना एक ऐसी चमत्कारिक घटना थी जो औरंगजेब के लिए आजीवन दुःख का कारण हुई। लोगों में ऐसी अफवाह फैली कि—'शिवाजी का शरीर हवा-मय है और उन्हें पंख भी हैं।'[1] इतना ही नहीं, उनमें अदृश्य होने की भी शक्ति है।[2]

इस सम्बन्ध में पांडेय जी के तथ्य इतिहास के अनुकूल है।

१३- सिंहगढ़ विजय

औरंगजेब की ओर से उदयभानु सिंहगढ़ पर नियुक्त किलेदार था। माता जीजाबाई ने सिंहगढ़ की प्राप्ति के लिए शिवाजी को प्रेरित किया। शिवाजी ने इसका उत्तरदायित्व तानाजी पर सौंपा। रात्रि के समय तानाजी ने सिंहगढ़ पर धावा बोल दिया। दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें अपार शौर्य दिखाते हुए तानाजी उदयभानुके द्वारा मारा गया और उदयभानु शेलारमामाके द्वारा मारा गया। किला शिवाजी के हाथ में आ गया। तानाजी के निधन का समाचार सुनकर शिवाजी ने कहा कि—मैंने कंकड़ पत्थर का गढ़ तो पा लिया पर सिंह तानाजी को खो दिया। देखिए कवि के शब्दों में—

'उदयभानु नियुक्त है............।'[3]

तानाजी को भेजे गये पत्र में शिवाजी ने लिखा कि—

'राजमाता ने किया है प्रण कठिन
सिंहगढ़ जब तक न आये हाथ में
पट रहेंगे देह पर तब तक मलिन'[4]

इसके बाद तानाजी ने रात में सिंहगढ़ किले पर आक्रमण किया—

१- शिवकालीन पत्रसार संग्रह खण्ड १ पन्ना २६१।

२- new History of the Marathas G. s, sardesai vol I. p. 150.

३-शिवाजी-पृ. २४६। ४-वही-पृ. २४५।

'उस अन्धी निशि के अन्धड़ में दुर्जेय सिंहगढ़ के ऊपर।
मच गया अचानक हंगामा अनगिनत मशालें फर फर फर ॥'[1]
और—
'दोनों तलवारें दो तड़ितों की तरह लड़ी, जल आग उठी।'[2]
अपार शौर्य दिखाते हुए तानाजी ने वीरगति पायी—
'चपला-सी चम-चम चमक गिरी वैरी की गर्दन पर'[3]
× × ×
'लेकिन उसकी असि ने ताना की असि काटी, गर्दन काटी'[4]
और—
'त्यों ही शेलर के भाले की अग्नि ज्वाला उस पर भड़की।'[5]
भाला घुस गया कलेजे में अरि मुँह बाये गत-प्राण हुआ ॥[6]
इसके बाद किले पर मराठों का अधिकार हो गया यथा-
'मुगलों की राष्ट्र पताका की छाती पर भगवाध्वज फहरा'[7]
और शिवाजी ने कहा कि-
'माना कि सिंह खोकर केवल कंकड़ पत्थर का गढ़ पाया।'[8]

ऐतिहासिक विवेचन—

सिंहगढ़ विजय की कथा इतिहास प्रसिद्ध है। 'इस किले का मूल नाम कोंडाणा दुर्ग था यह दुर्ग पूना के नैऋत्य में १२ मील दूर है।'[9]

पुरंदर की सन्धि के अनुसार शिवाजी को मुगलों को २३ किले देने पड़े। इसीलिए सिंहगढ़ को फिर से प्राप्त करने के लिए शिवाजी ने तानाजी मालसुरे को भेजा। तानाजी तीन सौ मावलों के साथ रस्सी की सीढ़ी बनाकर रात में किले पर चढ़े। उदयभानु और उसके राजपूत सिपाही किले की रक्षा कर रहे थे। दुश्मन को उपस्थित देखकर वे आगे बढ़े। जाड़े की रात थी। राजपूतों के पूर्णतः सावधान होने तक मराठों ने किले के एक भाग पर अपना अधिकार कर लिया। राजपूत जैसे ही सावधान होकर लड़ने आये। मराठे 'हर हर महादेव' कहते हुए उन पर टूट पड़े। उदयभानु के वार से तानाजी ने वीरगति पायी, पर उसी समय उदयभानु भी मारा गया। तानाजी के निधन पर सूर्याजी ने मराठों का नेतृत्व किया। अन्ततः किला मराठों के अधिकार में आ गया।

१-शिवाजी-पृ. २८२। २-वही-पृ. २९३। ३- वही पृ. २९५। ४- वही-पृ. २९७। ५- वही-पृ. २९६। ६-वही-पृ. २९७। ७ वही-पृ. २९८। ८-वही-पृ. २९९। ९- दि. वि. काले मराठेशाही तील किल्ले— शिवाजी सोवनीर पन्ना ७१।

वहीं पर विजय सूचक चिह्न के रूप में किले के ऊपरी भाग की झोपड़ियों में आग लगा दी गयी। उसका प्रकाश छत्रपति शिवाजी ने राजगढ़ से देखा और समझ लिया कि किला अधिकार में आ गया है।''[1]

किले की प्राप्ति के साथ ही तानाजी की वीरगति का समाचार पा शिवाजी बहुत दुखी हुए। उन्होंने कहा कि– गढ़ आला पण सिंह गेला अर्थात् किला तो हाथ आया पर सिंह (तानाजी) चला गया। इस ऐतिहासिक प्रसंग की स्मृति में शिवाजी ने कोंडाणा दुर्ग का नाम बदलकर सिंहगढ़ रखा।[2]

ऐतिहासिक सूचनाओं के अनुसार सिंहगढ़ की विजय की तिथि ४ फरवरी १६७० ई० मानी गयी है।[3] सिंहगढ़ के सम्बन्ध में पांडेय जी के उल्लेख प्रामाणिक हैं, पर शेलारमामा के द्वारा उदयभानु का मारा जाना इतिहास के विरुद्ध है।

१३- औरंगजेब के अन्याय और अत्याचार—

औरंगजेब 'शिवाजी' काव्य के प्रधान नायक छत्रपति शिवाजी का प्रधान शत्रु था। उसके अन्याय, अत्याचार और अधर्म के सम्बन्ध में पांडेयजी ने लिखा है कि बादशाहत पाने के लिए उसने सब भाइयों का नाश किया तथा अपने पिता को जेल में बंद कर दिया। उसके शासनकाल में हिन्दुओं को अत्यंत सजा भुगतनी पड़ी। हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया। देव-मूर्तियों और मन्दिरों को तोड़ा गया तथा उनके स्थान पर मस्जिदें बनायी गयीं। इसके फलस्वरूप हरिद्वार, मथुरा, गया, काशी आदि तीर्थस्थानों पर उदासी छा गयी। कवि के शब्दों में—

'उस तख्त के ही वासते, वह रोककर सब रासते
सब भाइयों का खा गया खाकर जनाब पचा गया'[4]

× × ×

'दादा तड़पते जेल में'[5]
'शहंशाह की शान दोनों प्रजा हैं
मगर हिन्दु ही भोगते क्यों सजा हैं
उन्हीं के घरों मन्दिरों को ढहा के
बनें मस्जिदें म्लेच्छ मारे ठहाके
गऊ मार के मूर्त्ति पर रक्त छोड़ें
बहू बेटियों से गलत प्रेम जोड़ें'[6]

१- शिवचरित्र निबंधावली-पृ० ३३९-३४०।
२–G. S. Sardesai New History of the Marathas volI p: 191. ३– जेधे शकावली–पन्ना १७। ४–शिवाजी-पृ० २०७। ५–वही पृ० २०७। ६–वही पृ. १५६।

'नदी हिन्दुओं के रुधिर से बही है'

० ० ०

"उन्हीं पर निरपराध जजिया लगाना
बड़ा घोर अन्याय बिजली गिराना
हरिद्वार मथुरा गया औध काशी
सभी पर लगातार छायी उदासी'[1]

* * *

'सरे आम गोबध अजीब कुरबानी है'[2]

ऐतिहासिक विवेचन--राज्यारोहण से पूर्व शाहजहाँ का उत्तराधिकारी बनने के लिए औरंगजेब ने जो दुष्ट कर्म किये; उन सब का उल्लेख सरकार ने किया है।[3] अपने पिता के साथ औरंगजेब ने जो दुर्व्यवहार किया, वह उसकी समकालीन जनता को बहुत अनुचित एवं न्याय विरुद्ध जान पड़ा। उस युग की सामाजिक मर्यादा को इस प्रकार तोड़ने के कारण जनता के हृदय में औरंगजेब के विरुद्ध तीव्र नैतिक रोष उठ खड़ा हुआ।[4] इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी के अनुसार 'सामान्य जनता का यही विचार था कि औरंगजेब ने राज्य लोभ से सम्बन्धियों का संहार किया और उसका खुदा या इस्लाम की दुहाई देना छलछंद का दूसरा रूप है।[5]

९ अप्रैल १६६९ ई० को औरंगजेब ने एक आम हुक्म दिया कि काफिरों (हिन्दुओं) के सब शिक्षालय और मन्दिर गिरा दिये जावें .... इस आज्ञा के आज्ञानुसार उसकी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस में विश्वनाथजी के मन्दिर और मथुरा में केशवरायजी के मन्दिर जैसे बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी।[6]

हिन्दुओं में हिन्दू धर्म के प्रति औरगजेब के मन में सद्भावना नहीं थी। 'दक्षिण के युद्धों में उसे जो अतुल अर्थहानि हुई थी उसकी पूर्ति उसने दिनांक २ अप्रैल सन् १६७९ ई० को हिन्दुओं पर जजिया कर लगाकर की।'[7]

हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिरों का नाश कर उनके स्थान पर मस्जिदें बनवा उसने अपनी धर्मान्धता का प्रमाण दिया। इससे सारी हिन्दू प्रजा उससे असंतुष्ट थी।

१- शिवाजी-पृ. १५९। २-वही-पृ० १९४।
३-सर जदुनाथ सरकार: औरंगजेब, अध्याय ४, पृ. ७४ से १२० तक। ४-वही, पृ. १४९। ५-इन्द्र विद्यावाचस्पति: मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण- पृ. १८८। ६-सर जदुनाथ सरकार- औरंगजेब-पृ. १९४। ७-सर जदुनाथ सरकार: शिवाजी (हिन्दी संस्करण) पृ. १५३।

इस प्रकार पांडेयजी के औरंगजेब सम्बन्धी कथन इतिहास के अनुकूल हैं।

और कवि पांडेयजी का—

'हिन्दू मुसलिम दोनों आप ही के बेटे हैं
अपनी हुकूमत में सब को लपेटे हैं
दोनों का सँभालना बड़ी कड़ी तपस्या है
आज सल्तनत के लिये यही समस्या है'[1]

यह कथन भी निम्नलिखित परिप्रेक्ष्य में खरा उतरता है। इस सम्बन्ध में डा० भगवानदास तिवारी लिखते हैं कि 'उसकी (औरंगजेब की) धार्मिक अनुदारता और हिन्दू विरोधी नीति से उसके ही जीवन काल में मुगल सल्तनत के पतन का द्वार खोल दिया। उसके शासनकाल में सत-नामियों; सिक्खों; जाटों, बुंदेलों और मराठों ने देशव्यापी मुगल सल्तनत विरोधी असंतोष को विद्रोह के रूप में प्रकट किया और उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी शक्तिहीनता, अयोग्यता और विलासिता के कारणों से इस विराट साम्राज्य को नहीं सँभाल सकें, अतः समय और परिस्थिति का फायदा उठा अँग्रेजों ने भारत में अपनी जड़ें जमा लीं।'[2]

१५-शिवाजी का सुराज्य—

पं० श्यामनाराय पांडेय ने शिवाकी के सुराज्य को जो काव्यात्मक वर्णन किया है, उसका सारांश इस प्रकार है—

'शिवाजी के राज्य में समस्त प्रजा सुखी थी। उनके दरबार में हिन्दू-मुसलमान दोनों को सम्मान प्राप्त था। उनके राज्य में एकसूत्रता विद्यमान थी। इसीलिए उनके राज्य में महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये जाते थे।

शिवाजी ने कभी भी सांप्रदायिक भावना को प्रश्रय नहीं दिया। अतः उनके राज्य में सभी जातियों के लोग स्वेच्छया अपने अपने धर्म-कर्म में प्रवृत्त थे। शिवाजी के राज्य में नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था तथा देश-द्रोहियों को कठोर दण्ड दिया जाता था।

शिवाजी दीन-हीनों की सहायता करते थे। उनके राज्य में गरीबों को सदैव दान दिया जाता था तथा उद्योग, व्यवसाय और खेती का खूब विकास हुआ। यही नहीं, उनके यहाँ कवि; ब्राह्मण और गाय की बड़ी

१-शिवाजी- पृ. १९५। २- डा० भगवानदास तिवारी- भूषणः साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन- पृ. १६८-१६९।

इज्जत की जाती थी ।'[1]

इस प्रकार कवि द्वारा अंकित शिव-सुराज्य का वर्णन केवल अत्युक्ति मात्र नहीं, ऐतिहासिक सत्य है ।

१६–शिवाजी की धर्मनिरपेक्षता और नीतिमत्ता—

शिवाजी राजनैतिक स्वतंत्रता प्रस्थापित करना चाहते थे और इसी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उन्होंने सारे कार्य किये । वे मुसल-मानों के विरोधी या इस्लाम के शत्रु नहीं थे । इस सम्बन्ध में पं० श्याम-नारायण पांडेय की उक्ति उल्लेख्य है—

'जैसी आज्ञा थी, मस्जिद की एक ईंट भी छुई नहीं ।
स्त्री-कुरान की यवन धर्म की कहीं अवज्ञा हुई नहीं ।।'[2]

ऐतिहासिक विवेचन—डेनिस किनकेड के मतानुसार 'जब कभी कुरानशरीफ की कोई प्रति उनके हाथ में आई, उन्होंने उसे अपने पवित्र धर्म-ग्रन्थ की तरह माना, जब कभी मुसलमान महिलाएँ उनके सामने आईं या लाईं गईं, उन्होंने उनकी देखभाल अपनी संतानों की तरह की और उन्हें ससम्मान अपनी देखरेख में अपने घर भिजवा दिया ।[3] आर. सी. मजुमदार भी इसका समर्थन करते हैं ।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पांडेयजी के 'शिवाजी' काव्य ग्रन्थ के प्रायः सभी विवरण इतिहास के अनुकूल हैं । पांडेयजी ने अपने काव्य ग्रन्थों में इतिहास की रक्षा कर एक ऐतिहासिक कार्य किया है, जिसके लिए वे सदैव हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदर की दृष्टि से देखे जायेंगे । इतिहास के विरुद्ध जो दो-एक उल्लेख उनके काव्य म मिलते हैं, उनके लिए कवि की भावुकता, कल्पना और उनका विशेषाधिकार उत्त-दायी हैं ।

१–शिवाजी- पृ. ३०४ से ३११ तक । २–वही, पृ. ६३ । ३- Denis Kincaid, The Grand Rebel, Page 94 95. ४– R C. Majmdar. History of India, Page 523.

अध्याय (७)

पं० श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य में राष्ट्रीय दृष्टि

राष्ट्र,राष्ट्रीयता का स्वरूप-विकास और उसके प्रधान तत्व--

(क) राष्ट्र—

राष्ट्र की चर्चा वास्तव में राजनीति शास्त्र का विषय है, परन्तु साहित्य में राष्ट्रीयता की खोज के लिए इस शास्त्र की ज्ञानकारी आवश्यक है। राजनीति शास्त्र का सम्बन्ध विशेषतः समाज शास्त्र के साथ है। साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब कहा गया है। अतः समय-समय पर होने वाली राजनैतिक तथा सामाजिक क्रांतियों की झलक साहित्य में प्रतिबिम्बित होती है, कभी-कभी साहित्य ही इन क्रांतियों का जनक होता है; अतः साहित्य एवं राजनीति का अटूट सम्बन्ध है ।

राष्ट्रीयता का स्वरूप प्रतिपादित करने से पूर्व राष्ट्र के विषय में विचार कर लेना आवश्यक है। वास्तव में 'राष्ट्र' एक प्राचीन शब्द है, जिसकी चर्चा प्राचीन वाङ्मय में अनेक स्थानों पर अनेक रूपों में मिलती है। यजुर्वेद में 'राष्ट्रं मे देहि' और राष्ट्रदा राष्ट्रम्भे दत्त' कहकर राष्ट्र-प्राप्ति की उत्कट कामना की गयी है ।[1] अथर्ववेद में राष्ट्र की समृद्धि के लिए प्रार्थनएँ की गई हैं ।[2] इससे स्पष्ट है कि राष्ट्र शब्द अर्वाचीन नहीं, प्राचीन शब्द है जिससे भारतीय जन प्रागैतिहासिक काल से परिचित हैं। 'राष्ट्र' शब्द को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। 'रासन्ते चारुशब्दं कुर्वते जनः अस्मिन् प्रदेश विशेष तद् राष्ट्रम्'[3] अथवा पशुधान्य हिरण्य संपत् राजते शोभते इति राष्ट्र ।'[4] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार-'श्री वैंराष्ट्रम्'[5]-अर्थात् समृद्धियुक्त ओजस्वी जनसमूह ही राष्ट्र है। ऐतरेय ब्राह्मण में तो प्रजा को हो राष्ट्र की संज्ञा दी गयी है ।[6] मनुस्मृति में राष्ट्र के सात अंगों का विवेचन मिलता है।[7] महाराष्ट्र शब्दकोश में 'राष्ट्र' शब्द विविध अर्थों में प्रयुक्त है ।[8] अथर्ववेद में 'त्वा राष्ट्र भृत्याय' में राष्ट्र शब्द समाज के अर्थ में प्रयुक्त है।[9] इस प्रकार भाषा, भूमि, जन-समुदाय आदि पर बल देते हुए विभिन्न अर्थों में राष्ट्र शब्द का प्रयोग हुआ है।

१—यजुर्वेद, दशमाध्याय, २, ३ इत्यादि । २—अथर्व वेद, प्रथमकांड सूक्त २९।१,४ । ३–डा० विद्यानाथ गुप्तः हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना पृ० १ ४–वही वही पृ० २ । ५–'शतपथ ब्राह्मण' ६।७।३।७ । ६'–ऐतरेय ब्राह्मण' अ० ४०, खं० ३।२६। ७—मनुस्मृति, अध्याय ९, २९४ । ८–दाते--महाराष्ट्र शब्दकोश, पृ० २६३२, आपटे-संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी पृ० ८०२ । ९–'अथर्ववेद-१९।३७।३९ ।

आज राष्ट्र शब्द समाज, जाति तथा राज्य सबके लिए व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है। परन्तु शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार 'राष्ट्र' शब्द (जो अंग्रेजी के '**Nation**' शब्द का पर्यायवाची है) अपना विशेष महत्व रखता है।

बर्गेस,[1] जर्मन राजनीतिज्ञ बलन्टस्ले,[2] स्टालिन,[3] फिलिमोर,[4] ज्यूलियन हक्सले[5] आदि विद्वानों ने राष्ट्र की विशद परिभाषाएँ प्रस्तुत की है। उमाकांत केशव आपटे के अनुसार तो–'एकात्मकता की प्रेम-रज्जु से आबद्ध होने के कारग,एक दूसरे के उत्कर्ष एवं सुख के हेतु सहकार्य की भावना से कार्य-प्रवृत्त होनेवाले लोगों का समुदाय ही राष्ट्र है।'[6]

इस प्रकार भिन्न-भिन्न परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने पर यह कहा जा सकता है कि किसी निश्चित भौगोलिक इकाई पर बसा हुआ जन-समुदाय, जिसकी अपनी सरकार और सार्वभौमिकता के साथ-साथ अपना संविधान, अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य हो, अपनी भाषा तथा अपना धर्म हो, राष्ट्र कहा जा सकता है।

(ख) राष्ट्रीयता का स्वरूपः--

राष्ट्रीयता का स्वरूप शब्दों के बंधन में बाँधना कुछ कठिन तथा अस्वाभाविक है। 'राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है जिसका सम्बन्ध मानव की अन्तश्चेतना से है, जो अनिवर्चनीय होने के कारण केवल अनुभूति का विषय है।'[7] यह मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में से एक है, जिसके कारण वह अपने राष्ट्र से एक विशेष प्रकार का लगाव रखती है और उसे सदा उन्नत और समृद्धिशाली देखने को उत्सुक रहती है।

१–Burgess J. W.: Political science and constitutional law. vol.I, P I. २--Bluntschli J. K. Theory of the modern state; 3rd Ed, P. 90 ३--Stalin, J Marxism and the questsin of nationlities, P. 6 ४–Phillimore: Inter national law., 3rd Ed., vol. I, P. 82. ५--Huxley, J: Race in Europe, P. 3. ६--'हमारे राष्ट्रीय जीवन की परंपरा ई० १९५१, पृ० ३–४। ७--J. Holland Rose: Nationality in History, P. 147 .

डा० आम्बेडकर,[1] श्री गिलक्राइस्ट,[2] प्रो० होल कोम्बे,[3] गेटेल[4] आदि विद्वानों ने राष्ट्रीयता का स्वरूप निर्धारण किया है। राष्ट्रीयता मनुष्य के अन्तःकरण की एक सर्वोत्तम चेतना है जो राष्ट्र के कल्याण के लिए उत्तेजित करती रहती है। राष्ट्रीयता की भावना के आवेग से व्यक्ति अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने में तथा अपना जीवन संहर्ष अर्पित करनेमें आत्मगौरवका अनुभव करता है। जिस राष्ट्र में राष्ट्रीयता की यह चेतना जितनी अधिक बलवती होगी वह राष्ट्र उतना ही शक्तिशाली तथा समृद्ध होगा।

ग–राष्ट्रीयता के प्रधान तत्वः—

राष्ट्रीय एकता के निर्माण के लिए विद्वानों ने कुछ तत्त्वों का होना आवश्यक बताया है। वे तत्व ये हैं—भौगोलिक एकता, जातीय एकता, संस्कृति तथा परंपरा की एकता, भाषा की एकता, धर्म की एकता आर्थिक और राजनैतिक आकांक्षा की एकता।

१–भौगोलिक एकताः—

राष्ट्रीयता के लिए निश्चित-भूभाग का होना आवश्यक है। बिना स्वदेश के राष्ट्र की कल्पना नहीं हो सकती। भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ निर्दिष्ट प्रदेश जिसे जन–समुदाय अपना कह सके, राष्ट्रीय भावों को जन्म देने में सहायक होता है। देश के बिना राष्ट्रीयताकी भावना सजीव नहीं रह सकती। यह राष्ट्रीयता केवल देशमात्र से उत्पन्न नहीं होती। इसके लिए देश के प्रति अगाध प्रेम एवं श्रद्धा होना आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के मन में 'माता भूमि, पुत्रोऽहं पृथिव्याम्' की भावना होनी चाहिए।[5]

२–जातीय भावनाः—

जाति इस समुदाय को कहते हैं जिसके सदस्यों में परस्पर एकता की भावना सुदृढ़ हो, समाज की परंपरागत एकता के बिना राष्ट्रीयता की धारणा नहीं बनती। किसी भी देश की जनता में संगठन एवं बंधुत्व का भाव जितना प्रबल होगा, राष्ट्रीयता की भावना उतनी ही परिपक्व होगी।

१–Ambedkar, B. R.: Thoughts on Pakistan,(1941), P. 25. २–Gilchrist; R. N. :Principles of Political science, 6th Ed. p. 26-27. ३–prof. :Hole combe: Foundation of Modern Commonwelth, (1923); p. 133. ४–Gettel, R. C. Political science, 3rd Ed. 1954, P. 54. ५—अथर्ववेद, भूमि-सूक्त।

आज हम किसी भी देश में एक ही जाति-का निवास नहीं पाते, वरन् प्रत्येक राष्ट्र में भिन्न-भिन्न जातियों का समावेश है। किन्तु उन सब में एक ही राष्ट्र के निवासी के नाते राष्ट्रीयता की भावना पाई जाती है। भारतीय राष्ट्रीयता इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यहाँ अनेक जातियाँ निवास करती हैं। फिर भी वे भारतीय ही हैं। यही जातीय एकता राष्ट्रीयता का प्रमुख सूत्र है।

३-सांस्कृतिक एकता--

प्रत्येक देश की अपनी-अपनी संस्कृति होती हैं जो उस देश के रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के हर छोटे-बड़े क्रिया-कलापों से अनुस्यूत होती है। एक ही संस्कृतिको अपनानेवाले लोगों में परस्पर एकता के भाव जाग्रत होते हैं और उनकी इसी एकानुभूति के कारण **राष्ट्रीय विचार-**धारा का विकास होता है। भारत में, अनेकता में ही एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता मानी जाती है।

साहित्य संस्कृति में अन्तर्भुक्त है, जो राष्ट्रीय चेतना को उत्तेजित तथा सुदृढ़ करने में सहायक होता है। साहित्य ही राष्ट्रीय भावों को जन-जन के हृदय तक पहुँचाता है। राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीय एकता में सहायक होता है। कला, नृत्य, संगीत आदि मनोरंजन के साधन भी संस्कृति के ही अन्तर्गत आते हैं। इन सभी को राष्ट्रीय भावों की प्रगति में सहायक मानना चाहिए क्योंकि राष्ट्र की आत्मा की भूख इन्हीं से शांत होती है। सांस्कृतिक एकता को पुष्ट एवं स्वस्थ बनाने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता है। यही जन-समुदाय के मस्तिष्क में ऊँचे तथा गौरव-शाली विचारों को बढ़ाती है।

ऐतिहासिक परंपरा भी राष्ट्रीय संस्कृति का ही एक अंग है। प्रत्येक राष्ट्र को अपने इतिहास का अभिमान होता है। वास्तव में कोई भी देश अतीत को नहीं भुला सकता क्योंकि वह अतीत सदा वर्तमान को स्फूर्ति प्रदान करता है। 'अतीत काल में किये गये वीरता के कार्य तथा वीरतापूर्वक सहन की गई यातनाएँ पवित्र भोज्य की तरह राष्ट्रीयता का पोषण करती रहती है।'[1] इस परम्परागत इतिहास का अनुकरण कर जनता सद्कार्यों के लिए सन्नद्ध हुआ करती है।

१-R. Muir. Nationalism and Inter nationalism; chap. II, 1918.

४-भाषा की एकता:—

राष्ट्रीयता के विकास के लिए भाषा की एकता भी एक प्रभाव-पूर्ण साधन है। एक ही भाषा के द्वारा विचार-विनिमय करने वाले लोगों में एक होकर रहने के भाव शीघ्रता से पनपते हैं। एक ही भाषा का प्रयोग एकानुभूति का प्रमुख साधन है तथा वह सभ्यता, चरित्र तथा जीवन के सामान्य आदर्शों को स्थापित करने में सहायक होता है। एक ही भाषा में लिखा हुआ साहित्य राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के लिए प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने का सफल आधार होने के कारण कई विद्वानों ने भाषा को साहित्य को राष्ट्रीय जीवन का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना है।[१]

५-धर्म की एकता--

एक ही धर्म को अपनाने वाले जन-समूह में एकता के भाव अधिक मात्रा में प्रस्फुटित होते हैं। एक ही प्रकार के धर्म-विश्वास रखनेवालों तथा एक ही प्रकार के विधि-विधानों का पालन करनेवालों में परस्पर बन्धुत्व का भाव अनायास विकसित होता जाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि धर्म की एकता ने प्रत्येक देश की राष्ट्रीय एकता रखने में सहायता की है। परन्तु आज एक ही राष्ट्र में भिन्न-भिन्न धर्म-विश्वास पाये जाते हैं। फिर भी आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र में प्रचलित सभी धर्म परस्पर उदार भावना रखें तथा सभी को अपने-अपने स्थान पर विकसित होने की स्वतन्त्रता हो-यह धारणा और यह धर्म-नीति निश्चय ही राष्ट्रीय एकता में सहायक सिद्ध होगी।

६--आर्थिक तथा राजनैतिक आकांक्षा की एकता:--

एक ही प्रकार की आर्थिक आकांक्षा रखनेवाले तथा एक ही प्रकार की आर्थिक समस्याओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न करनेवालों में एकीकरण भाव अधिक मात्रा में पाया जाता है। अंग्रेजकालीन भारत को आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी जिससे उद्वेलित होकर भारतीय जनता जाति-पाँति का भेद मिटाकर एक ही राष्ट्रीय उद्देश्य की सफलता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ी हुई।

राष्ट्रीयता की अनुभूति के लिए राजनैतिक एकता का बड़ा हाथ है। प्रत्येक राष्ट्र के व्यक्तियों की यह अभिलाषा होती है कि उनका एक

१-Harold J Laski: A Grammar of Palitics; 1951 Ed. p. 219.

राज्य हो, उसकी अपनी सरकार, अपना संविधान और अपनी सार्वभौमिकता हो। क्योंकि राज्य द्वारा ही राष्ट्रीयता का स्वरूप मूर्तिमान होता है। कई विद्वान तो 'राजनैतिक एकता को हीं राष्ट्र का नाम देते हैं।'[१] देश के वीरों ने इसके स्वरूप को बनाये रखने के लिए सदा संघर्ष किया है। भारतवासियों की राजनैतिक इच्छा तब पूरी हुई जब भारतीय जनता सततसंघर्ष करने के पश्चात् अंग्रेजों को देश से निकालने में सफल हुई। राष्ट्रीयता की यह तात्त्विक भूमिका पं० श्यामनारायण पांडेय के राष्ट्रीय भावों से आपूर्ण काव्यों की आधार भूमि है।

घ--पांडेयजी की राष्ट्रीय भावना की पृष्ठ-भूमिः—

पांडियजी के काव्य का अधिकांश भाग राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है, क्योंकि राष्ट्रीय भावों की पोषक प्रायः सभी विशेषतएँ उनके काव्य में मिलती हैं। किसी देश की राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध उस देश की भौगोलिक एकता, भाषा की एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक और राजनैतिक एकता पर निर्भर रहती है। अतः किसी कवि की राष्ट्रीयता पर विचार करने से पूर्व उसके काव्य में विद्यमान उक्त विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है। राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश की प्राचीन संस्कृति से भी रहता है। अतः इन सबका आकलन किये बिना कवि की राष्ट्रीयता पर विचार नहीं किया जा सकता। पांडेयजी की राष्ट्रीयता की भावना पर प्राचीत भारत की राष्ट्रीय परम्परा का जो प्रभाव है, उसका अध्ययन कर लेना भी एक प्रकार से आवश्यक है, क्योंकि राष्ट्रोय भावों का पोषक प्रचारक और सरक्षक साहित्य अतीत की संस्कृति का गुण-गान ही नहीं करता अपितु उसकी सुरक्षा का आग्रह भी करता है। अतः राष्ट्रीय भावना पर विचार करते समय राष्ट्र को मूलभूत संस्कृति का विवेचन करना एवं प्राचीन भारत की विशेषताओं का दिग्दर्शन करना भी आवश्यक है। इसी दृष्टि से पांडेयजी की राष्ट्रीय भावना की पृष्ठिभूमि निम्नानुसार हैः—

'भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय भावना का विकास—

भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का क्रमिक विकास मिलता है। पर समय-समय की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन होता रहा है।

१-J, Holland Rose: Nationality in History(1916,' P.-VI.

१- प्राचीन साहित्य में राष्ट्रीयता की भावना—

प्राचीन भारतीय साहित्य राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण है। उपनिषद का क्रांतिकारी संदेश जातीय जीवन के उत्थान के लिए किसी भी युग में विस्मृत नहीं किया जा सकता है-'उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'[1] संस्कृत साहित्यमें देशकी भौगोलिक सीमाका वर्णन करतेहुए आर्यावर्त[2] तथा भारत[3] की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। भारतवासी इसी देश को पूत-पावन मानते हैं। भारतीयों के लिए यह भूमि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' है। 'संगच्छध्वं सवदध्वं संवो मनांसि जानताम'[4] -संदेश भारतीयों की राष्ट्रीय एकता की प्रबल इच्छा को व्यक्त करता है। साथ ही उससे हृदय की एकता का प्रतिपादन भी होता है।[5]

तीर्थस्थानों के प्रति पवित्र भावना एवं यज्ञ-कर्म का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेकानेक स्थलों पर अंकित है। हमारे सांस्कृतिक जीवन में इनका बड़ा योगदान है। प्राचीनकाल में भारतवर्ष में संस्कृत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा के रूप में किया जाता था सीता-संदेश के समय हनुमान संस्कृत भाषा में ही बात करते हैं।[6] तत्कालीन भारतीय पुरुषार्थ का सहारा लेकर दरिद्रता को नष्ट करने का महान संकल्प करते हैं।[7] इस प्रकार भारतीय जन-मानस में आर्थिक समृद्धि की आकांक्षाएँ भी प्रबल रूप में विद्यमान थीं। इन्हीं आकांक्षाओं ने उन्हें एक राष्ट्रीय रज्जु में आबद्ध किया जो बाद में विकास करते-करते एक ऐसी सुदृढ़ राज्य की नींव डालनेमें सफल हुए जो प्रहार और आघातों से भी आसानी से विकम्पित न हो सकी।

वीरगाथा कालीन साहित्य—

हिन्दी साहित्य का प्रादुर्भाव भारतभूमि पर मुसलमानों के क्रूर आक्रमण-काल में हुआ। इसलिए भारतकी तत्कालीन राजनीति से उसका पूर्ण सम्बन्ध है। इस काल के चारण कवियों ने डिंगल भाषा में रचना कर अपने काव्य को प्रभावोत्पादक बनाया है। यद्यपि इन्होंने व्यक्तिगत

१- कठ, उपनिषद् अध्याय पहला, वल्ली३।१४। २- मनुस्मृति,अ० २, श्लोक १७, (सं. गिरजा प्रसाद द्विवेदी, १९१७ प्र० सं) ३- विष्णुपुराण-अ. २ अ. ३, श्लोक १। ४- ऋग्वेद म० १० सू० १९१, म० २। ५- वही, वही, वही; म० ४। ६- वाल्मीकि रामायण सुन्दर कांड, ३०।१७ ७-ऋग्वेद म० १०। सू० १५५। मं० १।

वीरता के आदर्श को अपनाया, परन्तु इस भाषा ने देश तथा जाति के गौरव को सुरक्षित रखा है और सहस्रों विचलित एवं हतप्रभ हृदयों में शक्ति का संचार किया है।

चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज को वीर, तेजस्वी तथा अन्य कई गुणों से युक्त नायक के रूप में चित्रित किया। वीर पृथ्वीराज की विजय यात्रा सबको आतंकित करने वाली है।[1] एक स्थान पर वे अपने वीरों को मर-मिटने का संदेश देते हैं।[2] 'आल्हाखड' में वीर भावों को पुष्ट करने वाले अनेक प्रसंग तथा घटनाएँ मिलती हैं। 'आल्हा' में राजभक्ति, साहस तथा आत्माभिमान के आधार पर किये गये अनेक चमत्कारपूर्ण कार्यों का निर्देश किया गया है। कहीं-कहीं वीरता एवं जातीय गौरव की अभि-व्यंजना भी बड़ी प्रबल है।[3] राजनैतिक दृष्टि से उन वीरों की प्रशंसा में लिखे गये वीर काव्यों को पूर्णतया राष्ट्रीय यदि न भी कहें तो भी इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि तात्कालिक राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजना प्रदान करने में वे बहुत सहायक थे।

३- भक्तिकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता—

भक्तिकाल के आने तक वीरगाथा कालीन स्थितियों में परिवर्तन आ गया था। मुगल आक्रामक उत्तर भारत के सम्राट बन चुके थे और वे देश में मुस्लिम संस्कृति का प्रचार प्रसार करने के लिए प्रयासशील थे। मुगल शासकों ने सत्ता स्थापना के लिए हिन्दू धर्म तथा धर्म-स्थानों पर कठिन प्रहार किये। परन्तु सत्ता स्थापन के पश्चात् वे भारतीय जीवन में घुलमिल गये। इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों के आदान प्रदान से भारत में एक संमिश्र संस्कृति का स्वरूप निर्माण हुआ। जिसे सपुष्ट करने की दिशा में भक्तिकालीन साहित्य ने महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत किया है।

संत नामदेव ने जात पाँत के बंधनों की अवहेलना कर जनता में भक्ति का वास्तविक तत्व का संदेश पहुँचाया।[4] कबीर की दृष्टि में जातिगत तथा वर्गगत प्रतिष्ठा का कुछ महत्व नहीं था। सभी मनुष्य उन्हें समान थे, जाति, वर्ण और वर्ग भेद उनकी दृष्टि में व्यर्थ थे। कबीर ने ये सभी भाव अपनी क्रांतिकारी वाणी द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त किये हैं।[5]

१- सं० रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी पहला भाग पृ० ११३।
२- पृथ्वीराजरासो : (ना० प्र० सभा) तीसरा भाग, छं० ९, १० स० ३१
३- 'आल्हाखंड' : आठवा सं० पृ० ५५९-५६०।
४- वियोगी हरि : सन्त-सुधा-सार' (१९५३) पृ० ५५। ५- डा० विद्यानाथ गुप्त : 'हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना पृ० १०५ पर उद्धृत।

इसी प्रकार की एकता का संदेश दादूदयाल[1]; रज्जब[2] पलटू[3] आदि ने दिया। इस प्रकार इस युग के संत कवियों ने सत्य, धर्म, समता, दया, नम्रता आदि अनेक मानवी सद्‌गुणों को अपनाने तथा वैर विरोध की नीच प्रवृत्तियों का बहिष्कार करने का जो संदेश दिया है, वह राष्ट्रीय एकता ही नहीं, मानव एकता का आधार है। संत कवियों ने तत्कालीन हिन्दू तथा मुसलमान जातियों के हित-साधन के निमित्त उनकी सामाजिक तथा धार्मिक कुरीतियों का खण्डन किया और उन सूत्रों का भी विश्लेषण किया जिनको अंगीकार करने से दोनों जातियों में सौहार्द भाव बढ़ सकता था।

परन्तु कबीर आदि संतमतानुयायी कवियों द्वारा प्रतिपादित भाव शताब्दियों से चले आ रहे हिन्दू धर्म के विश्वासों के अनुकूल नहीं थे। सन्त कवियों की वाणी में तीखापन था और उनमें रहस्यवाद तथा वैराग्य भावकी प्रधानता थी। लोक प्रचलित हिन्दू धर्म के भाव का अभाव होने के कारण उनका संदेश अधिकांश भारतीय समाज द्वारा ग्राह्य नहीं हुआ आवश्यकता ऐसे भक्ति-मार्ग की थी जो जन-मन में व्याप्त निराशा भाव का उन्मूलन कर उसे शील, शक्ति और सौंदर्य की प्रेरणा दे सके। यह कार्य कृष्ण तथा राम की सगुण भक्ति द्वारा हुआ। सूरदास और तुलसी इसके दो मेरु दण्ड हैं। सूरदास ने अपने काव्य द्वारा वात्सल्य[4], सखा-भक्ति आदर्श[5] लोक-संस्कृति[6] का स्वरूप प्रतिपादित कर जाति में स्फूर्ति-दायी शक्ति का संचार किया है; तो तुलसी ने तत्कालीन दयनीय दशा का वर्णन रावण राज्य के वर्णन के माध्यम से किया।[7] तुलसी ने अनाचार का अंत कर प्रजा को सुख-शांति प्रदान करनेवाले आदर्श राजा राम तथा उसके राम-राज्य का संदेश दिया। उन्होंने अपने काव्य द्वारा धार्मिक आदर्शों[8], सामाजिक आदर्शों[9], राजनैतिक आदर्शों[10] तथा काव्यके विविध

१- दादूदयाल की बानी : प्रथम भाग, दोहा ५, पृ० २३५। २- सन्तसुधा-सार—पृ० ५१६ ५३०। ३— पलटू साहब की बानी-भाग २, पृ० २०५। (ई० १९३५)

४-डा० सत्यकेतु- सूर की झाँकी, प्र.सं. १९५६; पृ. ७९-८०। ५-सूरसागर-दशम स्कन्ध, पृ. १५५;१५६;५८६;५८८। ६-वही, पृ. ६६२,६९०। ७-रामचरितमानस, बालकाण्ड पृ. १८३। ८-वही; वही; १२०;३१४, उत्तरकाण्ड १०६-२।११४-७। ९-तुलसी ग्रन्थावली, ३ खंड, पृ. ११३ और मानस अयो. कां.१३५-११, लंका कां, १२०-२। १०-मानस, सु.कां. ५०-२, अ.कां. ४-१; ४-२, उ.कां. ४२-३, अ.कां. ७०-३।

प्रसंगों में राष्ट्रीय भावों को[1] व्यक्त किया। इस प्रकार उनकी विचार-धारा राष्ट्रीयता के साथ-साथ विश्वव्यापकता को लिये हुए है। वे मानवतावादी थे। अतः मानवमात्र का कल्याण ही मूल-रूप में उनके काव्य का उद्देश्य है। सुरसरि-सम सब का समान हित करना ही उनकी राम कथा की विशेषता है।

४-रीतिकालीन साहित्य में राष्ट्रीयता— भक्ति-युग के अनन्तर रीतिकाल के प्रारम्भ में विचित्र प्रकार की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ देश में व्याप्त हुई। इस युग में नैतिक पतन से धर्म का रूप विकृत हो गया और राजाश्रित दरबारी कवियों ने अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति को संतुष्ट करने के लिए शृंगारी काव्यों की रचना की। यहाँ तक वर्णन किया गया कि—'दनुजदलन लोकरक्षक मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र अब सरयू किनारे काम क्रीड़ा करने लगे। .... सीता का मार्दव और आदर्श युग की शृंगारिकता में लिप्त हो गया ....।'[2] ऐसे शृंगारिक काव्य ने तत्कालीन जनता का खूब मनोरंजन किया। किन्तु मह मनोरंजन सामाजिक विकास में साधक सिद्ध न हुआ। अतः राष्ट्रीय, नैतिक और सामाजिक दृष्टि से इसका महत्व शून्यवत् है, क्योंकि इनमें व्यापक जीवन दर्शन नहीं मिलता। इसमें कोई संदेह नहीं कि रीति काव्य वास्तव में यौवन का मादक; विलासपूर्ण काव्य है।'[3]

इस युग में भी निस्पृह, वीर, राष्ट्रनेता जाति को औरंगजेब के क्रूर शासन से मुक्ति दिलाने के लिए संघर्ष-रत थे, जिनके वीरोचित कार्यों का प्रशस्तिगायन भूषण, लाल, सूदन आदि शूरधर्मी कवियों ने अपनी ओजस्वी कविताओं द्वारा किया है। निस्सन्देह रीतिकालीन वीर कवियों की वाणी ने सोई हुई हिन्दू जाति के हृदय में उत्साह का संचार किया। भूषण ने तो शिवाजी के चरित्र से प्रभावित हो उन्हें अवतार तक घोषित कर दिया।[4] उन्होंने लिखा है कि—'शिवाजी ने अवतार सदृश कार्य कर अपनी जाति एवं धर्म की रक्षा की।'[5] मान ने राज सिंह की वीरता के उच्चतम आदर्श को जाति के सम्मुख प्रस्तुत किया।[6] और सुजान चरित्र में सूदन ने युद्ध-स्थल को परम पवित्र वर्णित कर जाति को आन्दोलित करने का प्रयत्न किया।[7]

१-मानस उ. कां. ३-३। दोहावली, दोहा १८२, मा. उ. कां. १६, बा. कां. ७१। २-डा. नगेन्द्र-हिन्दी साहित्यका वृहद् इतिहास, (रीतिकाल) पृ.१८। वि. २०१५। ३–डा० भगीरथ मिश्र-हिन्दी रीति साहित्य, पृ. १३। ४–भूषणभारती- (हरदयाल सिंह) प्र. सं., पृ. १६५। ५–वही, पृ. २२८। ६–राजविलास-प्र.सं.; उल्लास ६-३७,३८, पृ. ७१। ७५-सुजानचरित्र-जंग १, पृ. २१।

यद्यपि इन वीरों तथा कवियों की राष्ट्रीय भावना जातीय राष्ट्रीय भावना थी, फिर भी जो कार्य उन्होंने सीमित रूप में किया, वह राष्ट्रीय भावों का पोषक है। अतः उसे राष्ट्रीयता के गौरव से पृथक करना उचित नहीं।

५- भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रीयता— भारतेन्दु युग के कवि एक नवीन दृष्टिकोण लेकर काव्य-जगत् के विशाल प्रांगण में विचरण कर रहे थे। देश की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार की गतिविधियों से प्रभावित होकर उन्होंने राष्ट्रीयता से सम्बद्ध विभिन्न स्थितियों को अपने काव्य का विषय बनाया। वे अनुभव करते थे कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के सुख का उपयोग करने के लिए देशवासियों का सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन उन्नत होना चाहिए। इसी उद्देश्य से वे एक क्रान्तिकारी योजना लेकर समाज के सम्मुख आए। उन्होंने जनता में नवीन भावों का उद्रेक किया।उनके हृदय में देश तथा जाति के उत्थान की प्रबल उमंग तरंगित हो रही थी। यही कारण है कि उनकी कविताओं में प्राचीन संस्कृति के प्रति गौरव, देश–प्रेम, देश की आर्थिक दुर्दशा आदि के भाव स्पष्टतः व्यंजित हुए हैं।

भारतेन्दु ने अति-आर्त्त स्वर में भारत के प्राचीन एवं अध्यात्मिक वीर पुरुषों को वर्तमान दुख-मोचन के लिए पुकारा है।[1] बालमुकुन्द गुप्त ने 'पुरानी दिल्ली' में नगर की प्राचीन गौरव गाथा का चित्र अंकित कर काल के घातक प्रभाव को बताया है।[2] भारतेन्दु ने भारत-दुर्दशा का हृदय-द्रावक चित्र प्रस्तुत किया है।[3] और प्रेमघन ने आपसी फूट, परस्पर कलह द्वेष आदि दुर्गुणों के भयंकर परिणामों का उल्लेख किया है।[4] इस युग के कवि देश पर मरने-मिटने के लिए नई पीढ़ी का आह्वान करते हैं।[5]

इस तरह हम देखते हैं कि भारतेन्दु युग के काव्य में राष्ट्रीय भावना का यथेष्ट विकास हुआ और कवियों में देश-भक्ति की भावना बलवती हुई। अब तक जो राष्ट्र केवल आर्य जातीयता का प्रतीक माना

१–भारतेन्दु ग्रन्थावली (सं. बाबू ब्रजरत्नदास) भाग २, सं. २, पृ. ६८३-८४
२–डा० नत्थन सिंह- गद्यकार, बालमुकुन्द गुप्त· जीवन और साहित्य, पृ० १२४। ३–भारतेन्दु ग्रंथावली-भारत दुर्दशा, प्र.खं., प्र.सं. पृ० ४६६। ४–प्रेमघनसर्वस्व- प्र०भा०, पृ० ५१। ५–रामगोपाल सिंह- भारतेन्दु साहित्य पृ० २६४।

ज़ाता था, इस नये युग में उसने सभी जातियों को अपने में समेट लिया। अतः यह कहना सच होगा कि भारतेन्दु युग में सच्ची तथा सम्यक् राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ, जो धीरे-धीरे और भी प्रबल तथा पुष्ट होती हुई जनता के हृदय में समाहित होती गई।

ज- पांडेयजी की राष्ट्रीय भावना के आलम्बन—

पं० श्यामनारायण पांडेयजी के काव्य में राष्ट्रीय भावना की जो अभिव्यक्ति हुई है, उसके मुख्य आधार हैं इतिहास प्रसिद्ध वीर नायक परशुराम, लक्ष्मण, हनुमान, पद्मिनी, गोरा, महाराणा प्रताप सिंह, शिवाजी। उन्होंने अपने युग में राष्ट्रीय भावना के जिस आदर्श रूप को अपनाया और अपने कार्यों द्वारा युग में चेतना जाग्रत की, उसका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

१-परशुराम—परशुराम जमदग्नि के आश्रम के धार्मिक एवं पवित्र वातावरण में जन्मे, पले एवं बढ़े। उन्होंने महर्षि कश्यप से धनुर्विद्या में निपुणता प्राप्त की। उनकी निपुणता देख शंकर ने उन्हें एक तेजस्वी परशु प्रदान किया। एक बार उनके आश्रम से कार्तवीर्य ने उनकी कामधेनु का अन्याय से अपहरण किया। इससे उनका क्षात्र तेज प्रकट हुआ। उन्होंने अपने परशु से कार्तवीर्य तथा अन्य अन्यायी शासकों का संहार किया और प्रजा में शांति की स्थापना की तथा 'अश्वमेध' यज्ञ कर 'चक्रवर्ती' पद प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनका ब्राह्म-तेज प्रकट हुआ और उन्होंने पृथ्वी सहित सारे ऐश्वर्य का दान ऋषि कश्यप को किया।

२-लक्ष्मण—रावण के अत्याचारों और राक्षसों के भीषण अनाचारों से भारत की दुर्दशा हो रही थी। ऐसे अवसर पर सीता हरण के उपरांत प्रभु श्रीरामचन्द्र ने रावण के अन्यायी एवं अत्याचारी शासन को समूल नष्ट करने के लिए युद्ध छेड़ा जिसमें लक्ष्मण ने एक सेनापति के रूप में महत्वपूर्ण योगदान किया।

लक्ष्मण के चरित्र में सबसे अधिक प्रबलता उनके बन्धु प्रेम, शूर वीरता और पराक्रम की है। मेघनाद के साथ युद्ध-प्रसंग में उनकी वीरता श्लाघनीय है। उनके शौर्य की प्रशंसा उनके परिजन तो करते ही हैं, शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते हुए नहीं थकते। स्वभाव से उग्र, चपल, स्पष्टभाषी एवं वीर लक्ष्मण अपने कर्तव्य-क्षेत्र में एक विनीत, त्यागी, आत्मनिष्ठ, संयत एवं अनन्य आज्ञापालक सेवक हैं। इन दो विरोधी प्राकृतियों के संयोग से उनके चरित्र में स्वर्ण सुगन्धि-संयोग प्रस्तुत हो गया है।

३-वीर हनुमान—हनुमान की स्वामी-भक्ति अवर्णनीय है। सीता-न्वेषण के समय मार्ग के अनेक संकटों का मुकाबला कर वे लंका में प्रवेश करते हैं। लंका में राक्षसों के साथ उनका युद्ध होता है जिसमें वे अपार शौर्य तथा वीरता दिखाते हैं। रावण के दरबार में रहते हुए भी वे उनके निन्दनीय कर्मों का उल्लेख कर अपने साहस का परिचय देते हैं।

अपना कार्य सिद्ध करने के लिए वे सर्वत्र नीति और चतुराई से काम लेते हैं। वे अपने स्वामी के हित और कल्याण के लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए उद्यत रहते हैं। अन्त में वे लंका से सोता का कुशल समाचार ले आते हैं। इस महत् यात्रा में उनका मनोबल तथा धैर्यबल सदा ऊँचा रहा है।। इस प्रकार हनुमानजो शूर वीर, बुद्धिमान, स्वामी-भक्त, बल-स्फूर्ति के निधान के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं।

४-वीरांगना पद्मिनी—पद्मिनी राजपूत वीरांगना एवं रावल रतन सिंह की पत्नी थी। उसके रूप की ओर आकृष्ट होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, पर इसमें वह सफल नहीं हुआ। उसने रतन सिंह को छल से कैद किया और रतन सिंह की मुक्त के बदले में पद्मिनो को अपने शाही हरम में भेज देने का संदेश भेजा।

इससे रानी का सतीत्व एवं आत्मसम्मान जागा और उसने वीरांगना के रूप में अलाउद्दीन के साथ युद्ध करने के लिए अपने वीरों को प्रेरित किया। गोरा बादल ने रतन सिंह की मुक्ति के लिए प्रतीज्ञा की। युद्ध हुआ, जिसमें रावल तो मुक्त हो गये पर गोरा का बलिदान हो गया। अंतिम युद्ध में लक्ष्मण सिंह के सात पुत्र और स्वयं रावल रतन सिंह मारे गये।

रानी ने जौहर करने का निश्चय किया और वह जौहर की ज्वाला में कूद पड़ी। इस प्रकार सिह सुता, क्षत्राणी, वीर नारी पद्मिनी ने पति-भक्ति, देश-प्रेम; सतीत्व, मान-मर्यादा, छल-बल और कूटनीति का परिचय दिया। पद्मिनी के इस गौरवशाली चरित्र पर देश की नारियाँ आज भी गर्व करती हैं।

५-वीरवर गोरा—गोरा रावल रतन सिंह का सरदार था। उसने देश, जाति, एवं राजरानी के सतीत्व की रक्षा के लिए देश की बलिवेदो पर अपने को समर्पित किया। उसने अपने धैर्य, साहस और चातुर्य से बन्दी रावल रतनसिंह को मुक्त किया। इस प्रसंग में उनकी राजनैतिक कुशलता और वीरोचित शौर्य-भावना सराहनीय है। तत्पश्चात् अलाउद्दीन की

प्रबल सेना के साथ उसका जो युद्ध हुआ, उसमें उसने अपनी अनुपम वीरता का आदर्श स्थापित किया है।

(६) **महाराणा प्रतापसिंह :—**

महाराणा प्रतापसिंह मध्यकालीन राजपूत वीरों में वीर शिरोमणि थे। जिस समय मुगल सम्राट अकबर ने सारे भारत में अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित करने के लिए उदार नीति अपनाकर बहुतांश राजपूतों को अपनी ओर कर लिया और महाराणा प्रतापसिंह के भाइयों का भी एक बहुत बड़ा दल अकबर से जा मिला। उस स्थिति में देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखना एक कठिन काम था. महाराणा प्रतापसिंह ने यही कार्य करने के लिए होम दिया।

प्रतापसिंह ने वंश-गौरव, देश, धर्म, जाति तथा स्वतन्त्रता की की रक्षा के लिए प्रतिज्ञा की और मेवाड़ के वीरों ने उनका साथ दिया। यह प्रतिज्ञा जब अकबर के कानों में गाज की तरह गिरी तब दिल्ली का सिंहासन डगमगा उठा। अकबर बड़ा कूटनितिज्ञ था। वह प्रतापसिंह की स्वतन्त्रता समाप्त करना चाहता था। अतः उसने मानसिंह के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी।

हल्दीघाटी के मैदान में दोनों सेनाओं के बीच भयंकर युद्ध हुआ। प्रताप ने बड़ी वीरता दिखाई पर वे कुछ मुगल सिपाहियों के द्वारा घिर गये झाला मान्ना ने प्रतापसिंह का मुकुट अपने सिर पर धारण कर युद्ध करते-करते प्राणोत्सर्ग किया और अपनी जान पर खेलकर प्रतापसिंह की रक्षा की। प्रतापसिंह बच निकले।

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद चावण्ड के समीप जावरमाला की गु-फाओं में प्रतापसिंह दिन बिताने लगे। वहां उन्हें भोजन मिलना भी दुर्लभ था। वे काँटों की सेज पर सोते थे। यह सब किस लिए? इसीलिए कि सीसोदिया के निर्मल यश में कहीं कलंक की कालिमा न लग जाय, मेवाड़ का मस्तक कहीं झुक न जाय, अधर्म की बेदी पर धर्म का बलिदान न हो जाये और द्रौपदी की तरह किसी दुःशासन द्वारा स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्म-भूमि का चीर न खींचा जाय।

अन्त में निरुपाय होकर जब वे अकबर को सन्धि-पत्र लिखने लगे तब उनकी रानी ने उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति सचेत किया। भामाशाह द्वारा अतुलनीय संपत्ति दी जाने पर उनका उत्साह द्विगुणित हुआ। बाद में उन्होंने एक भारी सेना लेकर कुंभलनेर पर चढ़ाई की और उस पर राज-पूतों की जय पताका फहराई। इस प्रकार स्वतन्त्र्य-प्रेम, देश-प्रेम, धर्म-

प्रियता, ज़ातिय स्वाभिमान, त्याग और बलिदान की भावना के कारण प्रतापसिंह का नाम इतिहास में अमर है। प्रताप का यह चरित्र ही पांडेयजी के 'हल्दीघाटी' का आलम्बन है ।

(७) राष्ट्रनायक शिवाजी :—

छात्रपति शिवाजी का जन्म महाराष्ट्र में हुआ और वहीं उन्होने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की । शिवाजी की दृष्टि में सम्पूर्ण भारतवर्ष एक था । उनकी चेतना, उनका कर्म; उनका आदर्श एवं उनके विचार सभी राष्ट्रीय स्तर के थे । उन्होंने दिल्ली की उस महान शक्ति का सामना किया जिसने यहांको मूलभूत राष्ट्रीय भावना के आधारों को नष्ट करने का प्रयत्न किया । इस प्रयत्न में शिवाजी को सफलता भी मिली । उनकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उनके जीते जी औरंगजेब कभी सुख की नींद नहीं सो सका ।

शिवाजी ने वर्णाश्रय व्यवस्था; गौ-ब्राह्मण की प्रतिष्ठा, तीर्थ स्थानों की रक्षा करने का प्रयत्न किया । शिवाजीका राज्याभिषेक भी वैदिक पद्धति से सम्पन्न हुआ । यह इस बात का सबूत है कि शिवाजी के द्वारा प्राचीन भारत की राष्ट्रीय परम्परा का पुनरुद्धार हुआ । वे भारत के प्राचीन आदर्शों के समर्थक और संरक्षक थे और उन्होंने आजीवन उनका पालन किया ।

शिवाजी की दृष्टि समस्त भारत पर थी । जयसिंह के अनुरोध से वे औरंगजेब से मिलने आगरा गये और वहा से लौटते हुए उन्होंने अनेक तीर्थस्थानों की यात्रा की । इस यात्रा में उन्होंने देश का भ्रमण कर भारत की प्रत्यक्ष परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया । इस भ्रमण के पीछे एक निश्चित योजना एवं उद्देश्य था । सरदेसाई के अनुसार "शिवाजी की इस योजना में अखिल भारतीय आन्दोलन शामिल था ।[1]"

शिवाजी के जीवन काल में उनका नाम केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, उत्तर भारत और सुदूर दक्षिण में भी प्रसिद्ध था । मुगलों की ओर से जो सेनापति दक्षिण में आये, उन्हें तो उन्होंने हराया । इससे भी बड़ी बात यह है कि सर्वशक्तिमान सम्राट को भरे दरबार में ललकार कर और बन्दीगृह से चमत्कारी ढंग से भाग निकल कर सारे भारत में मुगल साम्राज्य के एक दुर्निवार शत्रु के रुप में प्रसिद्धि प्राप्त की ।

(१) गो० स० सर देसाई:— 'मराठों का इतिहास'–पृ. ७३ ।

उनके सारे क्रिया-किलाप प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना से सम्वन्द्ध थे और इसी के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि समस्त भारत पर थी। जिन क्षेत्रों तक उनकी पहुँच नहीं हो सकीं वहाँ भी उनके आदर्शों का पालन करने वाले थे।

शिवाजी द्वारा जय सिंह को प्रेषित पत्र तत्कालीन परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है। प्रस्तुत पत्र में स्वदेश, स्वधर्म और स्वजाति के प्रति शिवाजी की प्रेम भावना व्यक्त हुई है। साथ ही उनकी स्वातंत्र्य-प्रियता एवं औरंगजेब के अन्याय के विरुद्ध आजीवन संघर्ष करने की भावना परिलक्षित होती है। इस पत्र में औरंगजेब की नीति का भंडाफोड़ कर शिवाजी ने जयसिंह के सामने भारत को मुक्त करने की जो योजना प्रस्तुत की है; वह उन्हें भारत का राष्ट्रनायक सिद्ध करती है। इस पत्र में शिवाजी का ध्येय-बल, मनोबल और आत्मबल प्रामाणिकता से प्रकट हुआ है।

पांडेयजी के काव्य नायकों के रुप में उपरोक्त पौराणिक और ऐतिहासिक पात्र देश, जाति, धर्म, स्वत्व, स्वाभिमान, स्वातंत्र्य आदि राष्ट्रीय भावों के आलम्बन हैं। इन पात्रों में शक्ति, युक्ति, शौर्य, साहस, त्याग, बलिदान, कर्तव्यनिष्ठता आदि गुण राष्ट्रीयता के पोषक हैं। तथा अनीति, अत्याचार और अमानवीय दुर्व्यवहारों के प्रति इनका सात्विक, सक्रिय विद्रोह राष्ट्रीयता का रक्षक तत्त्व है। तथ्य को दृष्टि में रखकर पांडेयजी ने पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रोंके माध्यमसे राष्ट्रीयता, राष्ट्रप्रेम और राष्ट्र के लिए तप, त्याग और बलिदान के भावों से ओतप्रोत कर्तव्यनिष्ठ पात्रों को अपने काव्य का आलम्बन बनाया है।

च–पं० श्यामनारायण पांडेय की राष्ट्रीय भावनाः—

पं० श्यामनारायण जी पांडेय का अधिकांश काव्य ससाहित्य राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का जीता–जागता दर्पण है। अतः उसमें देश की संस्कृति और परम्परा के प्रति दृढ़ आस्था का सघन भाव है। जब भारतवर्ष अपने गौरव और स्वाभिमान का विस्मरण करने लगा तो कवि ने ऐसे नायकों का गुणगान किया, जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व में भारतीय आदर्शो का मूर्त रूप दिखाई दिया। यह सर्वविदित है कि राष्ट्रीय भावना के पोषक काव्य में जाति–विशेष को एकता के सूत्र में आबद्ध करने के लिए देश की सभ्यता और संस्कृति का गुणगान किया जाता है और देश,जाति के स्वत्व और गौरव के संरक्षण में सामूहिक हित या कल्याण का भाव रखते हुए जो आगे बढ़ते हैं, संघर्ष करते हैं, जीते या मरते हैं, ऐसे पात्रों को राष्ट्रीय भावना के कवि जनता के श्रद्धा भाजन

के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ऐसे त्यागी, बलिदानी वीर ही राष्ट्रीय काव्य के आलम्बन बनते हैं। दूसरे शब्दों में जननायक को काव्य का नायक बनाकर कवि जनवाणी द्वारा राष्ट्र-प्रेम एवं स्वदेशाभिमान को अभिव्यक्ति देता है। पं० श्यानारायण जी पांडेय ने भी यही किया है। उनके राष्ट्रीय काव्य के अन्तर्गत वीरों के गान, युद्ध–गीत, लोकगीत, आत्मबलिदान की गाथाएँ, संस्कृति और सभ्यता का गुणगान, मातृ–भूमि के प्रति प्रेम की भावनाओं का जो समावेश पाया जाता है, वह उनकी राष्ट्रीय भावना का ही काव्य है। पांडेयजी के काव्य में राष्ट्रीय भावना का जो स्वरूप है, उसका विवेचन निम्नानुसार है:—

छ-पांडेय जी के काव्य में राष्ट्रीय भावना का स्वरूप:—

अपने युग की चेतना से राष्ट्रीय साहित्य का प्रत्यक्ष संबंध होता है। इतिहास साक्षी है कि शांतिपूर्ण वातावरण में कवि वीर रस के गीत नहीं गाते पर जब राष्ट्र में गोले बरसते हैं, तोपें आग उगलती हैं, तब कवि की वाणी से फूल नहीं झरते। कबि तो युग की चेतना के सुर में सुर मिलाकर गाते हैं। जातीय जीवन की अनुभूति का प्रत्येक स्पन्दन उनकी वाणी में उभरता है; अतः जब तक किसी जाति या संस्कृति का अन्य जाति या संस्कृति से संघर्ष नहीं होता, तब तक इस प्रकार की वीर-रसात्मक राष्ट्रीय रचनाएँ नहीं लिखी जातीं। पांडेयजी के काव्य में युग संघर्ष की अभिव्यक्ति सीधे वर्तमान के माध्यम से नहीं, अतीत के माध्यम से हुई है। फिर भी उनका काव्य युग की चेतना को वाणी देने वाला है।

डा० देवराज ने लिखा है—'जब आलोचक उनका(कलाकृतियों का) सम्बन्ध युगजीवन से जोड़ता है तो हमें रसानुभूति के साथ यह चेतना भी होती है कि उन कृतियों का रंगमंच पर होने वाले विराट परिवर्तनों से सम्बन्ध है। निश्चित ही यह चेतना हमें साहित्य और युग दोनों को समझने में सहायता देती है।'[1] उक्त कथन पांडेयजी के काव्य पर पूर्णतः घटित होता है। पांडेयजी की कृतियों में अतीत का इतिहास अपने विराट परिवर्तन के साथ चित्रित है। ऐतिहासिक और पौराणिक दृष्टि से जिन-पात्रों एवं प्रसंगोंका उल्लेख पांडेयजीको रचनाओं में हुआ है, उनकी प्रामाणिकता इतिहास एवं पुराण ग्रन्थों से सिद्ध है। पर पांडेय जो इतिहास लिखने नहीं बैठे थे। वे युग से जुड़े थे और अतीत तथा वर्तमान में एक अन्तर्दृष्टि रखते थे। अतः वर्तमान के विवेचन और भविष्य के संकेत के लिए इतिहास-पुराण उनके काव्य के विषय हो गये। राष्ट्रीय साहित्य का

१–डा० देवराज–आधुनिक समीक्षा–पृ०-२०, २१।

सम्बन्ध अपने युग के इतिहास से होता है। वह सदैव वर्तमान की चिंता करता है, यों उसके आदर्श की जड़ें प्राचीन में होती हैं। किन्तु उसकी दृष्टि सदैव वर्तमान पर रहती है। इस दृष्टि से देखने पर पांडेयजी के काव्य को राष्ट्रीय काव्य कहा जा सकता है।

राष्ट्रीय साहित्य का सामाजिक जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। वह युग की हलचलों को प्रत्यक्ष या अतीत के माध्यम से प्रस्तुत करता है। पांडेयजी के काव्य में युग का जो प्रतिबिम्ब मिलता है वह समाज की विषम परिस्थितियों का ज्ञान कराता है। यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि राष्ट्रीय कवि युग की ज्वलन्त समस्याओं से मुख मोड़कर मौन नहीं रहता और पं० श्यामनारायण जी पांडेय तो ऐसा कदापि नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपने काव्य में अतीतकालीन धार्मिक अत्याचारों तथा सामाजिक दुर्दशा का जो उल्लेख किया है वह आज भी सारे देश में चारों ओर व्याप्त है। पांडेयजी को अपने युग में ठीक अतीत जैसी ही विकृत और विषम परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं ऐसे समय में भला उनकी वाणी कैसे मौन रह सकती है? राष्ट्रीय संघर्ष और अन्याय के वातावरण में आदर्शों की चर्चा करने की अपेक्षा कर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता होती है। युगकी इस माँग पर जो नायक कर्म में प्रवृत्त होकर देश, धर्म एवं जाति की रक्षा करता है, वह जनता का श्रद्धाभाजन बनता है। कवि ने ऐसे ही नायकों की प्रशंसा की है। शिवाजी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कवि ने लिखा है कि आगरे से लौटते हुए वे सीधे नहीं लौटे, बल्कि उत्तर भारत के प्रमुख तीर्थस्थानों की यात्रा के उपरान्त लौटे। उन्होंने मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, इलाहाबाद, काशी आदि बहुत से तीर्थ स्थानों की यात्रा की। एक प्रकार से उन्होंनेइस तीर्थ-यात्रा में उत्तर भारत की परिस्थितियों का परिचय प्राप्त किया। उनकी यात्रा का भी यही उद्देश्य था कि:—

"थी चाह नव्य स्वराज्य की, तजकर न मैं जाऊँ अभी
उत्तिष्ठ जाग्रत मन्त्र के भावार्थ समझाऊँ अभी॥"[1]

और इसी भाव से प्रेरणा ग्रहण कर शिवाजी प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावनाओं के मूर्त आधार तीर्थ स्थानों की रक्षा में प्रवृत्त हुए। समर्थ रामदास और शिवभारतकार परमानन्द कवि ने भी यही भाव प्रकट किये हैं। शिवाजी के युग में ही संस्कृत, मराठी और हिन्दी तीनों भाषाओंमें उनकी महिमा और उनके राष्ट्रीय कार्यों पर काव्य रचे गये हैं।

१–'शिवाजी'–सर्ग, पृ० १८३।

राष्ट्रीय कवि की दृष्टि क्षेत्र–विशेष तक ही सीमित नहीं रहती, वह सारे राष्ट्र के हित की दृष्टि रखता है। पांडेय जी ने शिवाजी की को प्रशंसा इसलिए नहीं की कि वे महाराष्ट्र के हैं बल्कि इसलिए कि कि उनकी दृष्टि मथुरा, काशी आदि तीर्थस्थानों पर थी और उन तीर्थ स्थानों को नष्ट करनेवालों को उन्होंने चुनौती भी दी कि उनकी जिन्दगी धर्म–रक्षा के लिए हैं:—

"हरिद्वार मथुरा गया औध काशी ।
सभी पर लगातार छायी उदासी ।।
० ० ०
कभी धर्म का ह्रास होने न दूँगा ।
सदाचार का नाश होने न दूँगा ।।
० ० ०
प्रतिज्ञा नहीं यह हवा बोलती है ।
इसी के लिए जिन्दगी डोलती है ।।"[1]

आगे चलकर शिवाजी ने मठों–मन्दिरों की प्रतिष्ठा बढ़ायी:—

"मठों मन्दिरों की प्रतिष्ठा बढ़ी ।
कला धर्म में जो कि निष्ठा बढ़ी ।।"[2]

इससे स्पष्ट हैं कि शिवाजी ने मुगलों के अत्याचार को रोकने के लिए भरपूर शक्ति का उपयोग किया। इन तीर्थ-स्थानों के संदर्भ में शिवाजी का नाम आना ही इस बात का प्रमाण है कि कवि की दृष्टि में राष्ट्र-नायक की दृष्टि में भारतवर्ष एक है। राजनैतिक स्वतन्त्रता भले ही वे प्राप्त न कर सके, परन्तु उन्होंने औरंगजेब का ध्यान सदा अपनी ओर रखा और उनके अत्याचारों का विरोध कर उसमें कमी लाने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न में उन्हें यथेष्ट सफलता भी मिली। औरंगजेब ने अपने वसीयतनामें में लिखा है कि "एक क्षण की असावधानी के फलस्वरुप अनेक वर्षों तक अपमान भुगतना पड़ता है। मेरी लापरवाही से वह नराधम शिवा निकल भागा और उसका परिणाम यह हुआ कि मुझे जीवन के अन्त तक मराठों के विरुद्ध कड़ी मेहनत करनी पड़ी।"[3]

दूसरी बात यह है कि पांडेयजी ने स्वयं राष्ट्रव्यापी भ्रमण किया है। उन्हें देश की परिस्थितियों का सम्यक परिज्ञान है। उन्होंने अतीतकालीन अनेक ऐतिहासिक एवं पौराणिक व्यक्तियों की चर्चा की है, जिन्होंने

१- 'शिवाजी' सर्ग १३, पृ. १५६। २–वही, सर्ग १६, पृ.२३३। ३- यदुनाथ सरकार: 'औरंगजेब'–पृ.४६८–४६६।

राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा में स्तुत्य योग दिया है। शिवाजी के साथ ही उन्होंने महाराणा प्रतापसिंह, महारानी पद्मिनी वीरबर गोरा, हनुमान एवं लक्ष्मण को भी महत्व दिया है तथा उनकी सराहना की है। इन सभी अविस्मरणीय चरित्रों पर कवि ने एक-एक स्वतन्त्र रचना लिखी है। मुगल सम्राट बाबर की प्रशंसा भी पांडेयजी ने इसीलिए की है क्यों कि उसने यहाँ की राष्ट्रीय भावनाओं को क्षति नहो पहुंचायी, पर उसके उत्तराधिकारियों ने एवं परवर्ती शासकों ने अन्याय एवं अत्याचार का आलम्बन ले हिन्दुओं पर निर्मम अत्याचार किये। विशेषकर औरंगजेब ने तो हिन्दू-द्वेष की पराकाष्ठा प्रस्तुत कर दी। कवि के शब्दों में:—

"बाबर से आज तक किसी को न रोष था।
मन्दिरों को तोड़ने का इतना न जोश था।।"[1]

बाबर की प्रशंसा में कवि की राष्ट्रीय दृष्टि काम करती दिखाई पड़ रही है।

दूसरी ओर कवि ने मुगल सम्राट के कर्मों की व्याख्या करते हुए लिखा है।

"हिन्दू–मुस्लिम दोनों आप ही के बेटे हैं।
अपनी हुकूमत में सबकों लपेटे है।।
दोनों को सम्भालना बड़ी कड़ी तपस्या है।
आज सल्तनत के लिए यही समस्या है।।"[2]

राष्ट्रीय साहित्य में एक ओर जहाँ प्राचीन संस्कृति एवं धर्म से प्रेरणा ग्रहण की जाती है, वही उसमें वर्तमान की यथार्थ परिस्थितियों का दयनीय एवं करुण चित्रण भी होता है। ऐसी अवस्था में कवि उनको ललकारता है या उद्बोधित करता है जिनसे वह राष्ट्र की रक्षा की अपेक्षा करता है।

अनेक राजपूतों नें अकबर का आश्रय ग्रहण कर लिया था। इस सम्बन्ध में पांडेयजी ने लिखा है –

"शक्तिसिंह पहुंचा अकबर भी धाकर मिला कलेजे से।
लगा छेदने राणा का उर कूटनीति के नेजे से।।"[3]

इतिहास-प्रसिद्ध वीर सरदार मानसिंह भी अकबर की सेवा में पहुँचा गया। कवि ने लिखा है कि–

(१) 'शिवाजी'–सर्ग १६, पृ. १६४। (२) वहो — वही, पृ० १६५।
(३) हल्दीघाटी–सर्ग १, पृ. ३६।

"मानसिंह ने कहा–"आप का हुकुम सदा सिर पर है।
बिना सफलता के न मान यह आ सकता फिरकर है॥"[1]

इसका मुख्य कारण यह है आपस की फूट, ईर्ष्या, द्वेष। यदि आपस में सबका मेल होता तो देश का इतना पतन न होता। इसलिए भारत भूमि को एकता के सूत्र में बांधने के लिए जाति का संगठन आवश्यक है। कवि के शब्दों में:–

"दलित जाति का संगठन हो न पाया
भरत भूमि को एक में बाँधना है॥"[2]

भाई शक्तिसिंह एवं मानसिंह जैसे सरदार अकबर की सेना में चले जाने पर श्री प्रताप का साहस नहीं टूटा, बल्कि अत्यन्त उत्साह के साथ उन्होंने मेंवाड़ की रक्षा के लिए युद्ध किया। कवि के शब्दों में:—

"गया बन्धु, पर गया न गौरव, अपनी कुल परिपाटी का।
o o o
स्वतन्त्रता का कवच पहन विश्वास जमाकर भालों में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस समर – वह्नि की ज्वाला में॥"[3]

मानसिंह अपने व्यवहार पर खीझ उठता है। वह कहता है कि एक प्रकार से उसने देश तथा जाति के प्रति द्रोह किया हैं। यदि वह ऐसा न करता तो देश में इतनी बड़ी आग न लगती। साथ ही वह स्वतन्त्रता के बीर पुजारी प्रताप की प्रशसा करते हुए कहता है—

"धन्य धन्य है राजपूत वह, उसका सिर न झुका है।
अब तक कोई अगर रुका, तो केवल वही रुका है॥
निज प्रताप बल से प्रताप ने अपनी ज्योति जगा दी।
हमने तो जो बुझ न सके, कुछ ऐसी आग लगा दी॥
अहो, जाति को तिलाजली दे हुए भार हम भू के।
कहते ही यह ढुलक गये दो चार बूंद आँसू के॥[4]

जब शत्रु भी प्रताप के शौर्य की प्रशंसा करता है तो उसे प्रताप के प्रताप की पराकाष्ठा माननी चाहिए।

शिवाजी की युग में विदेशी शक्तियाँ भारत में अपने पैर जमा रही थीं। मुगलों ने इन शक्तियों को प्रोत्साहित किया था और भविष्य की ओर से, एक प्रकार से आँखें मूँद लीं थीं। शिवाजी ने इन विदेशी शक्तियों के इरादों को ताड़ लिया और जब जब भी अवसर मिला उन्होंने

१– 'हल्दीघाटी' – सर्ग ५, पृ. ६४। २–'शिवाजी' – सर्ग १३, पृ. १५७।
३–'हल्दीघाटी–सर्ग ५, पृ. ७४। ४–'हल्दीघाटी'–सर्ग ५, पृ० ६५।

इन्हें या तो खदेड़ा या इन्हें अपनी अधीनता स्वीकार कराई। इतिहास साक्षी है कि ये शक्तियाँ समुद्री बेड़े में प्रबल थीं, इसलिए छत्रपति शिवाजी ने भी अपना जहाजी बेड़ा बनवाया। शिवाजी ने अपने कार्य-काल में देशी एवं विदेशी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर अपनी प्रभुता और अपने आतंक की प्रतिष्ठा बढ़ाई—

'शिवा के बल विक्रम की कीर्ति बढ़ी तो डरे विदेशी भी।
राष्ट्र की धरती हर्षित हुई प्रहर्षित भूप स्वदेशी भी।।
पुर्त्तगीजों की नानी मरी हिला अँगरेजों का आसन।
सभी कर देने लगे सभीत भेंट में जीवन के साधन।।
पूर्व से पश्चिम तक के देश हिमालय से रामेश्वर तक।
शिवा के प्रखर तेज से झुके हुए राजे महराजे फक।।'[1]

इससे स्पष्ट है कि विदेशी शक्तियाँ शिवाजी को नजराना भेजती थीं। शिवाजीने इन शक्तियों को कुचलने में अपनी ओर से कभी कोई कमी नहीं की। शिवाजी की दूरदर्शिता का परिणाम था कि भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना सबसे पहले महाराष्ट्र में नहीं हो सकी। सरदेसाई लिखते हैं कि—' भारत की विभिन्न जातियों में से अकेले मराठों ने मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति का संगठित रूप में सबसे जबरदस्त विरोध किया और अन्त में उसको कुचल डाला। इस क्रिया कि प्रगति में उन्होंने जिस योग्यता, तल्लीनता, धैर्य एवं निर्णय का परिचय दिया; उसके कारण उन्हें बिना किसी कठिनाई के भारत का हितैषी कहा जा सकता है। उन्होंने अपने ढंग से और उस समय की रीति के अनुसार देश के कल्याण के लिए एक भारतीय शक्ति जो कुछ कर सकती थी; वही सब किया। यदि उनको एक संगठित पश्चिमी शक्ति का मुकाबला न करना पड़ता तो इस बात की पूरी संभावना थी कि वे भारत में एक हिन्दू राज्य स्थापित कर लेते।'[2] आगे चलकर सरदेसाई ने यह भी लिखा है कि—'मराठों को कम से कम इस बात का श्रेय देना ही पड़ेगा कि पश्चिम भारत पर अंग्रेजों का आक्रमण लगभग ५० वर्षों के लिए टाल दिया।'[3] इससे मराठों की दूरदर्शिता का ज्ञान होता है। शिवाजी के युग और उनके कार्यों के आधार पर उन्हें आज एक आदर्श राष्ट्रनायक घोषित किया जा सकता है। इस तरह से हम देखते हैं कि पांडेय जी के काव्य में शिवकालीन युग की जो व्यापार चेतना अभिव्यक्त हुई है, उसमें इस देश के पुनर्जागरण का भाव है।

१–शिवाजी-सर्ग १०, पृ० १२६। २–गो०स० सरदेसाई- मराठों का इतिहास, पृ० ३०। ३–गो०स० सरदेसाई- मराठों का इतिहास, पृ० ३०।

काव्य और राष्ट्रीय इतिहास का सम्बन्ध अपने युग की ज्वलन्त समस्याओं से होता है, अतः उसमें युग-जोवन का इतिहास चित्रित होना स्वाभाविक है, किन्तु इस इतिहास की व्याख्या करते समय कवि अपने दृष्टिकोण से काव्य लिखता, जिससे उसमें कवि के व्यक्तित्व और उसकी निजी प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त मिलतो है। पांडेयजो के काव्य में अतीत का जो इतिहास मुखरित हुआ है, उसमें पात्रों और परिस्थितियों की व्याख्या कवि ने अपने ढंग से राष्ट्रीय हितों को दृष्टि में रखते हुए की है।

कवि जब इतिहास को अपने काव्य का विषय बनाता है तो सामान्यतः इतिहास के दो रूप उसके सामने होते हैं। एक अतीत का इतिहास और दूसरा कवि के अपने युग के वर्तमान का इतिहास। इनमें से कवि अतीत के इतिहास का उपयोग अपने युग-जीवन के संदर्भ में करता है। अतोत के गौरव-गान द्वारा कवि उन्हीं आदर्शों की स्थापना वर्तमान में करना चाहता है। एक प्रकार'से इसमें जागरण का भाव होता है। किन्तु जब कवि अपने युग के इतिहास का चित्रण करता है तो इसमें वह युग की यथार्थ पृष्ठिभूमि को अपनाता है। वह घटने वाली घटनाओं का सम्बन्ध जन-जीवन से जोड़ता है और राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए उनकी व्याख्या करता है। साथ ही वह अतीत के इतिहास को वर्त–मान के (कवि के अपने युग के इतिहास से जोड़ने का प्रयत्न भी करता है। वह उनकी तुलना करता है। इस तुलना में वह समता और विषमता दोनों पर प्रकाश डालता है। समता में राष्ट्रीय गौरव को अभिव्यक्ति मिलती है और विषमता में युग-जोवन को समस्याओं की अभिव्यक्ति होती है। एक में आदर्श का भाव है और दूसरे में यथार्थ का। पांडेयजी के काव्य में इतिहास चित्रित हुआ है। पांडेयजी ने इतिहास के नाम पर प्राचीन भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। इन्हीं विशेष–ताओं के संदर्भ में उन्होंने छत्रपति शिवाजी के कर्मों की व्याख्या की है। अतीत की तुलना में कवि की दृष्टि वर्तमान पर भी रही है। इतिहास में भी पांडेयजी ने प्रायः उन्हीं प्रसंगों का बार-बार उल्लेख किया है, जिनसे राष्ट्र-नायकों के कर्म-सौंदर्य पर प्रकाश पड़ता है। चाहे छत्रपति शिवाजी हों या महाराणा प्रताप सिंह या कोई अन्य आदर्श पात्र, उनके काव्य में ऐसे सभी श्रेष्ठ पात्रों का उल्लेख उन्हीं प्रसंगों को लेकर हुआ है, जहाँ वे राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा में कर्म-रत हैं। 'अफजलखान-वध' 'शाइस्ताखाँ की पराजय', 'शिवाजी की औरंगजेब से भेंट' आदि जितने भी ऐतिहा–सिक या पौराणिक प्रसंग आये हैं, उन प्रसंगों में पांडेयजी ने जन-भाव–नाओं को अभिव्यक्ति दी है। 'अफजलखान-वध' पर मराठी में कई गीतों

एवं पोवाड़ों (वीर गीतों) की सृष्टि हुई है। शिवाजी की वह प्रथम विजय थी और मराठों की राज्य स्थापना में उसका बड़ा महत्व था। इस प्रसग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

'घर घर ग्राम ग्राम नगर नगर में।
शिवाजी की जीत लहराई गोत स्वर में।
खाँ के बने कब्र पर बुर्ज मशहूर है।
उसकी दमक जाती बड़ी दूर दूर है॥
शिवा ने दिखा दिया अनीति सदा रोती है।
बल से सहस्त्र गुनी बुद्धि बड़ी होतो है।
सत्य धर्म की अवज्ञा प्राण हर लेती है।
कोरी बकवास कभी काम नहीं देती है॥'[1]

आगे चलकर शाइस्ताखाँ की दुर्गति करने से शिवाजी का आतंक इतना फैला कि दिल्ली का सिंहासन भी भय से थर थराने लगा। सारे देश में शिवाजी की वीरता और उनके साहस की कहानी शत्रु-पक्ष में बड़े भय के साथ कही जाने लगी। यथा—

'शिवा की विजय से हिली देहली है।
बड़ा शोर था, साहसी शिवबली है।
शिवा पर शिवा की बड़ी ही कृपा है।
नराकार में देवता ही छिपा है॥
अरे बाप; खाँ की कहाँ फौज भारी।
कहाँ कुछ मराठे शिवा के पुजारो।
मगर आफ़िरीं गुप्त उनके सरिश्ते।
नहीं आदमी वे खुदा के फरिश्ते॥'[2]

शिवाजी की औरंगजेब से जो भेंट हुई- इस प्रसंग पर कवि ने एक सर्ग लिखा है। इतिहास साक्षी है कि शत्रु के दरबार में रहते हुए शिवाजी ने उसका विरोध किया, जो एक प्रकार से शत्रु को ललकारना ही है। मुगल काल में दिल्ली के सम्राट को ललकारना साधारण नहीं, असाधारण साहस का काम था। इसलिए इस प्रसंग वर्णन में कवि ने बड़ी रुचि दिखाई है और बड़ी सजीवता के साथ आगरा दरबार का वर्णन किया है। कवि कहता है कि आगरा दरबार में राष्ट्र-नायक के आत्म-सम्मान के रूप में मानों देश का आत्म–सन्मान जाग उठा है। शत्रु को

१–शिवाजी– सर्ग १०, पृ० १२९। २–शिवाजी-सर्ग १२, पृ० १५३।

ललकारने में कितना आनन्द और उत्साह है। सिंह को मानो सिंह की माँद में डरा दिया गया है। पांडेयजी लिखते हैं कि—

'क्रुद्ध शिवराज ने कड़कते हुए कहा।
सारे दरबार को झिड़कते हुए कहा॥
× × ×
यही इंसाफ यही शाही तहज़ीब है।
मेहमानदारी का तरीका भी अजीब है॥
जानता हूँ पंजे में फँसा हूँ आ के गिद्ध के।
डर है न वर लिये फिरता हूँ सिद्ध के॥
आये कोई सामने जगह से हटाये तो।
खून चूस लूँगा तिलभर उझकाये तो।
इसीलिये मुझको बुलाया गया पूने से।
मौत घोंट जायेगो अहि के फन छूने से॥'[1]

उपरोक्त पंक्तियों में राष्ट्र-नायक का तेजस्वी वीर रूप झलकता है।

राष्ट्रीय भावनाओं के पोषक साहित्य में परम्परा के प्रति मोह होता है। वह वर्तमान को अपेक्षा भूत की अधिक चिन्ता करता है। केवल चिंता ही नहीं करता बल्कि उसकी सुरक्षा का आग्रह भी करता है, किन्तु यह राष्ट्रीय साहित्य एक प्रकार से पुर्नजागरण का साहित्य होता है। जब भी कोई देश या जाति अपने गौरव को भूलने लगती है या उसका पतन होने लगता है या उसकी आत्मा को जबरजस्त धक्का लगता है तो राष्ट्रीय साहित्यकी सृष्टि युग जीवनकी सबसे बड़ी माँग होती है, क्योंकि यह राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्र में सामूहिक उत्थान का भाव पैदा करता है। उसमें अंकित अतीत की गौरव– गाथाएँ देश और जाति मे फिर आत्माभिमान का भाव जाग्रत करती हैं, जिससे खोया बल और खोया हुआ स्वाभि–मान जीवन में पुनः प्राप्त होता है।

पांडेयजी ने शिवाजी के माध्यम से भारत के प्राचीन गौरव की प्रेरणा हमें दी है। शिवाजी के प्रारम्भिक शिक्षक दादाजी कोंडदेव ने शिवा जी को अतीतकालीन या पौराणिक महापुरुषों की प्रेरणा से उन्हें राष्ट्रो-द्धार के लिए सन्देश दिये हैं—

"तुम रघुकुल गौरव राम बनो खल रावण का संहार करो।
दुर्द्धर्ष अनार्यों से पीड़ित धरती धन का उद्धार करो॥
× × ...
धर्म कर्म होंगे निश्चिन्त साधु सन्त सब होंगे सुखी।
शिव का इसीलिए अवतार मनुज-विरोधी होंगे दुखी॥[2]

१–शिवाज,ी सर्ग १६, पृ० १९७। २–'शिवाजी'–सर्ग २, पृ० २५ और सर्ग ४, पृ० ५४।

पांडेयजी के मतानुसार शिवाजी का अवतरण भी अवतार सदृश कार्य करने के लिए था। पांडेयजी का शिवाजी को अवतारी पुरुषों की कोटि में रखना जनता को यह विश्वास दिलाना है कि धर्म रक्षा का काम शिवाजी उसी शक्ति से प्रेरित होकर कर रहे हैं, जिससे प्रेरित हो भगवान राम या शिव ने दुष्टों का नाश किया था। पांडेयजी ने इसी दृष्टि से शिवाजी को अवतारी पुरुष घोषित करते हुए लिखा है—

"शिवा, मैं तुम्हें देवता जानता हूँ।
धराधार साकार शिव मानता हूँ॥
० ० ०
सुजन सराहते कि शिवा भगवान है॥
० ० ०
शिव हैं शिवा के वेश में।
यह मान्यता थी देश में॥[1]

गीता के निम्नलिखित श्लोक भी यही बतलाते हैं —

"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्याहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥"[2]
० ० ०
यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्च त्वं मम तेजांश संम्भवम्॥"[3]

उपरोक्त श्लोक के अनुसार शिवाजी में ईश्वरीय अवतार के सम्पूर्ण गुण दिखाई देने के कारण लोगों ने उन्हें भगवान का अंशावतार मान अपने हृदय-सिंहासन पर जगह दी।

पांडेयजी के राष्ट्रीय काव्य में परम्परा के प्रति पूर्ण आस्था प्रतिबिम्बत है। शिवाजी के सम्बन्ध में कवि की यही धारणा है कि म्लेच्छों का संहार कर धर्मस्थापनार्थ ही शिवाजी का अवतार हुआ था। देवी, देवताओं के उल्लेख, पौराणिक उपमानों के प्रयोग, ब्राह्मण और गौ की रक्षा के उल्लेख, जनेऊ को महत्ता आदि के वर्णन उनकी परम्परा-प्रीति के प्रबल साक्ष्य हैं। राष्ट्रीय भावना का कवि प्रायः परम्परा में श्रद्धा तो रखता है

२–वही-सर्ग १४, पृ० १६५। सर्ग ६, पृ० ११५। सर्ग २५, पृ० ३०५।
२– 'श्रीमद्भगवद्गीता' – अध्याय ४, श्लोक संख्या ७ और ८।
३– 'शिवाजी'–'शिबाजी एक प्रकाश'–भूमिका, पृ० ११।

किन्तु वह अपती श्रद्धा पर कुठाराघात नही सह सकता। परम्परा के अनादर से वह बड़ा कट्टर हो जाता है। आलोंच कवि में भी यह कट्टरता मुखरित हुई है। पांडेयजीकृत 'शिवाजी' के शिवाजी की व्यक्तिगत रूप से की गई साधारण प्रशंसा मात्र नहीं है और न वह किसी आश्रयदाता की आश्रित कवि द्वारा की गई प्रशंसा के समान ही है। यह प्रशंसा उस व्यक्ति की है जिसने अपने अतुलित साहस से जन-जीवन को नैराश्य के गहन अन्धकार से –उबारकर स्वातन्त्र सूर्य के दर्शन कराये थे और निष्प्राण जाति में नव-जीवन का शंखनाद फूँककर उनके अवरुद्ध पौरुष प्रवाह को गति प्रदान की थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पांडेयजी की कविता प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं धर्म से प्रेरणा ग्रहण कर राष्ट्र को सचेत करना चाहती है।

राष्ट्रीय साहित्य में चेतना का भाव अन्तर्निहित रहता है और चेतना का प्रतिफलन कर्म में होता है। 'अकर्मण्यता' से चेतना का कोई संबन्ध नहीं होता। कर्म की तत्परता के लिए उत्साह चाहिए। इसीलिए राष्ट्रीय साहित्य प्रायः पौरुष प्रधान, कर्म प्रधान, संघर्ष प्रधान तथा वीर रस प्रधान होता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। इस दृष्टि से पाण्डेयज़ी के काव्य पर विचार किया जाय तो उनके काव्य में उत्साह की व्यजना सर्वत्र दिखाई देती है। पाँडेयजी के काव्य में कामुकता, विलास या निर्जीवता नहीं है। उसमें सजीवता, स्फूर्ति, चेतना और उमंग का भाव प्रबल है।

उदयपुर में महाराणा प्रताप के द्वारा मानसिंह के प्रति कहे गये बचन उसकी प्रबल देश निष्ठा के प्रतीक हैं। राणाप्रताप के एक-एक शव्द में देश-प्रेम, स्वतंत्रता, जाति, धर्म की रक्षा के भाव झलकते हैं। इसीलिए उसमें अपूर्व उत्साह झलकता है, उसमें एक विशिष्ट प्रज्वलित चेतना जाग्रत होती है, एक नई उमंग एवं नयी स्फूर्ति की भावना उभरती हुई दिखाई देती है। यथा—

"कहाँ रहे जब स्वतन्त्रता का मेरा विगुल बजा था।
जाति-धर्म के मुझ रक्षक को तुमने क्या समझा था॥
अभी कहूँ क्या, प्रश्नों का रण में उत्तर दूँगा।
महामृत्यु के साथ साथ जब इधर उधर लहरूँगा॥
भभक उठेगी जब प्रताप के प्रखर तेज की आगी।
तब क्या कहूँ बतला दूंगा हे अम्बर कुल के त्यागी॥"[1]

इस वीर नायक में कितना स्वाभिमान एवं आत्म विश्वास है।

१– हल्दीघाटी–सर्ग ५, पृ० ७२।

'रामायण' में राम और रावण का संघर्ष है तो यहां पांडेयजी के काव्य में प्रतापसिंह-अकबर, रतनसिंह, अलाउद्दीन, शिवाजी और औरंगजेब का संघर्ष है। राम के साथ सहृदयों का मन जैसे रहता है उसी प्रकार इस संघर्ष में पाठकों का मन रतनसिंह, प्रतापसिंह एवं शिवा जी के साथ रहता है। सतीत्व के आदर्श की दृष्टि से भारत के राष्ट्रीय इतिहास में पद्मिनी का नाम चिरस्मरणीय है। जब शिवाजी ने स्वदेश, स्वधर्म और स्वजातिकी रक्षाके लिए रौद्र रूप धारण किया, तब पांडेयजी कहते हैं:—

"शिवा स्वधर्म के लिए असह्य वर्ण हो उठे।
शिवा स्वदेश के लिये ज्वलित सुवर्ण हो उठे॥
स्वजाति के लिए शिवा अपार बाहुवीर्य से
गुरु-प्रसाद शक्ति से रथी सुपर्ण हो उठे॥
अमन्द उष्ण श्वास से अनल भभक भभक उठा।
प्रभात भासमान के समान मुख दमक उठा।
प्रदीप्त नेत्र में पवित्र रक्त तैरने लगा।
प्रचण्ड रुद्र की तरह तमाम तन तमक उठा॥[1]

स्पष्ट है कि देश; धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए शिवाजी में कितनी चेतना, कितनी उमंग और कितना उत्साह था? इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी तलवार के बल पर शत्रुओं को पराजित कर मठों-मन्दिरों तथा देवताओं की रक्षा की तथा अपने क्षात्र तेज से उन्होंने स्वदेश, स्वधर्म और स्वजाति को बचा लिया। यथाः—

तुम्हींने अभय धर्म का शंख फूँका,
अनायास हल्का किया भार भू का।
महाराष्ट्र में जिन्दगी आ गयी है,
भरत-भूमि पर ज्योति सी छा गयी है॥[2]

शिवाजी का रुद्र की तरह प्रचण्ड रूप धारण करना, स्वदेश, स्वधर्म और स्वजाति की रक्षा करना—ये सारी बातें कवि ऐसे कह देता है जैसे शिवाजी के लिए शत्रुओं को हरा देना बाएँ हाथ का खेल था। इसीलिए तो अल्पावधि में ही वे जनता के आदर के भाजन बन गये। कवि के शब्दों में:--

"अब तो शिवाजी छत्रपति घनपति हुए
आप्त जनपति हुए
चारों ओर सुकीर्ति की सुगन्ध उड़ी

१-'शिवाजी'-सर्ग ४, पृ० ५६। २-वही-सर्ग १४, पृ० १६५। वही,

गौरव की गन्ध उड़ी
शिव सा न अन्य था
महाराष्ट्र धन्य था।"[1]

पाण्डेयजी की राष्ट्रीय कविता वीर रस से ओतप्रोत है। वे अपने काव्य के रचित नायकों की वीरता पर मुग्ध है; अतएव उनके अपूर्व बल पौरुष का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन कर उन्होंने भारतीय पूर्व पुरुषों की वीरता का एक अनुपन आदर्श देश के सपक्ष प्रस्तुत करना चाहा है। एक स्थान पर महाराणा प्रतापसिंह की प्रचण्ड वीरता का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा हैं।–

,'चढ़ चेतक पर तलवार उठा रखता था भूतल पानी को।
राणा प्रताप सिर काट काट कर करता था सफल जवानी को॥
कल- कल बहती थी रण-गंगा अरि-दल को डूब नहाने को।
तलवार वीर की नाव बनी चटपट उस पार लगाने को॥
क्षण मार दिया कर कोड़े से रग किया उतर कर घोड़े से।
राणा रण-कौशल दिखा दिखा चढ़ गया उतर कर घोड़े से॥
क्षण भीषण हलचल मचा-मचा राणा कर की तलवार बढ़ी।
था शोर रक्त पीने को यह रण-चण्डी जीभ पसार बढ़ी॥
वह हाथी-दल पर टूट पड़ा, मानो उस पर पवि छूट पड़ा।
कट गई वेग से भू, ऐसा शोणित का नाला फूट पड़ा॥

o o o

क्षणभर में गिरते रुण्डों से मदमस्त गजों के झुण्डों से,
घोड़ों से विकल वितुण्डों से, पट गई भूमि नर–मुण्डों से॥
ऐसा रण राणा करता था पर उसको था संतोष नहीं।
क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह पर कम होता था रोष नहीं॥"[2]

कवि की इस वाणी में उग्रता एवं भावावेग दृष्टव्य हैं। इसी तरह से कवि ने गोरा की प्रचण्ड वीरता का वर्ण किया है---

"भौंहें कुटिल कमान हो गयीं, पलकें उठीं उतान हो गयीं।
गोरा की असि दीप्त भुजाएँ, फड़की काल समान हो गयीं॥
साथ-साथ हुंकृति के उसने गोहुवन-सी फुफकार निकाली।
और दूसरे ही क्षण अरि के हय पर कूद सवार हो गया।
अश्वारोही गिरा धरा पर, जीवन के उस पार हो गया॥

o o o

वाजि–गर्दनों से मिल–मिलकर छप-छप करने लगी दुधारी।
गिरी सवारों पर बिजली-सी गोरा की करवाल कुमारी॥

१-शिवाजी, सर्ग ५, पृ०८४। २-'हल्दीघाटी'–सर्ग १२,पृ०१३६,१३७,१३८।

गरम-गरम शोणित पी-पीकर, वमन सवारों पर करती थी।
तो भी नहीं सवार-रक्त से, उदर दरी उसकी भरतो थी।।[1]

गोरा की भौहों का कुटिल कमान हो जाना, उसकी असि-दोप्त भुजाएँ फड़क उठना, प्रलय मेघ की तरह गरजना, साँप की तरह फुफकार निकालना और क्षण भर में शत्रु पर टूट पड़ना-कवि ये सारो बातें ऐसे कह देता है है जैसे गोरा के लिए शत्रु को हरा देना नितान्त आसान काम है।

इससे स्पष्ट है कि पांडेयजी का काव्य वीर रस से ओत-प्रोत है। एक ओंर जहाँ कवि नायक में उत्साह का ज्वार दिखाता है, वहाँ दूसरी ओर प्रतिनायक में या प्रतिपक्ष में शौर्य के साथ-साथ भय का दिग्दर्शन भी कराता है। प्रतिनायक या प्रतिपक्ष की इस स्थिति का वर्णन नायक या उसके पक्ष की गरिमा को बढ़ाने वाला होता है। उदाहरणार्थ-रण-भूमि में गोरा का अतुलनीय शौर्य देख सैनिक भयभीत हो गये और जान बचाकर भाग निकले। इतना ही नहीं, गोरा के डर से शत्रु-सेना के घोड़ों ने अपने ही घोड़ों को घेर डाला। गोरा की वीरता का वर्णन देखिए--

गोरा के डर से घोड़े ने अपने ही घोड़ों को घेरा।
लूट लिया उनका साहस सब, बना प्रखर उद्दण्ड लुटेरा।।
जान उसी की बची युद्ध से, जिसने भगकर जान बचायी।

° ° °

औरों ने तो रण करने से अपनी मरकर जान बचायी।
गिरे शत्रुओं के शत कोड़े, अंगुल भर बढ़ सके न घोड़े।
गोरा की तलवार चोट-से साथ सवारों के तन छोड़े।।[2]

महाराणा प्रताप सिंह के वीरों का शौर्य देखकर मुगल सेना भयभीत होकर भागने लगी। भागने वाली मुगल-सेना के भय का मनोवैज्ञानिक चित्र देखिए:—

"राणा प्रताप का ताप तचा, अरि-दल में हाहाकार मचा।
भेड़ों की तरह भगे कहते अल्लाह हमारी जान बचा।।
अपनी नंगी तलवारों से वे आग रहे हैं उगल कहाँ।
वे कहाँ शेर की तरह लड़े हम दीन सिपाही मुगल कहाँ।।
भयभीत परस्पर कहते थे साहस के साथ भगो वीरो!
पीछे न फिरो, न मुड़ो, न कभी अकबर के हाथ लगो वीरो!
यह कहते मुगल भगे जाते, भीलों के तीर लगे जाते।
उठते जाते, गिरते जाते, बल खाते, रक्त पगे जाते।।"[3]

१—'गोरा-बध,-सर्ग ६, पृ० ६३-६४। १---वहो वही, वही।
३--'हल्दीघाटी'-सर्ग ११, पृ० १२५।

जावली-विजयके बाद महाराष्ट्र के विरोधी शिवाजी के भय से थर-थर काँपने लगे। बीजापुर के शाह की अधम कूटनोति चूर-चूर हो गयी और उसका मन एकदम खिन्न हो गया। उसकी मौन और उदास दशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है---

"जावली-पतन से
मोरे निधन से
देभ-धर्म जाति के
विरोधी महाराष्ट्र के
भय से शिवा के, थर थर काँपने लगे
बीजापुर शाह की व्यथा तो बड़ी क्रूर थी
उसकी अधम कूटिनीति चूर-चूर थी,
एक दम खिन्न-मन मौन था, उदास था
आँखें झरती थीं भीगा राजसी लिबास था"[1]

आगरा की चहारदीवारी में बन्द नरकेसरी शिवाजी न मालूम कैसे और कब अनेकानेक पहरेदारों की आँखों में धूल झोंककर निकल भागे और सकुशल राजगढ़ पहुँच गये। सारे देश में तहलका मचा दिया। शिवाजी के पलायन के समाचार से दिल्ली का सिंहासन भय से काँपने लगा दगाबाज औरंगजेब के शरीर से पसीना छूट पड़ा जैसे उसे साँप छू लिया हो। वह विषण्ण मनः स्थिति में लड़खड़ाकर बोला कि अरे यह क्या हुआ ? शिवा में अकल तो जरूर थी, पर उसमें पाँखें नहीं थीं। वह उड़ा तो उड़ा कैसे ? औरंगजेब की बेचैनी और भय की मनोवैज्ञानिक दशा का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है--

यह खबर पाते ही जला अवरंग काला हो चला
ज्यों साँप ने उसको छुआ बोला अरे, यह क्या हुआ ?
रे कौन सी खामी हुई बेकार बदनामी हुई
बिलकुल मुछन्दर मर्द है ता जिन्दगी का दर्द है
देखा उसे था, अक्ल थी बद आदमी की शक्ल थी
था पंख से न कहीं जुड़ा"[2]

नायक का यही भय जब शत्रु के मन में स्थान ग्रहण कर लेता है तो इसे आतंक कहा जाता है। देशी और विदेशी दोनों शक्तियाँ शिवाजी से आतंकित थीं। शिवाजी का सारा उत्साह जिन कर्मों के लिए था, वे राष्ट्र-सेवा के कर्म थे, इसलिए इन कर्मों की अभिव्यक्ति में नायक के

१-'शिवाजी'-सर्ग ८, पृ० १०७। २-'शिवाजी'-सर्ग १७ पृ० २१०।

के उत्साह की अभिव्यक्ति हुई है। इस उत्साह में जन-भावना का सहयोग था अतः ऐसे नायकों के चरित्र के माध्यम से पांडेयजी के काव्य में जनता के उत्साह की भी प्रबल अभिव्यक्ति हुई है।

छ समसामयिक दृष्टि से पांडेयजी के काव्य की राष्ट्रीय भावना—

पं० श्यामनारायण पांडेय का काव्य अपने समय की आवश्यकता की उपज है, अतः कवि और उसके युग की दृष्टि से इसे सामयिक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। पर, सामयिक साहित्य का मूल्य अपने समय में जितना होता है, उतना युगान्तर में नहीं। अतः सामयिक साहित्य का मूल्य युग-सापेक्ष, अतः ऐतिहासिक होता है। किन्तु इस प्रकार के साहित्य के सम्बन्ध में डा० देवराज का कथन है-'वह साहित्य जो ऐतिहासिक महत्वको प्राप्त करता है, स्वभावतः युग-जीवन के तत्वों से ग्रसित होता है। वह अपने समय के सामाजिक यथार्थ को प्रकट या प्रतिफलित करता है। साथ ही वह युग-जीवन का निर्देश भी करता है। वह युग-जीवन को बदल देने का अस्त्र भी बन जाता है।"[1] डॉ० देवराज ने इस बदलने की प्रेरणा का सम्बन्ध कलाकर और जनता के बदले हुए यथार्थ से जोड़ा। पांडेयजी के काव्य में भी यही बात पायी जाती है। पांडेयजी का काव्य युग–जीवन के तत्वों से ग्रथित है। अतः युग के संदर्भ को समझे बिना उनके काव्य की महत्ता मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

काव्य युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। युग का प्रभाव दो रूपों में होता है–प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। काव्य में जहाँ व्यक्ति की भावात्मक समस्याओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है, वहां सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति भी होती है। इसमें से यदि प्रथम मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषगात्मक काव्य है तो द्वितीय सामाजिक काव्य है। राष्ट्रीय काव्य सामाजिक काव्यका एक अंग है। वैयक्तिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने वाले काव्य पर युग की छाप प्रत्यक्ष रूप में इतनी अधिक नहीं पड़ती; जितनी सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने वाले काव्य पर। राष्ट्रीय काव्य में इस दृष्टि से युग का यथार्थ होता है। पांडेय जी के काव्य में अतीत के माध्यम से आधुनिक युग की चेतना का चित्रण हुआ है। वह मनोविश्लेषणात्मक या मनोवैज्ञानिक काव्य नहीं है—वह सामाजिक काव्य है। भारत के राष्ट्रीय जन जीवन को दृष्टि से उनके काव्य में समाज की बाह्य परिस्थितियों का चित्रण अधिक हुआ है।

१- डा० देवराज: 'आधुनिक समीक्षा-पृ० १८।

सामयिक होने पर भी पांडेयजी के काव्य का मूल्य केवल क्षणिक युगीन या तात्कालिक मूल्य मात्र नहीं है,उसका मूल्य चिरंतन और शाश्वत भी है। वैसे तो प्रत्येक युग में जो साहित्य लिखा जाता है वह सामयिक होता है। युग की समस्याओं को लेकर प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित काव्य को हम साधारणत. सामयिक काव्य कहते हैं, किन्तु सार्वजनीन भावनाओं को व्यक्त करने वाला काव्य—चाहे वह किसी भी रूप में हो—युग धर्म से भिन्न नहीं होता। इतना ही होता है कि ऐसे काव्य पर युगधर्म की छाप अप्रत्यक्ष रूप से पड़ती है। राष्ट्रीय साहित्य के सम्बन्ध में एक भ्रामक धारणा है कि यह साहित्य धटनापरक, सामयिक अथवा क्षणिक होता है। वर्ण्य-विषय की सामयिकता अथवा असामयिकता साहित्य की स्थिरता के निर्णय का आधार नहीं मानी जा सकती। इस सम्बन्धमें रामेश्वर शर्मा का मत संगत है—'साहित्य के क्षणजीवी अथवा स्थायी होने का आधार उसकी कथावस्तु का सामयिक अथवा असामयिक होना नहीं है, वरन उसमें पायी जाने वाली संवेदनाका स्वर, उसके कलात्मक गुण तथा उसकी सामाजिक चेतना ही उसका नियोजन करती है।'[1] पं० श्यामनारायण पांडेय के काव्य की सामाजिक चेतना इतनी प्रबुद्ध है कि राष्ट्रीयता ही उसकी प्रेरक संवेदना बन गयी है। उन्होंने अपने साहित्य में कुछ इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यक्तित्वों की योजना की है कि उनका समस्त राष्ट्रीय काव्य देश और काल के बंधन से मुक्त होकर युग-युग के लिए प्रेरणाप्रद बन गया है।

पाण्डेय जी के काव्य में मानव-जीवन के एक ऐसे पक्ष का चित्रण हुआ है, जिसका मुल्य युगान्तर में भी हो सकता है। वह पक्ष है युग की आवश्यकता और तदनुकूल कर्म में रत नायकों के गौरव का गान पांडेय जी के काव्य के चरितनायकों का नाम जब तक इतिहास में अमर रहेगा, तब तक वे अपने चारित्रिक गुणों से जन-मन को आन्दोलित करते रहेंगे। इस तरह से युग-युग को प्रेरणा देने वाली पांडेय जी की काव्य कृतियोंका प्रभाव भी जन मानस पर सतत बना रहेगा और उनके रचयिता का कृतित्व भी निरन्तर गौरवास्पद रहेगा। पांडेय के काव्य में शुष्क इतिहास या प्रशस्ति मात्र नहीं है, उसमें इतिहास की स्थूल रेखाओं को मानव जीवन के हितों को लक्ष्य में रखकर जन भावनाओं की अभिव्यक्ति की गयी है। यही उसके राष्ट्रीय काव्य होने का एक सबल प्रमाण है।

तुलनात्मक दृष्टि में 'सामयिक' अथवा 'शाश्वत' शब्द सापेक्ष है। सामयिक साहित्य का मूल्य क्षणिक ही होगा, ऐसी बात नहीं। सामयिक

१- रामेश्वर शर्मा—'राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, पृ०४६।

समस्या को लेकर लिखी गयी रचना मनुष्य के हृदयको छू सकती है। यदि वह सहृदय रसिकों की अन्तर्भावनाओं को उद्बोधित करने में समर्थ है तो उसका मूल्य युगान्तर में भी होता रहेगा। पं० श्यामनारायण पांडेय का इतिहाश्रित वीर काव्य यदि आज भी पढ़ा जाय तो उसमें हमें उद्वोधन मिलेगा। उसमें प्राप्त ओजस्विता और ललकार का मूल्य मात्र सामयिक नहीं है।

पांडेयजी के काव्य से तादात्म्य स्थापित करने के लिए युग सन्दर्भ की जानकारी आवश्यक है। प्रसन्नता की बात है कि भारतभूमि का एक अदना पढ़ा लिखा या सुशिक्षित व्यक्ति रानी पदमिनो, वीरवर गोरा; महाराणा प्रतापसिंह एवं शिवाजी के गौरवपूर्ण इतिहाससे सुपरिचित है। अतः पांडेय जी के काव्य का युग सन्दर्भ साधारणतः लोकविख्यात है और इसीलिए उनके काव्य में विद्यमान राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र-प्रेम का रसास्वादन कल की तरह आज और आज़ की तरह कल निरन्तर होता रहेगा।

रानी पद्मिनी, वीरवर गोरा; महाराणा प्रतापसिंह एवं शिवाजो आदि जिन पात्रों को कवि ने अपने काव्योंका विषय बनाया है, वे अन्याय और अत्याचार दमन में तत्पर देश, धर्म, जाति, संस्कृति, मान-मर्यादा के संरक्षक; इतिहास प्रसिद्ध वीर हैं। उनके प्रति सम्मान एवं भक्ति की प्रतिष्ठा हिन्दू जाति के हृदय में अतीत से आज तक बराबर बनी हुई है। इसी से पांडेय जी के वीर रसके उद्‌गार हिन्दू जनता के हृदय की धरोहर बन गये। उनके वीर दर्प, ओज तथा स्फूर्ति से ओत-प्रोत काव्य उनकी कीर्तिके अचल स्तम्भ हैं। उनके काव्यके अनेक संस्करणोंका प्रकाशित होना जनता की स्वीकृति का उनके काव्य की लोकप्रियता का प्रमाण है।

राष्ट्रीय भावना के कवि के रूप में जनता के हृदय को पहचानना, सामयिक समस्याओं को चित्रित करना, और इन समस्याओ को हल करने के लिए कृतसंकल्प वीरों को प्रोत्साहन दे उनका कीर्ति-गान करना, अतीत का गुणगान करना वर्तमान को प्रेरणा देना और भविष्य को मार्ग दिखलाना तथा राष्ट्रीय वैभव और स्वत्व की रक्षा के लिए जन-भावना को अभिव्यक्ति देना आवश्यक है। ये सारी विशेषताएँ पाण्डेयजीके काव्य में विद्यमान हैं।अतः उनका काव्य राष्ट्रीयभावनाका पोषक, संरक्षक और प्रचारक काव्य तो है हीं,किन्तु वह सांमयिक काव्य मात्र नहीं है, उसका मूल्य आज भी पूर्ववत् है, भविष्य में जब भी वह मूल्य तब तक बना रहेगा, जब तक उनके काव्य के चरितनायकों की स्वीकृति, लोकजीवन में,

भारत के राष्ट्रीय मानस में बनी रहेगी ।

हिन्दी में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का अधिकांश साहित्य शुद्ध साहित्य है। पांडेय के काव्य के सम्बन्ध में डा० सुषमा नारायण लिखती है। '...........श्यामनारायण पांडेय का द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा हुआ काव्य जिसमें स्वतंत्रता आदि का वर्णन मिलता है, प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जायेगा, क्योंकि आज की परिवर्तित परिस्थितियों में उसका विशेष मूल्य नही रह गया है।'[1] आज की बदली हुई स्थिति में भी जिस राष्ट्रीय साहित्य को पढ़कर हृदय ओज उत्साह, करुणा, देश-प्रेम से भर जाये, वह कभी भी, किसी भी परिस्थिति में निरर्थक अथवा मूल्यहीन नहीं माना जा सकता। अपनी भावोत्कटता और राष्ट्रीय त्याग, बलिदान के भावों को जगानेवाला राष्ट्र-प्रेम का काव्य तो शुद्ध राष्ट्रीय साहित्य है। अतः हमारे विनम्र मत से देश-भक्ति का संदेश देनेवाला, राष्ट्रीय जीवन को संस्कारशील बनानेवाला एवं राष्ट्रीय हृदय को उद्बोधित करनेवाला पांडेयजी का राष्ट्रीय साहित्य शुद्ध एवं शाश्वत साहित्य है। जैनेन्द्रकुमार के मतानुसार शुद्ध साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है—'इसीलिए साहित्य की कसौटी वह संस्कारशीलता है, जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है और एकता में निष्ठा रखती है। जो सहृदय का चित्र मुदीत करता है वह साहित्य खरा है, जो संकुचित करता है वह खोटा है।'[2] इस परिभाषा के निकर्ष पर पांडयजी का काव्य खरा उतरता है और उसे शुद्ध साहित्य कहा जा सकता है। आज स्वतंत्रता के पश्चात् भी पांडेयजी का अधिकांश काव्य राष्ट्रीयता के भाव को अक्षुण्ण एवं प्रबुद्ध रखने में समर्थ है क्योंकि उसमें मानव हृदय को उद्वेलित करने की असीम शक्ति है, साथ ही उनमें राष्ट्रीय जीवन के लिए सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक बलिदान का महत्व प्रतिपादित है। अतः पांडेयजी का काव्य 'प्रचारात्मक साहित्य' नहीं, शुद्ध, सात्विक तथा स्थायी साहित्य है।

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा और पांडेयजी के काव्य की राष्ट्रीय चेतना

हिन्दू संस्कृति के अनुसार राष्ट्रीयता का जो स्वरूप हो सकता है उसी की अभिव्यक्ति पांडेयजी के काव्य में हुई है। अतः उसे आज का व्यक्ति सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय काव्य कहने में हिचकिचाएगा। आज की दृष्टि से आज का पाठक पांडेयजी के काव्य को जातीय काव्य कहना

१–डा० सुषमा नारायणः भारतीय राष्ट्रवाद का विकास, हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति, पृ० ३६४। २–जैनेन्द्रकुमारः साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० १३२।

अधिक उचित समझेगा। किन्तु वास्तविक बात यह है कि राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश की स्वतंत्रता, उसकी सांस्कृतिक परंपरा एवं धार्मिक विश्वासों से भी होता है। प्राचीन काल में राष्ट्रीयता का आधार धर्म था। 'साहित्यकोश' के अनुसार राष्ट्रीय साहित्य के अन्तर्गत 'वह समस्त साहित्य लिया जा सकता है जो किसी देश की जातिय विशेषताओं का परिचायक हो। इस प्रकार के साहित्य में जाति का समस्त रागात्मक स्वरूप उसके उत्थान-पतन आदि का विवरण आ सकता है। इसका होना एक प्रकार से अनिवार्य ही है।'[1] इस दृष्टि से पांडेयजी का काव्य सर्वांगपूर्ण राष्ट्रीय काव्य है।

आधुनिक युग में राष्ट्रीय जीवन में राजनीति की भूमिका सर्वप्रधान है और धर्म का स्थानगौण होता जा रहा है। अब धर्म का अस्तित्व वैयक्तिक दायरे में सीमित होता गया है। अतः आधुनिक दृष्टि से पांडेयके काव्य पर दृष्टिपात करनेवाला यदि उसे जातीय काव्य कहे तो इसका एकमात्र उत्तर यही है कि हमें पांडेयजी के काव्य को कवि की दृष्टि, उसके प्रयोजन और ध्येय के अनुसार देखना चाहिए। पांडेयजी ने अतीत का जामा पहनकर वर्तमान राष्ट्रीय जीवन की ज्वलंत समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया है। उन्होंने अतीत कालीन इतिहास के राष्ट्र-कार्यरत नायकों को अपने काव्य का विषय बनाकर देशवासियों को स्वातंत्र्य-प्राप्ति का संदेश दिया है और भारत के स्वर्णिम अतीत की गौरव-गाथा गाकर हमारे देशवासियों को स्फूर्ति प्रदान की है। इस तरह से कवि ने उद्बोधन का कार्य कर देश के आधुनिक स्वातंत्र्य-आंदोलन में एक प्रकार से मानसिक और भावात्मक योगदान किया है।

विश्व के सभी राष्ट्रों का इतिहास हमें यह बताया है कि संसार के हर एक राष्ट्र के जीवन में सुख-दुख, उत्थान-पतन, जीत-हार, का समय आता है। सतत सुखोपभोग करते रहने के लिए अथवा दुर्दशा में सड़ते रहने के लिए कोई भी राष्ट्र नहीं बना है। प्रत्येक देश के जीवन में उतार-चढ़ाव दिखाई देता है। भारत के राष्ट्रीय जीवन में भी अनेक उतार चढ़ाव आए। पौराणिक दृष्टि से रावण के शासनकाल में राक्षसों द्वारा आक्रांत भारत की बड़ी दुर्दशा हुई। राक्षसी कृत्यों से धर्म भ्रष्ट हो गया, नारियों का अपहरण हुआ उनका सतीत्व संकट में पड़ा, राज्य नष्ट हुए, देवताओं तक की स्वतंत्रता का नामोनिशान नहीं रहा। चारों ओर हाहाकार मच गया। जनता के हृदय में निराशा का घोर अंधकार छा गया। ऐसी अवस्था में सर्वनाश निश्चित था। इस निराशा के बीच राष्ट्र को

१-साहित्य कोश- प्र०सं०, पृ० ६५३।

उबारने वाली शक्ति राम के रूप में अवतीर्ण हुई। राम, लक्ष्मण एवं वानर सेना ने रावण जैसे दुराचारी का नाश कर पुन: लोकजीवन को वैभव-संपन्न बनाया।

एक जमाने में अरबस्थान में जन्म पाकर अखिल मानव जाति को अपने झंडे के नीचे लाने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित इस्लाम मत तल-वार के बल पर चारों ओर फैला। ईरान, तुर्किस्तान आदि देश उनके द्वारा जीत लिये गये। धर्म-प्रचार के लिए कई राज्य नष्ट हुए। अन्याय अत्याचार, बलात्कार का ज्वार आया। भारत भी इस आक्रमण से अछूता न रहा। भारत में मुगलों के बड़े और क्रूर विध्वंसक आक्रमण हुए। पुराने धर्म तथा धर्म-केन्द्र ध्वस्त हुए उस समय भारत में स्वत्व का विस्मरण, राष्ट्र-धर्म की उपेक्षा, संघ-जीवन के प्रति दुर्लक्ष; परस्पर कलह, द्वेष, देश-द्रोह करने की अनीति; स्वपर-विवेक भ्रष्टता आदि पराभव को निमंत्रण करने वाले भीषण दुर्गुणों ने इस देश के सारे राष्ट्रीय जीवन को धर्म-भ्रष्ट बना दिया था। सारे देश में एक केन्द्रीय सार्वभौम सत्ता नहीं थी। वे वापस में मिल जुलकर कार्य करने की अपेक्षा परस्पर टकराती रहती थीं। इस पारस्परिक कलह, द्वेष और संघर्ष के बीच उनकी धर्म-संस्कृति, स्वतंत्रता, मान-सम्मान की रक्षा करने की भावना लुप्त हो गयी थी। फलत: भारत में इस्लाम के आक्रमण सफल होते रहे। कलांतर में भारत में मुगल राज्य की स्थापना हुई और यहाँ के पराक्रमी वीर पुरुष भी विदेशियों की सेवा करने में अपने को धन्य समझने लगे। इस तरह मुगल काल में भारत को राष्ट्रीय भावना का ह्रास हो चुका था।

इस्लाम के अत्याचारों से दबी हुई भावना प्रतिक्रिया के रुप में जाग्रत हुई। यह जागृति सामाजिक, धार्मिक एव सांस्कृतिक रुप में क्रमश: बढ़ती गई। अन्त में इनकी परिणति राजनैतिक जागृति के रुप में हुई। सामाजिक जागृति का नायक इस युग में कबीर हुआ जिसने समस्त पापा-चारों मिथ्याडिम्बरों एव व्रह्माचारों पर निर्मम प्रहार कर समाज को एक मानवीय स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। सामाजिक सुधार के साथ-साथ धार्मिक भेद भाव को भुलाने के प्रयत्न भी इस युग में हुए। इस प्रयत्न में कबीर और अकबर दोनों ने महत्वपूर्ण कार्य किये। एक प्रकार से कबीर वह प्रथम व्यक्ति है जिसने बाहर से आनेवाली जाति को भारतीय स्वीकार किया। कबीर की घोषणा ने मुसलमानों का विदेशी जामा भी उतार दिया और उन्हें भारतीयता का पद प्रदान किया गया 'सबको अपने में समा लेना' तो भारतीय सस्कृति की विशेषता है। राजनैतिक स्तर पर इसी

कोटि का कार्य अकबर ने किया। परन्तु अकबर के साथ महाराणा प्रताप सिंह का जो संघर्ष हुआ, वह स्वदेश, स्वजाति, स्वधर्म के लिए राणाप्रताप सिंह जैसे राष्ट्रनायक का सैद्धांतिक संघर्ष था। इस लिए हल्दीघाटी की लड़ाई एक राजनितिक युद्ध मात्र नहीं, भारतीय अस्मिता की रक्षा और स्वतन्त्र राष्ट्र की सत्ता के सिद्धांतों की रक्षा के लिए राणाप्रताप सिंह द्वारा लड़ागया अकबर कालीन सशस्त्र युद्ध था।

मुगलकालीन हताश समाज को प्रोत्साहित करने के लिए तुलसीदासजी ने असीम पराक्रमी, सर्वगुणसंपन्न मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी का चरित्र लोकमानस के समक्ष बड़ी प्रभावशालिनी भाषा में प्रस्तुत किया। 'रामचरित्रमानस' के रावणादि नामों के स्थान पर यदि तत्कालिन शासकों के नाम रख दिये तो 'रामचरितमानस' में तत्कालीन आक्रमणों द्वारा किये अत्याचारों की विभीषिका का चित्र स्पष्ट उभर आता हैं। गोस्वामीजी ने भारत की प्राचीन संस्कृति को संस्कृत भाषा का सहारा न लेकर जनभाषा के सहारे पुनः जीवित करने का प्रयत्न किया है। इस तरह तुलसी का धार्मिक दृष्टिकोण भारत की व्यापक राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने वाला हैं।

बाद में जब शासकों का दृष्टिकोण एकांगी हो गया तो तलवार के बल पर भारत की भूलभूत राष्ट्रीय भावना को कुचलने के प्रयास होने लगे। औरंगजेब के शासन-काल में तो राजनैतिक जाग्रति युग की आवश्यक माँग हो गयी थी। गुरुगोविन्दसिंह और समर्थ रामदास ने राष्ट्रीय नवोत्थान में राजनैतिक चेतना को अत्यधिक महत्व दिया। श्री समर्थ के स्वप्नों को साकार करने वाले लोकनायक छत्रपति शिवाजी हुए। उन्होंने मुगल शक्ति का विरोध कर भारत की राष्ट्रीय भावना की रक्षा की। निराशा का घनांधकार दूर कर उन्होंने स्वराज्य की स्थापना की। सोई हुई जाति में नव चेतना का संचार कर राष्ट्रीय पौरुष को जाग्रत किया। इस समय और भी अनेक राजसत्ताओं ने राजनैतिक जागृति में अपना योगदान दिया। इतिहास में एक नया मोड़ आया। इन सारे परिवर्तनों को पांडेयजी ने अपने काव्य का विषय बनाया है। अतः उनका काव्य भारत की प्राचीन संस्कृति और उनमें भी विशेषतः हिन्दू संस्कृति से सम्बन्ध राष्ट्रीयता का पोषक, प्रचारक और अनुगायक हैं। पाडेयजी भारत की प्राचीन संस्कृति की व्यवस्था को व्यावहारिक रुप में देखते हैं। और वे उस व्यवहारिक रुप में स्वदेश, स्वजाति, स्वधर्म और स्वतन्त्रता के प्रेमी नायकों की कीर्ति का गान कर अपनी वाणी को पवित्र करते हैं। इस वातावरण में

उनकी राष्ट्रीयता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे अपनी युग की परिस्थितियों का ज्ञान रखते हैं, परिस्थितियों को देखकर वे उनसे उदासीन नहीं रहते बल्कि उन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओंका समाधान अतीत माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। वे परम्परा की रक्षा करते समय राष्ट्र की सनातन और नैतिक मान्यताओं की दुहाई देते हैं, पुरुपार्थ का गौरव-गान गाते हैं। अवतारों का उल्लेख करते है और यह सब कुछ वे सहज ढंग से ओजस्वी वाणी में कहना जानते हैं। उनका अतीताश्रित काब्य आधुनिक युग के अनुकुल है और वह भविष्य के लिए चिरकालीन प्रेरणा का स्रोत है। पांडेयजी के काव्य का पठन करके भारतवासी सत्संस्कार संपन्न हो वर्तमान कलुषित वायु-मंडल बदलकर एक अत्यन्त सबल, तेजस्वी और विजेता राष्ट्र के रूप में संसार के समक्ष अपने पुरुषार्थ, बल, वैभव और सम्मान का झण्डा खड़ा कर सकते हैं, इनमें दो मत नहीं हो सकते। राष्ट्रीय काव्य के रूप में पांडेयजी की कृतियों का यह सन्देश चिरन्तन महत्व रखता है।

उपसंहार —

'पं० श्यामनारायण पाण्डेय : एक मूल्यांकन;

य- वीर काव्य परम्परा में पाण्डेयजी का स्थान

वीर काव्य धारा वैदिक काल से सतत प्रवहमान है। 'ऋग्वेद' में युद्धवीर के रूप में इन्द्र की महिमा का वर्णन मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में अनेक राजाओं की युद्धवीरता और दानवीरता के उल्लेख मिलते हैं और रामायण तथा महाभारत में वीर रस की प्रचुर अभिव्यक्ति हुई है। पांडेयजी के काव्य में वीरता के संदर्भ में इन पौराणिक वीर काव्यों के पात्रों के उल्लेख विद्यमान हैं।

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत कालीदास के रघुबंश में रघु का युद्ध–कौशल, महाकवि भारवि के किरातार्जुननीयम् में किरात और अर्जुन का युद्ध-वर्णन है। वीर रस से संबन्धित अन्यान्य पूर्ववर्ती ग्रंथों का भी उल्लेख पहले किया जासकता है। इन ग्रन्थों में अंकित युद्ध-वर्णनों की कलात्मकता का निर्वाह पांडेयजी के युद्ध-वर्णन में देखा जा सकता है।

अपभ्रंश काल में स्वयंभू का 'पउमचरिउ' पुष्पदन्त का 'महापुराण' और कनकामर मुनि का 'करकंड चरिउ' आदि चरित्र-ग्रन्थों में दानवीर धर्मवीर और दयावीर नायकों के वर्णन मिलते हैं। अपभ्रंश काल के ग्रंथों में प्राप्त वीर रस के वर्णनों के साथ-साथ नायकों के जीवन में धर्म, जीवन का उत्साह, सरलता, सादगी शक्ति, ध्येय और त्याग आदि का जो विवे–चन किया गया है, वह हमें पांडेयजी के काव्य के चरितनायकों में भी प्राप्त होता है।

हिन्दी के वीरगाथा काल में मुसलमानों के आक्रमण के बाद वीरकाव्यों का प्रणयन प्रारम्भ होता है, जिसमें दलपति विजय का खुमा–नरासो, चन्द-वरदाई का पृथ्वीराजरासो, जगनिक का आल्हखंड आदि वीर प्रशस्ति काव्य प्रमुख हैं। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखे गये ये ग्रन्थ तद्‌युगीन राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजना प्रदान करने में बहुत सहायक थे। पांडेयजी यद्यपि राजश्रित कवि नहीं है, किन्तु उनके काव्य में राष्ट्र-प्रेम, त्याग स्वत्व, सम्मान और स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने की जो आन पाई जाती है, वीर-चरित्रों का जो यश-गान प्राप्त होता है, वह वीरगाथा कालीन प्रशस्ति काव्य का आधुनिक कालीन रूप है।

भक्तिकाल में राम और कृष्ण की वीरता का वर्णन पौराणिक संदर्भों में हुआ हैं। इनकी वीरता को भक्ति-भाव से संपन्न मानना चाहिए।

फिर भी इनमें वीर रस की झाँकी देखी जा सकती है। पांडेयजी के 'तुमुल' और 'जय हनुमान' के कथा स्रोत राम-काव्य से जुड़े हैं।

रीत-काल तक पहुँचते-पहुँचते भारत में मुगल शासन सुदृढ़ हो गया था और हिन्दू राजाओं में स्वदेश, स्वजाति और स्वधर्म के प्रति प्रेम-भाव लुप्त सा हो गया था। औरंगजेब की धर्मान्ध नीति और उसके अत्याचारों ने हिन्दुओं को विपन्न बना दिया था एक आदर्श लोकनायक का भाव तत्कालीन राष्ट्रीय जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। ऐसी अवस्था में कविभूषण ने आदर्श लोकनायक शिवाजी के चरित्र का गौरवगान कर जाति में उत्तेजना एवं स्फूर्ति पैदा की।

भारत में मुगल शासन की समाप्ति और ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद भी राष्ट्रीय जीवन से शोषण और दमन का अंत नहीं हुआ, अतः ब्रिटिश शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए समय और परिस्थिति के अनुसार सारे देश में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गई। इस नव-जागरण का प्रधान श्रेय भारतीय कांग्रेस को है। अतः आधुनिक काल में कांग्रेस के स्वातंत्र्य-संग्राम का प्रभाव हिन्दी के कई कवियों पर पड़ा। अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में वीर रस से ओतप्रोत स्वातंत्र्य-प्रेम और बलिदान के चित्र अंकित किये। इन राष्ट्रीय भावों के कवियों में पांडेयजी का अपना विशिष्ट स्थान है। अँग्रेजों की दासता से भारत को स्वतंत्र करने के लिए पराधीन भारत में देश-प्रेम, त्याग, बलिदान तथा संघर्ष का भाव जाग्रत करनेवाले प्रेरक चरित्रों की बड़ी आवश्यकता थी। पांडेयजी ने महारानी पद्मिनी, महाराणा प्रताप सिंह और छत्रपति शिवाजी जैसे मानवता के भूषण चरित्रों का गौरव-गान कर स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति और स्वातंत्र्य की रक्षा के लिए भारतीयों को जीने या मरने का सन्देश दिया। उनका यह त्याग और बलिदान का संदेश युग-युग तक अमर रहेगा। अपने काव्यों के चरित्र-नायकों के माध्यम से पांडेयजी ने देशवासियों में स्वातंत्र्य-प्राप्ति की तीव्र उमंग पैदा की। पांडेयजी की इन कृतियों में सैनिकों की साज-सज्जा, सेना का प्रस्थान, अस्त्र-शस्त्रों की चमक-दमक, मार-काट, युद्ध-वर्णन, हाथियों की चिंघाड़ आदि के जो विस्तृत वर्णन मिलते हैं, वे वीर काव्य के शृंगार हैं। हिन्दी के आधुनिक कालीन कवियों में पांडेयजी एक ऐसे कवि हैं, जिनके काव्यों में वीर रस का परंपरित समग्र परिपाक मिलता है। जो अन्यत्र दुर्लभ है। इस आधार पर उन्हें यदि हिन्दी के आधुनिक वीर-काव्य में चन्दबरदायी, जगनिक और भूषण का उत्तराधिकारी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

२) पांडेयजी की राष्ट्रीय भावना :—

पं० श्यामनारायग पांडेयजो के कवि व्यक्तित्व का प्रमुख स्रोत है उनकी राष्ट्रीय भावना राष्ट्रीयता की भावना ही उनकी काव्य साधना की मूल-चेतना तथा उनकी काव्य-कृतियों की आत्मा है। आधुनिक हिन्दी राष्ट्रीय काव्य धारा को स्मृद्धि बनाने में उनका सहयोग अत्यधिक मूल्यवान है। वैसे तो इस क्षेत्र में अनेक कवि आये और चले गये पर पांडेयजी का कवि व्यक्तित्व स्वनिर्मित और स्वनिर्धारित पथ पर अग्रसर हुआ है। अपने युग के स्वातंत्र आन्दोलन को तीव्र तर बनाने में उनके काव्य ने बड़ी भूमिका निभाई है अतः इस अर्थ में वे हिन्दो के बड़े प्राणवंत राष्ट्रीय कवि हैं।

"राष्ट्रीय भावना के समसामयिक कवि और पांडेयजी: एक तुलनात्मक अध्ययन"

अनुसंधान के क्षेत्र में, साहित्य में आलोच्य कवि को अन्य कवियों के बीच रखकर देखने की परिपाटी बड़ी पुरानी हैं। यों तो यह परम्परा लाभदायक है, पर कभी-कभी इससे साहित्य में दो शिविर स्थापित हो जाते हैं, जिनमें कहीं-कहीं स्वस्थ आलोचना के स्थान पर मताग्रह की प्रधानता का खतरा भी पैदा हो जाता है। सूर और तुलसो को लेकर अब भी वाद-विवाद चलते हैं। वस्तुतः इस पद्धति में मूल्य या स्थान निर्धारण की भावना प्रधान होनी चाहिए। परन्तु पक्षपात के कारण किसी भी कवि के प्रति अन्याय किया जा सकता है। वास्तव में कोई भी कवि किसी दूसरे कवि से छोटा या बड़ा नहीं होता, पर वह आलोचक की दृष्टि या काव्य गुण दोष के आधार पर अच्छा या बुरा हो सकता है। कोई कवि अपने काव्य के लिए किसी एक क्षेत्र को चुनता है, तो कोई किसी अन्य को। अतः चुने हुए क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही प्रवृत्ति और कृतियों के आधार पर दो या दों से अधिक कवियों की तुलना करनी चाहिए।

उक्त वैचारिक भावभूमि के आधार पर उचित यही होगा कि हम पांडेय जी को उन्हीं कवियों के साथ विठाकर देखें, जो उनके हो समान विदेशी वातावरण के प्रभाव में उगे, पनपे और बढ़े हैं। पांडेयजी आधुनिक युग की राष्ट्रीय धारा के कवि हैं, अतः उनके काव्य की तुलना राष्ट्रीय भावना के आधुनिककालीन कवियों के काव्य से करना ही अधिक युक्ति संगत है। इस दृष्टि से पाडेयजी के सयसाययिक कवियों में पं० श्रीधर पाठक मैथिली शरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' माखनलाल चतुर्वेदी सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर ही विशेष उपयुक्त होंगे।

१) पं० श्रीधर पाठक और पं० श्यामनारायण पांडेय :—

पं० श्यामनारायण पांडेय और पं० श्रीधर पाठक- दोनों राष्ट्रीय कवि हैं खड़ी बोली के काव्य में देश, प्रेम प्रकृति प्रेम और आधुनिक भावों की प्रथम झंकार हमें पाठक जी के काव्य में दिखाई देती है। युगों से चली आती हुई काव्य परम्परा के जादू को इसी काव्य ने तोड़ा और हिन्दी काव्य क्षेत्र में नई नीव डाली।

पाठक जो हिन्दी में भारत दैवत के प्रथम महागायक थे। वे भारत-स्तुति के गीतों के प्रवर्त्तक के रूप में चिरस्मरणीय है। उनके "भारत गीत" में संग्रहीत मर्मस्पर्शी राष्ट्रीय गीत पढ़कर आज भी हम भाव विभोर हो जाते हैं। भारत की वन्दना करते हुए उनका काव्य-मय भावोंच्छ्वास नहीं थकता-'जय जयति सदा स्वाधीन हिन्द, सुखमा-सदन-सकल सुखसारं' जैसी शतशः पंक्तियाँ उनके भारत-प्रशस्ति-गीतों में भरी पड़ी है, जिनमें कवि की राष्ट्र-स्तवन की तन्मयता देखते ही बनती है। ऐसी भावोद्वेलनपूर्ण भारत-वंदना की पंक्तियाँ पांडेयजी के काव्य में नहीं मिलती।

पाठक जी के भारत गीतों में, भारत में एक मानवी-मूर्ति अथवा देव-मूर्ति की कल्पना की गई है। हिन्दी की राष्ट्रीय कविता में राष्ट्र के दैवीकरण की यह प्रवृति हमें सर्व प्रथम पाठकजी के काव्य में मिलती है। राष्ट्र के दैवीकरण को यह प्रवृत्ति पांडेयजी की कविताओं में नहीं है।

पांडेयजी और पाठक जी की राष्ट्रीय कविता में एक प्रमुख अन्तर यह है कि जहां पाठक जी के गीतों में देश को उसकी आधुनिक भौगोलिक एकता की पीठिका में देखा गया है, वहां पांडेय जी के काव्य में देश के स्वर्णिम अतीत के गौरव को भावना प्रबल है। इसका कारण यह है कि पाठक जी का अनुरागी चित्त अधिकतर प्राकृतिक सौंदर्य के उपकरणों में रमा है, परन्तु पांडेयजी समकालीन स्वातंत्र्य-आंदोलन को तीव्रतर बनाने के लिए राष्ट्र के स्वर्णिम अतीत को ही देखते रहे हैं।

उक्त दोनों कवियों ने भी समाज को जागृति का संदेश दिया है। परन्तु पांडेयजी के उद्‌बोधनात्मक गीत पाठक जी की अपेक्षा अधिक सजीव हैं।

पांडेयजी के काव्य में भारत के किसान, गरीब आदि लोगों की दुर्दशा का जो चित्र मिलता है, वह पाठक जी के काव्य में नहीं हैं। और सब से बढ़ कर, मातृ भूमि के लिए त्याग एवं बलिदान की भावना जो पाँडेयजी के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है, पाठक जी के लिए अज्ञात है।

इस तरह पं. श्रीधर पाठक और पं० श्यामनारायग पांडेय दोनों ही हिन्दीकी राष्ट्रीय कविता के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं।

२—मैथिलीशरण गुप्त और पं० श्यामनारायण पांडेय—

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी काव्य रचना द्विवेदी युग से आरम्भ की और पांडेयजी ने द्विवेदी युग की समाप्ति के बाद। जहां गुप्तजी ने आचार्य द्विवेदी से काव्य-प्रेरणा ग्रहण की, वहाँ पांडेय जी ने हरिऔध से काव्य-प्रेरणा पायी। गुप्तजी तथा पांडेय जी दोनों ने द्विवेदीकालीन काव्य परम्पराओं का अनुसरण किया। दोनों भारतीयता के समर्थक और गायक कवि हैं। दोनों किसी सीमा तक 'हिन्दू जातीयता' के कवि कहे जा सकते हैं। दोनों राष्ट्रीयता के अतीतोन्मुखी कवि हैं। दोनों हमारे राष्ट्रीय जीवन राष्ट्रीयताके भावनाओं, उदबोधन एवं प्रेरणाके गायक हैं। दोनोंने राजपूत कालकी वीरताके गीत गाये हैं और दोनोंने आदर्श चरित्रों की सृष्टि की है। दोनों भारतीय संस्कृति के आख्याता तथा प्रशंसक हैं, तथा दोनों ने प्रबन्धनात्मक, वर्णनात्मक मिश्र शैली आदि का सफलता से प्रयोग किया है।

फिर भी दोनों के राष्ट्रीय काव्यों में प्रमुख अन्तर यह है कि गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना बड़ी दूर तक महात्मा गांधो जी से प्रभावित है जबकि पांडेय जी की राष्ट्रीय भावना सुभाष जैसे क्रांतिकारियों की भावना से जुड़ी हुई है। विशेषकर उनके राष्ट्रीय काव्य का अभिव्यक्त पक्ष सुभाष तथा क्रांतिकारियों के स्वरों से अनुप्राणित है। अतः स्वराज्य प्राप्ति के लिए—

'ले लो हाथों में तलवार, करना है मां का उद्धार।
चलो ले खून का बदला, व्यथा से चीखती दिल्ली।।'[1]

में पांडेय जी के 'विद्रोह तथा क्रांतिके स्वरों में 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दुँगा'-झंकृत है और 'दिल्ली चलो' के स्वर गुप्त जी के काब्य में इस विद्रोह एवं क्रांति की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती वे स्वभावतः शांत और मर्यादावादो कवि हैं।

गुप्तजी ने मानव-चरित्रों को देवों के चरित्रों से भी ऊपर उठा दिया। पर अमर वृन्द नीचे आवे मानव चरित्र देख जावे (साकेत) जैसी पंक्तियां पाण्डेयजी के काव्य में नहीं मिलती। पाण्डेय जी ने मनुष्य पात्रों को अपनी समस्त उदात्तता के साथ मनुष्य ही चित्रित किया है।

गुप्त जी को राष्ट्रीय कविता में जहां प्रसाद गुण एवं सादगी दृष्टिगोचर होती है, वहां पाँडेय जी की कविता में ओज तथा प्रखरता

१ आरती पृ० ९०-९२।

प्रधान है। संक्षेप में, दोनों कवि अपने-अपने दायरे में श्रेष्ठ हैं।

३– सियारामशरण गुप्त और पं० श्यामनारायण पांडेय

पं० श्यामनारायण पाण्डेय और सियारामशरण गुप्त दोनोंने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के सास्कृतिक गौरवपूर्ण पक्ष को अंकित किया है। दोनो प्रवन्धकार हैं। शिवाजी जैसी रचना गुप्त साहित्य में दुर्लभ है। गुप्तजी में एक विशेषता यह है कि उनके काव्य में गांधी जी का तत्त्व-चिन्तन प्रत्यक्षअभिव्यंजित है। पाडेयजी ऐसे व्यक्तिपरक तत्वचिंतन से परे हैं।

दोनों के काव्यों में बलिदान की महिमा अंकित है। जहाँ गुप्तजी के काव्य में सात्विकता के दर्शन होते हैं, वहाँ पांडेयजी के काव्य में ओज, प्रखरता, आवेग एवं संस्कृत-निष्ठा भाषा की सम्पदा मिलती है। दोनों के काव्यों में करुण के दर्शन होते हैं। परन्तु पांडेयजी के काव्य में जिस विद्रोह का स्तर मुखरित है, वह गुप्तजी की कविता में नहीं है।

४) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन, और पं० श्यामनारायण पांडेय:—

पांडेयजी और नवीन जी दोनों राष्ट्रीय जागरण के कवि हैं। दोनों में राष्ट्रीयता एवं आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। दोनों की कविता में विद्रोह एवं क्रान्ति का स्वर प्रबल है। दोनों ने जनता को त्याग और आत्म-बलिदान की प्रेरणा दी है। दोनों प्रबन्धकार है। दोनों ने अपने-अपने काव्य में विविध शैलियों के प्रयोग किये हैं। दोनों के काव्य में दासत्व के बन्धन तोड़ डालने उत्कट अभिलाषा व्यंजित है। दोनो स्वयं को किसी वाद-विशेष की सीमा में सीमित कर नहीं चले, अतः दोनों दृष्टि वादों से परे समस्त मानव-हित पर केन्द्रित रही है। दोनों ने अपनी काव्य कृतियों में सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण की कामना की है। जैसे नवीन जी ने अपने काव्य में उर्दू तथा ब्रजभाषा के प्रचलित शब्दों को जहाँ-तहाँ अपनाया है वैसे ही पांडेयजी के काब्य में भी उर्दु, अरबी, फारसी, संस्कृत शब्दों का संयुक्त प्रयोग हुआ है। दोनों की रचनाओं में विदुर-हृदय की विरह व्यथा के दर्शन होते हैं। किन्तु अनुपात एवं प्रभाव की दृष्टि में जहाँ नवीन जी की कविता में प्रेम-काव्य का स्थान प्रमुख है, वहाँ पांडेयजी की कविता में राष्ट्रीयता की भावना प्रबल है।

फिर भी दोनों में अन्तर है। नवीनजी जहां राष्ट्रीय संग्राम के सैनिक गद्य-लेखक और पत्रकार के रूप में हमारे सामने आते हैं, वहां पांडेयजी इस प्रकार के जीवन से संबन्ध नहीं है। जहां नवीनजी गांधीजी के व्यक्तित्व और सिद्धातों के प्रति आस्थावान हैं। हाँ, राष्ट्र नेताओं के प्रति पूजा-भावना दोनों के काव्य में समान रूप से पायी जाती है।

तत्कालीन सत्याग्रह-संग्राम की विफलता से खिन्न नवीनजी ने पराजय गीत तक गाया है। यथा—

'हंत ! पराजय गीत आज क्या द्रुपद सुता का चीर हुआ।
आज खड्ग की धार कुंठिता है, खाली तूणीर हुआ ॥'[1]

पर पांडेयजी के काव्य में निराशा का यह स्वर सुनाई नहीं पड़ता।

विश्व-व्यापी अनाचार एवं सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध 'नवीन' का हृदय इतना क्षुब्ध हो जाता है कि वे विश्व-विधान के विरुद्ध सहसा पुकार उठते हैं कि—

'नियम और उपनियमों के ये बन्धन टूक-टूक हो जायें।
विश्वम्भर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जायें ॥'[2]

ऐसी प्रलयंकर पंक्तियाँ कवि पांडेयजी के काव्य में नहीं मिलती। नवीनजी ब्रिटिश नौकरशाही के सर्वनाश की कामना करते हैं—

'खींच चुकी है नौकरशाही, अपने सर्वनाश की लीक।
चक्की पिसवाने वालों को मिट्टी में मिल जाने दो ॥'[3]

ब्रिटिशों के प्रति यह असंतोष-भावना पांडेयजी में नहीं मिलती संक्षेप में, पांडेयजी और नवीनजी के काव्य में राष्ट्रीय भावधाराएँ दोनों कवियों के व्यक्तिगत रुचिवैभिन्य पर आश्रित हैं।

५-माखनलाल चतुर्वेदी और पं० श्यामनारायण पाडेय—पांडेयजी भारतीयता के कवि हैं। उनके काव्य में रीति-नीति, परम्पराएँ, प्राचीन गौरव, त्याग, कर्तव्य-भावना, आत्म-सम्मान, पतिपरायणता, शिष्टाचार आदि का विवरण भारतीय आदर्शों के अनुरूप अंकित है। पांडेयजी ने विविध शैलियों का सफलता से प्रयोग किया है। आदर्श-चरित्रों की सृष्टि उनकी प्रमुख विशेषता है। पांडेयजी की ये विशेषताएँ माखनलालजी में नहीं मिलती।

परन्तु, माखनलालजी केवल कवि ही नहीं, पत्रकार भी थे। वे एक प्रौढ़ गद्य लेखक और सम्पादन कला के आचार्य थे। इस दृष्टि से पांडेयजी उनकी समानता नहीं कर सकते हैं। गद्य-शैलीकार के नाते पं० माखनलाल चतुर्वेदी जी की जो प्रसिद्धि है, वह पांडेयजी को प्राप्त नहीं है।

१-कुंकुम, पृ० ६४। २-वही, पृ० ११। ३-डा० रामखिलावन तिवारी: माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य, पृ० ४०६ पर उद्धृत।

जहां तक राष्ट्रीय-भावन का प्रश्न है, दोनों अपनी-अपनी जगह श्रेष्ठ हैं। दोनों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। दोनों ही मुख्यतः राष्ट्रीय भावना, उद्‌बोधन एवं प्रेरणा के कवि हैं। परन्तु, दोनों की राष्ट्रीय भावना में कुछ वैभिन्य है—

पांडेयजी अतीतोन्मुखी राष्ट्रीयता के कवि हैं। इसके विपरीत माखनलालजी राजनैतिक राष्ट्रीयता के कवि हैं। उनके काव्य में सांस्कृतिक पक्ष उतना प्रबल नहीं है जितना कि उनका राजनैतिक पक्ष। इसका प्रमुख कारण यह है कि चतुर्वेदीजी हमारे राजनैतिक आंदोलन के घनिष्ठ संपर्क में रहे हैं, जिससे उनके काव्य में राष्ट्रीय जीवन का भोगा हुआ सत्य मुखर है, जबकि श्री पांडेयजी का राष्ट्रीय आंदोलन से प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहा है।

पांडेयजी प्राचीन संस्कृति और राष्ट्रीयता के कवि हैं, तो माखनलाल जी में सामयिक राष्ट्रीय जागरण का स्वर प्रधान है। पांडेयजी में अतीत का आकर्षण अत्यन्त प्रबल है। वे राजपूत काल की वीरता के गायक हैं। परन्तु, माखनलालजी के काव्य में अतीत-प्रेम की प्रवृत्ति नहीं है। उन्होंने भारत के गौरवपुर्ण अतीत का विशेष चित्रण नहीं किया है। कारण यह है कि चतुर्वेदीजी की दृष्टि अपने युग और वर्तमान पर अधिक जमी थी। अतः सामयिक राजनैतिक-राष्ट्रीय जीवन के जो चढ़ाव उतार हैं, उनका प्रतिबिम्ब माखनलालजी के काव्य में जितना स्पष्ट है, उतना पांडेयजी के काव्य में नहीं।

माखनलालजी ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया था, भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन के वे एक सक्रिय सैनिक थे, जब कि पांडेयकी की आन्तरिक सहानुभूति ही इस दिशा में अधिक रही है। राजनैतिक व्यस्तता ने यदि चतुर्वेदीजी के मार्ग में बाधा नहीं पहुँचाई होती, तो सम्भवतः वे भी पांडेयजी की तरह भारतीय जन-जीवन का चित्रण किये होते। हाँ माखनलालजी के राष्ट्रीयतापरक काव्य में स्वानुभूति की जो गहराई है, वह पांडेयजी के काव्य में नहीं है, परन्तु पांडेयजी का काव्य-धरातल अपने क्षेत्र में जितना व्यापक है, उतना ही गहन भी। पांडेयजी और चतुर्वेदी जी के काव्य में ओज और प्रखरता की प्रधानता है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय काव्य धारा में दोनों का स्थान ऐतिहासिक महत्व का है।

६) सुभद्राकुमारी चौहान और पं० श्यामनारायण पाडेय:—

जहाँ छायावाद युग की राष्ट्रीय काव्य-धारा के अन्तर्गत सुभद्राकुमारी का महत्वपूर्ण स्थान है वहाँ पांडेयजी द्विवेदी काल की प्रवर्तित खड़ी

बोली काव्य-धारा के अन्तर्गत अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। दोनों हिन्दी के महत्वपूर्ण कवि हैं। सुभद्राजी ने राष्ट्र के स्वतन्त्र्य आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और जेलयात्राएँ की। अत्यन्त समीप से देखने के नाते, सुभद्राकुमारी की कविता में राष्ट्रीय जीवन का सच्चा अनुभव है, जब को पांडेयजी में हमे यह अनुभव नहीं मिलता। सुभद्राजीके काव्य में एक तरह स्त्रियोचित कोमलता और आत्मनिवेदन की भावना है तो दूसरी ओर जन्मतः क्षत्राणी होने के नाते वीर भावों की उमंग तथा देश के प्रति प्रेम में सप्राणता विद्यमान है। इसके लिए सुभाद्रा जी की 'कुन्ज' नामक रचना देखी जा सकती है। पांडेयजी की काव्य में सुभद्राजी की तरह वीर भाव के अतिरिक्त पौरुष और भावुकता का पुष्ट अधिक मिलता है।

दोनों की राष्ट्रीयता न तो किसी राजनीतिकवाद की सीमा से घिरी है, न ही आजकी पदलोलुपता तथा अहकारपूर्ण नेतागिरी वाली राष्ट्रीयता है। यह राष्ट्रीयता है, जो भारत के पराधीनता काल में अनोखा मादक प्रभाव लिए जीवन-प्रेरणा बनकर व्यक्ति और समाज में घर करती चली जा रही थी। 'झांसी की रानी' एवं 'हल्दीघाटी' शीर्षक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय काव्य में दोनों का यही मादक राष्ट्र-प्रेम शब्द-बद्ध होकर व्यक्त हुआ है। पं० श्यामनारायण पांडेय और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान दोनों ही अतीक के स्वतन्त्रता के उपासकों एवं वीर सेनानियों को भूल नहीं सके दोनों ने उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए, उनके स्वातंत्र्य-प्रेम की प्रशंसा कर, उनसे सम्बन्धित स्थल और धटनाओं का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

'जालियान वाला बाग में बसंत' सुभद्राकुमारी की ख्याति प्राप्त रचना है, जिसमें पंजाब के गोली-कांड की प्रतिक्रिया की अनुगुंज है। पांडेयजी ने अपने काव्य में जालियान वाला बाग कांड का उल्लेख किया है।[1]

सुभद्राकुमारी जी गांधीजी से प्रभावित थीं। उनकी निम्नांकित पंक्तियों में अहिंसा में पूर्ण विश्वास को व्यंजना हुई है :—

"अहिंसा के भावों से मस्त आज यह विश्व जीतना पड़े ॥

और–"हम हिंसा का भाव त्याग कर विजयी वीर अशोक बनें।

पांडेयजी में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती। इस सम्बन्ध में पांडेयजी सुभद्राकुमारी से अलग हैं।

सुभद्राकुमारी की प्रारम्भिक कविताओं में ब्रिटिश राज्य के प्रति भक्ति-भावना भी मिलती है। उदाहरणार्थ, सुभद्राकुमारी, चिरजीवें सम्राट होंय' जय के अधिकारी'।–कहकह ब्रिटिश सम्राट का जय-जयकार करती

(१) 'आरती'—पृ० ८६।

है किन्तु पांडेयजी काव्य में विदेशी शासन के प्रति ऐसी भक्ति-भावना कहीं भी नहीं दर्शाते। पांडेयजो तो विप्लवधर्मी क्रान्ति का उद्‌घोष करते हैं :-

"लो आग क्रान्ति की भभक उठी, डूबे रवि शशि तारे।"

तत्कालीन सत्याग्रह आंदोलन की विफलता के फलस्वरुप नवीनजी की भाँति सुभद्राकुमारी की कविता में भी जनता के नैराश्य की धार्मिक अभिव्यक्त हुई है –

"हम हारे या थके रुकी सो, किन्तु युद्ध कीं गति है।
हमें छोड़कर चला गया पथदर्शक सेनापति हैं।
रणभेरी का नाद सदा को क्या अब रुक जायेगा?
जिसको ऊँचा किया वही क्या झंडा झुक जायेगा?"[1]

किन्तु पांडेयजी के काव्य में मानसिक अवसाद की यह प्रवृति दृग गोचर नहीं होती। अवसाद के स्थान पर उनके काव्य में हमारी गुलामी की प्रवृति पर गहरा व्यंग मिलता है :—

भारत के मनमाने गुलाम, जिसको न विधाता जान सके।
गांधीजी-आजाद-जवाहर भी जिस वीर को न पहचान सके।।[2]

ऐसी विशेषता सुभद्राकुमारी के कविताओं में नही मिलती।

सुभद्राकुमारी के काव्य में जहाँ सरलता और प्रसाद गुण की प्रधानता है, वहाँ पांडेयजी के काव्य में ओज और आवेग का बोलबाला है।

पांडेयजी ने तीन महाकाव्यों और तीन खंडकाव्यों का सृजन किया है, इस क्षेत्र में वे सुभद्राकुमारी को अवश्य पीछे छोड़ जाते हैं। उनके काव्य में कुछ ऐसी विशेषताएं हैंः–क्रान्ति एवं विद्रोह का स्वर,–विविध काव्य-शैलियों का प्रयोग, विषयों की व्यापकता, उद्‌बोधन का तीव्र स्वर आदि-आदि जो सुभद्राकुमारी की राष्ट्रीय कविताओं में नहीं है। सुभद्राकुमारीं की रचनाओं के सम्बन्ध में रामबहोरी शुक्ल और डाँ भगीरथजी मिश्र का मत है–":सुभद्राकुमारी के काव्य में व्यक्त भावनाएं बड़ी शुभ्र और स्वभाविक हैं। हमारी सहज भावनाओं का इतना सरल चित्रण आधुनिक युग में कोई और कवि नहीं कर पाया।"[3]

७) रामधारीसिंह 'दिनकर' और पं० श्यामनारायण पांडेयः—

पांडेयजी और दिनकर जी दोनों का नाम हिन्दी के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कवि के रूप में लिया जाता है। दोनों ही आधुनिक हिन्दी कविता की

१–डाँ रामखिलावन तिवारी: 'माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य पृ० ४१५ पर उद्‌धृत। २–'आरती'–पृ० ८७। ३--डॉ० रामखिलावन तिवारी: 'माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य'-पृ० ४१५ पर उद्‌धृत।

राष्ट्रीय शाखा के प्रमुख कवियों में गिने जाते है। दोनों किसी वाद–विशेष या सम्प्रदाय में बँधकर नहीं चले। दोनों का काव्य कुल मिलाकर इतिवृत्तात्मकता की ओर बढ़ गया है। जहाँ तक काव्य शैली का प्रश्न है–दोनों ही एक दूसरे के समीप हैं। अतीत के गौरव के प्रति रुझान-दोनों की कविताओं में मिलता है। दिनकर हिंसा से भी अत्याचार को मिटाने का विचार रखते हैं। ऐसा लगता है कि उनके विचार से साध्य मिलना चाहिए, साधन की चिन्ता व्यर्थ है:–

'न्यायोचित अधिकार मांगने से न मिले, तो लड़ के,
तेजस्वी छीनते समर को जीत, या कि खुद मर के।"[1]

और–"किसने कहा, पाप है समुचित स्वत्व-प्राप्ति-हित लड़ना?"[2]
'मेघनाद वध' प्रसंग (तुमुल) में पांडेय जी भी इसी विचारधारा का समर्थन करते हैं।[3]

क्रांति एवं विद्रोह का स्वर दोनों कवियों में मिलता है, पर 'दिनकर क्रांति का विविध रूपों में आह्वान करते हैं।'[4]

देश–प्रेम की कविताओं में दिनकर की 'हिमालय के प्रति' जो कविता है, उसमें रस की अपेक्षा उदात्त भावना का सन्निवेश अधिक हुआ है, जबकि पांडेय जी का यह तुंग हिमालय किसका है? कविता में बलि भावना तथा प्रेरणा का स्वर अधिक मुखरित है।

राष्ट्रीयता, ओज दोनों की कविताओं की विशेषताएँ हैं। जहाँ तक कला पक्ष का प्रश्न है दिनकर का कला पक्ष पांडेयजी की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ है। परन्तु विषय वर्णन और शैली की दृष्टि से पांडेयजी का अपना महत्व है। दिनकर के काव्य में जहाँ हुंकार और गर्जना के स्वर प्रबल हैं। वहां पांडेय जी के काव्य में नीति, सिद्धांत और स्वत्व के लिए संघर्ष, और बलिदान के लिए मिटने या मर मिटने की चेतना सबल है। इस तरह से पांड़ेयजी अपने युग के राष्ट्रीय भावों के बीच में निजी महत्त्व रखते हैं।

ल— पांडेयजी की निजी विशेषताएं और उनका प्रदेय

पं० श्यामनारायण जी पांडेय के व्यक्तित्व और कृतित्व के इस अध्ययन के उपरांत एक प्रश्न उठता है कि हिन्दी साहित्य में उनका क्या स्थान है? इसके उत्तर के लिए हिन्दी साहित्य में पांडेयजी के प्रदेय का मूल्यांकन आवश्यक है। मूल्यांकन करते समय आधुनिक कविता को

१—रामधारीसिंह दिनकर'कुरुक्षेत्र'-पृ० २२। २—वही, वही, वही।
३–'तुमुल'–भूमिका, पृ० ५। ४- डा०रवीन्द्र सहाय वर्मा : हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव'-पृ० २३९।

वादों की दृष्टि से देखा जाता है। पहले छायावादी, फिर प्रगतिवादी और प्रयोगवादी आदि-आदि कटघरे आलोचकों ने बना लिए हैं और कवियों को उनमें खड़ाकर पक्ष और बिपक्ष में निर्णय देने के लिए दलीलें दी जातो हैं। यह ठीक है कि यदि कुछ कवियों में कोई विशेष प्रवृत्ति उभरकर आयी है तो कुछ कवियों में दूसरी प्रवृत्तिका प्राधान्य है। लेकिन किसी भी रचनाकार और उसके समस्त जगत को इतनी संकुचित सीमा में पूर्णतः बांधा नहीं जा सकता। जीवन की तरह साहित्य भी विविध रंगों, बिविध पक्षों और विविध आयामों में बिखरा हुआ है और इसी दृष्टि से हम पांडेय जी के काव्य का मूल्यांकन करना अधिक तर्कसम्मत न्यायसंगत समझते हैं।

१– युग—तत्व

पं० श्यामनारायण ज़ी पांडेय के आविर्भाव के समय एक ओर द्विवेदी युग समाप्त हो गया था और हिन्दी साहित्य ने नये क्षेत्र से छाया–वादी युग में प्रवेश किया था दूसरी ओर स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए तीव्रतर संघर्ष चल रहा था। यह वह युग था जिसमें सांस्कृतिक पुनर्जागरण व राष्ट्रीय चेतना की वह्नि प्रदीप्त थी। समय की दृष्टि से यह अत्यंत संवेद-नशील काल था। इसी युग में पांडेय जी ने अपने कवि जीवन का प्रारभ किया और हिन्दी काव्य क्षेत्र में अपनी वाणी के द्वारा तहलका मचाया।

महाराणा प्रताप सिह के चरित्र ने कवि को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया। इससे उनके काव्य में ओज, प्रखरता और कर्मठता आयी और प्रत्यक्ष रूप से नेताजी सुभाषचन्द बोस एवं अन्यान्य क्रांतिकारियों के कार्य कलापों ने उन्हें प्रोत्साहित किया। इससे उनके काव्य में सुभाष की सी ओजस्वी बाणी मुखरित हुई। इस तरह से पांडेयजी की उपरोक्त दोनों स्वातंत्र्य-संग्राम के योद्धाओं तथा वीर पुरुषों की चेतना आधुनिक युगानुरूप वाणीवद्ध हुई है।

पांडेयजी ने अपने युग की राष्ट्रीय चेतना को ग्रहण किया है। और उसे अतीत के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। राष्ट्रीय चेतना के साथ–साथ सास्कृतिक चेतना के तत्वों को भी ग्रहण करते रहने के कारण उनकी वाणी सांस्कृतिक स्तवन करने में भी रमी है।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय के काव्य में समन्वय भावना के भी दर्शन होते हैं जिससे उनकी रचनाओं में प्राचीन एवं नवीन का गठ–बन्धन दिखायी देता है। जहां एक ओर कवि ने सुभाष आजाद भगतसिंह यतीन्द्र सदृश समकालीनों पर आदर्शांजलियाँ समर्पित की हैं वहां वह लक्ष्मण, हनुमान और सीता के आख्यानों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति

में भी निष्ठापूर्वक रमा है। जहाँ उसने मुक्त छन्द जैसी अधुनातन काव्य पद्धति को अपनाकर समय के डग के साथ अपने भी पग मिलाये हैं, वहां हिन्दीके छन्दों को लिखकर अपने पारम्परिक मोह को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त उसने वर्तमानकालीन भौतिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए भारतीय संस्कृति के आदर्श तत्वों की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

कवि ने युग धर्मकी वाणी को काब्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की। युग की इस काब्योत्प्रेरक भूमिका में देश भक्ति, देश प्रेम और स्वातंत्र्य प्रियता का उदघोष करने वाले महाराणा प्रतापसिंह और सुभाष जैसे वीरों से पायी है, और विदेशी शासन के प्रभाव में जीकर भो उसने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए महाराणा प्रताप और शिवाजी का आदर्श हमारे सामने रखा है।

जिस प्रकार कवि अपने बचपन में दरिद्रता से जूझता रहा, उसी प्रकार वह आजीवन हिन्दीके बिकासके लिए संघर्षरत रहा है। उसके जोवन में प्रेमी मन और कर्तब्य प्रेरित आत्मामें जो संघर्ष चलता रहा है उसकी झाँकी उसके प्रेम काव्य में देखी जा सकती है, यथा—

'कामना थी सफल जीवन कर यहाँ से मुक्ति पाऊँ।
राग ने घेरा मुझे कैसे सनातन, मैं निभाऊँ॥
भँवर में है नाव मेरी किस तरह उस पार जाऊँ।
और यह भी सोचता हूँ किस तरह मैं लौट आऊँ॥
प्रथम ही जब था विरागी प्यार से था राग पाला।
हाय! अपने आप हो मैंने गले में पास डाला॥'[1]

पाण्डेय जी के बहिर्द्वन्द्व और अन्तर्द्वन्द्व के बीच उनके कर्मठ ज़ीवन ने प्रभावोत्पादक काव्य की निर्मिति की है।

उनके काव्य की अनुभूतियों और प्रेरणास्रोत के अनुशीलनार्थ युगधर्मको समझना आवश्यक है। उनके काव्य में साहस स्फुरण, उत्तेजना और उदबोधन के जो भाव मिलते हैं, वे सब उन्हें युग जीवन और अन्त; प्रेरणा से प्राप्त हुए हैं। उनके व्यक्तित्व को समझ
लेने पर उनका काव्य-तत्व अपने आप प्रकाश में आ जाता है।

२–व्यक्ति तत्व—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय का व्यक्तितत्व अपने युग-धर्म की उपज है। युग-धर्म ने ही उनके व्यक्तितत्व को परिष्कृत किया है और उनके व्यक्तित्व तथा युग-धर्म दोनों का प्रतिबिम्ब उनके काव्य में मुखरित

१- 'आरती'-पृ० ५६।

हुआ है। पांडेयजी के वाल्य संस्कार उन्हें अमित निधि प्रदान करते हैं। ये ही संस्कार उनके काव्यत्व को प्राणान्वित करते हैं। उनके पारिवारिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण ने उनके अन्तर्जगत के कवि को धार्मिक और पौराणिक संस्कार दिये हैं। उनकी भक्ति तथा अध्यात्मपश्क रचनाओं के मूल में येही संस्कार क्रियाशील हैं। उनके धर्म और कर्म के संस्कार कभी प्रताप सिंह की ओर उन्मुख हो जाते हैं और कभी शिवाजी की ओर और कभी सुभाष की ओर। इन्हीं से उनकी भक्ति उमड़कर सीता-माता के चरणाम्बुजों में जा विराजती है, तो कभी रानी पद्मिनी के बलिदान को साश्रु नेत्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है। अपने संस्कारों की दृष्टि से पांडेयजी आस्था, विश्वास और श्रद्धा के ओजस्वी कवि हैं।

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के व्यक्तित्व में और कई सूत्र जुड़े हुए हैं। उनके व्यक्ति-तत्व का पहला सूत्र है - भावुकता। उनके समग्र काव्य में भावुकता प्रधान है। उनकी भावुकता कभी दीन-हीन, असहाय गरीब, किसानों का पक्ष लेती और कभी राष्ट्रीय काव्यों में परतंत्रता के विरुद्ध स्वातंत्र्य-प्राप्ति का ओज पूर्ण उद्घोष कर वीर रस का संचार करती है, तो कभी वही भावुकता रहस्यवादी प्रवृत्तियों को भक्ति की अभिव्यक्ति में परिणित कर देती है। इन विविध रूपों में प्रकट होने वाली भावुकता को कवि-जीवन का महत्वपूर्ण सूत्र मानना अनिवार्य है, क्योंकि यही भावुकता राष्ट्रीय चेतना के क्षेत्र में 'चाहो तो उखाड़ दो, उभाड़ दो रसातल को'[1] की ललकार बनकर उद्घोषित हुई है और यही भावुकता कभी प्रणय क्षेत्र में 'प्रणम-शिक्षा'[2] मागने लगती है। भावुकता के कारण ही कवि कभी भगवान के सामने अनुनय-विनय तथा श्रद्धा और विनम्रता प्रकट करता है तो कभी उसकी भावुकता रूप बदलकर उत्साह के क्षेत्र में तेजस्विनी बन जाती हैं। काव्य-क्षेत्र से हटकर पांडेयजी की भावुकता हमें उनके व्यक्तिगत जीवन में प्रलोभनों के प्रति उदासीनता रखकर स्वाभिमान की रक्षा करती हुई दिखाई देती है। यही भावुकता उन्हें अपने जीवन में संघर्षों से जूझते रहने की प्रेरणा देती है। उनकी भावुकता का मूल उत्स उनकी ओजस्विता 'करुण' तथा अन्य प्रवृत्तियों में विद्यमान है।

उनके व्यक्तित्व का दूसरा सूत्र है— करुणा। वह करुणा राष्ट्रीय काव्यों में दीन-हीन, असहाय गरीबों एवं किसानों तथा पराधीन भारत-माता की स्थिति से उत्पन्न शोक की प्रतिक्रिया के रूप में विद्यमान है और आध्यात्मिक रचनाओं में भक्त की आत्म-दीनता के रूप में दृष्टि-

---

१-आरती, पृ ७६। २-वही, पृ० ५६।

गोचर होती है। उसका गहरा पुट उनके प्रबन्ध काव्यों में देखा जा सकता है।

पांडेयजी के कवि-व्यक्तित्व के तृतीय सूत्र के अन्तर्गत अनेक तत्वों को सम्मिलित किया जा सकता है। अपने जीवन में उत्पन्न विभिन्न परिस्थितियों से जिस तरह से कवि जूझता रहा, उसी तरह से उसके काव्य के पात्र प्रताप सिंह, रानी पद्मिनी और शिवाजी अपने विषम से विषम परिस्थितियों से जूझते रहे। छत्रपति शिवाजी ने तो अपने युग में प्रचलित सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के प्रति विद्रोह कर स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। यही जिजीविषा पांडेयजी के व्यक्तित्व का सशक्त सूत्र है। संघर्षों से वे लड़ना तो जानते हैं, पर उनके सामने झुकना उन्हें नहीं आता। पांडेयजो और उनके काव्य के चरितनायकों के जीवन में जिजीविषा, पुरुषार्थ, संघर्ष और ध्येयवाद समान तत्त्व हैं। पांडेयजी ने ब्रजभाषा के शृंगारपरक गीतों से ऊबकर वीर काव्यों का सृजन किया। संघर्षो से जूझते-जूझते उसने साहित्य-देवता के चरणों पर अनेक सुन्दर काव्य-सुमनों के हार समर्पित किये। कवि का यह उज्ज्वल रूप उन्हें गौरवान्वित करता है। कवि की ही स्वीकारोक्ति है कि—

'मैं वीर काव्य का अन्धड़ हूँ, तूफान बवन्डर हूँ।

× × ×

मैं रति की बन्द खिड़कियों को खड़खड़ा दिया करता।
ओछे गीतों के पावों को लड़खड़ा दिया करता॥
बदचलन हास की नयी उमर को, मैं समझाता हूँ।
वीभत्स भयानक के परदों पर चित्र बनाता हूँ॥
मैं शांत वीर को पास बिठाकर प्यार किया करता।
मैं अद्‌भुत करुण रौद्र का नित शृंगार किया करता॥

× × ×

मैं ग्रीष्म काल की प्यास बुझाता गरम लवंदर हूँ।
मैं काटों के घर में फूलों का हार बनाता हूँ।
साहित्य देवता के चरणों पर उसे चढ़ाता हूँ॥

\+ + +

मैं संघर्षों के बीच पला पर धिसकर मुड़ा नहीं।
मैं आर्य धर्म का वीर पुजारी: अलग अकेला हूँ।
चाहे कोई कुछ कहे मगर सबके मुह में ला हूँ॥"[1]

---

(१) 'एक अप्रकाशित रचना से उद्‌धृत'।

कवि का यह वीर रसाप्लावित व्यक्तित्व उसे हिन्दी के श्रेष्ठ व्यक्तित्व संपन्न कवियों की पंक्ति में गौरवास्पद स्थान दिलाता है और इस सत्य की भविष्यवाणी करता है कि पांडेयजी का काव्यरूपी यशः शरीर युग युग तक अक्षुण्ण रहेगा।

३) **काव्य-तत्वः—**

युग और व्यक्ति-तत्व के संयोग से ही पांडेयजी के काव्य तत्व का जन्म हुआ है। उनकी काव्य-धारा राष्ट्रीय; सांस्कृतिक; आध्यात्मिक, प्रेम आदि प्रवृत्तियों के क्षेत्र में प्रवहमान है। इनके अतिरिक्त, प्रबन्ध-काव्यों में कवि का प्रवन्धकार अपनी प्रतिभा विकीर्ण करता है। मुक्तकों या गीतों की अपेक्षा कवि ने प्रबन्ध काव्य-रूप को अपनी वाणी का वर्चस्व प्रदान किया है।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय की राष्ट्रीय प्रवृति का विवेचन 'हिन्दी की राष्ट्रीय कविता' के अन्तर्गत हो चुका हैं। उनके काव्य के सांस्कृतिक पृष्ठाधार पर सर्वांशेन दृष्टिपात करने पर निष्कर्ष यह है कि वे मानव-जीवन की संसिद्धि ध्येय, धर्म, त्याग, कर्तव्य और पुरुषार्थ में मानते हैं। धार्मिक दृष्टि से देखा जाय तो वे एक सहृदय भक्त हैं। राजनैतिक क्षेत्र में वे राजतंत्र के प्रति आस्था प्रकट करते हैं। पर वे प्रजापीड़क, शोषक और आततायी राजतंत्र को नहीं मानते। वे ऐसे राजतंत्र का नाश करना आवश्यक समझते हैं। उनके अनुसार प्रताप और शिवाजी जैसे शासकोंके नियंत्रण में समाज की सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए देश में परस्पर सामंजस्य, एकता सहिष्णुता एवं शिष्टाचार होना आवश्यक है।

पं० श्यामनारायण जी का वीर काव्य आधुनिक हिन्दी काव्य का सिरमौर है। उनका वीर काव्य स्वाभिमान, स्वातन्त्र-प्रियता, उत्साह, शौर्य साहस आदि से परिप्लावित है; जिसमें ध्येय प्राप्ति के लिए तपश्चर्या की भावना स्वर्ग-सुगन्धि उपस्थित करती है।

पं० श्यामनारायणजी के काव्य में रहस्य-भावना का प्रदर्शन भी भी मिलता है। उनके रहस्य-काव्य में भावना-पक्ष के साथ साधन-पक्ष की भी अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य में रहस्य सत्ता के प्रति जिज्ञासा, दर्शन की तीव्र आकांक्षा, सर्वव्यापकता की भावना और साक्षात्कार की अनुभूति आदि विभिन्न भावभूमियाँ मिलती हैं जिनमें अद्वैतवादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

पाडेयजी का प्रेम-काव्य अपनी निजी विशेषता रखता है। इसके मूल में दोनों जीवन-संगिनियों के विछुड़ जाने से कवि जीवन में आविर्भूत

विरह-व्यथा है। पत्नियों के वियोग में कवि तड़पता हुआ दिखाई देता है। यह वियोग वर्णन विप्रलंभ शृंगार नहीं, विरहजन्य चिर-वियोग होने के कारण करुण रस में परिणित हो गया है। पांडेयजी के काव्य में जो संयोग चित्र अंकित है, वे स्मृत्यनुभूति के आधार पर खड़े हैं। एक स्थान पर 'वासनाजन्य प्रेम की अभिव्यक्ति[1] को छोड़कर शेष स्थानों पर उनकी प्रेम भावना स्वस्थ और संयत है एक स्थानपर तो कविकी व्यक्तिगत-प्रेम भावना 'प्रियतम' चलो चलें उस पार, देखोमत मेरा शृंगार। ले लो हाथों में तलवार करना है मां का उद्धार।।[2]–का रूप धारण कर राष्ट्र प्रेम में परिणित हो गई है। इस प्रकार राष्ट्र के प्रति कवि की प्रेम-भावना उन्हें गौरवान्वित करती है।

प्रकृति के प्रति भी पांडेयजी ने गहरी प्रेम-भावना प्रदर्शित की है। उनके काव्य में प्रकृति कहीं स्वतन्त्र रूप में अंकित है तो कहीं आलम्बन विभावपरक रूप में, कहीं अलंकरण के रूप में तो कहीं उद्दीपन के रूप में। उनके काव्य में प्रकृति अधिकतर परिस्थिति या परिवेश की पृष्ठभूमि के रूप में अथवा मानवीय भावनाओं के रंग में रँगाकर आयी है। इस वर्णन में कवि ने अपनी भावुकता और काव्य-पटुता का अच्छा परिचय दिया है। इसे हम पांडेयजी की विशेषता कह सकते हैं।

उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त पांडेयजी के काव्य में वात्सल्य भाव से परिपूर्ण रचनाएँ भी मिलती हैं। यद्यपि ये संख्या में अत्यल्प है, किन्तु परिमाण की कमी या अधिकता काव्य अथवा कवि के श्रेष्ठत्व का मानदंड नही है। कवि की श्रेष्टता काव्य गत भावसौन्दर्य और अभिव्यक्ति-कौशल में है। एक स्थान पर तो कवि के अन्त स्थल में बैठी माता के हृदय का वात्सल्य अपने पुत्र के प्रति उमड़ कर बहने लगता है। इस स्थान पर[3] कवि की यथार्थ अनुभूति की स्वाभाविक एवं सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। दूसरे स्थान[4] पर यह मातृ-वात्सल्य शब्द ध्वनन-मात्र बनकर रह गया है, जिसमें कवि हृदय का भावोच्छ्वास कम मिलता है।

---

(१) "उठ रही मस्तिष्क में अब मधु-मिलन की कल्पनाएँ।
दिल ढला, सन्ध्या हुई जब तक जगी हैं वासनाएँ।। आरती पृ०५७।
(२) 'आरती'–पृ० ६०।
(३) "माखन खा खा दूध पियाकर भर भर गरम कटोरा।
चन्द दिनों में बन जायेगा तू चन्दा सा गोरा।।
रोने से सब ग्वाल हँसेंगे ले यह कौर सम्हाल।
खाले खाले मेरे लाल, खाले खाले रे गोपाल।।"
(एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत।)
(४) रे तुम थिरक–थिरक कर नाचो; रे तुम थैया–थैया नाचो। — आदि
(एक अप्रकाशित रचना से उद्धृत)

पांडेयजी की कवितामें हृदय का सहज आवेग है। वे वीर रस के श्रेष्ठ गायक हैं। उनके काव्य में वीर रसके उपरांत दूसरा स्थान आता है करुण रस का। वीर और करुण रस के अतिरिक्त उनके काव्यों में अन्य रसों का भी परिपाक मिलता है। राष्ट्रीय चेतना उनकी भाव-भूमि का प्रमुख तत्व है इसलिए उनके काव्य की प्रमुख प्रेरणा देश-भक्ति और देश-प्रेम से जुड़ी है। राष्ट्रीय भावना के अधिक्य और प्राबल्य के कारण छायावादी काल्पनिकता उनकी रचनाओं पर प्रभाव नहीं डाल सकी। यही कारण है कि वे अपने युग के छायावादी सौन्दर्य-दर्शन से अलिप्त रहकर सदा उपयोगितावादी कलाकी आराधना करते रहे। उपयोगितावादी कला और युग-धर्म से प्रभावित होने पर भी पांडेयजी में संवेदनीयता प्राप्त है और वह भावुकता के आवरण में वेष्टित हैं।

पांडेयजी की काव्य-कृतियों में कल्पना का वैभव दर्शनीय है। उनकी कल्पनाएँ सार्थक और बहुज्ञता की द्योतक हैं। जिनसे उनके काव्य को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है। तात्पर्य यह कि उनकी कल्पनाएं व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक और सटीक हैं।

जहां तक पांडेयजी की काव्य-शैलीका प्रश्न है; उनके काव्य साहित्य में लगभग सभी शैलियों का प्रयोग हुआ है। उनकी काव्य-शैलियां सहज, सरल, ओजस्विनी तथा सुबोध हैं। सीधी उक्ति और प्रवाहमयता उनकी शैली की विशेषताएँ हैं। उसमें कहीं भी अनगढ़पन तथा दुरूहता नहीं है।

पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने छन्दों के प्रयोग के सम्बन्धमें विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नये पुराने छन्दों के प्रयोग किये हें। विशेषता यह है कि कवि बिल्कुल स्वाभाविक गति से विषयानुकुल छन्दों का प्रयोग करता चलता है। उर्दू शैली के प्रभाव के कारण पांडेयजी के बहुत से छन्दों में एक प्रकार का गति प्रवाह मिलता है। तात्यर्य यह की पांडेयजी की छन्दयोजना सुव्यवस्थित एवं सफल है फिर भी उनमें यत्र तत्र यति भंग दोष रह गये हैं।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय ने सायास अलंकारों का सृजन नहीं किया। प्रत्युत् भावों की स्वाभाविक गति के प्रवाह में वे स्वल: रमणीयता उत्पन्न करने के लिए आ गये हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, अप्रस्तुत, योजना आदि के कारण उनका काब्य अलंकृत है। अलकारों की सुव्यबस्थित योजना में कवि ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। तात्पर्य यह है कि उनकी अलंकारयोजना काव्य गुणोचित और भाव सौन्दर्यवद्धक है।

काव्य भाषा के सम्बन्ध में पं० श्यामनारायणजी पांडेय की प्रधान विशेषता यह हैं कि उनका शब्द कोश व्यापक है। उसमें उर्दू, फारसी, संस्कृत, खड़ीबोली एवं देशज शब्द अपनाये गये हैं। कवि ने संस्कृत शब्दावली का भरसक प्रयोग किया है।, जिसके परिणाम स्वरूप उनकी भाषा योजना अधिकांशत- संस्कृत-निष्ठ होती चली गयी है। इसी प्रयोग के फल-स्वरूप उनकी काव्य भाषा में विकास तथा प्रौढता के दर्शन होते में। उर्दू फारसी के प्रचलित शब्दों को अपनाने से उनकी भाषा में एक प्रकार की चुस्ती आ गई है। शब्द चयन की इस प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा एक सीमा तक सरल, सजीव और भावाभिव्यक्ति में संपन्न है। फिर भी उनके काव्य में कहीं-कहीं द्विवेदी युगीन नीरसता एवं इतिवृतात्मकता के दर्शन होते हैं। इसे हम कवि की दुर्बलता कह सकते हैं, फिर भी कवि का भाव-प्रेषण विधान काफी सफल है। उनकी भाषा तथा शैली की अपनी दीप्ति है, जिसमें स्वाभाविकता तथा प्रभावोंत्पादकता परिप्लावित हैं पांडेयजी के काव्य में ओज की प्रगल्भता सर्वत्र अपने उत्कर्ष पर है। इस तरह से पं० श्यामनारायण जी पांडेय का काव्य-साहित्य पर्याप्त विस्तृत, प्रशस्त एवं समृद्धि है जिसमें विविधता के दर्शन किये जा सकते हैं।

४) प्रदेयः—

पं० श्यामनारायणजी पांडेय के कृतित्व के विश्लेषण के समय अनेक विषय अपनी महिमा-गाथा कहने के लिए हमारे सामने आते हैं। पांडेयजी ने अनेक रचनाओं का सृजन किया है जिनमें मानव-जीवन की नाना घट-नाओं, भावभूमियों, अनुभूतियों, चित्रों और वृत्तों को स्थान दिया गया है वे राष्ट्रीय भाव तथा वीर काव्य के पुरस्कर्त्ता हैं। उनके प्रबन्ध काव्य युगानुसार सामग्री को ग्रहण कर उसे अपने आख्यानों में स्थान देते रहे हैं। इस प्रकार उनका सर्जन रूप हिन्दी काव्य की गरिमा का पोषक है।

पांडेयजी की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक कृतियों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने काव्यों में समकालीन घटनाओं और तथ्यों को अतीत के माध्यम से व्यक्त कर उन्हें भावपरक रूप प्रदान किया है, अतः उनकी रचनाएं सामयिकता के मोह से वंचित शाश्वत एवं मूल्यवान कृतियां हैं।

उनका राष्ट्रीय काव्य एक ओर क्रांतिकारियों एवं सुभाष की वाणी के ओज को आत्मसात् करता है, तो दूसरी ओर सांस्कृतिक मूल्यों को भी अपना स्नेह प्रदान करता है। पुरुषार्थ और संस्कृति के स्पन्दन एव वर्चस्वी वाणी के स्वरों में परिपूर्ण होने के कारण पांडेयजी का काव्य अप्रतिम है।

हिन्दी की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य धारा के अन्तर्गत पं० श्यामनारायण जी पांडेय का महत्त्व यह है कि उन्होंने जो उत्कट देश प्रेम, ओजस्विता, क्रांतिकारी भावना, वीरता, कर्मतप, त्याग, आशावादिता तथा उज्जवल भविष्यकी आकांक्षा का विश्वास हमें दिलाया है, वह उन्हें हिन्दी के चिरन्तन साहित्य में उच्च स्थान प्रदान करता है। अतः उनके राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यों की अवहेलना करना एक महत्वपूर्ण एवं मार्मिक काव्य सामग्री से हिन्दी काव्य साहित्य को वंचित करना है। पांडेय जी ने अपने काव्य ग्रन्थों में राजनीतिक राष्ट्रीयता की अपेक्षा मानवतावादी सांस्कृतिक राष्ट्रीयता को अधिक प्रश्रय दिया है जिसके कारण उनके काव्य में स्थायित्व एवं उच्चतर मूल्यों के तत्व अपने आप आ गये हैं। इस उत्स से ही उनके स्वातंत्र्योत्तरकालीन रचनाओं में समाज; देश और मानव कल्याण की भावना का स्वर मुखरित हुआ है।

'हल्दीघाटी', 'जौहर' (प्रबन्ध काव्य), 'शिवाजी (महाकाव्य), 'तुमुल', 'गोरा–बध', 'जय हनुमान' खंडकाव्य का सृजन कर पं० श्यामनारायणजी पांडेय ने हिन्दी काव्य साहित्य को समृद्ध बनाया है। इन रचनाओं का अनेक दृष्टियों से कवि जीवन में महत्व है। 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' में प्रतापसिंह और रानी पद्मिनी के जीवन के युद्ध-प्रसंगों का चित्रण किया गया है। फिर भी ये युद्ध वर्णन युद्ध के सजीब एवं सांगोपांग चित्र प्रस्तुत करते हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। 'तुमुल', 'गोरा–बध एवं 'जय हनुमान' में समाज, देश तथा मानव के कल्याण की कामना हिलोरें ले रही है। इन कृतियों ने उन्हें भारतीय संस्कृति का प्रशंसक, देश भक्त और देश प्रेमी कवि प्रमाणित किया है।

कवि के राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य प्रवाह की सर्वाधिक उपलब्धि है 'शिवाजी' महाकाव्य इस कृति का कवि जीवन में बड़ा महत्वहै। इस महाकाव्य ने कवि को राष्ट्रीय जन–जीवन का गायक प्रमाणित कर दिया है। युग चेतना का जितना सम्यक, विस्तृत और प्रभावपूर्ण आकलन इस रचना में हुआ है वह उसकी अन्य कृतियों में नहीं है। स्वराज्य संस्थापक छत्रपति शिवाजी के महिमा-मण्डित व्यक्तित्व को लेकर हिन्दी में लिखे गये समग्र काव्यों में 'शिवाजी' महाकाव्य सर्वाधिक प्रभावपूर्ण है। युग की पृष्ठभूमि और शिवाजी के व्यक्तित्व का ऐसा ओजस्वी, प्रखर, उदात्त और भव्य विश्लेषण अन्यत्र दुर्लभ है। यह कवि पांडेय जी की हिन्दी काव्य को सबसे बड़ी देन है। यह इस परिपाटी की सिरमौर रचना है। विषय और काव्य दोनों दृष्टियों से इसका हिन्दी काव्य के इतिहास में अपना स्थान है।

पं० श्यामनारायण जी पांडेय ने अपने काव्य में प्रेम, रूप यौवन, शौंदर्य बिरहानुभूति आदि के जो मादक एवं मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किये हैं, वे हिन्दी की शृगार-परम्परा को समृद्ध करते है। कवि ने प्रेम को अपनी जीवनानुभूतियों से मण्डित किया है, जिसके कारण उनका प्रेम काव्य कवि जीवन की धड़कनों से परिप्लावित है।

पांण्डेय जी आध्यात्मिक एवं दार्शनिक काव्यों में उनके धार्मिक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक भावों का ज्ञापन हुआ है। उनकी ये रचनाएँ उन्हें आध्यात्मवादी, भावुक भक्त तथा दार्शनिक के रूप में उपस्थित करती हैं। उनकी यह दार्शनिक काव्य हिन्दी के अध्यात्मपरक काव्य साहित्य की श्रीवृद्धि करता है।

जिस तरह से कवि ने राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा को सपन्न बनाने के लिए साधना की है, उसी प्रकार उसने खड़ी बोली हिन्दी के विकास और उसकी समृद्धि में भी बड़ा योग दिया है। इससे उनके क्रिया-शील व्यक्तित्व का दर्शन प्राप्त होता है। पारम्परिक एवं मुक्त दोनों प्रकार के छन्दों को अपनाकर कवि ने नये और पुराने दोनों को लेकर चलने की अपनी विशेषता का परिचय दिया है। हिन्दी साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि में यह कवि का बहुमूल्य योग और चिरन्तन प्रदेय है।

कवि-भावना और कवि कर्म से बँधे हुए पांडेयजी की सबसे बड़ी विशेषता है यह है कि ये वादों के बंधनों से सर्वथा मुक्त हैं। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर लिखा है कि 'मैं किसी बाद के साथ हवा में बहका उड़ा नहीं।'[1] अपने अन्तर्मन की यह मुक्ति पाण्डेय जी के कवि जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसीलिए प्रारम्भ से लेकर वे अपनी प्रवृत्ति के अनुसार लिखते आ रहे है।

राष्ट्रीय भावना के सच्चे गायक, वीर रस के ओजस्वी कवि और सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के संरक्षक, प्रचारक और प्रसारक के नाते महाकवि पं० श्यामनारायण जी की काव्य बाणी युगवाणी होकर भी युग-युग की वाणी है। वे युगदृष्टा; युगसृष्टा, 'कविर्मनीषो परिभूः स्वयंभू' हैं। कवि के नाते वे ध्येयवाद और तपश्चर्या के लिए वंदनीय हैं-

'इतिहासों में, सोये वीरों को पुन; जगाता हूँ।
संस्कृत जन को वस में कर लेता मोहक मंतर हूँ ॥[2]

१–एक अप्रकाशित रचना से उदधृत। २–एक अप्रकाशित रचना से उदधृत।

परिशिष्ट--क

सन्दर्भ-साहित्य-सूची

(प) हिन्दी

(१) अकबर की जीवनी विसेंट स्मिथ (२) अकबर महान (३) अनघ, मैथिलीशरण गुप्त ८ वां सं०, २०१४ वि०, साहित्य सदन चिरगांव, झांसी (४) अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, तृतीय सं० १९६६ ई० लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद (५) अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी, डा० किशोरी शरण लाल यह शोध प्रबन्ध अब प्रकाशित हुआ है (६) आरती पं० श्यामनारायण पाण्डेय, प्रकाशक आदर्श पुस्तक भवन काशी, प्र० स०, २००३ वि० (७) आर्त्त कृषक, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', प्रताप कार्यालय कानपुर प्र० सं० १९१६ ई० (८) आत्मोत्सर्ग; सियाराम शरण गुप्त; साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी तृ० सं० (९) आल्हाखंड; प्रकाशक नवल किशोर लखनऊ ८ वां सं० (१०) आधुनिक कवियों के काव्य सिद्धांत; सुरेशचन्द्र गुप्त १९६० ई० हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली (११) आधुनिक कवि; गोपाल शरण सिंह; दुर्गाशंकर मिश्र, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ प्र० सं० (१२) आधुनिक काव्य धारा, केसरी नारायण शुक्ल, प्रकाशक नन्दकिशोर एन्ड सन्स, वाराणसी ५ वां स० १९६९ ई० (१३) आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत, केसरी नारायण शुक्ल, प्र० सं०, नन्द किशोर एण्ड सन्स, वाराणसी (१४) आधुनिक समीक्षा, डा० देवराज, प्र० सं० १९५१ ई० (१५) आधुनिक साहित्य; रामगोपाल सिंह चौहान, १९६५ ई० का० स० विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (१६) आधुनिक साहित्य, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ४ था सं० (१७) आधुनिक हिन्दी; कविता में राष्ट्रीय भावना सुधाकर शंकर कलवडे, प्र० सं० १९७३ ई० प्रकाशक पुस्तक संस्थान १०९/५ ए नेहरू नगर कानपुर १२ (१८) आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद, १९५५ ई० का प्रकाशन, आगरा बुक स्टोर, आगरा (१९) आधुनिक हिन्दी साहित्य, लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, द्वि० सं०, १९४८ ई०, हिन्दी साहित्य परिषद, इलाहाबाद वि० वि० (२०) आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, वीणा शर्मा, प्र० स० १९५९ ई० अनुपम प्रकाशन चौड़ा रास्ता जयपुर ३ (२१) आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ

डा० नगेन्द्र, तृ० सं० १९६६ ई० नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली (२२) उन्मुक्त, सियारामशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगांव झांसी प्र० सं० (२३) ओझा निवन्ध संग्रह, भाग १ गौरीशंकर होराचन्द ओझा प्र० सं० १९४४ ई० साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (२४) ओझा निबन्ध संग्रह, भाग २ गौरीशंकर हरिाचन्द ओझा, प्र० सं० १९४४ ई० साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर (२५) औरंगजेब, सर जदुनाथ सरकार, प्र० सं० १९५१ ई०, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई ४ (२६) कल्पलता, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', प्र० सं० (२७) कविता कुसुम माला, लोचन प्रसाद पाण्डेय, प्रकाशक मिश्र बन्धु कार्यालय, जबलपुर ४ था सं० (२८) कवि और काव्य शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रकाशक इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद तृतीय सं० (२९) काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, प्रतिभा प्रकाशन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, छठवां सं० (३०) काव्यकल्पद्रुम, कन्हैया लाल पोद्दार, पंचम संस्करण (३१) काव्य दर्पण, पं० रामदहिन मिश्र, ग्रन्थ माला कार्यालय पटना, ५ वाँ सं० १९७० ई० (३२) काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, शकुतला दुबे, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९६४ ई० (३३) काव्य विमर्श, बाबू गुलाब राय, प्रतिभा प्रकाशन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ४ था सं० १९५३ ई० (३४) काव्य शास्त्र, भगीरथ मिश्र, विश्व विद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, तृतीय सं० (३५) कांग्रेस का इतिहास, पट्टाभि सीतारा मैया, प्र० ख०, ५ वां सं० सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली (३६) किसान मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव झांसी, चतुर्थ सं०, वि० २०११ (३७) 'कुमार संभव', सान्वय प्रकाश, प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी-१, प्र० सं०, सन् १९७० ई० (३८) कुरुक्षेत्र रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल प्रकाशन, पटना, २० वाँ सं०, सन् १९७२ ई० (३९) कुँकुम, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', विद्यार्थी प्रकाशन मन्दिर, कानुपुर, प्र०सं० सन् १९३९ ई० (४०) कृषक क्रन्दन, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', प्रताप कार्यालय, कानपुर, प्र० स० १९१६ ई० (४१) गद्यकार बालमुकुन्द गुप्त, जीवन और साहित्य, डा० नत्थन सिंह, प्र०सं० (४२) गांधी विचार दोहन, किशोरीलाल मशरूवाला, सस्ता साहित्य मंडल, प्र० सं० (४३) गीतावली, तुलसीदास,, गीता प्रेस, गोरखपुर, दशम संस्करण सं० २०१९ (४४) गुप्तजी की कला, सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, ५ वां सं०, २००१ वि० (४५) गुरुकुल, मैथिलीशरण, गुप्त साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, संस्करण २०१४ वि० (४६) गोरा बादल की कथा, कवि जटमल, (संपादक अयोध्या

प्रसाद शर्मा) तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय, प्रयाग प्र० सं० (४७) गोरा वध, पं० श्यामनारायण पाण्डेय, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, चौक बनारस, सन् १६५८ ई० (४८) चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, द्वि० सं०, सन् १६२४ ई० (४६) छायावाद के गौरव चिह्न, डा० क्षेम, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, सन् १६५६ ई० (५० 'जयद्रथ वध', मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, ४८ वां सं०, सं० २०१६ (५१) जय हनुमान, पं० श्यामनारायण पाण्डेय, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहाबाद, द्वादश संस्करण, सन् १६५६ ई० (५२) जाग्रत भारत, पं० माधव शुक्ल, प्र० सं० (५३) जातीय कविता, सम्पादक नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्स, आर्य बुक डिपो, प्र० सं० सन् १६२१ ई० (५४) जायसी ग्रन्थावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ४ था० सं० (५५) जायसी ग्रन्थावली (सटीक) रामनिवास शर्मा, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, प्र० सं०, सन् १६६२ ई० (५६) जौहर, पं० श्यामनारायण पाण्डेय, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, वाराणसी, पंचम संस्करण, सन् १६७० ई० (५७) तुमुल पं० श्यामनारायण पाण्डेय, दी इन्डियन प्रेस लि० इलाहाबाद, सन् १६२८ ई० (५८) तुलसी ग्रन्थावली प्रकाशक ना० प्र० सभा, वाराणसी (५६) दादूदयाल की बानी, दादूदयाल प्रकाशक वे० प्रे० इलाहाबाद (६०) दिल्ली सल्तनत, ए० एल० श्रीवास्तव, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा (सशोधित संस्करण) (६१) द्विवेदी काव्य माला, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, प्र० सं० (६२) द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य डा० रामसकल राय शर्मा, अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर-३ प्र० स० सन् १६६६ ई० (६३) द्विवेदी साहित्य : आचार्य द्विवेदी, शिव-नारायण खन्ना, प्र० सं० (६४) दोहावली, तुलसीदास, (अनु० हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, १६ वाँ स., सं. २०१६ (६५) नया हिन्दी काव्य, शिवकुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सन् १६६२ ई० (६६) नहुष, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, १६ वां सं, २०२४ वि. (६७) नूरजहाँ, गुरुभक्त सिंह, ११ वां सं. (६८) पथ प्रमोद; अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी--१, प्र. सं. (६६) पथिक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, ५३ वां स., सन् १६७२ ई० (७०) पद्म प्रसून, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, प्र. सं. (७१) पद्म पुंज : पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', सम्पादक--रामाज्ञा द्विवेदी समीर, दत्त ब्रदर्स,

अजमेर, प्र. सं., सन् १६३३ ई० (७२) पद्म पुष्पांजलि, रूपनारायण पांडेय, गंगा पुस्तक कार्यालय, लखनऊ, प्र. सं. १६१२ ई० (७३) परशुराम की प्रतीक्षा, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल प्रकाशन, पटना, प्र.सं. (७४) पराग; रूपनारायण पाण्डेय, प्र. सं. (७५) पलटू साहिब की बानी--पलटू दास भाग २, वे. प्रे. इलाहाबाद (७६) पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी, १४ वां सं., वि. १६१६ (७७) पारिजात; अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य कुटीर, हाथी गली, वाराणसी-१ द्वि. सं. (७८) प्राचीन साहित्य, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, इन्डियन प्रेस लि० इलाहाबाद, प्र. सं. (७९) प्रिय प्रवास, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, ११ वां. सं. (८०) प्रिय प्रवास (आलोचनात्मक अध्ययन), ओमप्रकाश सिंघल, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली प्र. सं., १६६२ ई. (८१) पूजा फूल, मुकुटधर पाण्डेय, प्र. सं. (८२) पूर्ण पराग, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण'--इन्डियन प्रेस लि., इलाहाबाद, प्र. स. (८३) पूर्ण संग्रह, रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण', इन्डियन प्रेस लि., सं. सन् १६२१ ई. (८४) पूर्व आधुनिक राजस्थान, रघुवीर सिंह, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्या पीठ, उदयपुर, प्र. सं. (८५) प्रेमघन सर्वस्व, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्र. भा. हिन्दी सा. स. प्रयाग, प्र. सं. (८६) पृथ्वीराज रासो, चन्दबरदाई, भाग ३, ना. प्र. स. काशी

(८७) बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्ति और काव्य, लक्ष्मी नारायण दूबे, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्र. सं. १६६४ ई. (८८) बापू, सियाराम शरण गुप्त, साहित्य सदन- चिरगांव झाँसी, ४ था. सं. (८९) भारत गीत, पं. श्रीधर पाठक, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, संपादक, दुलारे लाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, प्र. सं (९०) भारत गीतांजलि. पं० माधव शुक्ल, प्रकाशक-आर. सी. शुक्ल, इलाहाबाद-पंचम संस्करण (९१) भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास; मन्मथनाथ गुप्त, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सन १६६० ई. (९२) भारतीय दर्शन; दत्त एवं चट्टोपाध्याय, प्र.स. (९३) भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त-साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी २५ वाँ सं. (९४) भारतीय संस्कृति का विकास, मंगलदेव शास्त्री, तृतीय सं., भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली (९५) भारतीय संस्कृति और उसका विकास, डा. सत्यकेतु; सरस्वती सदन- जवाहर नगर दिल्ली (९५) भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति- डा. सुषमा नारायण, हिन्दी साहित्य संसार, नई दिल्ली-७, प्र.सं., सन् १६६६ ई. (९७) भारतेन्दु ग्रंथावली-भाग १।२, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रकाशक, ना.प्र.स. काशी (९८) भारतेन्दु

साहित्य, रामगोपाल सिंह (६६) भूषण, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्र.सं. (१००) भूषण ग्रंथावली, पं. विश्वनाथ नाथ मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन ब्रह्मनाल, वाराणसी-६, तृतीय आवृत्ति, संवत् २०१६ (१०१) भूषण भारती, संपादक- हरदयालु सिंह, इन्डियन प्रेस प्रा.लि., प्रयाग, प्रथमावृत्ति (१०२) भूषण साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अनुशीलन, डा. भगवानदास तिवारी, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, प्र.सं. १६७२ ई. (१०३) भूषण और उनका साहित्य- डा. राजमल बोरा, प्रकाशक विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्र.सं. १६६८ ई. (१०४) महाकवि हरिऔघ का प्रिय प्रवास- धर्मेन्द्र शास्त्री, रामनारायण लाल बेनीमाधव, तृतीय संस्करण (१०५) महाकवि हरिऔध विशेषांक- संपादक- महेन्द्र, साहित्य संदेश कार्यालय, आगर (१०६) मर्मस्पर्श- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, प्र.सं. (१०७) महाराणा प्रताप स्मृति ग्रंथ- संपादक- देवीलाल पालीवाल, साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, प्र.सं. सन् १६६६ ई. (१०८) महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग- उदयभानु सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ-प्र.स २००० वि. (१०६) मनोविनोद- पं. श्रीधर पाठक (११०) मानस मीमांसा–रजनीकांत शास्त्री (१११) माखनलाल चतुर्वेदी: व्यक्ति और काव्य—रामखिलावन तिवारी, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, संस्करण-१६६६ ई. (११२) माघवी–गोपाल शरण सिंह, इन्डियन प्रेस- इलाहाबाद, १६३८ ई. (११३) मानसी–रामनरेश त्रिपाठी- हिन्दी मन्दिर प्रयाग द्वितीय स. सन् १६३४ ई. (११४) मिलन–रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर प्रयाग ५वाँ सं. (११५) मेवाड़ गाथा–लोचन प्रसाद पांडेय, प्र.स. १६१४ ई. (११६) मेवाड़ का सक्षिप्त इतिहास- देवनाथ पुरोहित, प्र.स. (११७) मैथिलीशरण गुप्त: कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- उमाकांत गोयल नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली; द्वि. स. १६६४ ई. (११८) मैथिली—शरण गुप्त व्यक्ति और काव्य– कमलाकांत पाठक. रणजीत प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली सन् १६६० ई.। (११६) मौर्यविजय– सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव झाँसी प्र.स. २०२५ वि. (१२०) मंगलघट- मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगांव झाँसी, प्र. स. १६६४ वि. (१२१) यशोघरा–मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, वि. २०२८ (१२२) रणचण्डी- विश्वनाथ पाठक, रामनारायणलाल बेनी–माधव, इलाहाबाद, प्र.स. १६६२ ई. (१२३) रस-मीमांसा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (१२४) रसज्ञ रंजन-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती

पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, प्र.स. [१२५] राजविलास- मान, ना.प्र. स. काशी, प्र.स. [१२६] राजपूताने का इतिहास, भाग २- गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, वैदिक यंत्रालय अजमेर, १९२३ ई. [१२७] राजपूताने का इतिहास-जगदीश सिंह गहलौत- हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर प्र. स [१२८] राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास-सुखवीर सिंह गहलौत, प्र. स. [१२९] राजस्थान का इतिहास- जेम्स टॉड, प्र.स. [१३०] राजस्थान का इतिहास, बी.एम. दिवाकर-कृष्णा ब्रदर्स-अजमेर-प्र.स., सन् १९७२ ई. [१३१] रामचरित मानस- तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, दशम स. संवत् २०२० [१३२] राजनीति के मूल तत्व-एनलाइट पब्लिशर्स प्रा.लि. आसफअली रोड, नई दिल्ली-१, प्र.स. [१३३] राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य रामेश्वर शर्मा [१३४] राष्ट्र भारती- रामचरित उपाध्याय, राष्ट्रीय शिक्षा ग्रंथमाला, प्र.स. [१३५] राष्ट्रीय मंत्र–गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'- प्रताप कार्यालय, कानपुर, १९२१ ई.- प्र. स. [१३६] राष्ट्रीय सिंहनाद- गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' प्रताप कार्यालय, कानपुर, प्र.स. [१३७] राष्ट्रीय तरंग– भगवन्नारायण भार्गव, प्र. स. [१३८] राष्ट्रीय गीत- जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, प्र.स. [१३९] रूपान्तर- पं. श्यामनारायण पांडेय, इन्डियन प्रेस लि० प्रयाग, प्र. स. सन् १९४८ ई. [१४०] रंग में भंग–मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव झाँसी १२वाँ स. [१४१] वीर काव्य-उदयनारायण तिवारी, भारती भाडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ.स. संवत् २०२१ [१४२] वांङ्मय विमर्श– प. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस प्र.स. (१४३) शिवाजी (महाकाव्य)– पं. श्यामनारायण पांडेय, रामनारायण लाल बेनी–माधव, इलाहाबाद-२, प्र.स. १९७० ई. [१४४] शिवाजी (इतिहास ग्रंथ) भीमसेन विद्यालंकार, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-५ वाँ स. सन् १९६९ ई. [१४५] शिवाजी (इतिहास ग्रंथ) सर यदुनाथ सरकार हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई [हिन्दी संस्करण] स प्र. [१४६] शंकर सर्वस्व-नाथूराम शर्मा 'शंकर' संपादक- हरिशंकर शर्मा- गयाप्रसाद एण्ड सन्स- आगरा, प्र. स. संवत् २००८ [१४७] समीक्षा शास्त्र- दशरथ ओझा, प्र.स. १९५५ ई. [१४८] सत्यार्थ प्रकाश-अष्टम समुल्लास, विरजानन्द वैदिक संस्थान-गाजियाबाद, द्वितीय स. [१४९] साकेत- मैथिलीशरण गुप्त- साहित्य सदन चिरगांव झाँसी, संवत् २०१२ [१५०] साहित्य का श्रेय और प्रेय-जैनेन्द्र कुमार [१५१] साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश-राजेन्द्र द्विवेदी, आत्माराम एण्ड सन्स, १९५५ ई. [१५२] साहित्यिक निबन्ध–लक्ष्मीनारायण सुधांशु, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९६४ ई. [१५३]

सिद्धराज- मैथिलीशरण गुप्त- साहित्य सदन चिरगांव झांसी २७वां स. २०२४ वि. [१५४] सियाराम शरण गुप्त-डा. नगेन्द्र, नैशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली द्वि.स. १९६५ ई. [१५५] सुजान चरित्र- सूदन, ना.प्र.स. काशी प्र. स. [१५६] सूर की झांकी- डा. सत्यकेतु, प्र. स. १९५६ ई. [१५७] सूरसागर-सूरदास 'दशम स्कन्ध' ना.प्र.स. काशी [१५८] संचिता गोपालशरण सिंह- इन्डियन प्रेस प्रा.लि. इलाहाबाद १९३९ ई. [१५९] संस्कृत आलोचना- बलदेव उपाध्याय- सूचना विभाग उत्तर प्रदेश प्र.स. [१६०] संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल प्रकाशन पटना- तृतीय स. १९६२ ई. [१६१] सिंह शिवाजी- जगदीश प्रसाद तिवारी, जगदीश ग्रंथमाला कार्यालय- चौक कानपुर ४था स. [१६२] स्वतंत्रता और संस्कृति- राधाकृष्णन् सन्मार्ग प्रकाशन १६ यू.बी. बेंगलो रोड दिल्ली ७ [१६३] स्वप्न- रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर प्रयाग १९४४ ई. [१६४] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य- देवीप्रसाद गुप्त गाडोदिया पुस्तक भण्डार, बीकानेर प्र.स. १९७३ ई. [१६५] स्वदेश संगीत- मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगांव झांसी १९८२ वि. [१६६] स्वदेशी कुडंल- रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' प्र. स. [१६७] हल्दीघाटी- पं. श्यामनारायण पांडेय- इन्डियन प्रेस लि. प्रयाग पंचमा वृत्ति सन् १९४६ ई. [१६८] हमारे राष्ट्रीय जीवन की परम्परा- उमाकांत केशव आपटे सन् १९५१ ई.]१६९] हरिश्चन्द्र-रत्नाकर, ना. प्र.स. काशी प्र. स. [१७०] हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- हिन्दी साहित्य ससार, दिल्ली प्र.स. सन् १९५९ ई. [१७१] हिन्दी कविता में युगान्तर-डा. सुधीन्द्र, आत्माराम एन्ड सन्स, दिल्ली प्र. स. सन् १९५७ ई. [१७२] हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव- रवीन्द्र सहाय वर्मा, पद्मा प्रकाशन, कानपुर, सन् १९५४ ई. [१७३ हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास- भगीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ तृतीय स. सन् १९६६।६७ ई. [१७४] हिन्दी काव्य शैलियों का विकास- हरदेव बाहरी. भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद प्र.स. सन् १९५७ ई. [१७५] हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना- विद्यानाथ गुप्त, भारतीय मन्दिर, रामनगर दिल्ली-१ प्र. सं. सन् १९६६ ई. [१७६] हिन्दी गद्य रत्नावली- संपादक, लक्ष्मीचन्द्र खुराना- नैशनल पब्लिशिग हाऊस, दिल्ली प्र.स. सन् १९६७ ई. [१७७] हिन्दी गद्य के निर्माता: पं. बालकृष्ण भट्ट-राजेन्द्र मिश्र विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, सन् १९५८ ई. [१७८] हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन, लक्ष्मीनारायण गुप्त, विश्वविद्यालय प्रकाशन- लखनऊ- प्र.स. सन् १९६१-६२ [१७९]

हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास- शंभुनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्त-कालय, वाराणसी-१ द्वि. स. १६६२ ई. [१८०] हिन्दी विश्वकोश-नगेन्द्र नाथ बसु, कलकत्ता, सन् १६३० ई. [१८१] हिन्दी वीर काव्य-टीकम सिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, प्र .स. सन् १६५४ ई. [१८२] हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां- जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर-आगरा अष्टम स. सन् १६७१ ई. [१८३] हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष- शिवदान सिंह चौहान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली सन् १६५४ ई. [१८४] हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास- 'रीतिकाल' नगेन्द्र, ना.प्र.स. वाराणसी प्र.स. २०२५ वि. [१८५] हिन्दी साहित्य कोश- धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमंडल लिमिटेड वाराणसी प्र.स. [१८६] हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, ना.प्र.स. काशी १६वां स. २०२५ वि. [१८७] हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास- क्रांतिकुमार शर्मा, नवयुग प्रकाशन १३७ मालवीय नगर, भोपाल प्र. स. १६७० ई. [१८८] हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव- सरनाम सिंह- रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, प्र.स. सन १६५२ ई. [१८६] हिन्दू—मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन चिरगांव झांसी, ४था स. ।

(फ) मराठी

[१] अफजलखानाचा वध- वि.ल. भावे, प्रकाशक- गो.स. पलसुले, भारत स्वयं सेवक मंडल, पुणें, शके १८४३ [२] ऐतिहासिक फारसी साहित्य खंड ६ वा- औरंगजेबाच्या दरबाराचे अखबार, संपादक- डा० ग.ह. खरे, प्रकाशक, भारत इतिहास संशोधक मंडल, पुणें, सन १९७० [३] कृष्णाजी अनंत सभासदाची बखर- छत्रपति श्री शिवप्रभूचे चरित्र, संपादक- वि.स. वाकसकर, प्रकाशक- व्हीनस प्रकाशन, पुणें २, तीसरी आवृत्ति [४] तेजस्वी परशुराम- पं. दा.प्र. पाठक शास्त्री, प्रकाशक- वोरा अँन्ड कम्पनी पब्लिशस, प्रा लि. मुम्बई २, प्रथमावृत्ति, सन १९७० [५] तेजस्वी परशुराम- बाबूराव पारखे, प्रकाशक- ज.आ. मोंडकर, भटवाडी, नं. २; गिरगांव, मुम्बई ४ [६] भावार्थ रामायण [७] मराठ्यांची बखर (हिस्ट्री आफ दि मराठाज्- कँप्टेन ग्रेण्ड डफ) भाषान्तरकार- कँप्टन डैविड केपन, प्रकाशक सरकारी छापखाना, मुम्बई, भाषान्तर सन १८३० ई. [८] मराठ्यांचे साम्राज्य- राजाराम विनायक ओतुरकर, प्रकाशक- अनाथ विद्यार्थी गृह प्रकाशन, पुणें २. प्रथमावृत्ति सन १९३७ [९] मराठी रियासत, भाग १, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, प्रकाशक- केशव भिकाज़ी ढवले, गिरगांव, मुम्बई, सन १९३५ [१०] मल्हारराव चिटणीस विरचित शककर्ते श्री शिव छत्रपति महाराज यांचे सप्त प्रकरणात्मक चरित्र, संपादक व प्रकाशक काशीनाथ नारायण साने, कल्याण, प्रथम आवृत्ति सन १९२४ [११] मुलाँचा महाराष्ट्र- गोविन्द अनन्त मोडक, प्रकाशक, स्वयं, पुणें, तीसरी आवृत्ति, सन १९२१ [१२] शिवकालीन पत्र सार संग्रह, खंड १, संपादक- न.चि. केलकर व दत्तात्रेय विष्णु आपटे, प्रकाशक- शिवचरित्र कार्यालय, पुणें, सन १९३० [१३] शिवकालीन पत्र सार संग्रह, खंड २, संपादक- न.चि. केलकर व द.वि. आपटे, प्रकाशक- शिवचरित्र कार्यालय, पुणें सन १९३० [१४] शिवकालीन शकावली- शं.ना. जोशी, प्रकाशक- भारत इतिहास संशोधक मंडल पुणे, सन १९३७ [१५] शिवचरित्र निबन्धावली- न.चि. केलकर व द.वि. आपटे, शिवचरित्र कार्यालय, पुणें शके १८५१ [१६] शिव-चरित्र प्रदीप- सं.द. वि० आपटे व स.म दिवेकर, प्रकाशक-भारत इतिहास संशोधक मंडल पुणें, शके १८४७ [१७] शिवचरित्र वृत्तसंग्रह- खंड ३, संपादक- डॉ० ग०ह० खरे, प्रकाशक- भारत इतिहास संशोधक मंडल, पुणें सन १९४१ [१] शिवचरित्र साहित्य खंड-खंड २, भारत इतिहास संशोधक मंडल, पुणें, स्वीय ग्रंथमाला, क्रमांक ३३, सन १९३० [१९] शिवचरित्र साहित्य खंड ४, भारत इतिहास संशोधक मंडल, स्वीय ग्रंथमाला, क्रमांक

३८, सन १६३४ (२०) रुद्रवाणी- जीवन किर्लोस्कर प्रकाशन, संपादक- जीवन किर्लोस्कर, कार्यालय- राममंदिर, १ ला मजला, सरदार रास्ते यांचा वाडा, ४६६ रास्ता पेठ, पुणे ११, वर्ष १ अंक २२, १ मे १६७० ।

(ब) संस्कृत—

(१) अग्निपुराण (२) अथर्ववेद (३) अध्यात्म रामायण (४) अमर काव्य (५) ऐतरेय ब्राह्मण (६) ऋग्वेद (७) कठ उपनिषद (८) काव्यादर्श (६) काव्यालंकार (१०) कौटिलीय अर्थशास्त्र (११) काव्यानुशासन (१२) धनुर्वेद संहिता (१३) नारदपांचरात्र (१४) प्रतापरुद्रयशो भूषण (१५) प्रसन्नराघव (१६) मनुस्मृति (१७) महाभारत (१८) यजुर्वेद (१६) रसगंगाधर (२०) राजप्रशस्ति (२१) विष्णु धर्मोत्तर (२२) विष्णुपुराण (२३) वाग्भटालंकार (२४) वाल्मीकि रामायण (२५) शतपथ ब्राह्मण (२६) शिवभारत (२७) सह्याद्रिखंड, नागाव्हयमाहात्म्य (२८) साहित्य दर्पण (२६) हनुमन्नाटक (३०) श्रीमद् भगवत् गीता

परिशिष्ट–ख–स्फुट सन्दर्भ

(य) पत्र पत्रिकायें—

(१) इन्दु (२) चित्रमय जगत्-अक्टू० १६१८ ई० (३) त्याग भूमि, अजमेर, ज्येष्ठ १६८६ वि० (४) त्याग भूमि-अजमेर-१६८५ वि० (५) प्रभा (६) माधुरी (७) शारदा–मई १६२१ ई० (८) सरस्वती–दिस० १६०५ ई० (६) सरस्वती–जुलाई १६०३ ई० (१०) सरस्वती–नव० १६०७ ई० (११) सरस्वती–अक्टू० १६०५ ई० (१२) सरस्वती–अगस्त १६१८ ई० ।

(र) संकलन—

(१) कविता कौमुदी–पं० रामनरेश त्रिपाठी (२) कीर्तिलता–विद्यापति–संपादक–डा० बाबूराम सक्सेना, १६८६ वि० (३) राष्ट्रीय वीणा–कानपुर, प्र० भा०, पंचम सं० (४) वतन के गीत–विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं० (५) वीर विनोद–कविराज श्यामल दास, भाग १/२(६) वंश भास्कर कवि सूर्य मल्ल, राजस्थानी काव्य (७) सन्त सुधासार–संपादक वियोगी हरि, १६५३ ई० (८) महापुराण–पुष्पदन्त सं० डा० पी० एल० वैद्य, प्र० भा०, १६३६ ई० ।

———

(भ) अंग्रेजी

1–A History of Indian Literature, vol. I Calcutta, Winternitz, 1927.
2–A Grammer of Politics, Harold J Laski, 1951 Ed.
3–Burton's Dictionary of Universal Information Edited by George R. Emeson, New Edn.
4–English Records on Shivaji. (1959–1982) Shiva Charitra Karyalaya, Published by N.C. Kelkar, Sadashiva, Poona, 1931.
5–English Epic and Heroic Poetry Dixon. London 1912.
6–Encyclopaedia Britanica-vol. X X William Benton, Publisher London 19th Edn.
7–Foundation of Modern Common Wealth, Prof. Holecombe, 1923 Edn.
8–Hindu yods and Heroes, London, 1922 End. Burnet.
9–History of India, R. C. Majumdar, 2nd Edn.
10–History of Aurangzeb–Sir Jadudnath Sarkar. val. I, M. C. Sarkar and Sons, 75, Harrison Road. Calcutta, 1912
11–International Law : Philimore, vol. I. 3rd Edn.
12–International Encyclpaedia of the Social Sciences, Macmillan and Free Press, Devid L. Sills, vol. III,
13–India What Can It Teach Us. Max Mullar.
14–Jedhe Chronology–Translated by Sir J. N. Sarkar is in Corporated in Shivaji Souvenir. from Page No I to 38
15–Maharashtra State Gazetteer History (Maratha Period) Part III, The Director Govt. Printing Stationary and Publications, Maharashtra State Bombay 4. 1967.
16–Marxism and Question of Nationalites Stalin j
17–Mewad and the Mugal Emperors–Dr. Gopinath Sharma.
18–Nationality in History–J. Holland Rose,
19–Nationalism and Internationalism. Cha. II. 1918 Edn., Muir.
20–New History of the Marathas–G. S. Sardesai vol. I. First Impression, Published by K. B. Dhawale for Phoenix, Publications, Chitra Bazar, Bombay 2, 1946.
21–Political Science and Constitutional Law vol. I.

22–Political Science–R. G. Gettel, 3rd Edn. 1954
23–Principles of Political Science–R. N. Giilchrist. sixth Edn. 1952
24–Principles of Literary Criticism–I. A. Richards 13th Edn.
25–Rajasthani Records–J. N. Sarkar.
26–Race in Europe–Huxley J.
27–Representative Indians–Rameshwaram Pilliai, 2nd Edn.
28–(Swami Vivekanand's Appeal to his countrymen) Quoted in Selection from Vivekanand. 3rd Edn. (Translated from Bengali script)
29–Shivaji and His Times–J. N. Sarkar, Fourth Edn., S. C. Sarkar and Sons Ltd. College Square, Calcutta 1948.
30–Shivaji Souvenir–Published by K. B. Dhawale Girgaun, Bombay, 1927.
31–Shivaji the Great–Balkrishana, Part I, D. B. Tara Porewalla Sons and Co., Kitab Mahal, Hornby, Road Bambay 1932
32–Studies in Rajput History–Dr. K. N. Kanungo.
33–The Columbia Encyclopeadia-Columbia University, 19th Edn. 1946.
34–The Deliverance or the Escape of Shivaji the Great from Agra-Baba Saheb Despande, 1st Edn. Pnblished by Rao Saheb G. K. Despande, Vishram Dham, Deccan Gymkhana Post Poona 4, 1929.
35–The Discovery of India, New York, Jhon Ray Co. 1946. J. L. Nehru.
36–The Epic-Abercrombie Laselles-London, 1922 Edn.
37–The English Epic and Heroic Poetry, London, 1922 Edn.
38–The Grand Rebel-Dennis Kincaid Published by Collins, Forty-Eight Pall Mall, London, 1937.
39–Theory of Modern State-J. K. Bluntschli, 3rd. Edn.
40–Thughts on Pakistan-B. R. Ambedkar, 1941 Edn.
41–The Prophets of the New India-Roman Rolland (Translated by E. F. Malcolm Smith), 1930 Edn.

कृति--क्रम

कृतियां	प्रकाशन-वर्ष	प्रकाशक
(१) त्रेता के दो वीर (खण्ड काव्य)	१९२८	स्व० सत्यनारायण पाण्डेय, रामप्रकाश, काशी
(२) माधव	१९३०	माधव संस्कृत महाविद्यालय काशी
(३) आँसू के कण	१९३२	,, ,,
(४) रिमझिम	१९३४	,, ,,
(५) हल्दी घाटी (महा काव्य, देवपुरस्कार प्राप्त)	१९३९	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद
(६) जौहर (महाकाव्य, द्विवेदी पुरस्कार प्राप्त)	१९४४	मनोहर प्रकाशन, के ०१४/४ जतनबर, बाराणसी-१
(७) आरती (संकलन)	१९४६	आनन्द पुस्तक भण्डार, पहड़िया वाराणसी कैन्ट
(८) रूपान्तर (कुमार सम्भव के सप्तम् सर्ग तक का अनुवाद)	१९४८	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद
(९) जय हनुमान (खण्डकाव्य, राजकीय पुरस्कार उ. प्र.)	१९५६	प्रहलाद दास, साहित्य संस्थान २८(४४)लाउदर रोड, इलाहाबाद
(१०) गोरा-वध (खण्डकाव्य)	१९५६	मनोहर प्रकाशन, वाराणसी
(११) तुमुल (त्रेता के दो वीर)	१९५८	इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद
(१२) शिवाजी (महाकाव्य, राजकीय पु० प्राप्त उ. प्र.)	१९७०	रामनारायणलाल बेनीमाधव, कटरा-२, इलाहाबाद
(१३) बालि-वध (खण्डकाव्य)	१९७५	अशोक कुमार अग्रवाल, अशोक निवास, जीरो रोड, इलाहाबाद
(१४) वशिष्ठ (खण्डकाव्य)	१९७५	प्रहलाद दास, साहित्य संस्थान लाउदर रोड, इलाहाबाद
(१५) आधुनिक कवि (प्रति-निधि संकलन)	१९७८	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
(१६) परशुराम	(अप्रकाशित)	